BIHAR YOGA

रिखियापीठ सत्संग

भाग 5

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

रिखियापीठ सत्संग

भाग 5

ॐ, प्रेम, मंगलम्

स्वामी निरंजन

रिखियापीठ सत्संग 5

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

रिखियापीठ, देवघर में नवम्बर तथा दिसम्बर, 1997 में
श्री स्वामीजी द्वारा दिये गये सत्संग



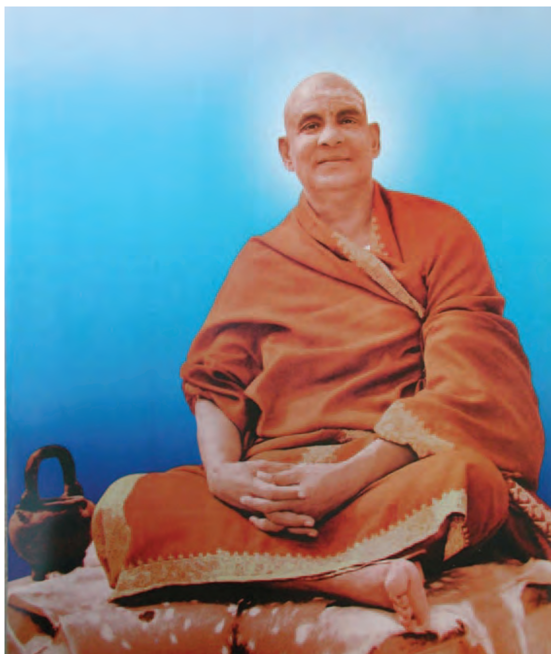
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा   प्रथम प्रकाशन 2018

ISBN: 978-93-84753-68-9

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक— थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड
नयी दिल्ली

वेबसाइट: www.biharyoga.net



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005



अध्याय 1

हिन्दुस्तान के शासन-तंत्र की सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि समाज का जो सबसे दलित और उपेक्षित वर्ग है, जैसे गाय चराने वाला चरवाहा, खेत में काम करने वाला मजदूर, सफाई करने वाला मेहतर, साँप नचाने वाला सँपेरा, इन लोगों को देखने वाला कोई नहीं है। बिहार में ही नहीं, हिन्दुतान भर में इन लोगों की यही हालत है कि सबेरे से लड़की उठकर घर की सफाई करेगी, माँ शौच के लिये मैदान जायेगी तो रास्ते में जहाँ-जहाँ लकड़ी पड़ी होगी, उसे उठाकर ले आयेगी। घर के सभी लोग ऐसे ही छोटी-छोटी लकड़ियाँ इकट्ठी कर लेते हैं तो नाश्ता बन जाता है। लड़की घास काटेगी, फिर बकरी चरायेगी, लड़का भैंस चरायेगा, इनका दिन-भर ऐसा ही चलता है। अब वे पढ़ने कैसे जायेंगे। पढ़ने जायेंगे तो काम कौन करेगा। माँ अकेले तो नहीं कर सकती।

पढ़ना सब चाहते हैं। जब से हम यहाँ आए हैं, स्कूलों में बच्चों की संख्या दुगुनी हो गयी है। मगर साथ ही व्यावहारिकता को भी देखना पड़ता है। अब जैसे आजकल हिन्दुस्तान में लोग मानव अधिकारों पर बहुत-सी बातें कहते हैं। लेकिन जब तक आदमी को खाने को नहीं मिलेगा, नौकरी नहीं मिलेगी, कपड़ा नहीं मिलेगा, तब तक मानव अधिकारों की बात नहीं की जा सकती। हम मानते हैं कि मानव अधिकार एक ऐतिहासिक वास्तविकता है। इतिहास में एक दौर ऐसा आता है, जिसमें मानव अधिकारों की बात की जा सकती है। मगर मानव अधिकारों की बात उसी समाज में की जा सकती है, जिस समाज में खान-पान और रहन-सहन की व्यवस्था ठीक हो। जैसे यूरोप में उन लोगों ने सब व्यवस्थित कर लिया है, अब वे मानव अधिकारों की बात

कह सकते हैं। यहाँ या किसी भी विकासशील देश में मानव अधिकार की जो बात कहते हैं वह गलत कहते हैं।

उसी तरह से जनसंख्या का मसला है। शहर में जनसंख्या कम होना तो ठीक है, मगर गाँव में तो ज्यादा कठिनाई है। कम जनसंख्या माने ज्यादा समस्या। गाँव में तो एकविवाह प्रथा भी काम नहीं कर रही है। पहले तो बहुविवाह प्रथा होती थी। किसी भी किसान को अपना घर चलाने के लिये एक खाना बनाने वाला चाहिये, बर्तन साफ करने वाला चाहिये, जानवर देखने वाला चाहिये, घर में कोई बीमार हो तो उसको देखने वाला कोई चाहिये, कपड़ा-लत्ता धोने वाला कोई चाहिये, गाय-बैल को चराने वाला कोई चाहिये और बाहर शहर में जाकर कोई नकद कमाने वाला भी चाहिये। खेती-बाड़ी बहुत कठिन है। बैल चाहिये, हल चाहिये, हल चलाने वाला चाहिये, फिर उसके बाद अच्छा मौसम चाहिये, पानी चाहिये, फिर उसके बाद घास उखाड़ने वला चाहिये।

अगर बहुविवाह प्रथा बढ़ेगी तो जनसंख्या भी बढ़ेगी न?

पहले तो जनसंख्या नहीं बढ़ी थी, जबकि पहले तो बहुविवाह प्रथा थी। हमारे बचपन में हिन्दुस्तान की आबादी 30-32 करोड़ थी। उन दिनों में एक-एक घर में दो-दो, तीन-तीन औरतें होती थीं। कुल मिलाकर चार या पाँच बच्चे होते थे। ज्यादा भी होते थे, पर औसतन पाँच कह रहा हूँ। अब बहुविवाह प्रथा नहीं है, फिर भी औसत ज्यादा है। एक किसान के घर में बहुत काम होता है। जो मजदूर खेतों में रोज लगाते हैं, वे बहुत महंगे होते हैं। उनको सबेरे नाश्ता देना पड़ता है और 30-40 रुपये रोज देना पड़ता है। हर कोई उनका खर्चा वहन नहीं कर सकता। अगर घर में 5-6 लोग रहें तो तुम्हें मजदूर की जरूरत नहीं पड़ेगी। अब यह जो समस्या है, वह हिन्दुस्तान की बहुत बड़ी समस्या है।

उसका निराकरण कैसे होगा?

जब तुम भारतवर्ष को देखते हो तो इसे केवल एक संस्कृति के रूप में नहीं देखना है। भारतवर्ष आज इतिहास के कई युगों को एक साथ लेकर जी रहा है। आज तुम यहाँ 16वीं शताब्दी से लेकर 21वीं शताब्दी का जीवन देख सकते हो। हिन्दुस्तान आज एक साथ इतिहास के कई क्षणों में जी रहा है,

जो तुमको न इंग्लैंड में मिलेगा, न जापान, जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका कनाडा या ऑस्ट्रेलिया में। यह केवल हिन्दुस्तान में मिलेगा। ऐसे जटिल समाज के लोगों के लिये आपकी सरकार, आपकी राजनीति कोई काम नहीं कर रही है। वह केवल पश्चिम की नकल कर रही है। आप मानव अधिकारों की बात करते हैं, जो ऐसे समाज में करनी ही नहीं चाहिये। जब तक पेट नहीं भरता, तब तक मानव अधिकार नाम की कोई चीज ही नहीं है। जब तक राजनैतिक स्थिरता नहीं आती, सामाजिक स्थिरता नहीं आती, आर्थिक परिपूर्णता नहीं आती, मानव अधिकारों की बात करना बेवकूफी है। तुम्हारा पेट तो खाली है, तुम्हारे बाल-बच्चे भूखे मर रहे हैं और शहरी लोग मानव अधिकारों की बात कर रहे हैं!

हम शहरों में भी रहे हैं, वहाँ पाँच सितारा जीवन बिताया है, और गाँवों में भी बहुत रहे हैं। यहाँ रोज सबेरे औरतें शौच के लिये जाती हैं तो लकड़ियाँ इकट्ठी करके लाती हैं चूल्हा जलाने के लिये। हम अपने आश्रम के बाहर जरा सी भी चीज रखते हैं तो पाँच मिनट में गायब हो जाती है। लकड़ी का टुकड़ा गायब हो जाता है, ईंट का चूरा गायब हो जाता है, सीमेंट के कंकड़ गायब हो जाते हैं। सब इस्तेमाल हो जाता है।

मेरा कहने का मतलब यह है कि हिन्दुस्तान की समस्या सुलझाने के लिये संस्कृति का आधार इन लोगों को मानना होगा। राजनैतिक पार्टियों से कोई उम्मीद नहीं, वे सब 21वीं शताब्दी की पार्टियाँ हैं। हम लोगों को सबसे पहले चरवाहों, हलवाहों, किसानों, मजदूरों, मोचियों, मेहतरों, सपेरों और मदारियों को पकड़ना होगा। बहुसंख्या इनकी है, शहर वालों की नहीं है। आप सब शहरी लोग अल्पसंख्यक हैं। अल्पसंख्यक का मतलब हिन्दुस्तान में आप 25 प्रतिशत से अधिक नहीं हो। मैं वर्ग की बात कह रहा हूँ, जाति की बात नहीं। जाति की बात कहोगे तो हिन्दुस्तान में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मिलकर भी 25 प्रतिशत नहीं होते। मैंने तो इस विषय पर काम किया है। आज की नहीं, 1956 के पहले की बात कह रहा हूँ। जिस वक्त मैं आदिवासियों पर शोध कर रहा था, उस वक्त उनकी संख्या 12 करोड़ थी, और कुल जनसंख्या 45 करोड़ थी। तब हिन्दुस्तान में बहुविवाह प्रथा चलती थी। हर घर में औसतन दो-तीन पत्नियाँ और चार-पाँच बच्चे थे। 'हम दो-हमारे दो' का हिसाब नहीं था। 'हम दो-हमारे दो' कहते-कहते तो तुमने जनसंख्या 90 करोड़ कर दी है। अपनी गलती भी तो मालूम पड़नी चाहिये

न! किसी भी समाज या सरकार को यह नहीं कहना चाहिये कि जो हम कर रहे हैं, ठीक ही कर रहे हैं। वरना 30 करोड़ 90 करोड़ कैसे बन गये?

उस वक्त हिन्दुस्तान में प्रति परिवार 5 बच्चे औसत था। दो स्त्रियाँ तो सामान्य था। मैं ब्राह्मणों और वैश्यों की बात नहीं कर रहा हूँ, क्षत्रियों और शूद्रों की बात कर रहा हूँ। उस जमाने में प्राय: गाँवों में क्षत्रियों और शूद्रों के घर में किसी का पति मर जाए, तो उसका जेठ या देवर उसे चूड़ी पहना देता था। दूसरे दिन सुबह वह उसकी दूसरी पत्नी हो गई, परिवार मजबूत हो गया। कहने का मतलब यह कि किसी भी समाज को शुद्ध और सुव्यवस्थित बनाने के लिये सबसे पहली चीज आर्थिक व्यवस्था है। अगर आपके घर का आर्थिक ढाँचा गिर जायेगा तो आप अपने परिवार का संतुलन नहीं रख पाओगे। जब आर्थिक संतुलन की बात होती है तो यहाँ 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में है। दुनिया में कोई भी देश ऐसा नहीं है जो अपने पूरे इतिहास में केवल कृषि पर अवलम्बित रहा हो। लेकिन आर्यों के समय से लेकर आज तक हिन्दुस्तान कृषि पर निर्भर रहा है, अर्थात् यहाँ की जनता में 70-80 प्रतिशत किसान हैं। पर आप लोग हर साल जो बजट बनाते हो, उसमें से 80 प्रतिशत अपने शहरों को देते हो और 20 प्रतिशत हमारे गाँवों को। जबकि शिक्षा, बिजली, पानी, इत्यादि में 80 प्रतिशत संसाधन यहाँ आने चाहिये। इसीलिये सामाजिक असंतुलन है।



भारतीय संस्कृति मूलत: कृषि प्रधान है और कृषि प्रधान ही रहेगी। कोई भी संस्कृति, कोई भी राजनैतिक व्यवस्था विश्वविद्यालयों के बिना, हवाई जहाजों के बिना, रेलगाड़ियों के बिना, पुलिस के बिना टिक सकती है, मगर खाने-पीने के बिना नहीं टिक सकती। हवाई जहाज, रेलगाड़ी या मोटर-कार की तो कभी-कभी जरूरत पड़ती है, मगर रोटी-दाल-चावल की जरूरत दिन-रात पड़ती है, कपड़े की जरूरत हर समय पड़ती है। तब सबसे बड़ा उद्योग कौन-सा हुआ? सबसे बड़ा उद्योग है पेट का और दूसरा उद्योग है कपड़े का। ये दो सबसे बड़े उद्योग हैं, पर उनका कोई ख्याल ही नहीं करता।

अभी तो गोहत्या इतनी चल रही है, इसका कृषकों पर क्या असर पड़ेगा?

देखो जी, गोहत्या तो चलेगी। उसको कोई रोक नहीं सकता है, क्योंकि आप लोगों ने गाय को धर्म के आधार पर माँ के रूप में माना है, मगर आज का अर्थप्रधान युग वैसा मानने को तैयार नहीं है।

गाय की उपयोगिता भी तो है?

मगर आप उपयोगिता की बात तो कर ही नहीं रहे हैं। आप तो कहते हैं कि चूँकि वह हमारी माँ है, इसलिये उसे मारना नहीं चाहिये। गोरक्षा के पीछे आपका जो आधार है, वह धार्मिक है, आर्थिक नहीं। जो लोग गोहत्या करते हैं, जिन देशों में गाय का माँस खाया जाता है, वहाँ जाकर आप गाय को देखें। डेन्मार्क, हॉलैण्ड या ऑस्ट्रेलिया की गाय देखिये, यहाँ के हाथी बराबर होती है। उसके थन सीमेंट बैग की तरह होते हैं। हाथ से दूध नहीं निकाल सकते, 20 लीटर दूध कौन निकालेगा? हम ऑस्ट्रेलिया में जो गाय रखते थे, उनका दूध निकालने के लिए मशीन लगानी पड़ती थी। 20 लीटर दूध सबेरे, 20 लीटर शाम को। और वह गाय खाती है तो पूरा-पूरा खाती है। उसके रहने के लिये हीटर, थरमोस्टैट वगैरह सब व्यवस्था होती है।

वे लोग अगर गाय का माँस खाते हैं तो उनको खाने का अधिकार है, क्योंकि उन्होंने गाय को उपयोगी जानवर माना है। उपयोगी जानवर मानने के नाते अधिकार है। उन्होंने अपने यहाँ नियम बनाया है कि जो माँस वाले जानवर होते हैं, वे दुधारू नहीं होते। माँस के लिए जानवरों को अलग से पाला जाता है। उनको बचपन से ही खिला-पिलाकर कर इतना मोटा बना देते

हैं कि वे हिल-डुल भी नहीं सकते। उनके बाड़े में कभी देखो, पैर उठाने में भी उनको दिक्कत होती है। उनको बहुत जल्दी, पाँच या छः साल की उम्र में ही कसाई-खाने भेज दिया जाता है।

मगर अपने यहाँ क्यों काटे जाते हैं? माँस निर्यात होता है क्या?

नहीं, इसलिये काटे जाते हैं कि हम लोगों के यहाँ अब हर एक चीज को अर्थ की दृष्टि से देखा जाने लगा है। अपने यहाँ अर्थ का अत्यंत अभाव है। हिन्दुस्तान का आम आदमी गरीब है। वह दुनिया के लोगों को देखता है और अपने को देखता है तो बहुत फर्क दिखाई देता है।

पर एक गाय एक आदमी का पेट तो पाल सकती है न?

सिद्धांत में हम भी जानते हैं। आखिर हम खुद गाय रखते हैं। साग-सब्जी की जरूरत नहीं पड़ती। हम लोग दूध का सब कुछ बना लेते हैं। दूध भी पीते हैं, दही-छेना भी खाते हैं। मगर गाय को रखना कितना कठिन है, यह जानते हो तुम? गाय को रखने की एक समुचित व्यवस्था होती है। अगर व्यवस्था ठीक न हो तो गाय बीमार हो जाती है। हम तो यहाँ गाँववालों को कम-से-कम 150 गाय दे चुके हैं। पर ये लोग ठीक से नहीं रख पाते। किसी का पैर टूट जाता है, कोई बीमार होकर मर जाती है, किसी को कुछ हो जाता है। यहाँ जब गाय गर्मी में आती है, तो देवघर ले जाना पड़ता है। जाते-जाते ठण्ढी पड़ जाती है। यहाँ कोई पशु-डॉक्टर भी नहीं आता। हमें जरूरत पड़ती है तो हम टेलीफोन करते हैं, डॉक्टर आता है, इंजेक्शन देता है, पर सब गाँववाले ऐसा थोड़े ही कर सकते हैं। उनकी बात तो कोई सुनेगा ही नहीं।

हम लोगों को पूरी संरचना बदलनी होगी। महात्मा गाँधी कहा करते थे कि यह देश ग्राम प्रधान देश है। यहाँ का स्वराज ग्राम-स्वराज होना चाहिये, यहाँ की संस्कृति ग्राम संस्कृति होनी चाहिये। यहाँ की भाषा, यहाँ की वेश-भूषा गाँव की तरह होनी चाहिये। गाँधीजी इसपर बहुत जोर देते थे। गाँधीजी और विनोबाजी का दर्शन भारत के लिये सर्वोत्तम है। लोग आजकल भले ही डर के मारे या अन्य किसी कारण से गाँधीजी की जय नहीं बोलते, मगर सच्चाई यह है कि गाँधीजी का सिद्धांत सर्वोत्तम है। उन्होंने ग्रामीण अर्थशास्त्र पर व्यापक रूप से लिखा है, किस तरह के गाँव होने चाहिये, वहाँ के विद्यालयों में क्या सिखाना चाहिये। आज बच्चे क्या सीखते हैं यहाँ? अकबर

कब जन्मा, औरंगजेब कब मरा, कौन उसका बाप था, कौन उसकी बहिन थी। अब यह सब गाँव की किस लड़की के काम आने वाला है? जब ससुराल जायेगी तो अपने ससुर को क्या यही बतायेगी कि अकबर कब पैदा हुआ?

यह व्यवस्था गलत है न?

व्यवस्था गलत है तो ठीक करना आप लोगों का काम है। इस देश की हर संस्था का, विशेषकर धार्मिक संस्थाओं का पहला लक्ष्य गाँव होना चाहिए, न कि शहर। हिन्दुस्तान के गाँवों में कभी कोई महात्मा जाता है टिकने के लिये? मैं जब यहाँ टिकने के लिये आया, तब लोग मेरा मजाक उड़ाते थे कि गाँव में क्या रखा है। ये लोग तो एक रुपया भी नहीं दे सकते। वैसे हमको चाहिये भी नहीं इनका पैसा। जबकि साधु गृहस्थ के आगे हाथ पसारता है, यहाँ तो गृहस्थ साधु के आगे हाथ पसारता है, उल्टी गंगा है। यहाँ कोई साधु-संन्यासी नहीं आता, सब देवघर से ही उपदेश देकर वापस चले जाते हैं। जगद्‌गुरु कभी नहीं आये यहाँ। यहाँ के लोगों को मालूम भी नहीं कि जगद्‌गुरु किस चिड़िया का नाम है, महामण्डलेश्वर क्या होता है।

कहने का मतलब यह कि हर संस्था का, चाहे वह सरकारी हो, गैर-सरकारी हो, धार्मिक हो, या और कुछ हो, उसका पहला काम गाँव से ही शुरू होना चाहिये और वहाँ शिक्षा बुनियादी होनी चाहिये। गाँव की बुनियाद क्या है? सबेरे गाय का गोबर उठाओ, खेती करो, निराई करो, फसल काटो। यहाँ की शिक्षा इसी बुनियाद के मुताबिक होनी चाहिये, याने कैसे सब्जी लगायी जाए, कैसे फल लगाये जाएँ, किस प्रकार से खेती की जाए, किस प्रकार से सिंचाई की जाए, यह बुनियादी शिक्षा गाँव में होनी चाहिये। इसके अलावा थोड़ा बहुत लिखना, पढ़ना और गणित भी सिखाना चाहिये।

अभी तो शहरी शिक्षा भी शहर के लायक नहीं है।

शहर की शिक्षा को तो मारो गोली, शहर हिन्दुस्तान में हैं ही कितने? 10-12 प्रतिशत। हमारे देश का आधार गाँव है, न कि शहर। शहरों की संस्कृति बादशाहों के साथ बदलती है, गाँवों की संस्कृति नहीं बदलती। तुम उड़ीसा के किसी सुदूर गाँव में चले जाओ, लगता है वहाँ तुम 16वीं शताब्दी में हो। अरुणाचल प्रदेश या मेघालय में चले जाओ तो लगता है 17वीं शताब्दी में हैं, और बम्बई या बैंगलौर चले जाओ तो लगता है 20वीं शताब्दी में हैं।

हिन्दुस्तान इतिहास की अनेक शताब्दियों को एक साथ जी रहा है, जबकि पाश्चात्य जगत् में सभी लोग 20वीं शताब्दी में जी रहे हैं। उन लोगों की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वे स्वभाव के बनिये हैं। जहाँ उनका माल बिकेगा, वहाँ वे चले जायेंगे। माल बेचना, यह आदिकाल से पाश्चात्य सभ्यता का मूल मंत्र रहा है। और उसके लिये वे कुछ भी कर सकते हैं। दो देशों को आपस में लड़ा सकते हैं। वे इसको भी बन्दूक बेचेंगे और उसको भी। शुरू से वे ऐसा ही करते आ रहे हैं।

लेकिन उन लोगों में एक बात अच्छी है कि वे उपयोगी वस्तु का आदर करते हैं। जैसे गाय के बारे में मैंने तुमसे कहा। गाय को बिल्कुल आदमी की तरह रखते हैं। अगर सचमुच में देखा जाय तो जैसे माँ को रखा जाता है, वैसे रखते हैं वे लोग। उनके लिये सरकार द्वारा निर्धारित विशेष चारागाह होते हैं, जहाँ स्प्रिंकलर से सिंचाई की जाती है। बड़ी-बड़ी मशीनों से घास काटी जाती है, जिसे सुखाकर चारा के रूप में देते हैं। गाय की नियमित डॉक्टरी जाँच होती है, उसके दूध का परीक्षण होता है। मशीन से दूध निकालकर फैक्टरी में इकट्ठा करके पैस्चुराईज़ किया जाता है, फिर बोतलों में भरकर बाजार में भेज देते हैं। इस क्षेत्र में डेन्मार्क और हॉलैण्ड बहुत आगे हैं। वहाँ गाय का बीमा कराना भी अनिवार्य है। दुर्घटना में मर जायेगी तो बीमा रकम मिल जायेगी। ऑस्ट्रेलिया में हमारा एक आश्रम समुद्र के किनारे है। वहाँ एक बार बाढ़ आई तो हमारी गाय डूब गई। छः हजार डॉलर दिये बीमा कम्पनी ने।

वहाँ गाय का कृत्रिम गर्भाधान करने के लिये उसके डी.एन.ए. को पशुचिकित्सक के पास भेजा जाता है। मालिक से पूछा जाता है कि तुम कौन-से किस्म का बछड़ा चाहते हो। मालिक उसका चयन करता है, चयन करके नस्ल का मिलान करते हैं, उसी के मुताबिक गाय का कृत्रिम गर्भाधान किया जाता है। बछड़ा पैदा होने के दूसरे या तीसरे दिन, उसे माँ से अलग कर देते हैं। बछड़े को कभी भी थन का दूध नहीं पिलाते, कहते हैं उससे संक्रमण की सम्भावना होती है। उसको दूर ले जाया जाता है और बोतल से पिलाया जाता है। एक-दो दिन गाय बहुत रोती है, फिर चुप हो जाती है। गाय का अलग से दूध लेते हैं, एक बार में 20-20 लीटर देती है। वहाँ की गाय सीधी-सादी होती है, सींग नहीं मारती। धीरे-धीरे चलती है, सेठजी की तरह। जब वह बाँझ हो जाती है तो उसको चारागाह में छोड़ देते हैं।

हमारे आश्रम में गोपालन अच्छा चल रहा है, अब तक करीब 100 गायें निकल चुकी हैं बाहर। गाँव के लोग उत्साही हैं। जब हम गाय देने की बात करते हैं तो पूछते रहते हैं कि कब देंगे और गोसेवा में भी अच्छे हैं। हम तो गाँववालों को सबसे अच्छी नस्ल की गाय देना चाहते हैं, पर ये रख नहीं पायेंगे। दूध के उत्पादन में दुनिया के बाजार को पकड़ना चाहिए। व्यापारी वह है जो बाजार को घेर सके। सिर्फ दूध ज्यादा उत्पादन करने से क्या फायदा? इन लोगों को मार्केट पकड़ना चाहिये। वह तभी होगा जब हम लोगों के गाँवों की हालत सुधरेगी और गाँव की हालत सुधारने के लिये भारतीयों को हमेशा ग्राम्य संस्कृति का उपासक रहना चाहिये, क्योंकि ग्राम्य संस्कृति एक पवित्र संस्कृति है।

किसी भी सरकारी, गैर-सरकारी अथवा धार्मिक संस्था के आगे आज यह एक बहुत बड़ी चुनौती है कि वे गाँव को स्वर्ग बना सकें। चाहे वह शासक वर्ग हो, व्यापारी वर्ग हो अथवा शिक्षक वर्ग हो, सभी वर्गों के सामने यह बहुत बड़ी चनौती है। गाँव को स्वर्ग बनाने के लिये केवल थोड़ी-सी मेहनत करनी पड़ेगी, ज्यादा नहीं। गाँव के लोग एकदम स्वावलम्बी हैं, ये अपने भरोसे जीना जानते हैं। इनकी परम्पराएँ, रीति-रिवाज, रहन-सहन और चाल-चलन बहुत अच्छा है। इनकी बीमारियाँ भी गम्भीर नहीं हैं। धनबाद, दिल्ली या जबलपुर जैसे शहरों वाली बीमारियाँ नहीं हैं। यहाँ कोई हृदय रोगी नहीं मिलेगा, कोई मधुमेह रोगी नहीं मिलेगा।

ये लोग मेहनत करते हैं इसलिये क्या?

नहीं, मेहनत के अलावा भी एक चीज है। बीमारी भी वहीं जाती है जहाँ पैसा होता है। गरीब के यहाँ बीमारी क्यों जायेगी? गरीब के यहाँ तो चूहा भी नहीं जाता है, सोचता है कि क्या करेंगे जाकर, वहाँ कुछ मिलने वाला है नहीं। चूहा भी वहीं जाता है जहाँ माल रहता है। जब हम योग सिखाने विभिन्न शहरों में जाते थे, तो जान निकल जाती थी। उन लोगों की बीमारियाँ समझ में ही नहीं आती थी। यहाँ सब की बीमारियाँ समझ में आ जाती हैं। कोई कहता है, स्वामीजी, पेट में दर्द है। हम कहते हैं, इसको पुदीने का अर्क दे दो। यहाँ की बीमारी पुदीन-हरा वाली है। एक ही गम्भीर बीमारी है यहाँ की, वह है टीबी। उसका इलाज भी यहाँ अच्छे से हो जाता है। बम्बई के लोग दवाइयों का पूरे का पूरा कोर्स भेजते हैं। यहाँ भागलपुर से हर रविवार को डॉक्टर

साहब आते हैं, सबकी जाँच होती है, फिर शहर में एक्स-रे वगैरह कराते हैं। सफलता की दर बहुत अच्छी है, हमको संतोष है। उसके अलावा यहाँ ऐसी कोई बीमारी नहीं जिसका इलाज हम न करा सकें।

शहरों में प्रदूषण बहुत ज्यादा है, शायद इसलिए वहाँ बीमारियाँ ज्यादा हैं?

शहरों में 70-80 प्रतिशत बीमारियों का मूल वहाँ का प्रदूषित वायुमण्डल है। नम्बर एक वायुमण्डल, नम्बर दो ध्वनिमण्डल। ध्वनि तरंगें भी मस्तिष्क पर कुप्रभाव डालती हैं। बाहर का प्रदूषण, चाहे वह वायुमण्डल का हो या ध्वनिमण्डल का, वह अपनी जगह पर है, मगर सबसे बड़ा प्रदूषण, सबसे ज्यादा गंदगी मनुष्य के मन में है। मनुष्य के मन में जब बहुत-सी इच्छाएँ होती हैं, तब उसका मन प्रदूषित होता है, और जब इच्छाएँ कम होती हैं तो मन निर्मल रहता है। शहरों में जाने पर अनेक प्रकार के दबाव मन पर पड़ते हैं-इच्छाओं के दबाव, वासनाओं के दबाव, आशा-निराशा के दबाव, राग-द्वेष के दबाव। कई प्रकार की जटिलताएँ आती हैं, जिन्हें मनोविज्ञान की भाषा में कुण्ठा कहते हैं। इनसे मनुष्य की हॉर्मोन व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। हॉर्मोन्स भले ही जरा-से होते हैं, मगर जहर की पुड़िया के समान होते हैं। यदि शरीर में जरूरत से ज्यादा स्रावित हो गये तो किसी को गठिया, तो किसी को कुछ बीमारी दे देते हैं। इसी से यूरोपियन देश बहुत प्रभावित हैं। हिन्दुस्तान में तो यह अब शुरू हुआ है।

भारतीय संस्कृति में जन्माष्टमी, दीपावली, छठ, एकादशी, आदि बहुत-से उत्सव, त्यौहार और पर्व हैं, जिनमें लोग पूजा-पाठ, उपवास, व्रत इत्यादि करके बहुत हद तक अपना संतुलन बनाये रखते हैं। ये जो व्रत और त्यौहार हैं, ये मनुष्य की मानसिक और आध्यात्मिक बीमारियों को दूर रखते हैं। भगवान को खुश करने का तो बहाना है, सबसे बड़ी चीज यह है कि ये मन के लिये बहुत जरूरी हैं। अगर आप ये सब नहीं करेंगे, अगर जन्माष्टमी का त्यौहार न हो, मकर संक्रांति का मेला न हो, कुम्भ मेला न हो, सब बन्द कर दिया जाए, तो आप लोगों को भी यूरोप की तरह मेला करना पड़ेगा, वह माईकल जैक्सन वाला। वह तो केवल वासनाओं की दौड़ है, जिसमें सब नकारात्मक तत्त्व एकत्र होते हैं। मनोरंजन में भी आध्यात्मिकता होनी चाहिये। होली, दीवाली या विजयादशमी, इनमें मनोरंजन नहीं है क्या? दुर्गा पूजा में

नौ दिन तक उत्सव चलता है, सब लोग यहाँ-वहाँ जाते हैं, मिठाई खाते हैं, वह भी मनोरंजन है।

हम लोगों ने मनोरंजन के अलग तरीके निकाले हैं, पाश्चात्य लोगों ने अलग। और उनकी सभ्यता उसी मनोरंजन में समाप्त होगी, जैसे मिस्र, रोम और यूनान की हुई थी। कोई भी सभ्यता चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हो, वह अपने दुर्गुणों के बोझ से नष्ट हो जाती है। कल ब्रिटेन शक्तिशाली राष्ट्र था, आज अमेरिका बहुत शक्तिशाली राष्ट्र है, पर यह काफी नही है। राजनैतिक शक्ति राष्ट्र की अन्तिम शक्ति नहीं है। सेना किसी देश की हमेशा रक्षा नहीं कर सकती। अपने घर में बन्दूक रखो, समाज में सेना रखो, मगर यह सब देश को सुरक्षित नहीं रख सकते। राजनीति राज्य को सुरक्षित नहीं रख सकती। अगर रख सकती तो रोम जैसा दिग्विजयी साम्राज्य क्यों समाप्त हुआ? मिस्र जैसा प्रतापी साम्राज्य समाप्त हो गया। सोवियत संघ रातों-रात खत्म हो गया।

किसी भी राष्ट्र की सबसे बड़ी शक्ति वहाँ की आध्यात्मिकता है और भारतवर्ष इसी पर अब तक कायम रहा है। इसी के बल पर इसने यूनानी आक्रमण को झेला, हूणों के आक्रमण को झेला, मुगलों और अंग्रेजों के आक्रमणों को झेला। अभी तो बड़े जोर-शोर से बनिये लोग याने मल्टीनेशनल कम्पनियाँ आ रही हैं, उसको भी यह झेल लेगा। हम लोग इस संस्कृति को बचाकर रखेंगे। इसके लिये साधु-संन्यासियों का राजनीति से अलग रहना जरूरी है। एकदम अलग, जैसे हम हैं। अलग रहो और अपनी जो बात कहनी है, सो कहो। देश के लिये बोलो, लोगों के लिये बोलो, किसी दल या सरकार के लिये नहीं।

भारत ही एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ हमारे ऋषि-मुनियों ने हजारों-हजार साल तक प्रयास करके कुछ मौलिक सिद्धान्तों को जन्म दिया-पुनर्जन्म का सिद्धान्त, साकार उपासना अर्थात् मूर्ति पूजा का सिद्धान्त, व्रत-त्यौहार-पर्व का सिद्धान्त, तीर्थों और देवस्थलों का सिद्धान्त। क्या वजह है कि भारतवर्ष में अगर तुम रामेश्वरम् में भी रहो और तुम्हें तीर्थयात्रा करने का मन करे तो तुम प्रयाग या हरिद्वार ही जाओगे। तंजौर में अगर किसी को संन्यास की इच्छा होगी तो वह ऋषिकेश ही आयेगा। अगर दिल्ली में किसी को संन्यास की इच्छा होगी तो वह विजयनगर नहीं जायेगा, हरिद्वार-ऋषिकेश ही जायेगा। हमारे यहाँ परम्परा बनी हुई है, उत्तराखण्ड ज्ञान का क्षेत्र और दक्षिणावर्त कला का क्षेत्र।

पर यहाँ की मूल चीज है गाँव। यहाँ किसान और मजदूर बहुसंख्यक हैं, जबकि उच्च वर्ग अल्पसंख्यक है। इन सब बातों के बारे में अच्छी तरह से सोचना पड़ता है, जो हमारे ऋषि-मुनियों ने सोचा था। हिन्दुस्तान में हर राजनैतिक दल को गाँव के ही समर्थन पर चलने के लिये अपने को तैयार करना चाहिये। वे क्यों अमीर लोगों से पैसा चाहते हैं? वे क्यों बम्बई, धनबाद या कलकत्ता जाते हैं? गाँव में क्यों नहीं आते? बिजली या सड़क छोड़ दीजिये, गाँव के लिए पानी सबसे जरूरी है। और वह भी पीने का पानी नहीं। हिन्दुस्तान का आदमी कई हजार सालों से पोखर का पानी पीता आया है और जिन्दा रहा है। पर खेती के लिये पानी आवश्यक है। हिन्दुस्तान के आदमी के लिये पीने का पानी जरूरी नहीं, उसको आरामदायक बिस्तर की भी जरूरत नहीं। ये लोग तो रस्सी वाली खटिया पर सो जाते हैं। यहाँ तो मच्छर भी नहीं आता, सोचता है कि यहाँ के लोगों के शरीर में खून ही नहीं है, आकर क्या करेंगे। कौए भी नहीं आते, सब देवघर चले गये हैं। सब चिड़ियाँ चली गई हैं यहाँ से, जब खेती का मौसम आएगा, तब आयेंगी।

मन का जो प्रदूषण है, वह आदमी का खुद का बनाया हुआ है या परिस्थितिजन्य है?

कुत्ते का स्वभाव होता है गू खाना। पर उसको गू नहीं मिलेगा तो नहीं खायेगा। वैसे ही मनुष्य की मनोदशा परिस्थितिजन्य है और उसके स्वभाव पर भी निर्भर है। मनुष्य के मन में सबसे पहली चीज है, कामना। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं जो कामना न करता हो। शादी की कामना, संतान की कामना, धन-समृद्धि की कामना, सब में होती है। यह मन का स्वभाव है, जो समाज के कारण नहीं, प्रकृति के कारण है। प्रकृति से ही मनुष्य के मन में तीन प्रकार की कामनाएँ स्वाभाविक रूप से उपस्थित होती हैं। अब परिस्थितियों के कारण एक कामना और आ गई, यश, प्रतिष्ठा या सत्ता की कामना। यह कामना परिस्थितिजन्य है, जबकि पुत्र, स्त्री या धन की कामना तो स्वाभाविक है। यह तुम जानवरों में भी देख सकते हो, यह प्राकृतिक है।

मन के स्वभाव में दूसरी चीज है चंचलता। मन एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं रह सकता। मन कभी चुप नहीं बैठेगा और इसे वश में लाना उतना ही मुश्किल है, जितना हवा को मुट्ठी में बाँधना। अर्जुन ने यही बात भगवान श्रीकृष्ण से कही थी–

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥6.34॥

तब भगवान श्रीकृष्ण उसे जवाब देते हैं–

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥6.35॥

'हाँ अर्जुन, तुम ठीक कहते हो कि मन बहुत चंचल है, और इसे वश में करना अत्यंत कठिन है। किन्तु दो तरीकों से मन को नियंत्रित किया जा सकता है। पहला है अभ्यास, और दूसरा है वैराग्य।' जब लड़का गलती करता है तो मास्टर उसे दस बार लिखने को कहता है न? इसी को अभ्यास कहते हैं। एक ही चीज को बार-बार करना। और यह वैराग्य क्या है? यहाँ बात हो रही है गृहस्थ से, संन्यासी से नहीं। इसलिए यहाँ वैराग्य गृहस्थ के लिये कहा गया है। वैराग्य का मतलब राग का नहीं होना। साधारण-सा उदाहरण देते हैं, मेरा बाप मर गया, आज नहीं पाँच साल पहले; मेरा घर जल गया, आज नहीं दस साल पहले; किसी ने मेरे घर में आकर चोरी कर ली, आज नहीं आठ साल पहले, फिर भी वह सब आज दिमाग में आता है। यही राग है। मेरा बहुत बड़ा घर था, आलीशान कमरे थे, बढ़िया बगीचा था, स्विमिंग पूल था, दो गाड़ियाँ थीं, पर मेरे चचेरे भाई ने सब मार लिया, अब कुछ नहीं है-यह ख्याल जो बार-बार दिमाग में आता है, उसे कहते हैं राग, और यदि मन में ऐसा विचार नहीं आए तो वैराग्य कहलाता है।

राग को भुलाने का क्या उपाय है?

खोपड़ी अच्छी होनी चाहिये। समझदारी अच्छी होनी चाहिये कि बाप तो पाँच साल पहले मर गये, अब रोकर क्या फायदा। दस साल पहले जमीन-जायदाद चाचाजी ने मार ली, अब हम उसके बारे में क्या करें। आदमी को आज में रहना है, बीते हुए कल में नहीं। उसकी आँखें सामने होनी चाहिये, पीठ की तरफ नहीं। जो चश्मा तुमने पीछे लगाकर रखा है, उसे निकालकर आगे की तरफ लगाओ। किसी से प्रेम हो गया या किसी से घृणा हो गई या किसी से तकरार हो गया या किसी में दिल लग गया या कभी तुम्हें बहुत फायदा हुआ या कभी तुम्हें बहुत बड़ा नुकसान हुआ या कभी तुम्हें बहुत बढ़िया दोस्त मिल गया या कभी बहुत बढ़िया गाना सुन लिया या कभी बहुत

बढ़िया खाना खा लिया या कभी बहुत बड़े होटल में चले गये, इन सब पुरानी चीजों को याद करना राग है।

राग मन को चंचल करता है। मन को सबसे ज्यादा हिलाने वाला वही है। अगर तुम भूतकाल से सम्बन्ध काट दो तो समझ लो कि तुम्हारा तीन चौथाई काम बन गया। मनुष्य की अशान्ति, उसकी समस्याओं का तीन चौथाई कारण उसका अतीत है। गलत है या सही? मुझे न तो अतीत से मतलब रहा है और न भविष्य से। मैं तो अपने अनुभव से कह रहा हूँ। अगर आदमी किसी भी तरह से अपने भूतकाल से अपने सम्बन्ध को काट सके तो उसका 75 प्रतिशत दु:ख दूर हो जायेगा। होने वाली बात पर चिन्ता करो तो समझ में आता है लेकिन बीती बात पर क्यों? जो मर गई, सो मर गई।

इसलिए भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि अभ्यास और वैराग्य, ये दो रास्ते हैं। अभ्यास का तात्पर्य किसी भी अभ्यास से है, चाहे वह आसन का अभ्यास हो या प्राणायाम, जप, पूजा, स्वाध्याय या सत्संग का। कोई भी अभ्यास हो, उसे एक या दो दिन नहीं, रोज करते जाओ। तब उसका असर दिखलाई देगा।

करत करत अभ्यास तें जड़मति होत सुजान।
रसरि आवत जात है सिल पर पड़त निसान॥

जहाँ तक वैराग्य का प्रश्न है, मन में वैराग्य लाने के लिये बड़ी अच्छा तरीका यह है कि एक-दो साल में कभी थोड़ा पैसा बचाकर किसी तीर्थ के लिए चले जाना चाहिये। पैसा न हो तो भी रास्ता है। सिर मुड़ा लो, गेरू कपड़ा पहन लो और दो-तीन महीने बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री जैसे तीर्थस्थान घूमकर आ जाओ। यह देश साधु को सोना-चाँदी दे या न दे, दो रोटी तो जरूर देगा। दुकान में चाय भी मिल जाती है। हम तो बिना पैसे के हिन्दुस्तान, बर्मा और अफगानिस्तान घूमे, बिना पैसे के इंग्लैंड, जर्मनी, जापान और अमेरिका गए। जेब में एक डॉलर तक नहीं रखा। यहाँ केवल सच्चे साधु की ही नहीं, नकली साधु की भी इज्जत होती है। और तुम तो सच्चे हो, दुनिया को ठगने के लिये थोड़े ही जा रहे हो। तुम कहीं नौकरी करते हो, क्लर्क या टीचर हो, बीच में सोचते हो, चलो कहीं थोड़ी तीर्थयात्रा कर आएँ। अब उतना पैसा तो है नहीं, बाल-बच्चे हैं। ठीक है, किसी तरह ऋषिकेश पहुँच गये, वहाँ सटक-सपाट हुए, वैरागी बन कर निकल गये।

रास्ते में सब लोग मदद करते हैं। एक-दो महीने खूब घूमो। उससे यह होता है कि जब तुम विशाल दुनिया देखते हो, लोगों का सुख-दु:ख देखते हो, रोते हुये लोगों को देखते हो, हँसते हुए लोगों को देखते हो, श्मशान में जलती हुई चिता को देखते हो, अस्पताल में पड़े बीमारों को देखते हो, तब लगता है कि अरे, सारी दुनिया ऐसी ही है। तुम्हारी दुनिया कोई अलग दुनिया नहीं, वही दुनिया है। तुम्हारा जो भूतकाल बीता, वह कुछ नया नहीं था, सारी दुनिया में ऐसा ही हो रहा है। तब जाकर भूतकाल से नाता कटता है।

हम लोगों में जब संन्यास दिया जाता है, केवल एक शर्त रहती है। गेरू कपड़ा पहनना जरूरी नहीं, ज्ञान प्राप्ति आवश्यक नहीं, मन्त्र जाप आवश्यक नहीं, अच्छी-बुरी आदत से कोई मतलब नहीं। चेले से केवल एक चीज पूछना जरूरी है, घर छोड़ सकते हो क्या? हाँ गुरुजी। बिल्कुल? जी हाँ। बस वह संन्यासी है। जो भूतकाल को छोड़ सकता है, वह संन्यासी है। जब गुरुजी संन्यास देते हैं तो पहली योग्यता यही माँगते हैं, क्योंकि जब तक तुम भूतकाल से जुड़े रहोगे, तुम संन्यासी नहीं हो सकते। थोड़ी-सी घर की याद आ गयी, थोड़ी-सी माँ की याद आ गयी, थोड़ी-सी मामाजी या ताऊजी की याद आ गयी, ऐसे लोग संन्यासी नहीं बन सकते। इसलिये हम लोगों के यहाँ हमेशा कहा जाता है कि राग को दूर करो। राग और द्वेष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। राग से काम की उत्पत्ति होती है और काम से क्रोध की। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं–

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भव:।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥3.37॥

'यह काम है, यह क्रोध है, जो रजोगुण से पैदा हुआ है। यह महाशन: है, अर्थात् बहुत खाता है, महापाप्मा है, बहुत पाप करवाता है। इसलिए हे अर्जुन! इस दुष्ट वैरी को नष्ट करो।' गीता का वाक्य बोल रहा हूँ तुमको, क्योंकि जीवन की व्यवहारिक चीज तो यही है। तुम जो मानसिक प्रदूषण की बात कर रहे थे, उसी प्रदूषण से सम्बन्धित बात कही जा रही है। दिल्ली-बम्बई का प्रदूषण तो बाहर का प्रदूषण है। उस प्रदूषण से बचने के लिए तो तुम कहीं भी जा सकते हो। यहाँ पनियापगार में आ जाओ, बड़ा सुन्दर वातावरण है। पानी साफ, हवा साफ, मच्छर नहीं, कीड़े-मकोड़े कुछ नहीं। रात को सात बजते-बजते एकदम निस्तब्धता, पूर्ण शान्ति हो जाती है। लोग

सीधे-सादे हैं। गरीब हैं, अगर चोरी भी करते हैं तो किसी के अमरूद तोड़ लेते हैं, एल्यूमीनियम का कटोरा चोरी करके ले जाते हैं। 20-25 रुपया इनकी रोज की मजदूरी होती है। वह भी जब मिल जाए तब। गाँव में सरकार का कोई ऐसा कार्यक्रम नहीं जिससे रोज मजदूरी मिलती रहे। पर ये लोग स्वावलम्बी हैं। सबेरे लकड़ी का टुकड़ा, घास, ताड़ का पत्ता, खजूर का पत्ता, बांस का पत्ता, कागज, वगैरह जहाँ भी मिले, सब इकट्ठा कर लेते हैं। इसी से चूल्हा जलाकर, सबेरे नाश्ता करके सब मजदूरी के काम पर चले जाते हैं।

25 रुपया अधिकतम मजदूरी है यहाँ, उससे ज्यादा नहीं मिलती। कड़ी मेहनत करते हैं, ठेला-रिक्शा चलाते हैं। आश्रम की तरफ से गाँव के लोगों को 150-200 रिक्शे दिये हैं। जो थोड़े बहुत पढ़े-लिखे हैं, उनको ऑटो-रिक्शा दे दिया है, वे रोज का 100-150 रुपया कमा लेते हैं। इन लोगों की औरतें दिनभर मेहनत करती हैं। मोटी कमर वाली कोई नहीं मिलेगी यहाँ। कहाँ से होगी, दिनभर तो उठक-बैठक करती रहती हैं बेचारी। मगर गाँव की स्त्रियाँ अधिक व्यावहारिक हैं, इनमें अक्ल ज्यादा है। औरतों में बुद्धि ज्यादा होती है, वे बहुत तेज होती हैं। अगर लड़कियाँ तेज नहीं होतीं, तो ऐसे क्रूर समाज में जी नहीं पातीं। हमारा समाज स्त्रियों के प्रति क्रूर, असभ्य, अन्यायपूर्ण और अत्याचार से भरा हुआ है। झूठी बातें बोलकर इनको गुमराह किया गया है। स्त्री परिवार की बैलगाड़ी का दूसरा पहिया है पर इसको समाज ने पंक्चर करके रखा हुआ है।

चाहे गृहस्थ समाज हो या संन्यासी समाज, व्यक्ति अगर अपने घर को साफ नहीं रख सकता, जिस बर्तन में खाता है, उस बर्तन को खुद साफ नहीं कर सकता, जिस वस्त्र को पहनता है, उस वस्त्र को अगर खुद धो नहीं सकता, तो वह समाज में रहने लायक नहीं है। यहाँ जितने लड़के आते हैं, हम उनसे एक ही बात पूछते हैं, तुम्हारी थाली कौन धोता है? अधिकांश बोलते हैं, माँ धोती है। हम कहते हैं, नहीं, यह गलत बात है। माता-पिता पूज्य होते हैं, माँ बेटे की थाली धोये, कपड़े धोये, यह अच्छी परिपाटी नहीं है। इस तरह के काम को हम कर्मयोग कहते हैं। यह कर्मयोग कुछ लोगों में स्वाभाविक होता है, पर अधिकांश लोग कुण्ठाग्रस्त रहते हैं कि भाई, झाड़ू उठा लेंगे तो कैसा लगेगा। लोग क्या कहेंगे, जमींदार का बेटा झाड़ू लगा रहा है। यह श्रम संस्कृति हमारे शहरी लोगों में नहीं है, पर पश्चिम में, गोरी जात के लोगों में यह संस्कृति 100 प्रतिशत है।

वहाँ तो नौकर हैं नहीं, इसलिए वहाँ सब खुद करना पड़ता है न?

मगर यहाँ भी, जहाँ नौकर हैं, जहाँ खुद करना जरूरी नहीं है, वे लोग सबेरे 4 बजे से लेकर शाम को 8 बजे तक बिना रुके झाड़ू लगा सकते हैं, टॉयलेट साफ कर सकते हैं, बर्तन माँज सकते हैं। उनको कोई भी बीमारी, कोई भी तकलीफ नहीं होती। बल्कि उनको बहुत अच्छा लगता है। हमारे यहाँ स्वामी वेदानन्द है, यह 1988 में जर्मनी से थोड़े दिन के लिये आया था। अब जाने का नाम नहीं लेता। कहता है, हम यहीं रहेंगे। क्या काम करता है? 24 घण्टे मजदूरों वाला काम करता है। लकड़ी चीरता है, ट्रक चलाता है, ईंटें गिनता है, सीमेन्ट डालता है। यही सब काम करना उसे अच्छा लगता है। ऑस्ट्रेलिया की स्वामी निर्मलरत्ना है, उसे भी इस तरह के काम में मजा आता है।

गोरी जात ने जो उन्नति की है, उसका यही कारण है। श्रम संस्कृति, जिसे अंग्रेजी में वर्क कल्चर कहते हैं, वह जिस जात में आयेगी, वह जात दूसरों पर राज करेगी। श्रम एक ऐसी चीज है जिससे लड़की ससुराल जायेगी तो सास को नियंत्रण में रखेगी, पति को नियंत्रण में रखेगी। चेला गुरु के आश्रम में जायेगा तो गुरुजी को नियंत्रण में रखेगा। नौकर मालिक को नियंत्रण में रखेगा। नहीं है क्या? आपका नौकर अच्छा काम करेगा तो आप पर असर नहीं पड़ेगा क्या? काम करना दूसरों को वश में करने का सबसे उत्तम तरीका है। काम करना अपने परिवार, संगठन या समाज को प्रभावित करने का सबसे उत्तम तरीका है। लोग कहते हैं न, 'वाह! सबेरे से लेकर शाम तक काम करता है, उसे थोड़ा दूध दे आओ। वह बीमार है, जल्दी से उसको दवाई दो।' काम करने वाले का बहुत मूल्य होता है। हम अपने यहाँ पहचानते हैं। स्वामी वेदानन्द बीमार पड़ता है तो पन्द्रह मिनट में डॉक्टर को खबर की जाती है। उसे कहते हैं कि इसे जल्दी से देखो, गर्म पानी दो, दवा दो। पर दूसरा बीमार होता है तो हम पूछते तक नहीं। आप लोग भी यही करते होंगे।

लोगों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि काम करने में, श्रम करने में बहुत बड़ी शक्ति है। मेहनती लड़की ससुराल जायेगी तो सास कुछ कह नहीं सकेगी। सास को वश में कर लेगी। चाबी, सोना, गहना, सब उसके हाथ आ जायेगा। भगवान श्रीकृष्ण ने इसी कर्मयोग को गीता में प्रधानता दी है। स्वतंत्रता संग्राम के समय लोकमान्य तिलक यरवदा जेल में थे। वहाँ उन्होंने गीता पर भाष्य लिखा, 'कर्मयोग रहस्य'। गीता का रहस्य है कर्मयोग। इसमें भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को बार-बार कहते हैं, 'हे अर्जुन!

तुम कर्मयोगी बनो, कर्मयोगी की तरह युद्ध करो।' कर्मयोगी का मतलब वह व्यक्ति जिसे छोटे-से-छोटे काम और बड़े-से-बड़े काम करने में समान रूप से प्रसन्नता होती है।

हमने तो आश्रम में एक व्यवस्था बना कर रखी है। स्वामी निरंजन हमसे पूछता था, अमुक व्यक्ति का हम क्या करें? हम पूछते थे, श्रम की योग्यता कैसी है उसकी? अगर नहीं है, तो जाने को कह दो। जो आदमी कर्म में विश्वास नहीं रखता, उसे हम अपनी संस्था में रखने को तैयार नहीं हैं।

प्रजातंत्र का भविष्य

आने वाली शताब्दी में एक बहुत बड़ा बदलाव, एक बहुत बड़ा कायापलट होने वाला है। जिस तरह 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में साम्यवाद एक बहुत बड़े तूफान की तरह आया, 1917 में उसने रूस को अपनी चपेट में ले लिया, एशिया और यूरोप के कई देशों को अपनी चपेट में लिया, हिन्दुस्तान पर भी उस ग्रह की छाया पड़ी, पर 20वीं शताब्दी का अंत होते-होते वह उलट गया, वैसा ही हाल प्रजातंत्र का होने वाला है। प्रजातंत्र अपने में बहुत अच्छा राजनैतिक सिद्धान्त है, जिसमें प्रजा राजा को चुनती है, पर वास्तव में हो क्या रहा है, वह सब तो आपको मालूम है। प्रजातंत्र की आदर्श व्याख्या अपनी जगह पर ठीक है, मगर प्रजातंत्र का आज जो व्यावहारिक रूप है वह एक विचारणीय प्रश्न है। आज प्रजातंत्र की पुनर्व्याख्या और पुनर्व्यवस्था उसी प्रकार होनी चाहिये जैसे साम्यवाद की हुई। प्रजातंत्र की सीमाएँ क्या हैं? प्रजा की व्याख्या क्या है? नागरिक की व्याख्या क्या है? प्रजातंत्र की पुनर्व्याख्या प्रजा की व्याख्या पर निर्भर होगी, अमरीकी या फ्रेंच सिद्धांतों पर नहीं।

21वीं शताब्दी में यह सब आयेगा। जब तक प्रजातंत्र की पुनः व्याख्या नहीं होगी तब तक ये छोटी-छोटी समस्याएँ, जिनपर आपने इशारा किया है, दूर नहीं होंगी, क्योंकि इन्सान को स्वतंत्रता के साथ डण्डा भी चाहिये। हाँ, दण्ड विधान या दण्ड संहिता जरूरी है। लड़का यहीं पेशाब कर देता है तो दो-चार झापड़ दो, वह यहाँ पेशाब करने की आदत छोड़ देगा। हमारा कुत्ता, भोलानाथ जब पिल्ला था, तब वह शिवलिंग प्लॉट में रुद्राक्ष पेड़ के नीचे टट्टी कर देता था। हमें यह पसंद नहीं था। हमने वहाँ रुद्राक्ष का पेड़ लगाया है, शिवलिंग भी रखा है, वहाँ टट्टी-पेशाब नहीं होगा, यह हमारा विश्वास था। दो-तीन दिन तक उसने जब वहाँ टट्टी-पेशाब किया तो हमने मारा

झापड़। अब वह कभी उस प्लॉट में टट्टी नहीं करता। वह पशु है, उसने उस दण्ड को समझ लिया। हम भी पशुतुल्य हैं, हमें भी दण्ड की आवश्यकता है। मगर प्रजातंत्र की वर्तमान प्रणाली में दण्ड संहिता निर्बल है, वह नपुंसक हो गई है। आप लोग 21वीं शताब्दी की थोड़ी प्रतीक्षा करें। मैं लिखकर देता हूँ कि निश्चित रूप से 21वीं शताब्दी प्रजातंत्र की पुन: व्याख्या करेगी।



जब तक आदमी का पेट नहीं भरेगा, जब तक उसके बदन को तुम ढँक नहीं सकते, जब तक तुम उसको आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा नहीं दे सकते, तब तक मानव अधिकार की बात करना गाड़ी के पीछे घोड़ा लगाना है। एक आम आदमी भी इस बात को समझ जाएगा। दूसरी बात, राजनैतिक स्वतंत्रता उसी समाज को दी जा सकती है जो व्यवस्थित हो। जहाँ ढेरों गुण्डें हों वहाँ यह कैसे चलेगा? अमेरिका या इंग्लैंड के लोग जो कहते हैं, वह अपनी जगह पर ठीक है, मगर हम अपने घर की व्यवस्था देखते हैं। हमारी आमदनी सीमित है, हमारी बहन विधवा है, हमें अपनी लड़की को संभालना है। हम तुम्हारे परिवार की तरह अपना परिवार नहीं चला सकते। हमें अपना परिवार अपने ढंग से चलाना है। प्रजातंत्र की यह व्याख्या 21वीं शताब्दी का आधार बनने वाली है, क्योंकि आज एशिया या अफ्रीका में जो गड़बड़ी हो रही है, प्रजातंत्र की वजह से हो रही है। तुम्हारा परिवार अमीर है, पर हमारा परिवार तो दरिद्र है। तब तुम्हारे परिवार की तरह हमारा परिवार कैसे चलेगा?

इस पुनर्व्याख्या की जरूरत लोग 21वीं शताब्दी में महसूस करेंगे और शायद अभी से महसूस करने लग भी गये हैं। न्याय, शासन, आदि जितनी भी पद्धतियाँ हैं, इनका आधार स्थानीय होना चाहिये, न कि अन्तरराष्ट्रीय। भारत की राज्यव्यवस्था भारतीय संस्कृति को आधार मानकर बनायी जानी

चाहिये। चीन की व्यवस्था चीन की परिस्थितियों को ध्यान रख कर चलेगी, अमेरिका की तरह नहीं चलेगी। चल ही नहीं सकती है। अगर आज इंग्लैंड की सरकार वहाँ के बेरोजगार लोगों को हफ्ता देना बन्द कर दे, उनसे बोले कि काम करो और खाओ, और उसके बाद मानव अधिकारों की बात करे, तब हम तैयार हैं उनकी बात सुनने के लिये। उनके बेरोजगार लोग सड़कों पर आकर बदमाशी करेंगे, औरतों के गहने लूटेंगे, दूसरे की जेब काटेंगे, तब हम कहेंगे, हाँ अब मानव अधिकारों की बात करो। तुम्हारा घर तो भरा-पूरा है, तुम्हारे बेटा-बेटी मजे से खाते-पीते हैं, और तुम हमको सिखला रहे हो? नहीं, भारत यूरोप या अमेरिका से सब कुछ सीखेगा, ऐसी बात नहीं है।

हमारा समाज खुला समाज है, हम उनकी अच्छी बातें सीखने के लिए मना नहीं करते। लेकिन हम पाश्चात्य देशों की हर एक चीज क्यों अपनायेंगे? उन्होंने अपनी लड़कियों को पढ़ाया, घर से बाहर आने का मौका दिया, हम उससे सहमत हैं। वे लोग टेबल-मैनर्स ले आए, मेज-कुर्सी पर खाते हैं, जूता पहनकर खाते हैं, वह भी ठीक लगता है। जो प्रथा अच्छी है, वह चाहे किसी की भी हो, हम लाने को तैयार हैं। मगर वे लोग भी हमारी संस्कृति को नकारने की कोशिश न करें। तुम जूता पहनकर, मेज पर बैठकर खाते हो तो खाओ, हम मना थोड़े ही करते हैं। मगर हम जमीन पर बैठ कर खाते हैं, तो तुम हँसते क्यों हो? तुम्हारी चीज असली हो गयी और हमारा चीज नकली! तुम टाई-पतलून पहनकर आते हो और हम धोती पहन कर आते हैं तो बोलते हो, उसको वहाँ बैठाओ न। हमारा इतना निरादर क्यों? जहाँ पर भी कोई संस्कृति हमारी संस्कृति का निरादर करती है, वहाँ पर हम अड़ जायेंगे।

हम लोग भगवद्गीता को मानते हैं, राम, कृष्ण और शिव को मानते हैं, साकार उपासना को मानते हैं, मगर हम उनके ईसा मसीह या बाइबिल का निरादर नहीं करते, करते हैं क्या? संस्कृतियों को एक-दूसरे का सम्मान करना चाहिये। जहाँ पाश्चात्य संस्कृति हमारी संस्कृति का सम्मान नहीं करेगी वहाँ पर हम उसको रोकेंगे, यह पहली बात है। दूसरी बात, पाश्चात्य संस्कृति में जो नियम और प्रणालियाँ बनी हैं, वे उनकी परिस्थितियों के अनुसार बनी हैं। आखिर वे तो बहुत मालदार लोग हैं, बम बेच कर पैसा कमाते हैं। उस परिस्थिति के आधार पर उनकी व्यवस्था बनी हुई है। उनकी हर चीज को हम स्वीकार नहीं कर सकते। तुम पढ़े-लिखे युवा लोग हो, 21वीं शताब्दी देखो और प्रजातंत्र की पुनर्व्याख्या पर विचार करो। प्रजातंत्र

की व्याख्या तो बहुत विस्तृत हो सकती है, मगर सवाल यह है कि भारत की परिस्थितियों के अनुसार प्रजातंत्र की व्याख्या क्या होनी चाहिये? राजा चुनने का अधिकार प्रजातंत्र में किसको होना चाहिये और किसको नहीं, ऐसे प्रश्नों पर चिन्तन होना चाहिये।

पहला कायापलट हुआ साम्यवाद का, दूसरा होगा प्रजातंत्र का और तीसरा होगा सामाजिक व्यवस्था का। राजव्यवस्था अलग चीज है और सामाजिक व्यवस्था अलग। आने वाले दिनों में यूरोप की सामाजिक व्यवस्था हावी होगी या एशिया की? हम मानते हैं कि विजय हमारी होगी। एक छोटा-सा उदाहरण देता हूँ। जब मैं विदेश जाता था तब चिकित्सा क्षेत्र के लोगों से शादी-ब्याह के सम्बन्ध में मेरी काफी बातें होती थीं। हमारे यहाँ शादी जीवन का एक बहुत महत्त्वपूर्ण अध्याय माना जाता है, उसमें गोत्र, जात-पात, क्या-क्या नहीं देखते। जेनेटिक इंजीनियरिंग तो अभी हाल ही में शुरू हुआ है, मगर इस बारे में आज से तीस-चालीस साल पहले बातचीत चलने लग गई थी। हम हमेशा उनके डॉक्टरों और वैज्ञानिकों से कहते थे कि व्यक्तियों की अलग-अलग जेनेटिक संरचना है जो प्राचीन काल से बनी हुई है। लाखों बरसों से वह संरचना चलती आयी है। इसमें अलग-अलग समूह होते हैं जिन्हें हमारे यहाँ पराशर, भरद्वाज, कश्यप आदि ऋषि-मुनियों से जोड़ा गया है। गोत्र जिसे कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि ये जितने ऋषि-मुनि थे, ये अलग-अलग समूह के साथ आए थे। किस समूह का किस समूह के साथ मिलान हो, यह तक उन्होंने निश्चित किया था। इसी के आधार पर हमारे समाज में विवाह सम्बन्ध होता था। जबकि पाश्चात्य समाज में किसी भी आदमी का किसी भी औरत से विवाह हो जाता है।

मगर आज उनके यहाँ शरीर विज्ञान में, कृषि विज्ञान में, प्रायः हर क्षेत्र में उसी जेनेटिक सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं, जिसका प्रतिपादन हमारे ऋषि-मुनियों ने स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध में बहुत पहले कर दिया था। धान की, फलों की, पशुओं की अलग-अलग प्रजातियाँ होती हैं, किस प्रजाति का मिलान किस से करना चाहिए, उसका परिणाम क्या होगा, आजकल पाश्चात्य जगत् उसी चीज पर अनुसंधान कर रहा है जिसका विस्तृत विज्ञान हम लोग जानते ही हैं। ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जिनकी वजह से हम भारत और एशिया के भविष्य के बारे में काफी आशावादी हैं।

– 1 नवम्बर 1997



अध्याय 2

मनुष्य के शरीर में तीन दोष होते हैं—वात, पित्त और कफ। इन्हें त्रिदोष भी कहा जाता है। वात माने वायु, पित्त का मतलब एसिड या अम्ल पदार्थ, जो खून में, मांसपेशियों में, त्वचा में, पूरे शरीर में भरा हुआ है। तीसरा तत्त्व होता है कफ, जिसे अंग्रेजी में म्यूकस कहते हैं। जब कहीं पर चोट लगती है, तो म्यूकस इकट्‌ठा होकर पीब के रूप में बाहर निकलता है न? कफ वही चीज है।

सृष्टि के पंच तत्त्व जो होते हैं, वे कफ, वात और पित्त से शरीर का निर्माण करते हैं, और फिर उसमें जीवन भर दिया जाता है। यह जीवन अलग चीज है, इसका शरीर से कोई मतलब नहीं। जीव अलग है और शरीर अलग। कफ, वात और पित्त—ये शरीर के घटक हैं, शारीरिक संरचना के अंग हैं। जीव के अंग नहीं हैं। जीव कर्मों का, संस्कारों का बना होता है। उसमें कफ, वात या पित्त नहीं होता। जैसे हम इस मकान में रहते हैं। यह मकान सीमेंट का बना है, पर हम थोड़े ही सीमेंट के बने हैं। उसी तरह से यह शरीर तीन दोषों का मिश्रण है। जब इनमें संतुलन बिगड़ता है तब रोग होता है। किसी को पित्त-प्रधान रोग होता है, किसी को कफ-प्रधान तो किसी को वात-प्रधान। जब किसी व्यक्ति में तीनों प्रधान हो जाते हैं तो समझो कि उसका समय अब आ गया है।

जो भी भोजन तुम खाते हो उसमें हर चीज पित्त, कफ और वात को बढ़ाती या घटाती है। मूली खाओगे, वात बढ़ेगा, पर कफ घटेगा। यह एक उदाहरण दे रहा हूँ। दूध कफ को बढ़ाता है, पर पित्त को काटता है। इसलिए जिसको पित्त की बीमारी होती है, उसे थोड़ा-थोड़ा दूध पीने को कहते हैं।

चावल पित्त को बढ़ाता है, कफ को भी बढ़ाता है और वात को भी बढ़ाता है। इसलिए चावल दोषपूर्ण भोजन माना जाता है। सत्तू पित्त और कफ, दोनों को मारता है, किन्तु वात को बढ़ाता है। इसलिये सत्तू को सामान्यत: उत्तम भोजन मानते हैं।

सत्तू पानी में मिलाकर खायी जाने वाली चीज है। एक तरह से सत्तू घर का भोजन नहीं है। जो मुसाफिरी करते हैं, परदेश जाते हैं, यह उनका भोजन है। वे सत्तू में पानी मिला लेते हैं, नमक डालकर खा लेते हैं। सत्तू का मुख्य गुण यह होता है कि वह पेट में जाकर पित्त को, याने हाइड्रोक्लोरिक एसिड को सोख लेता है। जिन लोगों को पित्त की बीमारी होती है, वे सत्तू को पानी में घोलकर पीते हैं। सत्तू को बहुत अच्छा भोजन माना जाता है।

मकई भी पित्त और कफ को मारती है, वात को बढ़ाती है। इसलिये उसे भी अच्छा भोजन कहते हैं। किन्तु मकई के साथ अगर सरसों लोगे, तो फिर वह कफ, पित्त और वात, तीनों को मारेगी। इसलिए सरसों का साग और मकई की रोटी, यह सब तरह के भोजन में सर्वोत्तम माना जाता है। गेहूँ की रोटी को उत्तम भोजन नहीं माना जाता। गेहूँ चावल से श्रेष्ठ है, मगर उत्तम भोजन नहीं है।

इसी तरह से पालक, गाजर, मूली, गोभी या करेले जैसी सब्जियों में त्रिदोष की दृष्टि से अलग-अलग गुण होते हैं। यह मैं आयुर्वेद के अनुसार बात कह रहा हूँ। अब देखो, जब मूली का रायता बनाते हैं तो उसमें खूब राई डाल देते हैं न? इसलिए कि राई वात को मारती है। अगर नहीं डालोगे तो मूली का रायता खाने से पेट से फटाफट हवा निकलेगी। इसी तरह मसालों का भी हिसाब है। मिर्ची पित्त को बढ़ाती है, कफ को काटती है। धनिया पित्त, कफ और वायु, तीनों को घटाता है। जीरा कफ और पित्त को मारता है। इसलिए धनिया और जीरा को सर्वोत्तम मसाला माना जाता है। हल्दी पित्त, कफ और वायु को मारती है, इसलिये इससे आयुर्वेद में दवाइयाँ भी बनती हैं।

सभी खाद्य-पदार्थों में गुण-दोष रहता ही है। तुम्हें यह देखना है कि तुम्हारी प्रकृति कैसी है? हर एक की प्रकृति अलग रहती है। किसी की पित्त-प्रधान प्रकृति होती है, किसी की कफ-प्रधान, तो किसी की वात-प्रधान। जो भी प्रकृति प्रधान है उसे काटने के लिये भोजन किया जाता है। यह नहीं कहना कि हमें तो चावल अच्छा लगता है इसलिए खूब चावल खाएँगे, या

रोटी में बहुत गुण होते हैं इसलिए वही खाएँगे। अब हमें देख लो, हम दूध कभी लेते ही नहीं हैं, क्योंकि हमारी प्रकृति में कफ थोड़ा-सा कहीं पर रहता है। कफ होने का यह मतलब नहीं कि हमें खाँसी-ज़ुकाम होता रहता है पर हमारी प्रकृति में कहीं पर कफ है। इसलिए यहाँ इतना दूध होते हुए भी हम लेते ही नहीं हैं। हाँ, मट्ठा हम ले लेते हैं क्योंकि दूध, दही और मट्ठा, तीनों के गुण अलग-अलग हैं। दूध जहाँ कफ को बढ़ाता है, मट्ठा कफ को काटता है, क्योंकि उसमें लैक्टिक एसिड रहता है। और मट्ठे में जब तुम जीरा और नमक मिलाते हो, तो परम उत्तम हो जाता है। लेकिन चीनी मिलाओ तो मट्ठा गुणकारी नहीं रहता, दोषपूर्ण हो जाता है।

साग, भाजी, अनाज वगैरह खाने के नियम होते हैं। प्राचीनकाल में हम लोगों के यहाँ जौ का विधान था। जौ, जिसे संस्कृत में यवा और अँग्रेजी में बार्ली कहते हैं, सुपाच्य होता है। वह न कफ को बढ़ाता है, न पित्त को और न ही वात को। साबूदाना भी सुपाच्य होता है, जो न वायु को बढ़ाता है, न पित्त को और न कफ को। इसलिए बीमार व्यक्ति को बार्ली या साबूदाना की कंजी देते हैं।

ऐसे ही गुण फलों में होते हैं। आम गरिष्ठ और पित्तकारी होता है। संस्कृत में उसका नाम ही आम्र है, जिसका मतलब होता है कि यह मूलत: अम्लीय फल है। उसमें ग्लूकोज़ बहुत होता है। गर्मी के दिनों में शरीर में पानी सूखता है। ऐसी स्थिति में आदमी को दस्त लगने लगते हैं। दस्त की सबसे बड़ी दवा यह है कि थोड़ा-सा आम खा लो, माने थोड़ा खट्टा, थोड़ा मीठा। आखिर डॉक्टर भी वही देता है न? इसलिये आम को प्रकृति ने गर्मी में पैदा किया है। इसी तरह से आँवला होता है। आँवला पित्त का दुश्मन है। हर फल का अलग-अलग गुण होता है। सबसे उत्तम फल अमरूद है। एक अमरूद में जितना लोहे का तत्त्व होता है, जितना विटामिन-सी होता है, वह कम-से-कम तीन सेब के बराबर होता है। तीन सेब खाओ या एक अमरूद, बात बराबर है। हर घर में अमरूद के दो-चार पेड़ लगाने चाहिये। जिसको जब चाहिये तोड़कर खा ले। सेब तो सब ले नहीं सकते हैं, और यह सब जगह लगता भी नहीं है। पर अमरूद का पेड़ बहुत आसानी से लगता है। यह भारत में सब जगह होता है।

दक्षिण भारत के लोग केवल चावल खाते हैं। इडली, डोसा जैसी सब चीजें चावल की होती हैं। साथ ही इमली खूब खाते हैं। रसम में इमली,

साम्भर में भी इमली। और शाम को चावल पकाकर पानी में डालकर सुबह बासी भात खाते हैं। यह सब इसलिए कि दक्षिण भारत बहुत गर्म जगह है। वहाँ रोटी से और गर्मी बढ़ेगी। गेहूँ और मकई में मद्यसार या ऐल्कोहॉल कम होता है, वह पेट में कम मद्य बनाता है, जबकि चावल पेट में अधिक मद्यसार तैयार करता है। शरीर को मद्य की भी जरूरत पड़ती है। मैं शराब पीने के लिए नहीं बोल रहा हूँ, पर कुछ मात्रा में मद्यसार रहना चाहिये, नहीं तो पाचन क्रिया गिर जायेगी।

इसी तरह मस्तिष्क में कुछ मात्रा में कार्बन रहना चाहिये। अगर कार्बन कम हो जायेगा तो आदमी पागल हो जायेगा। मस्तिष्क के पिछले भाग में एक छोटी-सी ग्रंथि या ग्लैण्ड होता है जिसमें कार्बन रहता है। शरीर में जो कार्बन बनता है वह प्रश्वास के साथ पूरी तरह नहीं निकलता, थोड़ा-सा हिस्सा बचा रहता है। जिसका यह अवशेष खत्म हुआ, उसको नींद आना बन्द। फिर वह रातभर जागता रहता है। यह कार्बन कब खत्म होता है? जब आदमी बहुत फिक्र करता है तब। लड़की की शादी नहीं हो रही है, व्यापार नहीं चल रहा है, कोई कमाई नहीं है, मुकदमा चढ़ गया, इस तरह की फिक्र से जब व्यक्ति के दिमाग पर बहुत जोर पड़ता है, तब उस कार्बन का इस्तेमाल होता है। कार्बन के अधिक इस्तेमाल होने से आदमी पागल भी हो सकता है। कई लोग मुँह ढँक कर इसीलिये सोते हैं कि रात को उन्हें कार्बन अधिक मिले। बड़ी विचित्र चीजें हैं दुनिया में जीने की।

क्या अमरूद त्रिदोष को दूर करता है? इससे सर्दी-खाँसी नहीं होती?

अमरूद पित्त को काटता है, कफ को भी काटता है, पेट को साफ करता है। जबकि केला कफकारी और वायुवर्द्धक होता है। इसलिए फलों में सबसे उत्तम अमरूद होता है, केला नहीं। जहाँ तक सर्दी-खाँसी का सवाल है, तुम लोग अमरूद खाने के बाद पानी पीते होगे। फल खाने के बाद कोई पानी पीता है? अरे, फलों में 80 प्रतिशत तो पानी ही रहता है।

जो चिन्ता करते हैं या बहुत सोच-विचार करते हैं, उनके हाजमे पर भी असर पड़ता है न?

जब आदमी को चिन्ता होती है, तब उसके शरीर पर जरूर असर होता है। चिन्ता करने से शरीर में एक तरह के रसायन का स्राव होता है, ममता आने

से दूसरे तरह के रसायन का, क्रोध आने से तीसरे तरह का, और काम वासना आने से चौथे तरह के रसायन का। जो भी विचार तुम्हारे मन में उत्पन्न होते हैं, उनका असर शरीर पर अवश्य पड़ता है। उसी से सम्बन्धित रसायन का स्राव शरीर में होने लगता है। जब आदमी में भय उत्पन्न होता है, उस वक्त एड्रिनल ग्रंथि से एक रस निकलता है। वह रस जैसे ही तुम्हारे खून में मिलेगा वैसे ही तुमको टट्टी लग जायेगी। रोक नहीं सकोगे। यह एड्रिनल ग्रंथि की क्रियाशीलता का प्रमाण है। काम वासना आती है तो तुरंत प्रोस्टेट ग्रंथियाँ अपने रसायन का निःस्सरण करती हैं। यह सब प्रमाणित करने की जरूरत नहीं है। एक-एक विचार और वासना के मन में आने से शरीर पर असर पड़ता है, यह पक्की बात है।

हमारे यहाँ काम, क्रोध, लोभ आदि को जो वासना कहते हैं, वह किसलिए कहते हैं? वासना का आखिर मतलब क्या होता है? गंध। कहते हैं न कि बास आ रही है। यह बास शब्द वास का ही अपभ्रंश है। जब किसी आदमी को क्रोध आता है तब उसके मन में एक गंध पैदा होती है। तुम्हें पता नहीं चलता क्योंकि तुम्हारी इन्द्रियाँ कमजोर हैं। जब मन में लोभ उत्पन्न होता है या किसी को मारने की भावना होती है या किसी स्त्री के प्रति काम-वासना उत्पन्न होती है तो तुरंत शरीर में एक गंध पैदा होती है। वह गंध तुम भले ही न पकड़ सको, लेकिन पशु जगत् में वह गंध पकड़ी जा सकती है। पशु जगत् में जैसे ही मादा गर्मी में आती है, उस जाति का नर गंध सूँघ लेता है। जब हम अपने कुत्ते भोले पर गुस्सा करते हैं तो वह उठकर आता है हमारे पास, पहले पैर का अंगूठा सूँघता है, फिर घुटना सूँघता है, यह जानने के लिए कि हम सचमुच में गुस्सा हैं या नहीं। यह जानवरों में बहुत बड़ा गुण है, वे गंध से बहुत कुछ जान लेते हैं। पर मनुष्य ने अपनी यह शक्ति खो दी है।

किसी भी विचार के मन में आते ही कई चीजें एक साथ होने लगती हैं। मैं तुम्हें विज्ञान की बात बता रहा हूँ। तुम्हारे मन में जैसे ही डर का विचार आया, पहली चीज तो एड्रिनल ग्रंथि से रस निकलेगा, शरीर में मिलेगा और वहाँ गड़बड़ करेगा। दूसरी चीज, शरीर से गंध निकलेगी, जिसे तुम नहीं सूँघ सकते पर जानवर सूँघ लेगा। कुत्ता सूँघ सकता है, शेर सूँघ लेता है। हम तो कुमाऊँ के रहने वाले हैं, जो बाघों का क्षेत्र है। हमें कहा जाता था कि जब बाघ सामने आए तो निडर होकर उसके सामने खड़े हो जाओ, आँख मिलाओ उससे। अगर मौका मिले तो पेड़ पर भी चढ़ सकते हो, मगर मौका

न मिले तो खड़े रहो, आँख से आँख मिलाओ, अपनी जगह से हिलो नहीं। वह चला जायेगा। इसका मतलब उसे तुम्हारे शरीर से डर की गंध ही नहीं मिली। जितने भी मांसाहारी जानवर होते हैं, उनकी नाक बहुत तेज होती है। वे सब चीजें सुगंध और दुर्गंध से जान लेते हैं।

इसके साथ-साथ एक तीसरी चीज भी होगी। हर व्यक्ति के शरीर से दस अंगुल बाहर तक एक घेरा रहता है। भले ही हमें यह दिखाई नहीं देता मगर जितने भी जीव-जंतु हैं, फूल-पत्ते हैं, गीता-रामायण की किताबे हैं, माया-मनोहर की कहानियाँ हैं, लड़के-लड़कियों के फोटो हैं, सबके चारों ओर एक घेरा रहता है, जिसका वैज्ञानिक लोगों ने चित्र खींचकर पता लगाया है। उस घेरे को हम लोग प्रभामण्डल कहते हैं, अंग्रेजी में उसे औरा कहते हैं। यह जो औरा होता है उसका अपना रंग होता है, वह बढ़ता भी है, घटता भी है। वह प्रत्येक व्यक्ति के चारों ओर है, और इसका प्रमाण है पुरुषसूक्त का पहला श्लोक–

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥

जब तुम्हारे मन में कोई विचार उठता है तब तुम्हारे शरीर के चारों ओर व्याप्त प्रभामण्डल घटता-बढ़ता है और उसका रंग बदलता है। इसका आसपास के व्यक्तियों पर असर पड़ता है। जब तुम्हारे अन्दर रसायन का स्त्राव होगा, तब तुम्हारे शरीर की आंतरिक प्रकृति बदलेगी। विचार की वजह से तुम्हारे शरीर से जो गंध निकलेगी, उस गंध का भी तुम्हारे शरीर और व्यक्तित्व पर असर पड़ेगा। इसलिये हमारे यहाँ कहते हैं कि अपनी आंतरिक वासनाओं को नियंत्रित करो।

अभी भय की बात कर रहा था। इसी तरह जब मन में काम वासना उत्पन्न होती है तो तुरंत यौन ग्रंथियों पर असर पड़ता है। वीर्य तैयार होने लगता है, शरीर में चंचलता आ जाती है, गर्मी आ जाती है। यह कोई प्रमाणित करने की बात तो है नहीं। शरीर के चारों ओर जो प्रभामण्डल है, वह बदलने लगता है। इसलिये किसी भी विचार को केवल मन तक सीमित मत समझो। विचार और शरीर का आपस में वैसा ही साथ है जैसे नमक और सब्जी का। हर विचार, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, आध्यात्मिक हो या सांसारिक, वह तुम्हारे शरीर पर, तुम्हारे आसपास के वातावरण पर असर करेगा। कुछ

मंदिरों में जाते हो तो कितना अच्छा लगता है। कई घरों में जाने पर भी ऐसा ही अनुभव होता है। घर में पूजा-पाठ होता रहता है, पति-पत्नी का झगड़ा नहीं है, वहाँ जाते ही तुम्हें अच्छा लगता है। यह तो तुम लोगों का रोज का अनुभव है, कोई नई बात तो नहीं बोल रहा हूँ।

कोई भी विचार, किसी भी रोग का कारण हो सकता है। वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों, ऋषि-मुनियों और शास्त्रों, सभी का यह मत है। कैंसर की बीमारी मन से उत्पन्न होने वाली बीमारी है। हृदय रोग भी मन से उत्पन्न होने वाला रोग है। डॉक्टर लोग यहाँ तक कहते हैं कि आज दुनिया में जितनी भी बीमारियाँ हैं, उनमें से 80 प्रतिशत का सम्बन्ध मन से है और बाकी 20 प्रतिशत दूसरे कारणों से हैं। इसलिये मनुष्य को विचारों की अवहेलना तो कभी नहीं करनी चाहिये। *ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः*—हमारे वेदों में यह मंत्र कहा जाता है। हम कानों से हमेशा भद्र सुनें, अच्छा सुनें। *भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः*—हम आँखों से अच्छा देखें। *आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः*—अच्छे विचार चारों ओर से हमारी तरफ आएँ। रोज पण्डित लोग इन मंत्रों को पढ़ते हैं न! कहने का मतलब यह कि तुम्हारे मन में अच्छे विचार हों, यही काफी नहीं। तुम्हें अच्छे विचार सुनने भी चाहिये। सबेरे उठते हो तो सिनेमा का गाना सुनाई पड़ता है। लोगों की संवेदनशीलता कितनी कम हो गयी है! उन्हें उस गाने का प्रभाव तक पता नहीं चलता, सोचते हैं गाना ही तो है। उन्हें यह नहीं मालूम कि हर ध्वनि मनुष्य के मन और शरीर को प्रभावित करती है।

स्वामी रामतीर्थ का नाम शायद तुम लोगों ने सुना होगा। वे इसी शताब्दी में पंजाब के बहुत बड़े संत हुए हैं। वे गणित के प्राध्यापक थे, बहुत विद्वान् थे। उनका नाम तीर्थराम था। संन्यास ले लिया, स्वामी बन गये तो नाम रामतीर्थ हो गया। वे बहुत जगह घूमते थे। एक बार जापान गये थे, वहाँ के राज-परिवार के यहाँ ठहरे थे। वहाँ उन्होंने देखा कि एक जगह छोटे-छोटे गमले रखे हैं जिनमें अलग-अलग पेड़-पौधे लगे हैं। एक गमले में चिनार का पेड़ लगा था जिस पर उनकी नज़र टिक गयी। कश्मीर में जो चिनार के पेड़ होते हैं, वे बहुत बड़े-बड़े होते हैं, डेढ-दो सौ फुट लम्बे होते हैं। पर उन्होंने देखा कि चिनार का यह पेड़ बहुत छोटा था, केवल डेढ फुट ऊँचा था। इसी बीच में राजघराने का सचिव वहाँ आया। उसने पूछा, 'आप क्या देख रहे हैं?' स्वामीजी ने कहा, 'यह चिनार का पेड़ है न?' 'हाँ, चिनार

का है।' स्वामीजी ने पूछा, 'यह इतना छोटा कैसे?' उसने कहा, 'यह 250 साल पुराना पेड़ है।' अब वह 250 साल का पेड़ केवल डेढ फुट का क्यों था? सचिव ने कहा, 'देखिये महाराज, इस पेड़ के नीचे तीन जड़ें होती हैं, जिनको हम लोग काट देते हैं। जड़ें ही पेड़ को बढ़ने के लिये खुराक देती हैं। जब जड़ ही नहीं रहेगी तो पेड़ बढ़ेगा कैसे?'

इस घटना के बाद स्वामी रामतीर्थ अक्सर कहा करते थे कि मनुष्य की भी तीन जड़े हैं जिनके आधार पर वह ऊँचा उठता है। ये तीन जड़े हैं—व्यक्तित्व, आचरण और विचार। इनमें से पहली दो जड़ें दिखलाई देती हैं, पर तीसरी दिखलाई नहीं देती। विचार दिखाई नहीं देते, पर यह तुम्हारी सबसे महत्त्वपूर्ण जड़ है जो दुर्भाग्यवश कटती जा रही है। पहले तुम लोगों के ऊपर मुगलों के विचारों का प्रभाव पड़ा, तुम्हारी एक जड़ तो तभी कट गई। उसके बाद अंग्रेज आए, उनके विचारों की बाढ़ आई तो दूसरी जड़ भी कट गई। अब नई अर्थप्रधान सभ्यता आई है, जिसका मूलमंत्र रुपया-टका है। इस मानसिकता से तुम्हारी तीसरी जड़ भी कट गई है।

टका धर्मः टका कर्मः टका परमः तपः।
यस्मिन् गेहे टका नास्ति हा टका टकटकायते॥

यह अच्छी तरह समझ लो कि मनुष्य के स्वास्थ्य का आधार उसके सोचने का तरीका है, उसके अपने विचार हैं। सामाजिक जीवन में उन्नति का आधार भी यही है। आज हिन्दुस्तान की हालत ऐसी क्यों है? सब लोग निराश और निरुपाय हैं। इस मामले में कोई कुछ कर नहीं सकता, क्योंकि एक बार जब मनुष्य के विचार गलत हो जाते हैं तो वह पतित हो जाता है, गुलाम हो जाता है। राजनैतिक गुलामी नहीं, नैतिक गुलामी की बात कर रहा हूँ। हम लोग आज भी गुलाम हैं।

विचार मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता है। मनुष्य में अगर विचार न हों तो वह मनुष्य नहीं। विचारों के कारण ही हम मनुष्य बने हैं। और गलत विचारों से ही हमारे अन्दर बीमारियाँ होती हैं। आज सारा अमेरिका, सारा इंग्लैण्ड, सारा यूरोप बीमार हैं। चौबीस घण्टे उनके मन में एक ही विचार रहता है, कैसे मजा करें। रेडियो, टीवी, वीडियो, अच्छे कपड़े, अच्छे गहने, क्रीम-पाऊडर जैसे सौन्दर्य प्रसाधन, रुपया-पैसा, जमीन-जायदाद, लड़का-लड़की, होटल-बोतल-टोटल, यही सब उनके दिमाग में चलता है।

लेकिन अब वे थक रहे हैं, बदल रहे हैं। पिछले 20-25 सालों से वे यह बात समझने लगे हैं और बड़ी संख्या में अपना घर-बार छोड़कर हिन्दुस्तान के आश्रमों में आने लगे हैं। यहाँ के आश्रमों में आकर वे सिर मुड़ाते हैं, दीक्षा लेते हैं, जप करते हैं, ध्यान करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं। वे समझ गये हैं कि हमारे दु:खों का कारण हमारी गलत सोच है। जिस तरफ से वे लौट रहे हैं, आज उसी तरफ हिन्दुस्तानी जा रहे हैं। हिन्दुस्तानियों की सोच भोगवादी होती जा रही है।

यह सोच इतनी मजबूत हो गयी है कि इसको बदलना बहुत कठिन हो गया है। इसका क्या उपाय है?

अगर आदमी सचमुच अपनी सोच को बदलना चाहे तो बदल सकता है। पर उसे पता ही नहीं कि उसे बदलना चाहिये। वह अपने विचारों से संतुष्ट है। जो आदमी अपने विचारों से संतुष्ट है, वह भला अपनी सोच क्यों बदलेगा? लेकिन अगर तुम्हें मालूम पड़ जाए कि मेरे विचारों में कोई कमी हो सकती है, मेरे चिन्तन में कोई दोष हो सकता है, अगर तुम एक बार शंका कर लो, एक बार आत्म-निरीक्षण करने लगो, तब तो अपने आपको बदला जा सकता है। वाल्मीकि तो रातों-रात बदले थे। अंगुलीमाल पल भर में बदला था। ऐसे कितने लोगों के उदाहरण हैं जो एक रात में बदल जाते हैं, क्योंकि किसी तरह से उनको पता चल जाता है कि उनका विचार गलत है। जब तक तुममें अपने विचारों के प्रति विरोध की भावना उत्पन्न नहीं होगी, तब तक तुम्हें पता ही नहीं चलेगा। नहीं तो तुम सोचते जा रहे हो, पर तुम्हें पता ही नहीं कि तुम्हारे विचार सही हैं या गलत।

तुम सोचते हो कि विचारों का स्वास्थ्य से कोई मतलब नहीं। तुम्हारी तबियत खराब है, डॉक्टर कहता है कि विटामिन ए, बी या सी की कमी है, या फिर बैक्टिरिया की बीमारी है, और तुम वही मान लेते हो। तुम्हें यह नहीं मालूम कि तुम्हारी बीमारी का कारण तुम्हारे अपने ही विचार हैं। अगर आदमी इस बात को स्वीकार करने लगे कि उसकी बीमारी का कारण, उसके दु:ख का कारण, उसके गलत व्यवहार का कारण, उसके अपने विचार हैं तब वह अपने आप को सुधारेगा। अन्यथा कैसे सुधारेगा? जब तक तुम्हें मालूम नहीं कि तुम्हारे चेहरे पर काला दाग पड़ा है, तब तक तुम उसे कैसे साफ करोगे?



पहले अपने विचारों का निरीक्षण करना चाहिये। इस बारे में स्पष्ट कहा गया है कि विचारों की श्रेणियाँ होती हैं—उत्तम, मध्यम और निम्न। सर्वोत्तम विचार परमार्थ है। केवल दूसरों का ख्याल करना, अपने बारे में चिन्ता ही नहीं करना, यह सर्वोत्तम विचार है। उस आदमी को सर्वोत्तम विचारक कहते हैं जो केवल दूसरों की भलाई के बारे में सोचे। मध्यम कोटि का विचारक वह है जो अपने बारे में सोचे, मगर दूसरे के बारे में भी सोचे कि कहीं मेरे व्यवहार से दूसरे को नुकसान तो नहीं होगा। जो केवल अपने ही बारे में सोचता है, दूसरों के बारे में बिल्कुल नहीं सोचता, वह निम्न कोटि में आता है। और जो दूसरों को जानबूझकर दुःख-तकलीफ देने की सोचता है, वह तो निकृष्टतम श्रेणी का है।

इस प्रकार विचारों की कोटियाँ होती हैं। अब तुम पता करो कि तुम किस तरह से सोचते हो। बहुत-से लोग सोचते हैं कि दूसरा मरता है तो मरे, उसका घर जलता है तो जले, अपना क्या जाता है। ऐसे भी लोग हैं दुनिया में। उन्हें किस श्रेणी में रखोगे? महाराष्ट्र में एक महात्मा थे, उनका नाम था नामदेव। उनके घर में एक कुत्ता आया और रोटी का बंडल लेकर चला गया। वे उस समय भजन कर रहे थे। उन्होंने देखा, लेकिन कुछ कहा नहीं। जब वह चला गया तब ख्याल आया, अरे! मेरे पास तो घी का कटोरा भी है। उसके पीछे घी

का कटोरा लेकर भागे, चिल्लाते हुए कि रोटी के साथ घी भी ले जाओ। इस तरह के लोग भी दुनिया में होते हैं। अब उनको किस श्रेणी में रखोगे तुम?

एकनाथ भी महाराष्ट्र के एक बहुत बड़े संत थे। वे गंगोत्री गये, वहाँ से काँवर में जल लाए। हमारे यहाँ गंगोत्री का जल रामेश्वरम् में चढ़ाने की प्रथा है। एकनाथ संकल्प लेकर रामेश्वरम् की ओर चले। पूरा हिन्दुस्तान पार कर लिया, रामेश्वरम् के नगर में पहुँच गये। वहाँ देखा कि एक गधा प्यास के मारे तड़प रहा है। उन्होंने तुरंत उस गधे को पानी पिला दिया। अब यह मिसाल किस कोटि में आयेगा? एकनाथ बेवकूफ थे क्या? मन्दिर तो सामने है, तुम शिवजी पर जल चढ़ाने का संकल्प लेकर इतनी लम्बी यात्रा तय करके आखिर यहाँ तक पहुँच गये हो। गधे के लिये इतनी दूर से पानी तो नहीं लाये थे। मगर एकनाथ ने ऐसा नहीं सोचा। उन्होंने सोचा कि वह पत्थर तो पानी पियेगा नहीं, और इस बेचारे गधे को पानी की जरूरत है, इसलिए उसको पानी पिला दिया।

हमारे यहाँ पिछली शताब्दी के अन्तिम बीस वर्षों में रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, रमण महर्षि, स्वामी शिवानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महात्मा गाँधी, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महादेव गोविन्द राणादे, विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक, वल्लभभाई पटेल जैसे बड़े उच्च कोटि के लोग पैदा हुए थे, जो इस शताब्दी के मध्य तक चले गये। बड़े ही उच्च कोटि के विचार एवं आचरण वाले संत, विद्वान्, लेखक और राजनेता पैदा हुए थे जिनकी वजह से भारत को राजनैतिक गुलामी से छुटकारा मिला। मगर इस शताब्दी के उत्तरार्ध में लगता है कि हमारा राष्ट्र व्यक्तित्व शून्य हो गया है। कोई ऐसा व्यक्ति देखने को नहीं मिलता। हाँ, हो सकता है इन दस-बीस सालों में कोई पैदा हो गया हो जो अगली शताब्दी में कमाल कर जाए। भगवान करे ऐसा ही हो।

विचारों के सन्दर्भ में एक बात और बताने की जरूरत है। विचार आखिर है क्या? विचार कहते किसको हैं? जैसे आवाज किसी आघात से पैदा होती है, तुम्हारे तक पहुँचती है और तब तुम उसे पहचानते हो, वैसे क्या विचार भी कोई ठोस चीज है जो यहाँ से वहाँ जाती है? बिजली एक धारा की तरह आकर बल्ब में प्रकट होती है। मेरी आवाज मेरे मुख से निकलकर तुम्हारे कान में प्रकट होती है। वैसे ही विचार इधर-उधर घूमते हैं या केवल मेरे ही मस्तिष्क में प्रकट होते हैं? यह प्रश्न उठता है। इस बारे में ऋषि-मुनि तो कहते हैं कि विचार बहुत दूर-दूर तक जा सकते हैं। *मनोजवं मारुततुल्यवेगं*–

मन द्रुत गति से बहुत दूर-दूर तक यात्रा करता है। आजकल के वैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिकों का भी कहना है कि विचार एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को मिल सकते हैं, जिसे टेलिपैथी कहते हैं। एक व्यक्ति बम्बई में है, दूसरा कानपुर में। बम्बई में जो बैठा है वह बेटा है और कानपुर में माँ है। बेटे को वहाँ चोट लगती है, और यहाँ माँ को खटका हो जाता है। कैसे? इसका मतलब यह हुआ कि विचार एक विद्युतचुम्बकीय धारा है। इसका प्रमाण भी है। ई.ई.जी. नाम की एक मशीन होती है जिसके इलेक्ट्रोड आदमी की खोपड़ी पर लगाते हैं। वह मशीन बताती है कि उसके मस्तिष्क में कैसी तरंग चल रही है। मस्तिष्क में चार तरह की तरंगें होती हैं—सामान्य विचार, तीव्र विचार, कम विचार, और निर्विचार, और वह मशीन बतला देती है कि इस समय कौन-सी स्थिति है।

इसी तरह से एक यंत्र अभी निकला है जिसका इस्तेमाल पुलिस किया करती है। इसे लाई-डिटेक्टर कहते हैं और जब तुम बयान देते हो तो झूठ बयान दे रहे हो या सच, यह उससे पता चल जाता है। यह यंत्र केवल मस्तिष्क की तरंगों को पकड़ता है। हिन्दुस्तान में इसका उपयोग अभी कम है, पर विदेशों में बहुत होता है। जब कोई आदमी बयान देता है तो इस यंत्र को सामने रखा जाता है। उस आदमी के मन में उठ रहे विचार दिमाग की तरंगों में झलकते हैं। तब पता चलता है कि आदमी झूठ बोल रहा है या सच।

विचारों की बहुत ही गहन और विस्तृत प्रक्रिया होती है। इनकी कभी उपेक्षा या अवहेलना नहीं करनी चाहिये। इसलिये हमारे यहाँ सदा से कहा जाता है कि सबेरे उठो, चुपचाप बैठो और सबसे पहले भगवान का विचार करो, पूजा-पाठ करो। सबेरे उठते ही बर्त्तन की सफाई या कमरे की सफाई करते हो क्या? नहीं, सबसे पहले कम-से-कम एक-डेढ घण्टा दुनिया से दूर किसी दूसरी चीज का ख्याल करो। रात को सोने के पहले भी दुनिया से दूर किसी अन्य चीज का ख्याल करो। अपने विचारों को सुधारने के लिए मनुष्य को कम-से-कम इतना तो करना चाहिए। फिर सत्संग में जाकर विचारों को प्रभावित किया जा सकता है। हम बोल रहे हैं तो क्या आप प्रभावित नहीं हो रहे हैं? जी हाँ, विचारों पर जरूर प्रभाव पड़ता है। भले ही तुम अपने को बदल न सको मगर असर जरूर पड़ेगा। कभी किसी महात्मा की संगत में जाओगे तो हो सकता है बदल भी जाओ। इसलिये तो सत्संग की विशेष महिमा है। *'बिनु सतसंग बिबेक न होई'*—बिना सत्संग

के विवेक होता ही नहीं। विवेक का मतलब होता है कि तुम गलत और सही के फर्क को जान गये हो।

समृद्धि का रहस्य

विदेशी राष्ट्रों की समृद्धि का रहस्य क्या है? उनकी समृद्धि की तुलना यहाँ से तो बिल्कुल नहीं की जा सकती। वहाँ का सामान्य आदमी भी समृद्ध है, धनाढ्य है। समृद्ध का अर्थ होता है कि सब साधन हैं। वहाँ के ड्राइवर, मजदूर, मिस्त्री, सभी समृद्ध हैं, कोई अभावग्रस्त नहीं है। उन लोगों ने यह कैसे किया? क्या उन्होंने अपने समाज को बदला? या अपने धर्म को बदला? या राजनीति में कोई नया प्रयोग किया?

वहाँ अगर किसी कम्पनी के लिये 100 आदमियों के लिये विज्ञापन करें तो 10 आवेदन पत्र आयेंगे। और यहाँ 10 की जरूरत है तो 1000 आवेदन-पत्र आ जायेंगे। वहाँ नौकरी की कोई चिंता या परवाह ही नहीं है। हमारे आश्रम में कई विदेशी लड़के-लड़कियाँ आकर दो-चार साल रहते हैं। जिस दिन उन्हें लौटना होता है, उस दिन से चार-पाँच दिन पहले अपने किसी मित्र को फोन कर देते हैं कि हम फलानी तारीख को आ रहे हैं, हमारे लिये एक मकान तय कर लेना और कोई काम देख लेना। वे लोग यहाँ से जाते हैं, अपने देश में हवाई जहाज से उतरकर सीधे अपने नए मकान में जाते हैं, और दूसरे दिन नौकरी पर लग जाते हैं। और नौकरी छोड़ने में भी कोई दिक्कत नहीं होती। यहाँ तो आदमी को नौकरी छोड़ने की हिम्मत नहीं होती। यह अंतर क्यों है? इस पर आप लोग विचार कीजिये।

हिन्दुस्तान बहुत धीमी गति से प्रगति के पथ पर चल रहा है। यूँ कहना चाहिये कि केंचुये की चाल से चल रहा है। हमारे साथ-साथ चीन भी उठा था, पर आज वह बहुत आगे निकल गया है। उसकी मुद्रा मजबूत हो गई है। लेकिन यहाँ सब कुछ बहुत धीरे-धीरे चल रहा है।

यह मौसम के कारण भी हो सकता है न? ठण्ढे मौसम में ज्यादा काम किया जाता है, जबकि गर्म मौसम में कम। फिर यहाँ की जनसंख्या भी बहुत है ।

नहीं, जनसंख्या का कारण मानने के लिये मैं तैयार नहीं हूँ। जापान एक छोटा देश है, जहाँ न लोहा होता है, न कोयला, न तेल। वह सब चीजें बाहर

से मंगाता है। वहाँ केवल बाँस, चावल और मछली, ये तीन चीजें होती हैं। और वहाँ की आबादी अगर क्षेत्रफल के हिसाब से आँकी जाए तो हिन्दुस्तान से ज्यादा घनी है। जापान अति जनसंकुलित राष्ट्र है। लेकिन समृद्ध राष्ट्र है। आम जापानी को आप समृद्ध कह सकते हैं। मैं वहाँ गया हूँ, रहा हूँ। वहाँ मेरे बहुत-से मित्र भी हैं जिनके साथ मैंने योग पर शोध भी किया था। जापान में मूलत: धान की खेती होती है। वहाँ आम किसान के खेत में भी मोटर-पम्प और पाईप हैं, इतनी व्यवस्था है। वहाँ के शहर बहुत महँगे हैं। टोक्यो तो संसार का सबसे महँगा शहर है।

मौसम या जनसंख्या का किसी भी राष्ट्र की प्रगति पर खास असर नहीं पड़ता। जिन चीजों का असर पड़ता है उनमें तीन प्रमुख हैं—शिक्षा, समाज और राजनीति। शिक्षा यहाँ बहुत कम है। औरतों को पढ़ाया नहीं जाता। वे बिल्कुल निरक्षर हैं। केरल जैसे कुछ प्रान्तों को छोड़कर पूरे देश का यही हाल है। जहाँ तक समाज का सवाल है, यह केवल विवाह आधारित समाज है। यहाँ के समाज का मुख्य कार्य शादी-ब्याह है। पहले विवाह समाज का एक प्रमुख कर्म हुआ करता था, पर आज समाज के सामने और भी विकल्प हैं। आज शिक्षा एक विकल्प है, उपार्जन और स्वालम्बन दूसरा विकल्प है। जब तक कमा न सको, अपने पैरों पर खड़ा न हो सको, विवाह मत करो। जब तक मादा चिड़िया नर चिड़िया से घोंसला नहीं बनवा देती, मेल नहीं होने देती। मालूम है न आपको? यह समझने की चीज है। यही सामाजिक जीवन का आधार होना चाहिए। जहाँ तक राजनीति और नेता लोगों की बात है, वह तो जग उजागर सत्य है, उसे समझाने की जरूरत नहीं है।

सबसे जरूरी चीज है शिक्षा। शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये। भारत में हर एक व्यक्ति साक्षर होना चाहिये। पढ़ना, लिखना और गणित, जिसे अंग्रेजी मे तीन 'आर' यानि रीडिंग, राइटिंग और अरिथमेटिक कहते हैं, इन तीन की जानकारी सबको होनी चाहिये। साथ ही अपने समाज में जो विवाह की प्रधानता है, महत्त्व है, उसे घटाना होगा। विवाह आवश्यक है, अनिवार्य नहीं। अविवाहित जीवन भी जिया जा सकता है। जितने अधिक लोग अविवाहित जीवन यापन करेंगे, उतना समाज को अधिक सुख मिलेगा। हमसे किसी ने एक बार पूछा था कि साधु-महात्मा शादी क्यों नहीं करते? मैंने कहा, अभी तो जनसंख्या नब्बे करोड़ है, सब साधु-संन्यासी शादी कर लें तो देखते-ही-देखते एक अरब हो जायेगी!

पाश्चात्य देशों की समृद्धि के दो ही मुख्य कारण हैं—लड़कियों की शिक्षा और लड़कियों का सामाजिक उत्कर्ष। और कोई कारण नहीं है। दो सौ साल पहले ये भी ऐसे ही थे जैसे आज हम हैं। जो हाल यहाँ है वही हाल वहाँ भी था। केवल इन पचास सालों में उन्होंने प्रगति की है, क्योंकि उनके समाज पर ईसाई धर्म का बन्धन टूटा। ईसाई धर्म संकीर्ण धर्म है। बुरा मानने की बात नहीं है, हम धर्म की निन्दा नहीं कर रहे हैं, पर औरतों के मामले में यह बहुत संकीर्ण है। उसी समय सिगमण्ड फ्रॉयड के मनोविज्ञान ने पाश्चात्य जगत् में स्वीकृति प्राप्त की। फ्रॉयड यूरोप का बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक था, उसने ईसाई धर्म पर फटाफट चोट पर चोट मारी। ईसाई धर्म कहता है कि स्त्री-पुरुष को एक-दूसरे से एकदम अलग रहना चाहिये, पर फ्रॉयड ने कहा कि बीमारी की यही जड़ है। उसने धर्म के खिलाफ तर्क प्रस्तुत करने शुरू किये। सारे पाश्चात्य समाज ने उसे स्वीकार कर लिया। विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान की पढ़ाई शुरू हो गई, बी.ए. और एम.ए. की डिग्रियाँ मिलने लगीं। अब तो बाल मनोविज्ञान, औद्योगिक मनोविज्ञान और सामाजिक मनोविज्ञान जैसे मनोविज्ञान के कई क्षेत्र आ गये हैं।

फ्रॉयड आधुनिक मनोविज्ञान का जनक माना जाता है। उसने धर्म की संकीर्ण बातों पर विज्ञान का आधार लेकर चोट करना शुरू किया और कॉलेजों में पढ़वाना शुरू कर दिया। तब लड़कियाँ बाहर आईं, उनको पढ़ाया जाने लगा। अब वहाँ 100 प्रतिशत पढ़े-लिखे लोग रहते हैं। जिन लोगों के बच्चे न्यूनतम दर्जे तक नहीं पढ़ते, उन पर जुर्माना किया जाता है, यहाँ तक कि नौकरी से भी निकाला जा सकता है। स्त्रियों की शिक्षा और उनका सामाजिक उत्कर्ष, यही पश्चिम की समृद्धि का आधार है। और यही भारत की समृद्धि का आधार होगा। इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है। जिस बैलगाड़ी के एक पहिये में कमजोरी हो, वह बैलगाड़ी चल नहीं सकती। आप लोगों की गाड़ी के एक पहिये में कमजोरी है। आपकी बेटी पंगु है, आपकी स्त्री पंगु है। वह कचहरी जाकर वकील से बात नहीं कर सकती, पुलिस थाने जाकर पुलिस अधिकारी से बात नहीं कर सकती, बिजली के बिल का भुगतान नहीं कर सकती। रोटी-दाल-भात के अलावा उसे कुछ मालूम नहीं।

स्त्री शिक्षा का आप लोगों को एक प्रकार से मुहिम जैसे चलाना चाहिये। केवल शिक्षा नहीं, सामाजिक उत्कर्ष भी। लड़कियों को पढ़ाओ ताकि वे

बैंकों में काम करें, डॉक्टर बनें, प्रोफेसर बनें, अधिकारी बनें, पुलिस में जाएँ, इंजीनियर बनें। आजकल लड़कियाँ हवाई जहाज तक चला रही हैं। केरल की लड़कियों को देखो, कहाँ-कहाँ पहुँच गयी हैं। लड़कियों को पढ़ाओ, उनका सामाजिक उत्थान करो, उन्हें स्वावलम्बी बनाओ। चाहे वे तुम्हारी बहनें हों, बेटियाँ हों या सम्बन्धी हों। वे किसी भी उम्र में पढ़ सकती हैं, 40-50 साल में भी पढ़ सकती हैं। संगीत, कला, राजनीति, विज्ञान—सब तरह का साहित्य पढ़ना चाहिये।

हम तो संकेत दे रहे हैं सब लोगों को। हम चाहते हैं कि आप जैसी औरतें भोजन-रसोई में कम समय दें। भोजन इस तरह से तैयार करो कि कम-से-कम समय लगे। घर के बाकी काम-काज में भी यही तरीका अपनाओ। तुम्हारे बच्चे तो बड़े हो गये हैं अब। तुम अब भी तीन घण्टे सबेरे और तीन घण्टे शाम को रसोईघर में रहोगे तो एक चौथाई जीवन तो रसोईघर में गया समझो। 8 घण्टे गए नींद में, 6 घण्टे रसोई में, कितने घण्टे बचे? कुछ समय निकालकर रामचरितमानस पढ़ो, स्वामी विवेकानन्द की किताबें पढ़ो, स्वामी रामतीर्थ का साहित्य पढ़ो, आचार्य रजनीश की किताबें पढ़ो। गाँधी जी और विनोबा जी जैसे और भी महात्मा हैं, उनकी किताबें पढ़ो, नयी विचारधाराओं के बारे में जानो। जब तुम दुकान में साड़ी खरीदने जाती हो तो कोई भी साड़ी उठा लेते हो क्या? नहीं, सब कुछ देखते हो न? इसी तरह विचार भी कई प्रकार के होते हैं। तुम्हें देखना है कि कौन-से विचार तुम्हें ठीक लग रहे हैं। अगर तुम खाली रामायण ही पढ़ रही हो, तो तुमने अपने को एक ही मत का कर लिया। अरे देखो न, आचार्य रजनीश अलग बात कहते हैं, रामकृष्ण परमहंस कुछ दूसरी बात बोलते हैं, शंकराचार्य जी कहते हैं कि ज्ञान मार्ग से ही ईश्वर प्राप्त करो, मीराबाई कहती है कि पति मानकर प्रेम करने से ही ईश्वर प्राप्त होते हैं, गीता कहती है कि कर्मयोग से भगवान की प्राप्ति होती है, वेद कहते हैं कि यज्ञ करके भगवान को प्राप्त करो। कौन-सी बात सही है? ये सब अध्यात्म मार्ग में विभिन्न प्रकार की विचारधाराएँ हैं। स्त्रियों को थोड़ा-सा बौद्धिक भी होना चाहिये, केवल भावना-प्रधान ही नहीं रहना चाहिये। खुद चिन्तन-मनन करना चाहिये, तब जाकर वे दूसरों को बता सकेंगी, समझ सकेंगी।

—3 नवम्बर 1997



अध्याय 3

हिन्दुस्तान में अभी तक आधुनिक सभ्यता नहीं आई है। यहाँ गाँव के गाँव हैं जहाँ टेलिफोन और बिजली के बारे में कोई जानकारी नहीं है। यह रिखिया गाँव तो देवघर शहर के बहुत नजदीक है, थोड़ा और दूर जाओ तो पता चलेगा तुमको। अमेरिका में ढाई-तीन साल के बच्चे कम्प्यूटर पर काम करते हैं। वहाँ प्राथमिक और उच्च प्राथमिक शिक्षण सब खत्म हो गया है, अभी शिक्षा सीधे कम्प्यूटर से शुरू कर रहे हैं वे लोग। छोटे बच्चे स्कूल जाते हैं, एक कक्षा में अगर 80 बच्चे हैं तो 80 कम्प्यूटर दे दिये जाते हैं, और उसी में ए-बी-सी सीखते हैं, वाक्य बनाना सीखते हैं। किताब, पेन्सिल, स्लेट सब खत्म हो गया है। यहाँ तो अभी भी स्लेट चलती है न?

पर क्या इससे बच्चों की लिखाई खराब नहीं हो जायेगी?

देखो जी, जब लिखाई की जरूरत पड़ेगी ही नहीं, तब उसके अच्छे-बुरे के बारे में क्या सोचना? आजकल के पढ़े-लिखे लोग गिनती नहीं जानते। हमारी स्वामी सत्संगी को गिनती नहीं मालूम, वह तो सब काम कैल्क्यूलेटर पर करती है। आजकल जितने भी बड़े-बड़े बैंक हैं, उनमें पैसा डालने या निकालने के लिए कोई लिखा-पढ़ी नहीं करनी पड़ती। कम्प्यूटर से सब काम अपने आप हो जाता है। आज सभ्यता बहुत तेजी से बदल रही है। पर एशिया और अफ्रीका में अभी भी अन्धेरा है।

अमेरिका में जमीन नापने के लिए कोई पटवारी या सर्कल अफसर थोड़े ही होता है। वहाँ सारा काम कम्प्यूटर और लेज़र बीम से कर लेते हैं। लेज़र बीम लगाकर पता चल जाता है कि यहाँ की लम्बाई पचीस मीटर है। वहाँ

जमीन के जितने भी नक्शे बनते हैं वे अंतरिक्ष से ली गई तस्वीर के आधार पर बनते हैं। अंतरिक्ष से बहुत स्पष्ट फोटो आता है। अंतरिक्ष से तो अखबार की सुर्खियाँ तक पढ़ी जा सकती हैं!

हिन्दुस्तान में यह क्यों नहीं करते?

इसके लिये तो पैसा चाहिये न। पैसा कहाँ है हिन्दुस्तान में? हिन्दुस्तान के लोग खर्चा कम करते हैं। सब लोग घरों में सोना छुपाकर रखते हैं। हिन्दुस्तान में हर घर में दो-तीन तोला सोना तो जरूर है। बड़े घरों में ज्यादा है, गरीब घरों में कम। सोना छुपाने से सोना तो बढ़ता नहीं है। सारा धन बेकार पड़ा है।

अगर हिन्दुस्तान में जागृति आ जाए?

बिना पढ़े-लिखे जागृति कैसे आयेगी? यहाँ की औरतें तो सब सीधी-सादी हैं, अनपढ़ हैं। मर्दों का भी लगभग यही हाल है।

क्रांति के द्वारा भी कुछ नहीं हो पायेगा? आजादी के लिये जैसे हुआ था?

गुलाम आदमी क्या क्रांति करेगा? उसे तो केवल दो रोटी सबेरे, दो रोटी शाम को और एक लंगोटी चाहिये। हिन्दुस्तान का आदमी तो गुलाम की तरह रहता है। सबकी गुलामों जैसी हीन मानसिकता है, दूसरों की सहानुभूति पाने का बहुत यत्न करते हैं। 'हम बहुत गरीब हैं, हमारे पास कुछ नहीं है' अपनी दयनीय अवस्था बराबर जताते जाते हैं। दूसरों की सहानुभूति पाने के लिये झूठ तक बोलते हैं।

खैर, आगे आने वाली जो शिक्षा पद्धति है, उसमें जब बच्चा स्कूल जायेगा तो उसे हाथ से स्लेट या कागज पर ए-बी-सी-डी लिखना नहीं सिखायेंगे। सीधा कम्प्यूटर पर जायेगा वह। गणित सीखेगा तो कम्प्यूटर पर सीखेगा। अगर नक्शा बनायेगा तो कम्प्यूटर पर बनायेगा। एक प्रकार से समझो कि कम्प्यूटर मनुष्य का यांत्रिक मस्तिष्क होगा। जब तुम हाथ से क-ख-ग लिखते हो तब आदेश तो दिमाग से आता है न? आँख देखती है, दिमाग सोचता है कि 'क' लिखो या 'ख' लिखो, तब वह हाथ को आदेश देता है। अब यह दिमाग कम्प्यूटर को आदेश देगा। माने मनुष्य का प्राकृतिक मस्तिष्क यांत्रिक मस्तिष्क को आदेश देगा।

मनुष्य तो हमेशा से विचारशील प्राणी रहा है। मनुष्य को दो बहुत बड़ी चीजें मिली हैं, जिनकी वजह से मनुष्य जाति का इतिहास बदला है। मानव सभ्यता की पहली महत्त्वपूर्ण खोज अग्नि थी। उसके बाद सभ्यता ने एक छलांग और ली जब बिजली की खोज हुई। यह जबरदस्त छलांग थी। और अब तीसरी छलांग भी हो सकती है। एकदम निश्चित नहीं है, मगर सम्भावना काफी है। उत्तरी ध्रुव से एक पक्षी उड़कर सीधे दक्षिणी ध्रुव तक जाता है एक उड़ान में। बीस हजार फुट की ऊचाँई पर उड़ता है, रास्ते में कहीं रुकता नहीं। वैज्ञानिक लोग यह प्रश्न कर रहे हैं कि जब यह पक्षी उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक जाता है तो बीच में अपना 'पेट्रोल' कैसे भरता है? इसकी ऊर्जा की क्या व्यवस्था है? अमेरिका में उस चिड़िया के पूरे शरीर का विश्लेषण किया गया है। यह आज की बात नहीं है। बीस साल पहले अखबार में यह खबर आई थी, हमने पूरा लेख पढ़ा था उस समय। उसके बाद कई और लेख भी पढ़े हैं इस विषय पर।

जब चिड़िया के पूरे शारीरिक ढांचे का विश्लेषण किया गया तो यह पता चला कि उड़ान के दौरान वह बीस हजार फुट की ऊँचाई पर चली जाती है जहाँ हवा बहुत ठण्ढी और जमी हुई सी रहती है। वहाँ उस शीतल हवा से वह इलेक्ट्रॉन्स को अलग करती है। आखिर यही प्रक्रिया तुम्हारे बिजली उत्पादन में होती है न? इलेक्ट्रॉन्स को अलग करते हैं, तभी तो बिजली बनती है न? वह चिड़िया जमी हुई हवा को जब अन्दर में लेती है, तो उसके अन्दर में कोई ऐसी प्रणाली है कि वह इलेक्ट्रॉन्स को अलग कर लेती है। वे इलेक्ट्रॉन्स ही उसकी ऊर्जा का स्रोत हैं। अब सवाल उठता है कि वह इलेक्ट्रॉन्स को कैसे अलग करती है। अगर यह विज्ञान मिल जाए तो वैज्ञानिक लोग जमी हुई हवा से सीधे बिजली बना सकते हैं। तेल की जरूरत नहीं पड़ेगी, परमाणु ऊर्जा की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। पर वैज्ञानिकों का कहना है कि वह दिन अभी दूर है। इस प्रक्रिया को पूरी तरह समझने के लिये उन लोगों को बहुत काम करना पड़ेगा।

ऐसे बहुत-सी पक्षी हैं जो साइबेरिया से आते हैं, लम्बी-लम्बी उड़ान भरते हैं। एक उड़ान में डेढ़ हजार मील तय कर लेते हैं। पंख हल्के-हल्के चलाते जाते हैं और उड़ते चले जाते हैं। विज्ञान में यह एक नई खोज है। पर हम लोगों का देश अभी इस मामले में बहुत पीछे है। बम्बई, पूना या बंगलौर में कुछ अनुसंधान केन्द्र हैं पर पाश्चात्य देशों की तुलना में वे

कुछ भी नहीं हैं। अमेरिका में दो साल का बच्चा कम्प्यूटर चलाता है। अब तुलना करो हिन्दुस्तान के दो साल के बच्चे के साथ और देखो कि दिमाग में कितना फर्क है।

हाँ, यह बात जरूर है कि उन्नत देशों की राजनैतिक शक्तियाँ कुछ-न-कुछ गलती कर सकती हैं। इतिहास में ऐसा पहले भी हुआ है, आगे भी हो सकता है। अब कैसी गलती होगी, यह कहना तो मुश्किल है। मिस्र एक बड़ा साम्राज्य था, उसने क्या गलती की थी? रोम ने क्या गलती की थी, यूनान ने क्या गलती की थी? हिन्दुस्तान ने क्या गलती की थी? हिन्दुस्तान भी सोने की चिड़िया थी। ऐसी बात तो नहीं है कि हिन्दुस्तान हमेशा ऐसा था जैसे आज है। आखिर जिस देश में लोग बाहर से आकर बस गए, वह देश गरीब तो नहीं हो सकता। यहाँ अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया, उत्तर-पश्चिम एशिया, सब जगह से लोग आए और बस गए। आखिर इस देश में कुछ तो रहा होगा जो ये लोग आए। लोग आज अमेरिका क्यों जाते हैं? क्योंकि सम्भावनाएँ हैं। यहाँ सम्भावनाएँ रहीं तभी तो लोग आए। पुराने जमाने में खाड़ी के देशों में तो कोई नहीं गया। हाँ, अब जा रहे हैं, क्योंकि तेल मिला है। जहाँ अवसर होता है वहाँ लोग जाते हैं।

ये बड़े-बड़े साम्राज्य जो समाप्त हो गये, उन्होंने जरूर राजनैतिक गलतियाँ की होंगी। पहली मुख्य गलती है शिक्षा का अभाव। शिक्षा इस युग का मुख्य आधार है। किसी भी जाति या देश को अगर ऊँचा उठना है तो उसको अपना सारा पैसा, अपनी सारी शक्ति, शिक्षा पर ही लगानी चाहिये। हर एक को हनुमान जी जैसा बनाना चाहिए, *विद्यावान गुणी अति चातुर*। विद्या का मतलब तो तुम जानते हो, आजकल बी.ए., एम.ए. होता है, पहले शास्त्री, आचार्य, महामहोपाध्याय, मुखोपाध्याय आदि होता था। गुणी का मतलब हनुमान जी में योग्यता थी। और चातुर माने बुद्धिमान्। चातुर ही नहीं बल्कि अति चातुर। बड़े बुद्धिमान् थे। इसलिये उनकी राम जी के साथ पटरी भी बैठ गई। राम जी को चतुर शिरोमणि कहा गया है। राम जी भी होशियार लोगों में अव्वल आते थे। वे बुद्धु नहीं, बहुत तेज आदमी थे। अगर तेज नहीं होते तो बाप से लड़ते, कहते कि राज्य पर मेरा हक है। पर होशियार आदमी तो ताड़ जाता है। जैसे ही उनको पता चला कि निर्णय बदल चुका है, वनवास के लिये आदेश हो चुका है, वे समझ गये कि यहाँ से चुपचाप निकलना बेहतर है। होशियार आदमी ही ऐसा करता है।

वनवास के लिए निकलना क्यों बेहतर था?

कभी-कभी मैदान छोड़ने में ही होशियारी होती है। कृष्णजी ने जरासंध को सत्रह बार हराया, पर आखिर में मथुरा से भागकर द्वारिका में आकर छुपना पड़ा। बुद्धिमान् हमेशा देश-काल देखकर चलते हैं, अड़ियल टट्टू नहीं होते। ऐसा नहीं कि जमे हुए हैं, प्रतिष्ठा का सवाल है। और इस कारनामे के बाद भगवान कृष्ण का नाम ही पड़ गया रणछोड़। आज तो सम्मान के साथ लेते हैं उनका यह नाम, रणछोड़ जी कहकर कीर्तन करते हैं। पर उस वक्त तो रणछोड़ का मतलब भगोड़ा रहा होगा। उस समय वह नाम तो उनके लिये अपमान की बात रही होगी।

रामायण में प्रसंग आता है, जब हनुमानजी लंका जा रहे थे और समुद्र के ऊपर उड़ान ले रहे थे तो वहाँ एक राक्षसी ने उनकी छाया पकड़ ली, जिससे हनुमानजी आगे नहीं जा सके। इसका कोई आध्यात्मिक अर्थ है क्या?

नहीं, इसका कोई विशेष आध्यात्मिक अर्थ नहीं है। हो सकता है खींचा-तानी करके कोई अर्थ निकाला जाए, मगर एक बात का ख्याल रखो कि जब भी कोई साहित्य लिखा जाता है, उसमें कुछ अलंकारों का होना आवश्यक है। एक रसालंकार है अतिशयोक्ति। 'बाप रे बाप! वह आसमान छू रहा था'। आसमान कोई छूता थोड़े ही है। 'लोहे के चने चबा दिये'। लोहे के चने कोई चबाता नहीं है, यह अलंकार में आता है। दूसरा अलंकार होता है रोचक और तीसरा होता है वीभत्स। 'कुम्भकरण के कान गुफा की तरह लग रहे थे' या 'जब खर-दूषण को मारा तो उनके शरीर से बहते खून को देखकर लगता था कि काले पहाड़ से गेरू के नाले बह रहे हैं'—यह वीभत्स अलंकार है। किसी भी साहित्य को इन अलंकारों से मुक्त नहीं रखा जा सकता। अब इन अलंकारों को रखने के लिये कोई घटना या कथा तो जोड़नी पड़ेगी न? साहित्य मूल में यथार्थ होता है, मगर अभिव्यक्तियों में उसे यथार्थ नहीं मानना चाहिये। यह तुम्हारे सवाल के जवाब में पहली बात हुई।

दूसरी बात, ऐसा माना जाता है कि समुद्र में कुछ जगह पर चुम्बकीय क्षेत्र होते हैं। जैसे बरम्यूडा त्रिकोण है। वहाँ कई दुर्घटनाएँ हुई हैं, सब जानते हैं। वैज्ञानिक लोग इस पर बहुत शोध भी कर चुके हैं, बहुत-सी अवधारणाएँ भी बन चुकी हैं, बहुत-से विवरण भी दिये जा चुके हैं। कुल मिलाकर निचोड़

यही है कि समुद्र के अन्दर कहीं-न-कहीं कोई चुम्बकीय क्षेत्र होता है। वह सदा रहेगा, यह नहीं कह सकते, मगर पिछले पचास-सौ सालों से विज्ञान बरम्यूडा त्रिकोण के बारे में बात कर रहा है। इसी तरह ऑस्ट्रेलिया में एक पहाड़ है, हैंगिंग रॉक। हम उसके अगल-बगल में जा चुके हैं। उस पहाड़ के ऊपर चिड़िया उड़कर जा नहीं सकती, गिर जाती है। उस पहाड़ पर जोखिम उठाने जो भी गया, फिर वापस नहीं आया।

ये जितनी चीजें हैं, इनके आधार पर हनुमानजी की इस कहानी को मिथ्या गप्प भी नहीं कहा जा सकता। यद्यपि सही मायने में क्या हुआ होगा, यकीन के साथ कह नहीं सकते। मगर यह सम्भव है कि ऐसा हो सकता है, क्योंकि कहीं पर चिड़िया को गिरते हुए देखा है, कहीं पर हवाई जहाजों को गिरते देखा है, कहीं पर पानी के जहाजों को डूबते देखा है। बरम्यूडा त्रिकोण तो हाल ही की चीज है, कोई पुरानी बात तो है नहीं। तुम्हारे प्रश्न के सम्बन्ध में साहित्यिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोणों से उत्तर दे दिया। इसके अलावा इस प्रसंग का आध्यात्मिक अर्थ निकालना फिजूल है।

क्या यह एयर-पॉकेट की तरह हुआ? जैसे हवाई जहाज एयर-पॉकेट में जाने से क्षतिग्रस्त हो जाता है?

नहीं, यह एयर-पॉकेट नहीं है। हम भी एक बार एयर-पॉकेट में फँसे थे, बाप रे, क्या अनुभव था!

कुछ लोग इसे ब्लैक होल भी मानते हैं, जिसमें जाने से वापस नहीं निकल सकते।

नहीं, वह ब्लैक होल यहाँ नहीं, बहुत दूर होता है। इतना दूर कि वहाँ पहुँचने में तुमको पता नहीं कितने जन्म लेने पड़ेंगे। खैर, ब्लैक होल तो अभी सिद्धान्त ही है। अंतरिक्ष विज्ञान में दो सिद्धान्त अभी सिद्ध नहीं हुए हैं, एक तो बिग बैंग और दूसरा ब्लैक होल। इन्हें केवल माना जाता है, इनका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है।

क्विकसैण्ड का सिद्धान्त भी वही है न?

क्विकसैण्ड याने चोरबालू तो हमने कई जगह देखा है। जो रेत होती है वह खिसक जाती है, सीधे अन्दर चली जाती है। मगर हर जगह होता है,

ऐसी बात नहीं है। जब महमूद गजनवी की सेना हिन्दुस्तान में आई और सोमनाथ की तरफ बढ़ रही थी, उस वक्त रखवालों में एक गोगा सरदार था। वह महमूद गजनवी की सेना की एक रेजीमेंट को ऐसी ही जगह से ले गया। पूरी की पूरी रेजीमेंट अन्दर चली गई थी। यह इतिहास में आता है। यह उस समय की बात है जब महमूद गजनवी का सोमनाथ पर आखिरी आक्रमण हुआ। उस वक्त सोमनाथ के मण्डलेश्वर आचार्य ने राजस्थान और गुजरात के राजाओं से मंदिर को बचाने का अनुरोध किया। उसने सबको चिट्ठियाँ भेजीं, पर मन्दिर को बचाने के लिये कोई नहीं आया। इसका ऐतिहासिक प्रमाण है। कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी, जो भारतीय विद्या भवन के संस्थापक थे और उत्तर प्रदेश के राज्यपाल भी हुए, उन्होंने इस पर दस्तावेज लिखा है। अंत में भीमदेव सोलंकी अपनी सेना को लेकर मदद के लिये आया। लेकिन महमूद गजनवी की इतनी विशाल सेना थी, इतने हाथी, घोड़े और सैनिक थे कि जीत की कोई उम्मीद नहीं थी। फिर भी उसकी एक रेजिमेंट को गोगा सरदार ने गुमराह किया था क्विकसैण्ड में। क्विकसैण्ड का मतलब पानी नहीं होता, वहाँ की रेत गहरी होती है। वहाँ जाते ही आदमी नीचे धँसता जाता है।

इतिहास में यह सब जो हुआ कि हम लोग मन्दिरों को बचा नहीं सके, यह केवल यहीं हुआ है या अन्य देशों में भी ऐसा हुआ है?

यहीं नहीं, सब जगह हुआ है। जब ईसाई धर्म यूरोप में फैला, उस समय यूरोप के लोगों के अपने-अपने प्राचीन धर्म थे। वे लोग देवी-देवताओं को पूजते थे, मूर्तियों को पूजते थे, शिवलिंग की भी पूजा होती थी। हमने वैटिकन के संग्रहालय में जाकर देखा है और किताबें भी पढ़ी हैं। ईसाई धर्म का व्यापक प्रचार तब होने लगा जब रोमन सम्राट् कॉन्सटैन्टाईन ईसाई बना। इसी सम्राट् ने कॉन्सटैन्टिनोपल शहर की स्थापना की जो आज इस्तान्बुल के नाम से जाना जाता है। उसके बाद ईसाई धर्म के प्रचार के लिए व्यापक धर्मयुद्ध चला, पूर्व में ब्लैक-सी होते हुए मंगोलिया तक, उत्तर में बालकन की तरफ, पश्चिम में फ्राँस और स्पेन की तरफ। गाँव के गाँव कत्ल कर दिये गये। वे लोगों के हाथ-पैर पकड़ते थे, आग के ऊपर उलटा लटकाते थे और पूछते थे, ईसाई बनोगे? हाँ कहा तो छोड़ देते थे, उसके सिर पर पानी डालकर बैपटाईज़ कर देते थे, नया नाम दे देते थे और उसकी किसी ईसाई से शादी करवा देते थे। ईसाइयों में तीन

प्रकार की दीक्षा होती है, पहली बैपटिज़्म, दूसरी कम्यूनियन और तीसरी दीक्षा होती है शादी। पैदा होते ही कोई ईसाई नहीं होता। छोटी उम्र में बच्चे को चर्च में ले जाकर उसके ऊपर पानी डालकर उसे ईसाई धर्म की पहली दीक्षा दे देते थे। अब नहीं होता है, क्योंकि अब पढ़े-लिखे लोग हैं, बोलते हैं कि बच्चा बड़ा होकर खुद अपना धर्म चुनेगा।

ईसाई धर्म का जब व्यापक प्रचार हो गया, उसके पाँच-छः सौ साल बाद सारी तस्वीर बदल गई। मक्का से इस्लाम धर्म उठा और कुछ ही शताब्दियों में अफ्रीका से लेकर मंगोलिया तक इस्लाम का प्रचार हो गया। चंगेज खान और उसका पोता, कुबलाई खान मंगोलिया के ही तो थे। मंगोल आक्रमण करते हुए आए, तुर्की को लिया, वहाँ से पूरे बालकन में ईसाइयों का कत्ल किया, गाँव के गाँव स्वाहा कर दिये। तुर्की लोग मूलतः एशियाई नहीं हैं, वे उसी जाति के हैं जिस जाति के यूरोपियन होते हैं। तुमने देखा होगा तुर्की लोग कितने गोरे होते हैं, पाश्चात्य लोगों की तरह। उनका औटोमन साम्राज्य मध्य एशिया और पूर्वी यूरोप के बड़े भू-भाग में फैला हुआ था। पश्चिम की तरफ स्पेन पर जिन मुसलमानों ने हमला किया वे मूर जाति के थे। उन्होंने वहाँ गिरजाघर तोड़े, ईसाइयों का कत्ल किया, उन्हें मुसलमान बनाया। स्पेन में आज भी तुम्हें कई मुसलमान मिलेंगे।

जब हम स्पेन में थे हमें उन दिनों की एक मशहूर कहानी मालूम पड़ी। वहाँ के किसी चर्च में मैडोना याने मरियम की मूर्ति थी। जब मुसलमानों का आक्रमण हुआ तो वहाँ का एक साधु डर के मारे कि कहीं ये लोग इस मूर्ति को तोड़ देंगे, उस मूर्ति को लेकर पहाड़ों की ओर भाग गया और वहाँ एक गुफा में रहने लगा। मूर्ति को उसने गुफा की एक दरार में छिपा दिया। वह मूर्ति काठ की बनी है, हमने उसे अपनी आँखों से देखा है। जब वह साधु उस गुफा में आग जलाता था तो उसका काजल उस मूर्ति में लगता जाता था। कुछ समय बाद साधु मर गया, मगर वह कहानी कई लोगों को मालूम थी।

यह कुछ ऐसी ही घटना है जैसी वाराणसी में घटी थी। विश्वनाथ मन्दिर में जो शिवलिंग है, उसे मुसलमानों के डर से पण्डित लोगों ने ज्ञानवापी कुएँ में डाल दिया था। बाद में फिर वहाँ से निकाला गया, सब लोग जानते हैं। उसी तरह से स्पेन में कई सौ साल के बाद मैडोना की उस मूर्ति को गुफा से निकाला गया। यह स्थान बार्सीलोना से साठ मील उत्तर की ओर मोन्तसरात की पहाड़ियों में है। वहाँ एक विशाल गिरजाघर बनाकर उसमें मूर्ति को

स्थापित किया गया है। उस स्थान को अब कहते हैं ब्लैक मैडोना, जिसका शाब्दिक अर्थ हुआ, काली माता। वहाँ रोज हजारों लोग जाते हैं। बड़ी सुन्दर सड़कें बनी हैं पहाड़ों में। जहाँ सड़क नहीं बनी है, वहाँ रस्सी की पुली बनी है। बहुत बड़ा तीर्थस्थान है वह। वहाँ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सभी जाते हैं, मन्नत करते हैं। कोई लड़के के लिये मन्नत करता है, कोई नौकरी के लिये, कोई आरोग्य के लिये तो कोई मुकदमे से छुटकारा पाने के लिये।

स्पेन के बाद मुसलमान बालकन की तरफ बढ़ गये। सर्बिया में हाल में ईसाइयों की जिन मुसलमानों के साथ लड़ाई हुई है, वे उसी समय के मुसलमान हैं। सब गोरे हैं, नीली आँखों वाले हैं। वहाँ के मुसलमानों और ईसाइयों का रंग एक, कपड़ा एक, खान-पान एक, मगर मजहब अलग। एक-दूसरे के खून के प्यासे हैं। उस समय पोप ने एक चिट्‌ठी लिखी चंगेज़ खान को कि भाई, यह कत्लेआम बन्द करो। बहुत अच्छे ढंग से चिट्‌ठी लिखी, वह चिट्‌ठी अभी भी वैटिकन म्यूज़ियम में तुम्हें देखने को मिलेगी। इटालियन भाषा में लिखी हुई है। दो पादरी उस चिट्‌ठी को लेकर गये, तीन-चार महीने में पहुँचे। उन्होंने अपनी यात्रा के वर्णन में लिखा है, गाँव के गाँव उजाड़, मुर्दे पड़े हुए हैं, चीलें खा रही हैं, कोई रहता नहीं है। जब तक वे मंगोलिया पहुँचे तब तक चंगेज़ खान, जिसके नाम पर चिट्‌ठी थी, मर चुका था। उसका पोता, कुबलाई खान चला गया था चीन की तरफ हमला करने के लिये। उस वक्त वहाँ उसका जनरल था, अकताई। पादरियों ने वह चिट्‌ठी उसको दी। अकताई ने क्या किया, उन दोनों को पकड़कर नजरबन्द कर दिया। बाद में जाकर वे किसी तरह छूटे।

कहने का मतलब यह कि मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों को तोड़ना, यह पहले मामूली बात रही है। इस बात को याद रखना कि प्राचीन काल में धर्म राजनीति का एक आधार रहा है। आज हमारा जो सेक्यूलर या धर्मनिरपेक्ष समाज आया है, इसमें हम राजनीति को धर्म से अलग करने की कोशिश कर रहे हैं। धर्म राजनीति का निर्णय नहीं करेगा। यह कह तो देते हैं मगर वास्तव में अन्दर से ऐसा नहीं होता। हमेशा से धर्म राजनीति का निर्णय देते आया है। इंग्लैण्ड और यूरोप में भी झगड़ा हुआ, ईसाई धर्म कई भागों में बँटा। इंग्लैण्ड के राजा, हेनरी आठवें ने अपनी पहली रानी को तलाक देने का सोचा तो पोप ने मना कर दिया। तब हेनरी ने गुस्से में आकर कहा, अगर तुम तलाक देने की इजाजत नहीं देते हो तो हम दूसरे चर्च से तलाक

ले लेंगे। उसने दूसरा चर्च ही बना दिया, जिसे आज एंग्लिकन चर्च कहते हैं। उस चर्च से तलाक लेकर हेनरी आठवें ने फिर दूसरी शादी की। यह सब इतिहास की बात बता रहा हूँ। धर्म और राजनीति की नोंकझोंक तो हमेशा से चली आ रही है।

उसके बाद जब यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति आई, अच्छे वैज्ञानिक आए, तो वैज्ञानिकों ने धार्मिक मान्यताओं को चुनौती देना शुरू कर दिया। पहले तो गैलिलियो जैसे जितने वैज्ञानिक थे वे चर्च के सामने डरे रहते थे। चर्च ने कितनों को धमका दिया, कितनों का गला भी कट गया। उस समय पादरी बहुत शक्तिशाली जो थे। मगर वैज्ञानिक लोगों ने धीरे-धीरे ईसाई धर्म की सारी मान्यताओं की जनता के सामने पोल खोल कर रख दी।

इसी बीच में एक और घटना हुई। औद्योगिक क्रान्ति से सब को नौकरी मिलने लगी। सरकार ने धीरे-धीरे सब काम अपने हाथ में लेने शुरू कर दिये। लोगों को नौकरी मिलने लगी, आमदनी होने लगी, उन्होंने पादरी और नन बनना छोड़ दिया। चर्च ने अपना साम्राज्य तो बहुत फैला दिया था, मगर जब पादरी और नन कम होने लगे तो गिरजाघर, स्कूल और अस्पताल कैसे चलाते? तब उन लोगों ने पादरियों का आयात शुरू कर दिया, श्रीलंका से, बंगलादेश से, चीन से, जापान से, हिन्दुस्तान से। ये लोग यहाँ से गये तो इनका धर्म तो ईसाई था लेकिन संस्कृति दूसरी थी। बस, ईसाई धर्म में खिचड़ी बन गई सब। अब वहाँ के लोग पादरी या नन बनने को तैयार नहीं हैं।

इस तरह की चीजें हर जगह पर होती हैं। एक धर्म की मर्यादा नष्ट होती है और दूसरे धर्म का उद्धार होता है। हमारे यहाँ का वैदिक धर्म थोड़ा कमजोर जरूर हुआ है पर मरा नहीं, क्योंकि इस धर्म में लचीलापन है, कट्टरपन नहीं। अगर तुम आस्तिक हो, तो इस धर्म के हो, तुम नास्तिक हो, तो भी इसी धर्म के हो। हम यह नहीं कहेंगे कि तुम नास्तिक हो, इसलिए इस धर्म से बाहर हो जाओ। तुम्हारी दादी या परदादी घूँघट लगा कर रहती होगी, मगर आज तुम्हारी बहन तो घूँघट छोड़कर बैठी है। कोई गलती की उसने? हमारा धर्म कहता है नहीं, हमारी लड़कियों का घूँघट हट जाए तो धर्म खत्म नहीं होता। हाँ, उस समय घूँघट जरूरी था क्योंकि समाज वही चाहता था। आज का समाज कहता है, घूँघट मत लगाओ। उस समय लड़कियाँ लड़कों से बात नहीं करती थीं, क्योंकि समाज की यह माँग थी। मगर आज के समाज में लड़का-लड़की खुलेआम बात करें, किसी को हर्ज नहीं।



हमारा धर्म कहता है कि जो सामाजिक मर्यादाएँ होती हैं, उनका पालन करना चाहिये, नहीं तो घाटे में पड़ जाओगे। रामजी ने मर्यादा का पालन किया, मजबूर थे। सीताजी को बहुत प्रेम करते थे, सीताजी के बिना उनका रहना कितना मुश्किल था। मगर समाज की एक मर्यादा थी कि औरत पराये घर में इतने दिन तक कैसे रह सकती है। यह उस वक्त की मर्यादा थी। रामजी ने उसका पालन किया, मगर सीता जी को भूले नहीं। जब सीताजी चली गईं, रामजी राजमहल में भी संन्यासी की तरह रहने लगे थे। जमीन पर सोया करते थे, एक बार खाना खाते थे।

चाहे व्यक्ति राजा हो या महाराजा, साधु-महात्मा हो या स्वयं भगवान का अवतार, उसे समाज की मर्यादा का पालन करना चाहिये। समाज माँग करता है। पर जब समाज बदलता है तो धर्म नहीं बदलता, क्योंकि धर्म का मतलब है परमेश्वर के साथ तुम्हारा सम्बन्ध। चाहे वह सम्बन्ध साकार परमेश्वर के साथ हो या निराकार परमेश्वर के साथ, चाहे वह वेदान्त के ब्रह्म से हो या वैष्णवों के विष्णु से या शाक्तों की शक्ति से या ईसाइयों के गॉड से या मुसलमानों के अल्लाह मियाँ से, तुम्हारा यह जो व्यक्तिगत सम्बन्ध है वही सनातन धर्म है। बाकी जितने धर्म होते हैं वे युग-धर्म होते हैं।

साड़ी पहनो या जीन्स, बाल लम्बे रखो या छोटे, संस्कृत में बोलो या अंग्रेजी में, इन सब चीजों से धर्म को कोई फर्क नहीं पड़ता। मर्दों को प्रणाम

करो या हाथ मिलाओ, कोई फर्क नहीं पड़ता। तलाक की प्रथा को स्वीकार करो या अस्वीकार, कोई फर्क नहीं पड़ता। ये सब सामाजिक चीजें हैं। समय और अवसर देखकर इन्हें किया जाता है। सनातन धर्म में यह लचीलापन है। सनातन धर्म का मतलब यही होता है कि जिस धर्म में अन्तराल न हो, निरंतरता बनी रहे। आज से दो सौ साल पहले एक हिन्दू का बेटा तुम्हारी तरह थोड़े ही रहता था। तुम्हारी दादी या परदादी ऐसे ही रहती होगी क्या? नहीं, सारा समय घूँघट के पीछे रहती होगी। उस समय की स्त्रियों को 'असूर्यपश्या' कहते थे, जिनका मुँह सूरज ने भी न देखा हो। ऐसा भी समाज हमारे यहाँ रहा है। और यह वही समाज था जहाँ पहले स्वयंवर होता था। लड़कियाँ अपना पति खुद चुनती थीं पचास-साठ उम्मीदवारों के बीच में। दरबार में पचास-साठ राजा बैठे हैं, लड़की जयमाला लेकर चल रही है, और एक के बाद एक राजाओं का परिचय मिल रहा है। कितना मुक्त समाज था।

एक समाज वह भी था जब एक-एक राजा की तीन-तीन चार-चार रानियाँ होती थीं। और रखैलों का तो कोई हिसाब-किताब ही नहीं। एक-पत्नी विवाह का कोई कानून नहीं था उस समय। वह भी एक संस्कृति थी। विश्वामित्र साधु थे, ऋषि थे। उनका एक अप्सरा मेनका से सम्बन्ध हो गया। वह तो जायज नहीं था आज के दृष्टिकोण से। उस सम्बन्ध से जो संतान पैदा हुई, उस संतान का इक्ष्वाकु वंश के एक शक्तिशाली राजा से सम्बन्ध हो गया। शकुन्तला की बात कर रहा हूँ। शकुन्तला विवाह के पहले आश्रम में ही गर्भवती हो गई, बाकी कहानी तो आप जानते हैं। उसका बेटा हुआ भरत जिसके नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। एक नाजायज बेटे के नाम पर इस देश का नाम रख सकते हो तो जान लो कि तुम्हारे समाज के मूल्य कितने उदार और विशाल रहे होंगे। भरत तो नाजायज था न, पर तुमने उसे नाजायज नहीं, महान् कहा। क्यों? जब वह खेलता था तो कुत्तों के पिल्लों के साथ नहीं, शेर के शावकों के साथ खेलता था। जो बच्चा बाघ के बच्चों के साथ खेले वह जायज हो या नाजायज, शक्तिमान् जरूर है। उसी पर इस देश का नाम भारत पड़ा।

लेकिन वहीं कर्ण को स्वीकार नहीं किया गया। कर्ण की भी वही स्थिति थी जो भरत की थी, किन्तु उसे स्वीकार नहीं किया गया, क्योंकि उसने अधर्म का साथ दिया था। वह गलत पक्ष की ओर चला गया। शक्तिमान् पुरुष अगर अधर्म के प्रति उन्मुख हो, तो उसे कौन मानेगा?

बात हो रही थी धर्मों के आपसी झगड़ों की और इतिहास को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्मों में झगड़ा हमेशा से चला आ रहा है। दुनिया में तीन मजहब ऐसे हैं जो एक मूल से पैदा हुए हैं—यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्म। मूल धर्म है यहूदी धर्म। जैसे हम लोगों का धर्म बहुत पुराना है, वैसे ही यहूदी धर्म भी बहुत पुराना है। यहूदी आज इज़राइल में बसते हैं पर मूलत: वे कश्मीर के रहने वाले थे। कश्मीर को प्राचीन काल में नीलांचल कहते थे और वहाँ जो समुद्र था उसको नीलांचल समुद्र कहते थे। इस पर एक पुस्तक भी है जिसे नीलांचल पुराण कहते हैं। इसमें प्राचीन कश्मीर का पूरा वर्णन है। यहूदियों के पुरखे कश्मीर छोड़ कर इराक होते हुए इज़राइल गये थे। इनकी किताब, ओल्ड टेस्टामेन्ट में स्पष्ट लिखा है, 'मैं तुम्हें एक ऐसा देश दूँगा जहाँ दूध और शहद बहता है।' दूध और शहद का देश तो कश्मीर है, इज़राइल में तो धूल ही धूल है। वहाँ पानी भी नहीं होता। पेड़ लगाने के लिये हेलीकॉप्टर से मिट्टी लाते हैं। वहाँ का यह हाल है।

यहूदी धर्म से बाकी दोनों धर्मों का उदय हुआ है। बाइबिल के अनुसार हज़रत इब्राहिम की पत्नी से बहुत साल तक जब कोई संतान नहीं हुई, तो पत्नी ने उन्हें दासी से संतान पैदा करने के लिए कहा। दासी से जो पुत्र हुआ उसका नाम रखा इस्माइल। संयोग से पत्नी भी गर्भवती हो गई, उससे जो बेटा हुआ उसका नाम रखा इसाक। इसाक से चला ईसाई परिवार और इस्माइल से चला इस्लामी परिवार।

ये तीनों धर्म कहते हैं, 'मैं ही ठीक हूँ, मेरे अलावा बाकी सब गलत है।' समझौते या झुकने का सवाल नहीं उठता। किसी भी हालत में ये किसी दूसरे धर्म के सिद्धान्त को स्वीकार करने को तैयार नहीं। ये पुनर्जन्म को नहीं मानते, चाहे वैज्ञानिक कितने ही सबूत दे दें। जबकि हमारा वैदिक धर्म कहता है कि एक जन्म के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, ऐसे अनेक जन्म होते हैं। ये बोलते हैं कि भगवान निराकार होता है, उसका कोई रूप नहीं होता। हम कहते हैं, नहीं, भगवान साकार भी होते हैं। वे भक्तों के लिये राम-कृष्ण रूप में अवतार भी लेते हैं। ब्रह्माजी सृष्टि की रचना करते हैं, विष्णुजी सृष्टि का पालन करते हैं, शिवजी सृष्टि का संहार करते हैं, देवी माँ सबको आशीर्वाद देती हैं, सबकी रक्षा करती हैं। वे लोग कहते हैं यह सब फालतू बात है। पुनर्जन्म और अवतारवाद, यही दो मुख्य सिद्धान्त हैं जिनपर मूलत: झगड़ा चला है।

वैसे इन लोगों में भी आपसी झगड़ा रहा है। मुसलमानों में जो शिया लोग हैं वे ज्यादातर सूफी विचारों से प्रभावित हैं। सूफी विचारधारा वेदांत की विचारधारा के समानान्तर चलती है। सूफी लोग संगीत को स्वीकार करते हैं, नृत्य को स्वीकार करते हैं, शराब को स्वीकार करते हैं, प्रेमी-प्रेमिका को स्वीकार करते हैं। उमर खयाम की रुबाइयाँ पढ़े हो तुम? वह सूफी काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। सूफी विचारों से प्रभावित होने के कारण शिया मुसलमानों ने संगीत और नृत्य को माना है। जबकि इस मामले में सुन्नी लोग कट्टर हैं। इसी तरह से ईसाई धर्म में भी ऑर्थोडौक्स, कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट मत हैं, जिनकी आपस में पटरी नहीं बैठती।

धर्मों का झगड़ा तो हमेशा चला आया है। हिन्दुस्तान में मन्दिर तो बहुत टूटे हैं। बैद्यनाथ का शिवलिंग तोड़ा गया है। आज लोग झगड़ा नहीं करते हैं, 'हाथ लगाते-लगाते शिवजी नीचे चले गये' कह देते हैं, मगर ऐसी बात नहीं है। यह शिवलिंग टूटा है। काशी विश्वनाथ मन्दिर पर जब आक्रमण हुआ तो पण्डित लोगों ने विश्वनाथ जी को ज्ञानवापी में छुपा दिया। और हिन्दुस्तान में जब बौद्ध सत्ता में थे, तो उन्होंने बद्रीनाथ से नारायण की मूर्ति को निकालकर अलकनन्दा में डाल दिया और वहाँ बुद्ध की मूर्ति रख दी। यह तो हमेशा होते रहा है। जब राजनीति और धर्म एक साथ चलेंगे तब यह सब होगा ही।

इसलिये धर्म को हमेशा राजनीति से दूर रखना चाहिये। धर्म केवल उपासना का विषय है। समाज के स्तर को ऊँचा रखने के लिये इसकी जरूरत है। आपको जिस उदात्त चिन्तन की जरूरत है, वह चिन्तन हम देते हैं। मगर हम यह कहने लगें कि यही पार्टी हो, यही नेता हो, यह हमारा काम नहीं है। धर्म का काम केवल व्यक्ति को बनाना, समाज को बनाना है। राष्ट्र-निर्माण और राजनीति से उसे खास मतलब नहीं है। संसद का काम आप लोग कीजिये। जब तक यह नहीं होगा तब तक मार-पीट होती रहेगी।

यूरोप में तो कानून बना हुआ था कि सार्वजनिक स्थानों में चर्च के अलावा और कोई धार्मिक स्थान नहीं बन सकता। दूसरे धर्मों के लिए बहुत कठिनाइयाँ थीं। अब धीरे-धीरे वहाँ हम लोगों का बहुमत होता जा रहा है तो कानून बदल रहे हैं। इंग्लैण्ड में, अमेरिका में, फ्रांस में, कई जगह मन्दिर बन गये हैं। अब वहाँ सार्वजनिक रूप से रामलीला कर सकते हो, अपने धर्म पर व्यख्यान दे सकते हो, कोई मना नहीं कर सकता। हम तो वहाँ के

कानून जानते हैं। यूरोप के लोगों की शिक्षा इतनी उन्नत हो गई है और विज्ञान से सम्बन्ध रखने के कारण धर्म से वे इतना दूर हट गये हैं कि पादरियों की झूठी-मूठी बातें उन्हें बिल्कुल अच्छी नहीं लगती हैं। इसलिये हिन्दुस्तान से जब से स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, प्रभुपाद भक्तिवेदांत, आचार्य रजनीश, महर्षि महेश योगी और कृष्णमूर्ति जैसे साधु-महात्मा वहाँ गये हैं, तब से उन लोगों को एक रास्ता मिल गया है। वे यहाँ का सारा साहित्य पढ़े हैं। उपनिषद, वेद, पुराण, भगवद्गीता, सब कुछ। भगवद्गीता तो हर एक के घर में रहती है। पांच सितारा होटल में जाओ, वहाँ बाइबिल के साथ भगवद्गीता रखते हैं। गीता धार्मिक ग्रंथ नहीं, जीवन सम्बन्धी ग्रंथ है। वह जितना हिन्दू के लिये सही है उतना ही मुसलमान के लिए भी।

जहाँ तक भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक श्रेष्ठता की बात है, वह हम स्वीकार करते हैं, पर देश की यह जो आर्थिक और सामाजिक हालत है वह शोचनीय है। तुम लोग पढ़े-लिखे हो, शहर के हो, किसी तरह रास्ता निकाल ही लेते हो, मगर गाँवों में तो एकदम अंधकार है। ये लोग अगर किसी तरह से जी रहे हैं, तो सरकार के आशीर्वाद से नहीं, इसलिए कि इनमें शक्ति है। टी.बी. की बीमारी है तो भी जिन्दा हैं, दो-तीन दिन भोजन नहीं खाते हैं तो भी जिन्दा हैं। इनकी ओर किसी का ख्याल जाता नहीं। हिन्दुस्तान के साठ से सत्तर प्रतिशत लोग गाँव के हैं, खेती पर निर्भर हैं। किन्तु देश की अर्थव्यवस्था और शिक्षा का आधार गाँव नहीं, शहर हैं, जिनकी जनसंख्या बीस-तीस प्रतिशत से अधिक नहीं। तुम्हारे शहरों में भी बहुमत गाँव वालों का है, शहरवालों का नहीं। अगर गाँववाले वापस चले जाएँ, तुम्हें नौकर नहीं मिलेंगे, ड्राइवर नहीं मिलेंगे, मेकैनिक नहीं मिलेंगे। गाँव से लोग बड़ी संख्या में शहर जाते हैं पर शहरों से कोई गाँव नहीं आता। तुम लोग गृहस्थ ठहरे, आजकल तो साधु भी गाँव नहीं जाते। बड़े-बड़े साधु-महात्मा मुझसे कहते हैं, 'आप गाँव में क्यों चले गये हैं? वहाँ तो कोई स्रोत नहीं है, ठिकाना नहीं है, जरिया नहीं है।' मैं कहता हूँ, जरिया खोजने गया ही नहीं हूँ। मैं तो सब कुछ छोड़कर बैठा हूँ। मुझे किसी से कोई अपेक्षा नहीं है। हमें किसी का दान या भीख नहीं चाहिये। भीख माँगनी होती तो किसी ऐसे बड़े शहर में जाते जहाँ दस-बीस हजार रुपये लोग ऐसे ही फेंक देते हैं। भीख माँगने गाँव क्यों आते?

यहाँ देहात में कोई साधु-महात्मा नहीं आते। देवघर आते हैं और वहीं से चले जाते हैं। यहाँ कोई नहीं आता क्योंकि यहाँ कोई इन्तजाम ही नहीं

है। जबकि यह जगह शहर से ज्यादा दूर नहीं है, सात-आठ किलोमीटर ही है। देहात में और अन्दर जाओगे तो और मुश्किल होगी, साइकिल से भी नहीं जा सकोगे।

अगर एक बार हिन्दुस्तान के गाँवों में समृद्धि लौट आए, तो इस देश का कोई जवाब नहीं। मैं समृद्धि कह रहा हूँ, अमीरी नहीं। हम तो जीवन भर ग्रामीण संस्कृति में रहे हैं, हम उन्हीं के ढंग से सोचते हैं। हमारा यही निष्कर्ष है कि भारतीय संस्कृति बहुत ऊँची है, पर यहाँ का जो आर्थिक और व्यापारिक ढाँचा है, बहुत कमजोर है। सरकार भी जब बजट बनाती है तो 80 प्रतिशत शहरों को देती है, 20 प्रतिशत इधर देती है। जबकि होना चाहिए इसके ठीक विपरीत।

तो स्वामीजी, आप भविष्यवाणी करते हैं कि भारत के गाँवों में समृद्धि आयेगी?

मैं एक कहानी बार-बार दोहराता हूँ। एक बार स्वामी रामतीर्थ जापान गये थे, वहाँ जापान के शाही परिवार के यहाँ ठहरे थे। जिस कमरे में ठहरे थे वहाँ कई छोटे-छोट गमले थे, एक गमले में चीनार का छोटा-सा पेड़ था। माली से पूछा तो उसने बताया कि यह ढाई सौ साल पुराना बोन्साय पेड़ है। 'ढाई सौ साल पुराना चीनार का पेड़ केवल एक फुट का, ऐसा कैसे?' स्वामी रामतीर्थ ने हैरान होकर पूछा। माली ने कहा, 'इस पेड़ के नीचे तीन जड़ें होती हैं। हम उन्हें काट देते हैं, जिसकी वजह से पेड़ बढ़ नहीं पाता, सिर्फ जिन्दा रहता है।'

इसी तरह हिन्दुस्तान के आदमी को बोन्साय कर दिया गया है। उसकी तीन जडें काट दी गई हैं। जिन्दा है मगर बढ़ता नहीं। मनुष्य की तीन जड़ें उसका व्यक्तित्व, आचरण और विचार हैं। व्यक्तित्व दिखता है, आचरण दिखता है, विचार नहीं दिखते। हिन्दुस्तानियों के विचार कमोबेश आज गुलाम ही हैं, बुरा नहीं मानना। मैं सिर्फ गाँव के लोगों की नहीं, पढ़े-लिखे लोगों की भी बात कर रहा हूँ। गुलाम के अपने विचार नहीं होते, अपना व्यक्तित्व नहीं होता। गुलाम का अपना भविष्य नहीं होता, अपना आधार नहीं होता। 'तीन दिन से खाना नहीं खाया है', यह बात गुलाम कहता है। 'बहुत गरीब हूँ, लड़की की शादी करनी है', यह गुलाम कहता है। शेर मर जायेगा मगर घास नहीं खायेगा। वैसे ही पुरुषार्थी आदमी मर जायेगा, मगर किसी के सामने हाथ नहीं फैलायेगा।

हमारी जाति में गुलामी घुस गई है। लोग आकर हमसे कहते हैं, 'स्वामीजी बहुत कष्ट है।' 'क्या कष्ट है?' 'लड़की की शादी नहीं हो रही है।' 'नहीं हो रही है तो पढ़ाओ, उससे नौकरी कराओ।' 'कैसे कराएँ, लोग क्या कहेंगे!' अरे क्या कहेंगे? यही न कि बदजात है, बोलने दो। तुम्हारा खाना-पीना थोड़े ही बन्द करेंगे। जिसको जो बोलना है बोलने दो। दुनिया से डरते क्यों हो? यह दुनिया तो ऐसी है कि गधे पर बाप बैठे तो गाली, बेटा बैठे तो गाली, दोनो बैठें तो गाली, और खाली जावे तो गाली। कहानी मालूम है न आपको? यह दुनिया तो किसी को छोड़ने वाली है नहीं। न राम को छोड़ा, न कृष्ण को। दुनिया क्या कहती है, उसके मुताबिक चलना पुरुषार्थी आदमी का काम नहीं।

मनुष्य को एक ही चीज देखनी चाहिये कि अपने जीवन को कैसे बनाऊँ। मैंने आठ साल भिक्षाटन किया है। और कैसे किया है? गलियों में जा-जा करके। तीर्थों में चादर बिछाकर कटोरा रख दिया, कभी एक रुपया मिल गया, कभी पाँच रुपया। उन दिनों तो पाँच रुपया बहुत होता था। शाम को अगर बरसात नहीं रही तो वहीं-कहीं सो गये। बरसात हुई तो कहीं आसरा खोज लिया। यह सब क्यों किया? ऐसा नहीं कि मुझे कहीं रोटी नहीं मिलती थी। मैं तो पढ़ा-लिखा आदमी हूँ, कहीं भी नौकरी कर सकता था। पर मैंने कहा नहीं, आदमी को गरीबी भी देखनी चाहिये। मैंने तो गरीबी कभी देखी नहीं थी। हमारे यहाँ तो डेढ़ हजार एकड़ खेती की जमीन, डेढ़ हजार एकड़ जंगल, बीस घोड़े, पचास गाय-बैल थे। अमीर आदमी को भी कुछ दिन गरीब की तरह रहना चाहिये। उसे मालूम होना चाहिये कि अभावों के बीच मनुष्य कैसे जीवित रहता है। किसी तीर्थ या आश्रम में चले जाओ, जमीन पर सोओ, एक बार खाना खाओ, फटा कपड़ा पहनो, जेब में पैसा मत रखो, चाय-सिगरेट के बिना रहो, यह एक अनुभव है। उस अनुभव से आदमी को अपने ऊपर विश्वास होता है कि मैं भी कुछ कर सकता हूँ। तब वह आदमी फिसड्डी नहीं रहेगा।

अभी तुम सब फिसड्डी हो। यह फिसड्डीपन कई शताब्दियों से विरासत में मिलता आया है। यूनानी आए, मुगल आए, अंग्रेज आए, तुम पिटते गये। तुम्हारी अपनी जबान कमजोर है, तुम्हारे लड़के-लड़कियाँ कुछ बोल नहीं सकते। जब तुम्हारे बेटा-बेटी तुम्हें जवाब नहीं दे सकते, तो पराये को क्या जवाब देंगे जी? जब तुम्हारे बेटा-बेटी जवाब देते हैं तो तुम्हें गुस्सा

आता है, बुरा लगता है न? पर जब ये तुमको जवाब नहीं देंगे तो दुनिया का कैसे सामना करेंगे? उनकी जबान, उनका दिमाग चाकू की तरह तेज हो, उसका प्रशिक्षण माँ-बाप को देना होगा। बच्चे कुछ बोलते हैं तो तुम कहते हो, 'चुप, बड़े लोगों के सामने मुँह नहीं खोलते।' क्यों नहीं मुँह खोलेंगे? जब बड़े लोगों के सामने मुँह खोलना नहीं सिखाओगे तो बदमाशों के सामने मुँह कैसे खोल सकेंगे? जिसमें यह गुण नहीं है उसे गुलाम कहते हैं। व्यक्तित्व, आचरण और विचार–ये मनुष्य की तीन जड़ें होती हैं। इन तीन जड़ों को काटोगे तो जाति बोन्साय रह जायेगी।

स्वामीजी, यह जड़ तो कट चुकी है, अब इसे फिर कैसे बनाएँ?

गमला बदल दो, पेड़ को गमले से निकाल कर जमीन में लगा दो, जड़ आ जायेगी। अपने आस-पास देखो, लोग बदल रहे हैं, लड़कियाँ बदल रही हैं। लड़कियों में हिम्मत होनी चाहिये। अगर तुम्हें किसी से प्यार है तो क्या हर्ज है? छिपाने की क्या जरूरत है? और माता-पिता को यह स्वीकार करना पड़ेगा। यह नये जमाने की संस्कृति है।

हमारे कहने का मतलब यही है कि इस जाति को थोड़ा धक्का देकर आगे बढ़ाना होगा। अपने चारों ओर जो कुछ देखते हैं, वह हमें अच्छा नहीं लगता है। जब हम ऋषिकेश में रहते थे, वहाँ की सड़कों पर कोढ़ी लोग बैठकर भीख माँगते थे, 'माई-बाप, हमारा हाथ नहीं है, कुछ दे दीजिये।' हमने क्या किया, टेहरी महाराज से जमीन लेकर उन्हें बसा दिया। उन दिनों गाँधीजी की सहयोगी मीराबेन ऋषिकेश के पास पशुपालन करती थीं। उन्होंने काफी मदद की। उनसे खर और बाँस ले लिया और करीब डेढ सौ झोंपड़ियाँ बना दीं। हर एक घर में एक बकरी दे दी, कोढ़ के लिए बकरी का दूध बहुत अच्छा होता है। टेहरी वैद्यशाला से एक डॉक्टर भी लगा दिया। मैं वहाँ रोज जाता था, रामायण पाठ करता था। रोज बीड़ी का बण्डल भी देता था, उन लोगों को बीड़ी पीने की आदत जो थी।

जब तक मैं वहाँ था तब तक सब ठीक था। मैं उन्हें भीख माँगने बाहर जाने नहीं देता था। सड़क साफ हो गई। ऋषिकेश वालों ने भी मेरी बहुत मदद की। हमने हजारों रुपये जमा करके उन्हें बसाया। पर हम हाल में वहाँ गये तो देखा सब वापस सड़क पर आ गए हैं। अब उनको देखने वाला कोई नहीं है। हमने सोचा, जिसकी जो आदत है वह सुधरेगी नहीं। बस्ती में रहते

हुए नगद-नारायण तो मिलता नहीं। इसलिए हाथ-पैर पर पट्टी बाँधकर सड़क पर आ जाते हैं, सौ-पचास रुपया कमा ही लेते हैं। तीर्थ पर तो लोग दान-पुण्य करते ही हैं।

आजकल नशा वगैरह भी बहुत बढ़ गया है ।

देखो जी, नशे में कोई नुकसान नहीं है, मांस खाने में कोई नुकसान नहीं है, केवल एक ही चीज में नुकसान है—जमाने की हवा को नहीं पहचानना। आज जमाने की हवा कहती है कि सबसे पहले अपनी लड़कियों को शिक्षा दो। नम्बर दो, उन्हें स्वावलम्बी बनाओ। विवाह तीसरा विकल्प है। पहले तो लड़कियों के सामने एक ही विकल्प था, शादी करो और बच्चे पैदा करो। अब नहीं। आज का समाज कहता है कि लड़की के लिए शिक्षा अनिवार्य है, स्वावलम्बन अनिवार्य है, पर तीसरा विकल्प, विवाह अनिवार्य नहीं है। मर्जी हो तो करो, नहीं तो मत करो। अब यह नियम आ गया है। माता-पिता को लड़की की जबरदस्ती शादी करने का हक नहीं है। लड़का-लड़की अपने विवाह का निर्णय खुद लें। शादी माता-पिता का निर्णय तब होता है, जब लड़के-लड़कियाँ अपाहिज होते हैं, पंगु होते हैं, कमजोर होते हैं, असहाय होते हैं। जब लड़की पढ़-लिखकर काम कर रही है, कमा रही है, क्या वह अपनी शादी नहीं कर सकती? क्या बेवकूफी है? लड़की टेलिफोन ऑपरेटर



है, बैंक में मैनेजर है, अस्पताल में नर्स का काम करती है, रात के डेढ बजे तक बीमारों को देखती है, मुर्दे को देखती है, अब उस लड़की की शादी के लिये तुम चिन्तित हो?

आज सबसे जरूरी चीज है अपनी लड़कियों को ऊपर उठाना। कोई भी समाज, चाहे वह ब्राह्मण समाज हो, वैश्य समाज हो या पिछड़ा वर्ग हो, वह समाज आज स्त्री जाति को उठाये बिना उठ नहीं सकता, समृद्धि पा नहीं सकता, क्योंकि स्त्री समृद्धि का प्रतीक है। पुरुष पुरुषार्थ का प्रतीक है और स्त्री समृद्धि की। जब वह तुम्हारे घर में आई, खाली हाथ नहीं आई। सामान भर-भर कर लाई और तुमने उसे घर में नौकरानी बनाकर रख दिया! यह अत्याचार नहीं है क्या? मैं यह नहीं कह रहा कि स्त्री घर का काम-काज नहीं करे। घर में खाना तो बनाना ही है, बर्तन तो माँजना ही है, कपड़ा तो धोना ही है। मगर जिस घर में वह सूटकेस भर-भर कर आई है, सोना-चाँदी लाई है, साइकिल-स्कूटर-कार लाई है, उस घर में उसे केवल नौकरानी का दर्जा ही दिया जाए, यह समाज का सरासर अत्याचार है। ऐसा समाज जिन्दा नहीं रह सकता।

हमारे यहाँ स्त्री के साथ भयंकर अत्याचार हुए हैं। पुरुष विधुर हो जाता है, उस पर कोई नियम लागू नहीं होता। स्त्री विधवा होती है तो कपड़ा बदल देना, सिर मुड़वा लेना, वहाँ नहीं जाना, यह नहीं करना, वह नहीं करना–सब नियम लागू हो जाते हैं। नियम हों तो दोनों पर लागू होने चाहिये। एक का पति मरा है, दूसरे की पत्नी मरी है। नियम-कानून बराबर क्यों नहीं हैं? यह चिन्तन अब तुम लोगों को बैठकर करना होगा। पुराने चिन्तन को तोड़ना पड़ेगा। बिल्ली के गले में घण्टी तो तुम्हें बाँधनी ही होगी कभी-न-कभी। उसके बिना घर में समृद्धि कभी आ नहीं सकती। हाँ, पैसा आ सकता है, मगर समृद्धि और पैसे में बहुत अन्तर है। देखने से मालूम पड़ जाता है कि यह समृद्ध आदमी का घर है, भले ही वह झोंपड़ी क्यों न हो। पैसे वाला घर दूसरा होता है। समृद्ध शब्द सम् और ऋद्धि से बना है। औरत की तबियत ठीक है, बेटे का स्वास्थ्य ठीक है, बेटी पढ़ रही है, पति को नौकरी लगी है, पत्नी खेत में गई हुई है, बकरी है, गाय है, घोड़ा है, साईकिल है, स्कूटर है–इसको समृद्धि कहते हैं। जिस चीज में हमेशा बढ़त होती है, उसको कहते हैं समृद्धि। इसलिए केवल पैसा नहीं, समृद्धि होनी चाहिये। और समृद्धि बिना उन तीन जड़ों के आती नहीं, इस बात को भूलना नहीं।

–4 नवम्बर 1997



अध्याय 4

नए विचारों, आचारों और परिस्थितियों से परिचय एक ऐसी चीज है जो मनुष्य के पूरे चरित्र को बदल सकती है। इसलिए मनुष्य का हर परिस्थिति, व्यक्ति और घटना के साथ संयोग होना चाहिये। यह नहीं कि तुम्हें घर में बन्द रखा जाए और सोचा जाए कि इससे तुम अच्छे हो जाओगे। आज के जमाने में अच्छा होना उतना जरूरी नहीं जितना योग्य होना, क्योंकि सफलता योग्यता पर अवलम्बित होती है, अच्छाई पर नहीं। हाँ, अच्छाई से सम्मान जरूर मिलता है, 'बहुत भला आदमी है', लोग बोल देते हैं, मगर इससे तुम्हें कोई उपलब्धि नहीं होगी। उपलब्धि होती है गुणों से, योग्यता से।

हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी कमजोरी रही है सामाजिक पृथक्करण, लोगों को छोटे-छोटे दायरों में सीमित रखना। छोटी जात के लोगों का पहले बहुत शोषण होता था। उन्हें अपनी लड़कियों को घेरे में रखना पड़ा, जल्दी-से-जल्दी शादी करके निपटाना पड़ा। इसी से बाल विवाह की प्रथा शुरू हुई। मुसलमान आए तो पर्दा प्रथा शुरू हुई। हमारे समाज को भारी नुकसान हुआ। लड़कियाँ पढ़ नहीं सकीं, और बिना पढ़े तीसरी आँख खुलती नहीं। विद्या तो तीसरी आँख है न? अगर माँ पढ़ी-लिखी न रहे, विदूषी न रहे, गुणवती न रहे तो बच्चा क्या सीखेगा उससे? बच्चे की पहली शिक्षा माँ के पास होती है, वही बच्चे के लिये पहली शिक्षिका है। सात साल तक बच्चा माँ के माध्यम से ज्ञान और अनुभव बिना कहे-सुने ही ग्रहण करता है। सात साल के बाद फिर बौद्धिक ज्ञान चालू होता है।

कोई बचपन से बुद्धू है तो कोई विद्वान्, यह दिमाग की विशेषता नहीं, बल्कि उसके वातावरण की विशेषता है। अगर हमारे बच्चे प्रतिभाहीन हैं तो

सबसे बड़ा दोष माँ को जाता है। इसे दूसरे ढंग से समझाते हैं। तुमने गेहूँ का बीज बोया, बहुत अच्छी फसल हुई। इसका मतलब बीज अच्छा था, और धरती अच्छी थी, उर्वरा थी। पिता होता है बीज, जो बच्चे को डी.एन.ए. हस्तांतरित करता है। स्त्री धरती है, और धरती में उर्वरता का स्वाभाविक गुण होना चाहिये। भले ही उसमें बाद में खाद डालो, खल्ली डालो, बात दूसरी है, मगर धरती में स्वाभाविक उर्वरता का गुण होना चाहिए। वैसे ही स्त्री का एक स्वाभाविक गुण होता है, जिसे वह बच्चे को देती है। अगर वह अपने स्वाभाविक गुण के साथ कुछ और मिला ले, जैसे पढ़ी-लिखी हो, नृत्य-संगीत जानने वाली हो, राजनीति जानने वाली हो, इतिहास जानने वाली हो, धर्म को जानने वाली हो, लोगों से बात करने वाली हो, वकालत करती हो, डॉक्टरी करती हो, दूतावास में काम करती हो, तो इसका बच्चे पर वैसा ही असर पड़ेगा। किसी महिला ने बी.ए.-एल.एल.बी. की डिग्री हासिल की हो, उच्च न्यायालय में वकालत करती हो, धड़ाधड़ बहस करती हो, वह सब बच्चे को नहीं जायेगा क्या? हाँ, वह खाद है।

अगर धरती खराब है या फिर किसान ने खाद नहीं दिया तो अच्छा बीज भी मर जायेगा, और यदि बीज थोड़ा उन्नीस-बीस हो मगर धरती बहुत अच्छी हो और खाद बहुत अच्छी हो तो उन्नीस-बीस की कमी पूरी हो जाती है। बच्चा पैदा करना तो बहुत आसान है। एक बूंद वीर्य में ढाई अरब शुक्राणु होते हैं। अगर व्यवस्था हो तो उसमें से ढाई अरब आदमी पैदा किये जा सकते हैं। एक बूंद वीर्य में जो ढाई अरब जीवित कण होते हैं, हम सब केवल एक कण से पैदा हुए हैं। इसलिए मैंने कहा कि बच्चा पैदा करना कठिन नहीं है, मगर बच्चे को जमाने के साथ संघर्ष करने की शक्ति देना, ताकि वह जीवन की दौड़ में स्वर्ण या रजत नहीं तो कम-से-कम कांस्य पदक तो ला सके, वह शक्ति माँ में है, बाप में नहीं। बाप का काम तो गर्भाधान के साथ खत्म हो जाता है, मगर माँ का काम सात वर्ष तक चलता है।

हमारे शास्त्रों में संतान के पालन-पोषण पर बहुत विचार किया गया है। सात साल में बच्चे का यज्ञोपवीत करते थे। जनेऊ जिसे कहते हैं, और उसके बाद उसे गुरुकुल भेजते थे। बारह साल तक वह गुरुजी के साथ रहता था, गुरु सेवा करता था। क्षत्रिय हुआ तो शस्त्र सीखता था, ब्राह्मण हुआ तो शास्त्र सीखता था, शूद्र हुआ तो कर्म-कौशल सीखता था, वैश्य हुआ तो वाणिज्य सीखता था। उसके बाद उन्नीस-बीस साल की अवस्था में घर आता था, तब

वह गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। मतलब उस जमाने में बीस साल के पहले लड़के की शादी का सवाल उठता ही नहीं था। बाद में जो दस-बारह साल की उम्र में शादी होने लगी, वह सामाजिक और राजनैतिक मजबूरी थी, जैसा मैंने आपको अभी बताया।

यह बात हमेशा याद रखो कि बुद्धि केवल जन्मजात संस्कारों पर ही नहीं, बच्चे के वातावरण और प्रशिक्षण पर भी निर्भर है। *जन्मना जायते शूद्रः*—जब बच्चा पैदा होता है तो शूद्र होता है अर्थात् संस्कारहीन होता है, *संस्कारात् द्विज उच्यते*—संस्कारों के आधार पर उसे द्विज कहते हैं। द्विज का मतलब जो दो बार जन्मता है। एक बार माँ की कोख से जन्मता है, उसके बाद गुरुकुल से जब निकलता है, तब द्विज कहलाता है, चाहे वह जिस भी वर्ण या जाति का हो।

कुछ साल पहले मैंने अखबार में पढ़ा था कि जापान में एक प्रयोग कर रहे हैं जिसमें गर्भवती स्त्री अपने गर्भस्थ शिशु के साथ ऐसे बात करती है, जैसे बड़ों के साथ की जाती है। माँ बच्चे को जिस विषय में शिक्षा देती है, बच्चा उसी विषय में प्रतिभाशाली होता है। इसका मतलब जब बच्चा गर्भ में हो और उसका मस्तिष्क विकसित हो रहा हो तब उसके मस्तिष्क की प्रोग्रामिंग की जा सकती है?

हाँ, यह तो सच बात है। वैसे जापान के लोग हैं भी बहुत प्रतिभाशाली। मुझसे किसी ने एक बार पूछा था कि आप अगला जन्म किस देश में लेना चाहेंगे। मैंने कहा, 'भाई, पहली पसंद तो हिन्दुस्तान है और दूसरी जापान।' जापान के लड़के-लड़कियाँ, आदमी-औरत, बड़े-बूढ़े विशेष होते हैं। हमें उनके रहन-सहन की प्रणाली, भोजन की प्रणाली, आतिथ्य प्रणाली, सब कुछ बहुत अच्छा लगा। गाँव की बात कर रहा हूँ, शहरों की नहीं। किसी भी देश की जब बात करते हैं तो गाँव ही उसकी मूल संस्कृति मानी जाती है। शहरों में तो सब खिचड़ी हो जाती है। यह तो बात हुई समाज की। फिर दूसरी चीज है यातायात व्यवस्था। इसमें जापान का जवाब नहीं। दुनिया में कहीं भी रेलगाड़ी, रेलवे-स्टेशन, प्लैटफॉर्म, टिकट, सफाई आदि की इतनी सुन्दर व्यवस्था नहीं है। मिनट-मिनट पर गाड़ी आती-जाती है, और उसको आदमी नहीं चलाता। घण्टी बजी, गाड़ी का दरवाजा अपने आप बन्द हुआ, गाड़ी चल दी। वहाँ गार्ड का कोई सवाल नहीं उठता। और दो सौ मील प्रति घण्टा की रफ्तार से चलती है, बन्दूक की गोली की तरह।



जापान में एक और रिवाज है। वे कमर से झुककर अभिवादन करते हैं। मैं जब पहली बार जापान गया तो मुझे कमर में दर्द हो गया। जिसकी तरफ देखें, वह झुक जाए। हमने समझा शायद पहचानता है, तो हम भी झुक जाते। लिफ्ट वाले की ओर देखा तो वह झुक गया, हम भी झुक गये। दिन में इतना झुकना पड़ा कि रात में कमर में दर्द होने लगा। जिस किसी से आँख मिल जाए तो अभिनंदन, यह जापानी रिवाज है। अच्छा रिवाज है न?

जापान में एक और अच्छा नियम है। प्राथमिक विद्यालय के बच्चों को विद्यालय की तरफ से भ्रमण पर ले जाया जाता है और उन्हें अपने अंचल की सभी चीजें–मन्दिर, पोखर, म्यूजियम, ऐतिहासक स्थान, जंगल आदि दिखाये जाते हैं। माध्यमिक विद्यालय में आते-आते पूरे जिले का भ्रमण करा देते हैं, कॉलेज में पूरे प्रांत का और विश्वविद्यलय तक पूरा देश दिखा देते हैं। मेरे देश में कहाँ पुस्तकालय है, कहाँ म्यूजियम है, कहाँ पोखर हैं, कहाँ ज्वालामुखी हैं, कहाँ नदियाँ हैं, कहाँ मन्दिर हैं, कहाँ समुद्र है, कहाँ साँप रहते हैं, कहाँ बिच्छु रहते हैं–यह सब जापान का नागरिक जान जाता है। ये सब भ्रमण विद्यालयों की तरफ से आयोजित होते हैं। यह वहाँ का पाठ्यक्रम है कि हर जापानी को अपना देश देखना चाहिये, घूमना चाहिये, जानना चाहिये, और उसके लिये जीवित रहना चाहिये। यह जापान की मुख्य

विशेषता है। यहाँ तो हम लोगों को दूसरे प्रांतों के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं रहती। वे कैसे कपड़े पहनते हैं, क्या खाते हैं, हम लोगों को मालूम नहीं है। लेकिन वहाँ सब जानते हैं। जापान की सबसे बड़ी विशेषता यही है। विद्यार्थी को देश की जानकारी देना देश की जिम्मेदारी होती है। बहुत बड़ी चीज है यह।

जापानियों की एक और विशेषता है। सब परिवारों के लोग सूर्योदय के समय पायजामा-कुर्ता पहनकर और बेल्ट लगाकर अपनी-अपनी छत पर आ जाते हैं और दस मिनट मार्शल-आर्ट का अभ्यास करते हैं। कोई भी ऐसा जापानी नहीं है जिसे जूडो-कराटे न आता हो। रोज सुबह छत पर अभ्यास करते हैं। जापानी व्यक्ति के लिये व्यायाम अनिवार्य है। जब वह फैक्टरी में जाता है, पहले एक कमरे में जाकर कपड़े उतारता है और ओवरॉल पहनता है। उसके बाद एक हॉल में जाता है, जिसमें मैनेजर भी जाते हैं और मजदूर भी। वहाँ वे लोग पहले वज्रासन में बैठेंगे, फिर उसके बाद कुछ प्राणायाम करेंगे। फिर उठकर दस मिनट व्यायाम करते हैं सब। कराटे, कुंग-फू, ताई-ची—कई प्रकार के व्यायाम करते हैं। अब तो योगासन भी आ गया है। उसके बाद काम पर जाते हैं।

मगर सबसे बढ़िया रिवाज कुछ और है। किसी भी जापानी के घर में बाहर का जूता अन्दर नहीं जाता। चाहे मेहमान हो या लाट साहब, उसका जूता बाहर ही रहेगा। अन्दर में उसके लिये हवाई चप्पल रहती है। उसको पहनकर वह अन्दर जाता है। न मकान-मालिक का, न बच्चों का, कोई भी जूता जो बाहर सड़क पर जाता है, उसका जापानी घर के अन्दर प्रवेश नहीं होगा। चाहे अमीर हो या गरीब, हर घर में दस-बारह जोड़ी चप्पल रहती है। जूता उतारिये, चप्पल पहनिये, अन्दर चलिये।

जापान की एक और विशेषता बताता हूँ। वहाँ के घरों में लोग जमीन पर सोते हैं। खटिया, पलंग वगैरह कुछ नहीं होते। दीवार में अलमारी होती है, अपना गद्दा तह करके अलमारी में डाल देते हैं, कमरा खाली। इसलिए उनका कमरा एकदम साफ-सुथरा रहता है। वहीं से तो हमने सीखा है। आप सब जब यहाँ से जायेंगे, हम भी दरी, आसन सब उठा लेंगे। कल फिर बिछा देंगे। सिर्फ घरों में ही नहीं, पाँच सितारा होटलों में भी यही व्यवस्था है। होटल में मुझसे पूछा कि जापानी व्यवस्था चाहिए या पाश्चात्य। मैंने कहा जापानी। कमरे में गया तो सफाचट मैदान की तरह था। कुछ नहीं, केवल

चप्पल रखी है, जूता निकालो, चप्पल पहनो। कमरे की देखरेख करने वाली परिचारिका आयी, उसने चटाई बिछा दी और बिस्तर लगा दिया। बाकी समय कमरे में नीचे बैठे रहो बिना गद्दे के, बिना कुर्सी के। यही रिवाज है वहाँ का। घरों में सारा परिवार एक साथ सोता है। और भोजन तो साथ बैठकर करते ही हैं।

जापानियों के घर इतने कच्चे होते हैं कि एक घूँसा मारो तो टूट जाए। हथौड़े की भी जरूरत नहीं पड़ती। खिड़की पर काँच की जगह वे लोग मोटा कागज लगाते हैं। दरवाजे पर कुण्डी-ताला नहीं रहता। गाँव-देहात में ताला लगाने का रिवाज ही नहीं है। जापान में भूकम्प बहुत आते हैं, इसलिए वहाँ मकान बनाने की यह शैली विकसित हुई।

किसी भी राष्ट्र की अपनी एक पहचान होती है। जापान के गाँवों में लोगों ने अपना जापानीपन कायम रखा है। जापानी वेशभूषा, जापानी शृंगार, जापानी भाषा, जापानी नृत्य, यह सब देखकर हमें बहुत अच्छा लगा। हम हिरोशिमा भी गये जहाँ एटम-बम गिरा था। वहाँ सब कुछ देखा, कैसे एटम-बम गिरने से हड्डियाँ पिघलकर टेढ़ी हो गईं। नागासाकी भी गये थे, ओसाका भी और जापान की पुरानी राजधानी, क्योतो भी। हम पूरा जापान घूमे हुए हैं। हमें वह देश बहुत पसंद आया, जबकि यूरोप हमें पसंद नहीं आता।

जापान में जितनी शादियाँ होती हैं, वे घरों में नहीं, मन्दिरों में होती हैं। जापानी लोग दो धर्म मानते हैं, एक तो शिन्तो धर्म, जो ज्यादातर भूत-प्रेत, जादू-टोना, जंत्र-तंत्र वाला धर्म है और दूसरा बौद्ध धर्म। उनके यहाँ भी अन्त्येष्टि क्रिया होती है जैसे अपने हिन्दुओं की होती है। और पूजा होती है बैठकर। वज्रासन में बैठकर नमस्कार करते हैं और पूजा भी वैसे ही होती है। उसमें कोई ज्यादा अन्तर नहीं है। उनके यहाँ पुरोहित होते हैं, जिन्हें वे लोग कुल-गुरु कहते हैं। हर जापानी परिवार में कुलगुरु का होना अनिवार्य है। साथ ही हर एक जापानी किसी-न-किसी मठ से सम्बन्धित होता है। बहुत बड़े-बड़े मठ होते हैं वहाँ, दो-तीन सौ एकड़ जमीन होती है। जब कोई जापानी मरता है तो उसकी अन्त्येष्टि के बाद उसकी भस्म इकट्ठी की जाती है और वह भस्म कुलगुरु को दे दी जाती है। कुलगुरु उसे सिंदूरदान जैसे लकड़ी के एक सुन्दर-से बक्से में डाल कर, उसपर नाम-पता चिपकाकर एक कमरे में रख देता है। साल में एक दिन पितरों का दिन होता है। उस दिन इन बक्सों को निकालते हैं। जिन लोगों के घर में कोई मरा है, वे लोग

आते हैं और धूप, अगरबत्ती, घण्टी, मंत्र सहित पूजा करते हैं। फिर बक्से को साफ करके वापिस रख दिया जाता है, किसी पुस्तकालय की किताब की तरह। बारह साल वह भस्म रखी जाती है और बारहवें साल उसका समुद्र में विसर्जन कर देते हैं। जितने भी जन्म और मृत्यु होते हैं, कुलगुरु को उनकी खबर रहती है।

वहाँ के मठों का अपना विद्यालय होता है। मठ के जितने यजमान होते हैं उनके बच्चे वहीं पढ़ते हैं और वहाँ कीर्तन-भजन-प्रवचन का कार्यक्रम होता रहता है। आते-जाते हम जब वहाँ रुकते थे तो हमसे विद्यार्थियों को उपदेश देने के लिए कहा जाता था। हम हिन्दी में ही बोलते थे, क्योंकि वे लोग कहते थे, 'स्वामीजी, आप जिस भी भाषा में बोलेंगे हमें दुभाषिया तो रखना ही पड़ेगा। अच्छा है आप हिन्दी में बोलें।' हमें भी अच्छा लगा अपनी मातृभाषा में बोलना। हम हिन्दी में बोलते थे और हमारे साथ इलाहाबाद के एक रिटायर्ड प्रोफेसर थे, जो जापानी में अनुवाद करते जाते थे।

आजकल चौदह-पन्द्रह साल के लड़के-लड़कियाँ बहुत आत्महत्या करते हैं, इसका कारण क्या है?

आत्महत्या का कारण है गहन विषाद। जब मस्तिष्क में ऊर्जा का स्तर कम होने लगता है, उस वक्त आदमी के मन में आत्महत्या करने का विचार आता है। आत्महत्या का सम्बन्ध मस्तिष्क की विद्युत-क्रिया से है। जब मनुष्य को खाने को मिल जाए और खाने के विषय में सोचना नहीं पड़े, नौकरी मिल जाए और नौकरी के बारे में सोचना न पड़े, पैसा आराम से मिल जाए और पैसे के बारे में सोचना न पड़े, शादी हो जाए, शादी के बारे में सोचना न पड़े, जो मन में आवे वही मिल जाए, ऐसे व्यक्ति को आत्महत्या करने का मन करता है। यह मनोवैज्ञानिकों की राय है। आमहत्या दु:ख के कारण नहीं, निराशा की वजह से होती है। हर एक के दिमाग में विद्युत-क्रिया चलती है। वह थोड़ी-बहुत घटती-बढ़ती है पर ज्यादा नहीं। जब बहुत बढ़ जाती है तब आदमी को उच्च रक्तचाप या पागलपन हो जाता है। जब बहुत कम होती तब उसके सोचने की शक्ति खत्म हो जाती है। उसे जीना अच्छा नहीं लगता। जैसे कभी-कभी खाना अच्छा नहीं लगता, वैसे ही कभी-कभी किसी आदमी को जीना अच्छा नहीं लगता। तब वह आत्महत्या करने की सोचता है। इसका मूल कारण निराशा और विषाद ही है।

आज दुनिया में अनेकों देश ऐसे हैं, जहाँ बच्चों को संघर्ष बिल्कुल नहीं करना पड़ता। संघर्ष का मतलब क्या है? आप अपना जीवन ले लीजिये, आपको पढ़ाई के लिये संघर्ष करना पड़ा, विद्यालय में भरती होने के लिये संघर्ष करना पड़ा, नौकरी के लिये जोड़-तोड़ लगाना पड़ा, शादी के लिये जोड़-तोड़ लगाना पड़ा। शादी के बाद औरत बात नहीं मानती है, बेटा बात नहीं मानता, और उनको छोड़ भी नहीं सकते। रोज झगड़ा होता है, नोंकझोंक होती है, तुम रिझाते हो, वह मनाती है, यही तो संघर्ष है। संघर्ष का मतलब घिसना। जहाँ पर घर्षण होता है उसको संघर्ष कहते हैं। हिन्दुस्तान में ही नहीं, दुनिया के अनेक देशों में भौतिक संघर्ष अधिक है। इस भौतिक संघर्ष की वजह से मन हमेशा सजग और चौकस रहता है, हमेशा प्रवृत्तिशील, गतिशील, क्रियाशील और विचारशील रहता है। क्या करें, क्या न करें, हमेशा जोड़-तोड़ में लगा रहता है। इसलिए विषाद की सम्भावना नहीं रहती।

इसके अलावा हमारी वैदिक संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है जो परिवार प्रधान है। इसमें तुम केवल अपने बारे में नहीं सोच सकते। तुम्हें अपने माँ-बाप, भाई-बहन, बेटा-बेटी, जोरू-जत्था, सबके बारे में सोचना होगा। कहीं-न-कहीं वह आत्महत्या वाला विचार अपने आप खत्म हो जाता है। कहीं-न-कहीं पर एक तोड़ मिल जाता है।

पाश्चात्य देशों में तो ऐसा कुछ है नहीं। माँ नाम की है, पैदा कर दिया तो माँ की भूमिका खत्म। बाप की तो खैर कोई भूमिका थी ही नहीं। जिस स्कूल-कॉलेज में पढ़े, आराम से कार में गये, प्रमाणपत्र मिल गया, भूमिका खत्म। नौकरी करने गये, पाँच-दस हजार मिले, उसकी भूमिका खत्म। मतलब किसी चीज में मेहनत नहीं करनी पड़ती। अनायास सब मिल जाता है। जीवन में कोई संघर्ष है ही नहीं। ऐसे व्यक्ति के मन पर कोई दबाव नहीं पड़ता और देर-सबेर विषाद होता ही है।

पाश्चात्य समाज में एक और गलती यह है कि वे बच्चों को डाँटते नहीं हैं। मारना तो दूर वहाँ डाँटना भी जुल्म है। बच्चों को यह मालूम नहीं चलता कि डाँटने से मन पर क्या असर पड़ता है। मान लो तुमने कभी माँ-बाप की डाँट या मार नहीं खाई। अब आए हो हमारे ऑफिस में काम करने। हम तुम्हारे बॉस हैं। हमने कहा, 'गधे कहीं के, किस तरह का काम करते हो? दफा हो जाओ यहाँ से।' हो सकता है तुम्हें इतनी जोर की चोट लगे कि तुम अपने को सम्हाल न सको, क्योंकि तुम्हें अपने को सम्हालने की आदत है नहीं। कभी अनुभव ही

नहीं हुआ कि जब मन पर चोट लगती है तो क्या करना चाहिये। यहाँ घर पर माँ ने दो झापड़ मार दिये, बच्चा खूब रोया, खाना नहीं खाया, पर शाम होते-होते सब ठण्ढा हो जाता है। होता है कि नहीं? फिर दूसरे दिन बाप ने चाँटा मार दिया, तीसरे दिन भैया ने मार दिया, चौथे दिन चाचाजी ने मार दिया। एक दिन दोस्त से मार खाकर आ गये। कुछ देर मन खराब रहा, फिर धीरे-धीरे ठीक हो जाता है। यह तरीका उन लोगों को मालूम नहीं। हम तो उन्हें सार्वजनिक रूप से कहते थे कि तुम लोगों को इस तरह की मरम्मत मालूम ही नहीं।

जब सुख होता है तब ठीक है, नाचो-कूदो, सब कुछ करो। यह करना सबको आता है, मगर जब तुम्हें चोट लगती है, जब कोई तुम्हें गाली देता है, जब कोई तुम्हारी निन्दा करता है, जब कोई तुम्हें नुकसान पहुँचाता है, उस समय तुम्हारे मन में जो व्यथा उत्पन्न होती है उसे सहन करने का तरीका तुम्हारे पास है ही नहीं। वह तरीका तभी सीख सकते हो जब तुम नित्य-निरंतर इन अवस्थाओं से गुजरो। जो लोग इन अवस्थाओं से गुजरे ही नहीं हैं, वे एक चोट में व्यथित हो जाते हैं। एक चोट में इतने व्यथित हो जाते हैं कि आज शादी, कल तलाक की नौबत आ जाती है। औरत ने मर्द से कुछ कहा, उसे पसंद नहीं आया, उसने कहा, 'बस मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता' और ऑफिस में जाकर तलाक-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया। न सहनशक्ति है, न समझबूझ। इसलिये वहाँ आत्महत्याएँ होती हैं। सब से ज्यादा तो स्वीडन में होती हैं, जो दुनिया का सबसे अच्छा वेल्फेयर स्टेट याने कल्याणकारी राष्ट्र माना जाता है।

इस कुण्ठा और निराशा का मूल कारण क्या है?

जिस आदमी के अन्दर इच्छाएँ रहेंगी उसे निराशा तो होगी ही। जितनी इच्छाएँ रहेंगी उतनी निराशा होगी। अगर निराशा से मुक्त होना चाहो तो अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करो। अगर दुर्घटना से बचना चाहो तो अपनी गाड़ी की रफ्तार कम करो।

इच्छाओं और आवश्यकताओं, इन दोनों को नियंत्रित करना पड़ेगा न?

हाँ, दोनों को कम करने से मनुष्य के मन में अधिक शान्ति रहती है। यह बात सब शास्त्र और सन्त-महात्मा तो कहते ही हैं, हमने स्वयं अपने जीवन

में अनुभव किया है। खैर हमारी तो न कभी आवश्यकताएँ ज्यादा रहीं, न ही इच्छाएँ। मगर हम जीवन की ऐसी परिस्थिति में रहे जहाँ हमारे पास प्रचुरता थी। किसी चीज की कमी नहीं थी। भले ही इच्छा नहीं थी, और जरूरत भी नहीं थी। लाल दंतमंजन से काम चल जाता था, भले ही टूथपेस्ट खरीद सकते थे। सनलाइट साबुन से काम चल जाता था, भले ही हम कोई भी साबुन ले सकते थे। यह दिखने में छोटी-सी चीज है, लेकिन मन पर इसका असर पड़ता है। इच्छा या आवश्यकता न होने पर भी वैभव का आदमी पर असर पड़ता है। वैभव मनुष्य को निष्क्रिय बनाता है।

हम तो बचपन से वैभव में रहे हैं। जीवन के एक मोड़ पर आकर हमने अपना रास्ता बदला। हमने कहा, आठ साल तक किसी निश्चित जगह में रहेंगे नहीं, किसी के यहाँ टिकेंगे नहीं, केवल भिक्षा पर जीवन निर्वाह करेंगे। आठ साल भिक्षा माँगी। कोई शर्म की बात नहीं थी। चवन्नी-अठन्नी, रुपया, दो रुपया, पाँच रुपया मिल जाता था। देखा कि रेलगाड़ी का किराया हो गया तो वह शहर छोड़ देते थे। पता चला कि कुम्भ मेला होने वाला है तो वहाँ पहुँच जाते थे। वहाँ से दो-तीन सौ रुपया मिल गया तो भिक्षाटन बन्द, तीर्थयात्रा शुरू। कभी रामेश्वरम् गये तो कभी बद्रीनाथ। पैसा खत्म हुआ तो फिर भिक्षाटन शुरू। उम्र कम थी, कोई झंझट नहीं था। गर्मी के दिनों में तो कहीं भी सड़क के किनारे या रेलवे प्लैटफॉर्म पर सो जाते थे। बरसात हुई तो कोई रास्ता निकाल लिया। मन्दिरों या धर्मशालाओं में सोने के लिये तो किसी की इजाजत की जरूरत नहीं थी। शोलापुरी चादर साथ में रहती थी, ओढ़ लेते थे। इससे हुआ यह कि वैभव से सम्पर्क टूट गया।

हिन्दुस्तान के संन्यासियों को इस प्रकार के स्वारोपित अभाव का जीवनयापन करने की हमेशा आदत रही है। अपने ऊपर वैभव का जो असर है उसे दूर करने के लिये आदमी को अपने पर गरीबी आरोपित करनी चाहिये। भले ही तुम गरीब न हो, मगर अपने को गरीब बनाकर देखो। भिक्षाटन के पीछे हमारा यही प्रयोजन था कि वैभव के बिना रहें और फिर भी सुरक्षित महसूस करें। शाम को रोटी कहाँ मिलेगी, इसकी फिक्र न हो। अगर नहीं भी मिलेगी तो क्या फर्क पड़ता है, कल तो मिलेगी ही।

जान को देत, अजान को देत, जहान को देत, तुम्हें वही दैहें।
काहे को सोच करे मन मूरख, जिन चोंच दिये तिन चून भी दैहें॥

इसी सिद्धान्त को जीवन में उतारना था, इसीलिए भिक्षाटन करते थे। उसी भिक्षाटन के पैसे से अफगानिस्तान घूम आये, बर्मा घूम आये। कभी रेलगाड़ी में तो कभी बैलगाड़ी पर, कभी हाथी पर तो कभी पैदल। बलूचिस्तान में हिंग्लाज तीर्थ घूम आये। एक-एक जगह चार-पाँच बार घूमकर आये। कम उम्र थी, कोई दिक्कत भी नहीं थी। उन दिनों चीजें भी बहुत सस्ती थीं। एक-आध आने में चाय मिलती थी। रेलगाड़ी में थर्ड क्लास में ही सफर करते थे। उस समय आबादी कम थी, लोग ज्यादा यात्रा भी नहीं करते थे। रेलगाड़ियाँ खाली जाती थीं। थर्ड क्लास में भी नीचे-ऊपर कहाँ सोओगे, आराम से चुन सकते थे। अब तो फर्स्ट क्लास में भी जगह नहीं मिलती। हमें कभी कोई दिक्कत नहीं आयी, हम तो जैसे सतयुग में रहे।

इसलिए गरीबी को कभी हीन भावना से नहीं देखना। अमेरिका जैसे अमीर देश का क्या हाल है? वहाँ कितने अपराध होते हैं! न्यूयॉर्क में तो इतनी चोरियाँ होती हैं कि वहाँ जब कोई आदमी साईकिल से किसी दुकान तक जाता है, तो साईकिल का एक चक्का निकालकर अपने साथ अन्दर ले जाता है। नहीं तो उतनी देर में साईकिल गायब हो जाती है! अब यह अमीरों के देश का हाल है।

वही आदमी आत्महत्या करना चाहता है जिसके जीवन में संघर्ष नहीं है, जिसके जीवन में सब चीज समान चली आ रही है, जिसने सुख-दु:ख का अनुभव नहीं किया, जिसमें सहनशीलता, सहिष्णुता, समझदारी की कमी है। ऐसी संस्कृतियों में आत्महत्या होती रही है और आगे भी होती रहेगी। इसी वजह से ये गोरी जाति के लोग आज हिन्दुस्तान आ रहे हैं। जब तक मनुष्य आध्यात्मिक जीवन में नहीं आयेगा, साधु-संतों की संगत नहीं करेगा, गुरु का चेला नहीं बनेगा, ज्ञान प्राप्ति का प्रयत्न नहीं करेगा, साधारण जीवनयापन नहीं करेगा, तब तक यह समस्या बनी रहेगी। दिन में तीन बार कपड़े बदल रहे हैं, दिनभर ब्यूटी पार्लर में बैठे हुए हैं, शाम को डिस्को में नाच रहे हैं, यह कोई जिन्दगी है? यह मनुष्य की जिन्दगी नहीं है। मनुष्य का जीवन भोग के लिये नहीं, योग के लिये है। भोग तो उसकी मजबूरी है, उसके बिना काम नहीं चलता। खाना तो खाना ही है, शादी करनी है, सब कुछ करना पड़ता है, मगर इसी के लिये मनुष्य पैदा नहीं हुआ है। मनुष्य का जन्म योग के लिये हुआ है। योग का मतलब परमात्मा की प्राप्ति। जब जीवात्मा को परमात्मा का दर्शन हो, अनुभव हो, उसे कहते हैं योग। मीराबाई का भजन है न–

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ,
गिरधर म्हारो साचो प्रीतम।
देखत रूप लुभाऊँ
जो पहनावे सोई पहनूँ
जो देवे सो खाऊँ
मेरी उनकी प्रीत पुरानी।

मीरा ने अपनी प्रेम-भावना को 'प्रीत पुरानी' कहा है। और वास्तव में वह प्रीत राधा के समय की है। आखिर राधा ही तो पुनरावतार धारण कर मीरा बनी। जब मनुष्य ईश्वर के साथ मन जोड़ता है, चाहे आराध्य रूप में या पति रूप में या भाई रूप में या स्वामी रूप में या फिर माता अथवा पिता के रूप में, तब जाकर मनुष्य के जन्म का प्रयोजन सिद्ध होता है। अमीरी और धन-दौलत में कुछ नहीं रखा।

मन लागो मेरो यार फकीरी में।
जो सुख पाऊँ राम भजन में
सो सुख नाहिं अमीरी में।
हाथ में कुण्डी बगल में सोंटा,
चारों दिसि जागीरी में।



हिन्दुस्तान में गरीबी बहुत है, इस वजह से अपराध कम होते हैं, आत्महत्याएँ भी कम होती हैं। आदमी यहाँ जिन्दगी को सुधारने में लगा हुआ है। दिन-प्रतिदिन सुधार कर रहा है। लेकिन वहाँ तो कुछ करना नहीं पड़ता, केवल भोग ही भोग है। और भोग की परिणति तो रोग है। इसी कारण से स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी शिवानन्द, महर्षि महेश योगी, कृष्णमूर्ति और आचार्य रजनीश जैसे मनीषियों का पाश्चात्य जगत् पर बहुत प्रभाव पड़ा। भारत के संत-महात्माओं के सम्पर्क में आने के बाद उन लोगों को पता चला कि उनकी संस्कृति में, उनके धर्म में कहीं पर कमी है, कमजोरी है। अब बड़ी संख्या में वे लोग यहाँ आते हैं, आश्रम-धर्मशाला में रहते हैं, रोटी-दाल-चावल खाते हैं, मांस या शराब तो मिलती नहीं, पर इसी में सुखी रहते हैं वे लोग।

रुक्मिणी-मंगलम्

यहाँ के बच्चों में संस्कार देने होंगे। नहीं तो होली के दिनों में गंदे गाने, देवी पूजा के वक्त सिनेमा के गाने, यही सब चलता रहेगा। इसे जबरदस्ती बन्द नहीं कराया जा सकता, उन्हें खुद मालूम होना चाहिये कि क्या सही है, क्या गलत। उनमें इतनी समझ होनी चाहिए कि माँ-बहनों के बीच कौन-सा गाना गाया जाता है। इसके लिए समाज को थोड़ा ऊँचा उठाना पड़ता है।

झूलन उत्सव यहाँ के लिए बहुत अच्छी चीज है, उसमें गाँव-गाँव से लोग आयेंगे। सीता-विवाह में भी दूर-दूर से लोग आयेंगे। अगर सब ठीक रहा तो फिर बाद में हम रुक्मिणी-मंगलम् भी मनायेंगे। यू.पी. या बिहार में रुक्मिणी-मंगलम् के बारे में कोई नहीं जानता, पर दक्षिण भारत में सब जानते हैं। रुक्मिणी-मंगलम् माने रुक्मिणी की शादी, रुक्मिणी का अपहरण। रुक्मिणी को भगवान कृष्ण ने भगाया था न? हम भी यहाँ करेंगे, रथ ले आयेंगे, भगा ले जायेंगे। इससे गाँववालों के मन में जिज्ञासा जागेगी कि रुक्मिणी कौन थीं, क्या वे लक्ष्मी का स्वरूप थीं या फिर लक्ष्मी का स्वरूप राधा थीं, कृष्ण कौन थे, अवतार क्या चीज होती है। वैसे गाँव के लोग स्वाभाविक रूप से धार्मिक होते हैं, इन लोगों को बस थोड़ी और जानकारी और मार्गदर्शन चाहिए।

–5 नवम्बर 1997

ॐ

अध्याय 5

थाईलैण्ड में हर बौद्ध मतावलम्बी को कम-से-कम पन्द्रह दिन के लिये मठ में रहकर संन्यासी का जीवन जीना पड़ता है। चाहे राजा हो या रंक, करोड़पति हो या किसान, सबके लिए यही परम्परा है। पन्द्रह दिन के लिए कुटिया दे दी जाती है, जमीन पर चटाई बिछा देते हैं, एक कम्बल, चीवर, सुराही और ग्लास दे देते हैं। और कुछ नहीं। सबको सर मुड़ाना पड़ता है और भगवा वस्त्र धारण करना पड़ता है। केवल एक वस्त्र रहता है, जिसे नीचे से ऊपर तक लपेट लेते हैं। सबेरे दस बजे चीवर और पात्र लेकर बाहर चले जाते हैं। गाँव में पाँच घरों से भिक्षा माँगते हैं, हर घर से एक-एक चम्मच चावल



मिल जाता है। पेड़ के नीचे खा लेते हैं, पात्र धोकर वापस कुटिया में आ जाते हैं और कुटिया के बाहर पात्र को उल्टा करके रख देते हैं, जिससे पता चले कि अन्दर में कुछ छुपाकर नहीं रखा है। मठ-प्रवास के दौरान मांसाहार, धूम्रपान, आदि वर्जित होता है।

थाईलैण्ड तो राजतंत्र है, वहाँ के राजा को भी राजकुमार की अवस्था में मठ जाना पड़ता है। स्त्रियों के लिये अलग से मठ होते हैं। हम थाईलैण्ड में रहे हैं, और वहाँ भिक्षाटन भी किया है। तुम लोग तो मुंगेर में कई दिन संन्यास जीवन का अनुभव कर चुके हो, वैसे पन्द्रह दिन या एक महीने के संन्यास जीवन से भी गृहस्थ जीवन पर सकारात्मक असर पड़ता है। गृहस्थ लोग बहुत-सी ऐसी चीजें करते हैं, जो आवश्यक नहीं होतीं। नहीं करें, तो भी चलेगा। पर चूँकि सब करते हैं, इसलिए करना पड़ता है।

क्या हम लोग संन्यास-सत्र के बाद आपके पास रहकर कर्मयोग कर सकते हैं?

मुझे चेले-चाँटी की जरूरत नहीं है। मैं अपना अकेला रहता हूँ। कर्मयोगियों की जरूरत स्वामी निरंजन को पड़ती है, हमें नहीं। आप लोग घर जाकर अपने घर को ठीक से सँभालो, और नये युग के अनुरूप नयी व्यवस्था करो। सोलहवीं शताब्दी की संस्कृति, सत्रहवीं शताब्दी का समाज, अठारहवीं शताब्दी के तरीके, बीसवीं शताब्दी का विज्ञान, ये सब आज एक साथ नहीं चल सकते। जैसे मौसम बदलने के साथ कपड़े बदलते हैं, वैसे ही युग बदलने के साथ समाज भी बदलना चाहिये। आज की दुनिया समाज और सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित नहीं है। तुम्हारे यहाँ हो सकता है, मानते हैं, मगर विकसित देशों में ऐसा नहीं है। वहाँ के जीवन का आधार उपलब्धि और सफलता है। वह उपलब्धियों का समाज है। तुम्हारी क्या उपलब्धि है? आध्यात्मिक मार्ग में तुमने क्या पाया और भौतिक मार्ग में क्या पाया? केवल परिवार ठीक ढंग से चले, लड़की की शादी ठीक समय पर हो, लड़का नौकरी करे, बुढ़ापे में तुम्हारी सेवा करे, ऐसा समाज ज्यादा देर चलने वाला नहीं, आगे जाकर जरूर टूटेगा। बेटे को दूर जाना पड़ेगा, वह अपना घर बंगलौर में बनायेगा, तुम अपना भागलपुर में बैठे रहना।

यह उपलब्धियों का युग है। तुम भी अपनी कल्पनाओं में उपलब्धियों के बारे में ही तो सोचते हो न? तुम्हारी कल्पनाएँ उपलब्धि-प्रधान हैं। तो फिर

उसी प्रकार अपने समाज और परिवार को पुनर्गठित क्यों नहीं करते? समाज को बदलते क्यों नहीं? अपने बेटा-बेटी के साथ, अपनी पत्नी के साथ अपने सम्बन्धों को बदलते क्यों नहीं? सोलहवीं शताब्दी में माता-पिता का बेटी के साथ जो सम्बन्ध रहता था, वही तुम आज भी चाहते हो। लड़की बड़ी हो गई, उसकी शादी कर दें, फिर नाती का मुँह देख लें, यह सोलहवीं सदी की कल्पना है, बीसवीं सदी की नहीं, और इक्कीसवीं सदी की तो बिल्कुल नहीं। जो इक्कीसवीं सदी में इस तरह की कल्पना करेगा वह मटियामेट हो जायेगा, उसे गरीबी का जीवन यापन करना पड़ेगा। हिन्दुस्तान इसीलिये तो गरीब है।

हर एक आदमी उपलब्धि चाहता है। उपलब्धि का मतलब कुछ हासिल करना। तुम हँसना भी चाहो और गाल भी फुलाना चाहो, तो दोनों एक साथ नहीं हो सकते। तुम चाहो कि सोलहवीं-सत्रहवीं सदी वाली परिवार-प्रणाली बनी रहे और उसके साथ-साथ तुम्हारी उन्नति भी होती रहे, यह सम्भव नहीं। एक छोटा-सा उदाहरण देता हूँ। अमेरिका ने इतनी उन्नति क्यों की? तुम लोग तो पढ़े-लिखे हो, तुम्हें मालूम है न अमेरिका के लोग मूलत: अमेरिका के नहीं हैं? वे इंग्लैण्ड, फ्रान्स, ग्रीस, इटली, स्पेन जैसे देशों से आये हैं। यहाँ से भी गये हैं, चीन और रूस से भी गये हैं। जब वहाँ गये तो बीवी-बच्चों को साथ ले गये क्या? नहीं, अकेले गये, बीवी-बच्चे पीछे रह गये। मर्द लोगों ने वहाँ जाकर नया घर बसा लिया। अगर वे बीवी-बच्चों को साथ ले गये होते तो तुम्हारा वाला ही हाल होता। लड़का पढ़ता नहीं, नौकरी मिलती नहीं, लड़की की शादी होते-होते बाल सफेद हो जाते। हम लोगों की भौतिक उन्नति के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा हमारा सामाजिक चिन्तन है।

आपकी लड़कियाँ, आपकी बहनें थोड़ी-सी बड़ी हुईं नहीं कि ससुराल चली जाती हैं। वहाँ कुछ कमाती तो हैं नहीं, बस वहाँ जाकर सफेद हाथी की तरह बैठी रहती हैं। आप बुरा मानो या अच्छा, यही हकीकत है। हाँ, पहले के जमाने में लड़कियों के सामने शादी ही एकमात्र विकल्प था। इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता था नहीं। लेकिन आज लड़कियों के सामने दो और रास्ते हैं। एक है उच्च शिक्षा और दूसरा है, स्वावलम्बन। स्वालम्बन का मतलब अपने पर भरोसा, माता-पिता पर नहीं। लड़के-लड़कियाँ अपने भरोसे पर रहें। चौदह-पन्द्रह साल होते-होते लड़के-लड़कियों को सूचना दे दो, 'जाओ बेटा, दुनिया बहुत बड़ी है, कमाओ-खाओ। कुछ बचे तो घर भेज देना और नहीं, तो रहो वहाँ, हम यहाँ गाँव में दाना चुनकर खा लेंगे।'

पर ऐसा होता नहीं। सब कुत्ते के पिल्ले की तरह भौं-भौं करके एक-दूसरे से भिड़ते रहते हैं। मियाँ-बीवी का झगड़ा, बाप-बेटे का झगड़ा, भाई-बहन का झगड़ा, चाचा-भतीजा का झगड़ा, इसी में जिन्दगी बीत जाती है। बीस-तीस साल तक मुकदमे चलते रहते हैं। यही तुम्हारी जिन्दगी है।

तुम लोग अपना संन्यास-सत्र समाप्त करके लौटने वाले हो, एक बात अच्छी तरह याद रखना कि हर मनुष्य की अपनी नियति है, कोई किसी के बल पर चलता नहीं। तुम और तुम्हारी बीवी न एक साथ आये, न एक साथ जाओगे। जुड़वाँ भाई भी एक साथ नहीं जाते, भले ही एक साथ जन्मे हों। सबकी अपनी-अपनी तकदीर है, प्रारब्ध है। अपना प्रारब्ध ढूँढो, वह भी एक तरह का संन्यास है। अगर घर छोड़कर आश्रम में जाना, सर मुड़ाना, गुरु सेवा करना एक तरह का संन्यास है तो घर छोड़कर विशाल जगत् में जाना और वहाँ अपने लिये उपलब्धियाँ खोजना भी संन्यास है। जो इंग्लैण्ड छोड़कर अमेरिका गये, वे भी एक दृष्टि से संन्यासी ही थे। क्रिस्टोफर कोलम्बस स्पेन छोड़कर छः महीने समुद्र में रहा, फिर अमेरिका में लड़ा। क्या वह संन्यासी नहीं था? जिसने घर छोड़ दिया वह संन्यासी, जो घर में रह गया सो गृहस्थ।

पर इतना ही काफी नहीं है। एक और चीज पर ध्यान देना जरूरी है। जिस तरह वृक्ष की जड़ें उसे खुराक पहुँचाती हैं और उन्हें काट देने पर वृक्ष बौना हो जाता है, उसी तरह से मनुष्य की भी तीन जड़ें होती हैं—व्यक्तित्व, आचरण और विचार। व्यक्तित्व का मतलब क्या होता है? कोई आदमी लफंगा होता है तो कोई बहुत नेक। कोई कायर होता है तो कोई बहुत बहादुर, किसी से डरता नहीं है। यह व्यक्तित्व है। दूसरी जड़ है आचरण, व्यक्ति का दूसरों के साथ व्यवहार, और तीसरी जड़ है विचार, जो दिखाई नहीं देते।

ये जड़ें कट गईं तो तुम बोन्साय हो जाओगे। बोन्साय जापान की एक बागवानी कला का नाम है, जिसमें एक बरगद का पेड़ भी डेढ फुट ऊँचा ही रह जाता है। कितना भी बड़ा पेड़ हो, उसकी मुख्य जड़ें काट दो, गमले में लगाओ, कमरे में रख दो, वह मरेगा नहीं मगर बढ़ेगा भी नहीं। हिन्दुस्तानियों का यही हाल है, मरेंगे नहीं पर बढ़ेंगे भी नहीं। कहने को तो हम लोग कह देते हैं—

यूनान मिस्त्र रोमाँ सब मिट गए जहाँ से
बाकी मगर है अब भी नामोनिशान हमारा
कुछ बात ऐसी है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।

हस्ती मिटती नहीं, मगर बढ़ती भी नहीं। लड़की के पैदा होने के दिन उस पर ठप्पा लगा दिया, इसकी शादी करनी है। लड़के के पैदा होते ही ठप्पा लगता है, मेरा श्राद्ध करेगा। क्या कमाल की चीज है इस बोन्साय समाज में! जिस दिन लड़का पैदा हुआ, माता-पिता सोचते हैं अब तो कोई अग्नि देने वाला, पिण्डदान देने वाला पैदा हो गया और लड़की पैदा हुई तो शादी करनी है। इस घिसी-पिटी मानसिकता को बदलो। जिस दिन लड़का पैदा हो तो सोचो कि भगवान ने हमें कच्चा माल दिया है, अब हम इससे बढ़िया चीज तैयार करेंगे, एक नया आइन्स्टाइन, न्यूटन, गांधी, विवेकानंद, रामतीर्थ या रवीन्द्रनाथ ठाकुर दुनिया के सामने प्रस्तुत करेंगे। लड़का हो या लड़की, दोनों बराबर हैं, उनमें कोई फर्क नहीं देखना। यह नहीं सोचना कि मुझे तिलांजलि देने वाला, मेरा वंश चलाने वाला आ गया। वह सब फालतू चीज है। वंश ऐसे चलता है क्या? अगर वंश बेटे से चलता है तो कितनों ने चलाया है अपना वंश?

एक ऐतिहासिक दृष्टान्त सुनाता हूँ। इसके बारे में तुम में से शायद ही कोई जानता हो, बिहार के लोग भी नहीं जानते होंगे। उत्तर बिहार में वाचस्पति मिश्र नाम के एक महान् विद्वान् हुए हैं। उनकी पत्नी का नाम था भामती। उसकी कोई संतान नहीं थी। जब वह पानी भरने कुएँ पर जाती तो सहेलियाँ कहतीं, इतने साल हो गये, अभी तक तुम्हारा कोई बच्चा नहीं। भामती को बड़ा बुरा लगता। एक दिन उसने वाचस्पति मिश्र से डर-डरकर अपने दिल की बात कह दी। उन्होंने कहा, 'मान लो तुम्हारा लड़का हो भी जाए, तो क्या गारंटी है कि वह तुम्हारा वंश चलायेगा? रावण के तो एक लाख सपूत और सवा लाख नाती थे, फिर भी उसे तिलांजलि देने वाला कोई रहा नहीं। पर तुमने माँगा है तो वंश चलाने वाला तुम्हें जरूर दूँगा।' उस समय वाचस्पति मिश्र ब्रह्मसूत्र के पहले चार सूत्रों पर टीका लिख रहे थे। उस टीका को उन्होंने नाम दे दिया—भामती टीका। आज ऑक्सफर्ड या केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के किसी भी दर्शन-शास्त्र के प्रोफेसर से पूछ लो कि यह भामती कौन थी, वाचस्पति मिश्र कौन थे, वह सब बता देगा जो मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

वंश चलता है विद्या से। भामती का वंश चला न! आज उसे मरे हुए सैकड़ों साल हो चुके हैं, पर आज भी मिथिला की धरती से दूर, अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी और जापान की धरती पर पढ़े-लिखे विद्वान् भामती के बारे में जानते हैं। अगर भामती को सचमुच में बेटा होता तो कोई याद करता क्या?

इसलिए कहता हूँ कि आज वंश बेटे से नहीं, विद्या से चलता है। न्यूटन कितने बड़े वैज्ञानिक थे। उनका वंश क्या है? गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त। आइन्स्टाइन का खानदान कौन-सा है? उसके बेटा-बेटी का नाम तो किसी को मालूम नहीं, मगर रिलेटिविटी और परमाणु विज्ञान के बारे में सब जानते हैं। जो वैज्ञानिक परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में अधिकाधिक शोध कर रहे हैं, एक तरह से वही तो आइन्स्टाइन के वंशज हैं जो उनके काम को आगे ले जा रहे हैं।

संन्यास का वास्तविक अर्थ

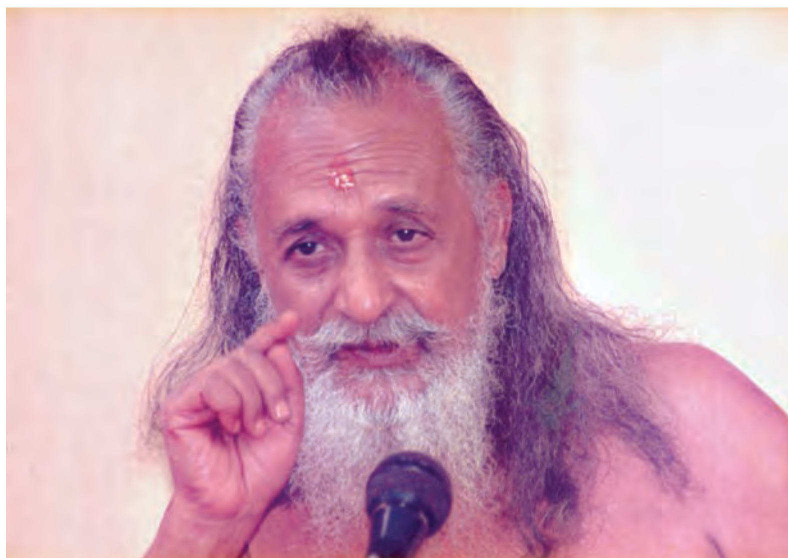
संन्यास के बारे में हमारे देश में सामान्य विचारधारा यही रही है कि संन्यासी समाज-मुक्त होता है, सामाजिक नियम उसपर लागू नहीं होते। जहाँ रहे, जैसे रहे, संन्यासी के सामने सारे रास्ते खुले रहते हैं। वह जिस योग्य है, उसी प्रकार का योग करे। मगर यह विचारधारा पूरी तरह सही नहीं है। संन्यासी का प्रमुख कर्त्तव्य अपने लिये नहीं, दूसरों के लिये जीना होता है। जिस दिन तुम संन्यास लेते हो, उसी दिन तुम्हें मन में एक संकल्प करना पड़ता है, 'आज से मैं अपने लिये उतना ही जियूँगा जितना जरूरी है। बाकी मेरी बुद्धि, मेरा दिमाग, मेरा शरीर, मेरा पैसा, मेरी अक्ल, मेरी चतुराई, मेरी उपलब्धियाँ, मेरी योग्यताएँ—सब दूसरों के लिये हैं, मेरे लिये नहीं।' गृहस्थ अपने लिये, अपने बीवी-बच्चों के लिये, अपने भाई-भतीजों के लिये संकल्प करता है, उसकी सारी शक्ति उसमें लग जाती है, लेकिन संन्यासी अपने लिये उतना ही रखता है जितनी जरूरत है, बाकी सभी चीजें दूसरों के लिये करता है। अगर उसके पास दो लाख रुपये आ जाएँ तो पाँच हजार अपने लिये खर्चा करेगा और एक लाख पंचानवे हजार दूसरों के लिये।

संन्यासी के जीवन में सबसे बड़ा हिस्सा दूसरों का होना चाहिए। ऐसी भावना आने से पहले संन्यास नहीं लेना चाहिये। अगर तुम सोचो कि संन्यास लेकर हम कुछ बनें तो वह गलत भाव है। अगर तुम चाहो कि गुरु बनें, बड़ा-सा आश्रम हो, लोग हाथी की सूँड जितनी मोटी-मोटी मालाएँ गले में डालें, पैर धोवें, चरणामृत पियें तो फिर संन्यास न ही लो तो बेहतर है। संन्यासी को सोचना चाहिए कि समाज की इस समय क्या जरूरत है। अभी योग की जरूरत है तो हम योग सिखायेंगे, या हम एक अस्पताल खोलेंगे जहाँ मुफ्त इलाज होगा, या हम अनाथालय खोलेंगे, जहाँ अनाथ बच्चों का पालन-पोषण होगा।

हमने ऐसा ही तो किया। हमारा मूल अध्ययन तो वेदांत का रहा। हमने आज तक योग पर कोई भी शास्त्रीय किताब नहीं पढ़ी। न अंग्रेजी में, न संस्कृत में। वेदान्त पर शंकराचार्य के सारे भाष्य, रामानुजाचार्य के सारे भाष्य, अनेकों विद्वानों के लिखे सारे भाष्य हमने संस्कृत में पढ़े हैं। हम हिन्दी या अंग्रेजी से ज्यादा अच्छी संस्कृत बोलते हैं। हमारी मातृभाषा संस्कृत है, मगर हमने अंग्रेजी को चुना। वेदांत को छोड़ दिया, योग को चुना। क्यों? इसलिए कि हमें मालूम था बाजार में आज योग ही बिकेगा, वेदांत नहीं। सफलता के लिए बाजार के मुताबिक चीज ही बेचनी चाहिए न! गर्मी के मौसम में ऊन का कपड़ा बिकता है क्या? वेदांत आज कोई नहीं समझता। क्यों? तुम्हारे पेट में दर्द है, पीठ में दर्द है, घुटने में दर्द है, मन में अशान्ति है, दमा की बीमारी है, मधुमेय का रोग है। सब लोग शारीरिक और मानसिक रूप से रोगी हैं। और योग के पास इसका इलाज है।

सन् 1968 में मैंने पहली बार दुनिया का भ्रमण किया। पाँच महीने मैंने सब जगह का सर्वेक्षण किया, पता लगाया कि दुनिया में कौन-सा माल बिकेगा, जिसे अंग्रेजी में मार्केटिंग रिसर्च कहते हैं। मेरा पहला पड़ाव था सिंगापुर। वहाँ मैंने कोई निर्णय नहीं लिया। दूसरा पड़ाव था ऑस्ट्रेलिया। वहाँ निर्णय ले लिया—हठ योग। आसन-प्राणायाम, बस यही दो चीज। उसके बाद अमेरिका पहुँचते-पहुँचते मेरा निर्णय पक्का हो गया। योग के अलावा कुछ मत बोलो। धर्म की बात मत बोलो, वेदांत की बात मत बोलो, ब्रह्म-आत्मन् की बात मत बोलो, केवल आसन-प्राणायाम पर बोलो, नेति-धौति-बस्ती के बारे में बोलो। यह सब तो हमने कभी सीखा नहीं था, पर फिर भी सिखाना शुरू कर दिया। बोलते-बोलते वाणी खुल गई, सरस्वती मुख में आ गई, योग पर जो बोला आज उसे लोग प्रामाणिक और आधिकारिक मानते हैं।

संन्यास लेने के बाद हर संन्यासी को इसी तरह से सोचना पड़ेगा, संकल्प लेना पड़ेगा कि मैं क्या करूँ। तब उसे पता चलेगा कि इक्कीसवीं शताब्दी में मानव समाज को किन चीजों की जरूरत है। सन् 1968 में मैंने जब मार्केटिंग रिसर्च किया, तब आसन-प्राणायाम का पता चला। सत्तर के दशक में जब मैं बाहर जाता तो देखता कि बाजार बदल रहा है। लोग ध्यान, कुण्डलिनी, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, चक्र आदि के बारे में जानना चाह रहे हैं। मैंने इन विषयों पर बोलना शुरू कर दिया। उसके बाद जब देखा कि लोग तंत्र पर पूछने लगे हैं तो तंत्र पर चर्चा शुरू की।



दुनिया एक बाजार है और उस बाजार के मुताबिक माल रखना चाहिए। इक्कीसवीं शताब्दी में भी आसन-प्राणायाम ही चलेगा क्या? या फिर लोग तुमसे तंत्र के बारे में पूछेंगे, कुण्डलिनी के बारे में पूछेंगे? हो सकता है वेदांत पर ही पूछने लगें कि आत्मा क्या है, ब्रह्म क्या है? तब क्या करोगे? क्या यही कहोगे कि हमें तो गुरुजी ने आसन-प्राणायाम सिखाया है, वही सिखायेंगे। तब तो कहीं झोपड़ी बनाकर वहीं बैठे रहो!

समाज को वही चीज दो, जिसकी उसे जरूरत है। सन् 1956 में हमने पूरे गुजरात का भ्रमण किया। पाटन, भावनगर, राजकोट, अहमदाबाद, पोरबन्दर, सब जगह गए। मगर उन दिनों हम योग नहीं सिखाते थे, नेत्र शिविर लगाते थे। हजारों का मुफ्त ऑपरेशन करते थे। हमको पैसा इकट्ठा करने की कला तो है ही, वहाँ जाकर खूब पैसा इकट्ठा करते थे, फिर जगह-जगह नेत्र शिविर लगाते थे, सेमिनार आयोजित करते थे, वेदांत पर प्रवचन करते थे। यह मुंगेर आश्रम से पहले की बात है। हम ऋषिकेश से अपने गुरुजी की ओर से जाते थे। नेत्र शिविरों में मोतियाबिन्द का ऑपरेशन करते थे। हम थे और हमारे साथ डॉक्टर अध्वर्यु थे। वे अभी भीमनगर में हैं। भीमनगर राजकोट से थोड़ा दूर है, वहाँ किसी सेठ ने हमें दस लाख रुपये दे दिये। उस जमाने में दस लाख का क्या मूल्य था, तुम अंदाज लगा सकते

हो। उस पैसे से वहाँ अस्पताल खोल दिया, शिवानंद नेत्र अस्पताल। वह अभी भी चलता है, वहीं पर डॉक्टर अध्वर्यु रहते हैं।

गुजरात में संन्यासियों का बहुत सम्मान होता है। अहमदाबाद जैसे बड़े शहरों में ही नहीं, गाँवों-कस्बों में भी। नर्मदा नदी के किनारे संन्यासियों के बहुत-से आश्रम हैं। बहुत-से गुजराती लोग संन्यास लेते हैं और अन्य स्थानों के संन्यासी भी ज्यादातर गुजरात की तरफ चले जाते हैं। नाथ पंथ वाले गोरखपंथी, जिन्हें कनफटा योगी भी कहते हैं, गुजरात में बहुत हैं। गुजरात में एक और शक्तिशाली सम्प्रदाय है, स्वामी नारायण। पूरे गुजरात में उनका बहुत प्रभाव है। वहाँ जैन लोग और उनके संस्थान भी बहुत हैं, मगर विशेष रूप से वैदिक धर्म का वहाँ बहुत सम्मान है। रामायण पर प्रवचन करने वाले बहुत-से विख्यात रामायणी भी गुजरात के हैं। मुरारी बापू गुजरात के हैं और कनकेश्वरी देवी भी। आर्य समाज के संस्थापक, स्वामी दयानन्द सरस्वती भी गुजरात के काठियावाड़ क्षेत्र से थे।

गुजरात के अलावा संन्यासी ज्यादा बने हैं दक्षिण भारत से, केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्र और महाराष्ट्र से। बिहार से कम हैं, पंजाब से भी कम हैं। मध्य प्रदेश से तो करीब-करीब शून्य समझो, कोई खास नहीं है। बंगाल से भी बहुत संन्यासी बने हैं। स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द, प्रभुपाद भक्तिवेदान्त, आनन्दमयी माँ, ये सब बंगाल से थे। बंगाल का संन्यास परम्परा में बहुत योगदान रहा है। बिहार से ऐसा कोई अद्‌भुत संन्यासी नहीं निकला है। सारंगी बजाते हुए साधु तो बहुत मिल जाएँगे, मगर कोई अरविन्द या स्वामी विवेकानन्द की श्रेणी का नहीं है। उड़िसा से भी बड़ी संख्या में लोग संन्यास मार्ग में आए हैं। किसी भी आश्रम में जाओ तो दो गुट के लोग बहुत ज्यादा मिलेंगे, एक तो गोरे लोग, दूसरे उड़िसा के लोग।

सर्वश्रेष्ठ मार्ग–परमार्थ

जैसे-जैसे दुनिया में इन्सान के ऐशो-आराम और भोग की चीजें बढ़ती जा रही हैं, वैसे-वैसे लोगों के मन में योग के प्रति जिज्ञासा और इच्छा भी होती जा रही है। आज लोगों के मन में बहुत अशान्ति है। योग में जरा-सी भी रुचि न होने के बावजूद हमने अपने गुरु के कहने पर योग का प्रचार किया। हमारे गुरुजी ने कहा, तुम विलक्षण प्रतिभा के धनी हो, जाओ, समाज में योग का संदेश फैलाओ। उनके कहने से ही हमने यह बीड़ा उठाया। हमें दूसरों के

लिये काम करना हमेशा से अच्छा लगा, किसी को खाना खिलाना, किसी की शादी करा देना, किसी को दवाई दे देना, यह हमारा स्वभाव है। ऋषिकेश में भी हम यही करते थे। वहाँ हमने टेहरी सरकार से जमीन लेकर कोढ़ियों के लिए डेढ-दो सौ झोपड़ियाँ बना दीं, उनके खाने-पीने और दवाई का पूरा इन्तजाम कर दिया। हम वहाँ यही सब किया करते थे।

हमें ऐसा लगता है कि मनुष्य का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है परमार्थ। केवल डरपोक आदमी स्वार्थ में रहता है। ऐसा व्यक्ति सिर्फ अपने बारे में सोचता है, पता नहीं मर तो नहीं जाऊँगा, बुढ़ापे में मुझे कौन देखेगा, कहीं अंधा न हो जाऊँ, मेरा बेटा तो होना ही चाहिये। लेकिन निर्भय आदमी स्वार्थ नहीं देखता, वह सोचता है कि मैं दूसरों के लिये काम आऊँगा। ज्यादा-से-ज्यादा क्या होगा, अंधा हो जाऊँगा, मर जाऊँगा, मरना तो सबको है, थोड़ा आगे या पीछे, क्या फर्क पड़ता है।

परमार्थ का काम हमें पहले से ही अच्छा लगता था। जब से यहाँ आये हैं, हमारे दिमाग में यही चिंतन चलता रहता है, किसको गाय देनी है, किसको ठेला देना है, किसको रिक्शा देना है, किसको दवाई देनी है, किसके घर में गरीबी है। यह सब कैसे मालूम पड़े, हम तो बाहर जाते नहीं। पर हमारे दिमाग में यही चीज रहती है कि कैसे पता करें कि कौन दु:खी है, कैसे पता करें कि हम क्या मदद कर सकते हैं। अगर हमें पता चले कि यह परिवार भूख से पीड़ित है तो हम जरूर कुछ-न-कुछ मदद करेंगे।

मनुष्य जीवन का सबसे पहला कर्त्तव्य है दूसरे के काम आना। योग, वेदान्त, धर्म, मुझे आज कुछ भी पसंद नहीं, सब फालतू लगता है। मनुष्य जब तक दूसरे के काम न आवे, सारा धर्म बेकार है, सारा योग बेकार है। मैंने योग सिखाया क्योंकि मेरे गुरु ने आदेश दिया था। मैंने मुंगेर का आश्रम अपने लिये नहीं बनाया, और मुंगेर जैसे तो हमारे पचासों आश्रम हैं। ऑस्ट्रेलिया में मुंगेर से भी बड़े आश्रम हैं। दक्षिण अमेरिका में एक आश्रम से दूसरे आश्रम गाड़ी से नहीं, हेलिकॉप्टर से यात्रा करते थे। इतने दूर-दूर तक फैले हुए थे। मगर मुझे इन चीजों में जरा भी रुचि नहीं थी, केवल गुरु के कहने से किया। मेरी एक ही रुचि है, 'भगवान! किसी तरह से मुझे बतलाओ कि किसकी क्या मदद कर सकूँ। किस लड़की को मैं साड़ी दे सकूँ, किस लड़के को पढ़ाई के लिये पैसा दे सकूँ, किस गरीब के लिये मैं घर बना सकूँ?' मनुष्य जब मनुष्य के काम आए तभी वह मनुष्य है, अन्यथा वह निरा

पशु है। चाहे तुम साधु हो या गृहस्थ, धनी हो या गरीब, जो पैसा तुम्हारे पास है वह न तुम्हारा है न तुम्हारे बाप का, वह जनता का है। समाज ने तुम्हें कपड़ा दिया है, भोजन दिया है, सुरक्षा दी है, सब कुछ दिया है, लेकिन तुमने समाज को क्या लौटाया?

आज यही मेरा दर्शन है। गुरुजी ने मुझे योग प्रचार का जो आदेश दिया था उसे सन् 1983 में पूरा करके उद्यापन कर दिया। अब मैं न उपदेश देता हूँ, न योग सिखाता हूँ। योग मेरा सम्प्रदाय नहीं है। वेदांत भी मेरा सम्प्रदाय नहीं है, धर्म भी मेरा सम्प्रदाय नहीं है। मैं एक ही चीज में यकीन करता हूँ। जब तक मैं जीवित रहूँ, मेरा शरीर, मेरा मन, मेरा धन किसी के काम आता रहे, किसी को कुछ फायदा होता रहे। नदी हमेशा देती है, हवा भी हमेशा देती है, भगवान भी तो हमेशा देते ही हैं। ये सब परमार्थी हैं। इनकी तरह जो दूसरों के काम आवे, वही सच्चा मनुष्य है।

तरुवर फल नहीं खात है, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर॥

हर एक व्यक्ति को मरने के पहले अपना कमाया हुआ पैसा दूसरों के काम में लगा देना चाहिये, बच्चों के लिये कुछ नहीं छोड़ना चाहिये। नहीं तो बच्चे कमजोर हो जाते हैं। आप लोग शायद सहमत न हों क्योंकि आपकी सोच दूसरी है। जीवनभर तो आप यही सोचते आए हैं कि अपने बाल-बच्चों का भला कैसे करें, मगर अब यह सोचिये कि दूसरों का भला आप कैसे कर सकते हैं। जिस दिन आप सब दूसरों के लिये सोचना शुरू करेंगे, आपका समाज रातों-रात बदल जाएगा। यह सच है। वह मनुष्य कैसा जो दूसरों के लिये न जिये? संन्यासी का चिन्तन परमार्थ-प्रधान होना चाहिए, स्वार्थ-प्रधान नहीं। अगर संन्यासी ही स्वार्थी हो जाए तब तो हरिः ॐ तत्सत्, दुनिया गई चूल्हे में।

हम लोगों के लिये क्या आदेश है?

आप लोग करने को तो बहुत कुछ कर सकते हैं, लेकिन अपना रास्ता आपको स्वयं खोजना चाहिये। चाहे योग सिखाओ, चाहे परमार्थ करो, रास्ता आपको निकालना है। एक बच्चा पैदा कर दिया और जिन्दगीभर उसी की चिन्ता, धत्त तेरी की! यह भी कोई जिन्दगी है! जीवनभर वही बच्चा दिमाग में कंकड़ की

तरह घुसा हुआ है। अरे, दूसरों के बारे में भी सोचो। आप लोगों ने जिन्दगी देख ली है, खूब खा-पी चुके हो, कमा चुके हो, दु:ख-सुख सब भोग चुके हो। अब आप खुद सोचो कि आपको क्या करना है। दूसरों के आँसू पोंछने की कोशिश करो, दूसरों का घर बसाने की कोशिश करो। किसी लड़के या लड़की को पढ़ाने की कोशिश करो। समझो कि तुम्हारे दो-तीन-चार बच्चे और हैं। जैसे तुम अपने बच्चे से सबेरे-सबेरे पूछते हो कि कैसे हो, बीमार तो नहीं हो, वैसे ही दूसरे से पूछो, क्या हो गया, तबीयत ठीक है? परायों को भी अपना बनाने की कोशिश करो।

जो दूसरों के बारे में सोचता है, उसके दुर्गुणों को दुनिया नहीं देखती। कुछ महीने पहले इंग्लैण्ड की राजकुमारी डायना की मृत्यु हुई तो लोगों ने उसे कितना सम्मान दिया! क्यों? उसने अपने सारे कपड़े, अपने सारे जूते, अपनी सारी सम्पत्ति समाज-सेवी संस्थाओं को दे दी थी। अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका और एशिया के कई देशों में वह खुद जाती थी और वहाँ उन संस्थाओं के काम को आगे बढ़ाती थी। लंदन में ही सौ से अधिक संस्थाओं को सहयोग दिया। आखिर वह तो राजकुमारी थी, उसके पास पैसे की कमी नहीं थी। पर उसने सोचा कि पैसे को भोग में क्यों लगाना, समाज-सेवा में लगा दो। आखिर जनता का ही तो पैसा है। सब दे दिया। जो व्यक्ति दूसरे के काम आता है, दुनिया उसके अवगुण नहीं देखती। *परो अपावन ठहर पै कंचन तजै न कोई*—तुम्हारी सोने की अंगूठी अगर टॉयलेट में गिर जायेगी तो क्या करोगे? पानी से बहा दोगे क्या? नहीं, निकाल लोगे। जिस वस्तु में गुण होता है, जो वस्तु लाभदायक होती है, जो व्यक्ति फायदा पहुँचाता है, उसे संसार सर माथे रखता है। डायना को कितना सम्मान मिला, पता नहीं तुम लोगों को अंदाज़ है या नहीं। उस पर करोड़ों पाऊँड की लागत के फूल चढ़ाये गये। उस पर 'कैण्डल इन द विण्ड' नामक जो गीत गाया गया, जिसकी इतिहास में आज तक सबसे ज्यादा बिक्री हुई है। एल्टन जॉन नामक मशहूर गायक ने उसकी समाधि के वक्त यह गीत गाया था, और पन्द्रह-सोलह दिन में सब कैसेट-सीडी बिक गये। उसका सारा पैसा दान में गया है।

एक और उदाहरण राजा भरत का ले लो, जिनके नाम पर तुम्हारा देश का नाम पड़ा है। इतिहास कहता है कि इस देश में प्रजातंत्र की नींव राजा भरत ने ही डाली थी। उन्होंने अपने पुत्रों को राज्य नहीं दिया, बल्कि समिति

को राज्य दिया। देखा जाए तो भरत कौन था? वह शादी के पहले पैदा हो गया था, औरस पुत्र नहीं था। वैदिक धर्म के अनुसार वह नाजायज बच्चा था। उसकी माँ कौन थी? शकुन्तला। मेनका और ऋषि विश्वामित्र की बेटी। उनकी भी ढंग से शादी हुई होती तो हम मानने के लिये तैयार होते कि पाणिग्रहण हुआ, कन्यादान हुआ, किसी ब्राह्मण ने ठप्पा लगा दिया पति-पत्नी का। पर ऐसा तो हुआ नहीं। मेनका ने उन्हें फँसा दिया और शकुन्तला पैदा हो गई। मेनका उसे छोड़कर चली गई और कण्व ऋषि ने उसे पाला। यह भूमिका है भरत की। ऐसी भूमिका होने पर भी भरत को इस देश के कोटि-कोटि लोगों ने इतना सम्मान दिया। सम्मान ही नहीं इस देश का नाम ही भारत रख दिया। क्यों? इसलिए कि भरत गुड्‌डा-गुड्‌डी से नहीं खेलता था, कुत्ते-बिल्ली से नहीं खेलता था, वह शेर के साथ खेला करता था। जो बच्चा शेर के साथ खेले, नाग-साँप से खेले वह विशेष जरूर है। सामान्य आदमी नहीं खेल सकता। भरत एक असामान्य बालक था।

ऐसे उदाहरण इतिहास में बहुत-से आते हैं, दो-चार ही तुम्हें दे रहा हूँ। जो व्यक्ति दूसरों के काम आता है, लोग उसे भगवान की तरह मानते हैं। यह बात गाँठ बाँध लो तुम लोग। अपना जीवन जो दूसरों के लिये समर्पित कर दे, उसे हम दधीचि की तरह, राजा शिबि की तरह, राजा रन्तिदेव की तरह मानते हैं। राजा रन्तिदेव कहते थे—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्॥

'हे भगवान! मुझे राज्य की इच्छा नहीं है। मुझे स्वर्ग की कामना भी नहीं है। यहाँ तक कि मुझे पुनर्जन्म से मुक्ति अर्थात् मोक्ष की भी इच्छा नहीं है। अगर मैं कुछ चाहता हूँ तो सिर्फ यही कि मैं दुःखी प्राणियों के दुःख को दूर करने में सफल बनूँ। यह राजा रन्तिदेव की प्रार्थना थी।

यह दुनिया एक चीज को मानती है—अन्नदाता। इस बात को तुम भूलना नहीं। अन्नदाता को सर्प भी पहचानता है, पशु भी पहचानता है, इन्सान तो पहचानेगा ही। हमारा यही भाव रहा है कि किस तरह से हम दूसरों की मदद कर सकते हैं। अगर हमें दूसरे की मदद करनी है, तो हमें वह क्षमता भी अर्जित करनी होगी। दूसरे की मदद करना बहुत अच्छी भावना है, बहुत अच्छी अभिलाषा है, पर केवल अभिलाषा होना काफी नहीं है। अपनी

योग्यता का भी निष्पादन करना सीखो। यह मत सोचना कि पैसे से ही सब काम हो जाता है। नहीं, पैसा एक आवश्यक साधन है, मगर पैसा ही सब कुछ नहीं है।

इक्कीसवीं सदी का चिन्तन

हमारा सब से ज्यादा जोर है स्त्री-शिक्षा पर। हम समझते हैं कि औरतों को लायक बनाये बिना समाज का उद्धार हो नहीं सकता, चाहे वह अमीरों का समाज हो या गरीबों का। औरतों को घर से बाहर निकलना पड़ेगा। इसके बिना देश का विकास सम्भव नहीं। दुनिया बहुत तेजी से आगे बढ़ रही है। प्रतिस्पर्द्धा बढ़ रही है इस युग में। अब स्त्रियों को शिक्षित किये बिना, स्वावलम्बी बनाए बिना काम नहीं चलेगा, क्योंकि इक्कीसवीं शताब्दी का समाज परिवार-केन्द्रित समाज नहीं, उपलब्धि-केन्द्रित समाज है। परिवार के बजाय उपलब्धियों का महत्त्व होगा।

उपलब्धियाँ क्या हैं? मान लो तुम्हारी शादी हो जाए, तुम्हारा बच्चा हो, फिर बच्चे का बच्चा हो। तुम सोचते हो कि तुम्हारा खानदान चल गया, बेटा अपने बाप का नाम ऊँचा करेगा और तुम्हारी परम्परा को आगे ले जायेगा। पर मैं इस बात को नहीं मानता। आइन्स्टाइन ने परमाणु ऊर्जा का प्रसिद्ध फॉर्मूला निकाला। आज उसके बेटा-बेटी को कोई नहीं जानता, मगर आइन्स्टाइन के बाद जितने भी परमाणु वैज्ञानिक हुए हैं, उन्हें हम लोग जानते हैं। आइन्स्टाइन के बाद परमाणु ऊर्जा बनी, परमाणु चिकित्सा बनी। यह सब आइन्स्टाइन की उपलब्धियों के सिलसिले में ही माना जाएगा न?

कहने का मतलब यह कि वैज्ञानिकों की, संगीतज्ञों की, नर्तकों की या संन्यासियों की जो परम्परा होती है, वह वंश-परम्परा पर नहीं बल्कि विद्या-परम्परा पर चलती है। वंश-परम्परा खोखली है, केवल अपने को संतोष देने के लिए है। असली चीज तो विद्या-परम्परा या गुरु-परम्परा है। संगीत, नृत्य, ज्योतिष, गणित, विज्ञान, अध्यात्म–सबमें गुरु-परम्परा है। संन्यासियों, वैरागियों, उदासीनों और सिक्खों में गुरु-परम्परा है। हर विद्या में गुरु-परम्परा है। यह इक्कीसवीं सदी का चिन्तन है। अब भविष्य अपना तुम स्वयं चुनो। यही इक्कीसवीं सदी का चिन्तन है। अब भविष्य अपना तुम स्वयं चुनो।

–संन्यास सत्र, मुंगेर के सदस्यों को दिया गया सत्संग, 6 नवम्बर 1997



अध्याय 6

ग्रामीण सेवा

हमने अभी यहाँ की लड़कियों को पढ़ाना शुरू किया है, पर इन लोगों को यह भी समझ में नहीं आता कि पढ़कर करेंगे क्या। यहाँ जो पढ़ाई होती है वह इनके काम आने वाली नहीं, क्योंकि ये तो किसान और मजदूर परिवारों से हैं। बुनियादी साक्षरता यानि पढ़ना, लिखना और गणित, यहाँ तक ठीक है, हम मानते हैं। काला अक्षर भैंस बराबर नहीं होना चाहिए। पर उसके आगे इन्हें जो पढ़ाना चाहिए वह आप लोग पढ़ा नहीं सकेंगे, क्योंकि आप खुद नहीं जानते हैं। गाय का कैसे पालन होना चाहिए, कैसे दवाई देनी चाहिए, कौन-सा टीका लगाना चाहिये, कैसे पता चलेगा कि गाय गर्म हुई कि नहीं, गाय की बीमारी का पता, उसके दूध का पता, कौन-सा चारा किस महीने में देना, उसके गोबर का क्या उपयोग है, गोबर से गैस कैसे बनाई जाती है, उसके लिये सरकार कहाँ से पैसा देती है, किस मौसम में कौन-सी सब्जी लगानी चाहिए, कितना खाद-पानी देना चाहिए, यह सब तो नहीं पढ़ाते स्कूल में।

साक्षरता के आगे आजकल जो शिक्षा दी जाती है वह गाँव के लिये अनुपयुक्त है। औरंगजेब कब पैदा हुआ, जहाँगीर के बेटे का क्या नाम था, उसने कितने महल बनाए, तानसेन का गुरु कौन था, रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार कब मिला, यह इन लोगों के काम की चीज नहीं है। गाँव की जिन्दगी जीवित रहने तक सीमित है। इनको न टेलिफोन से मतलब है, न गाड़ी से। इनको केवल घर कैसे बनाना, गाय कैसे पालना, साग-भाजी कैसे पैदा करना, घड़े कैसे बनाना, इन सब चीजों से मतलब है। यह भारत

के अस्सी प्रतिशत लोगों की आवश्यकता है, पर यह शिक्षा भारत में नहीं दी जाती है। भारत में जिस शिक्षा पर शिक्षा विभाग अरबों रुपये खर्च कर रहा है, वह ज्यादा-से-ज्यादा बीस प्रतिशत की आवश्यकता है, बस। यह बीस प्रतिशत वर्ग अल्पसंख्यक है। बाहुल्य तो उस अस्सी प्रतिशत आबादी का है जो गाँवों, जंगलों और पहाड़ों में रहती है। नीम पेड़ से कैसे तेल निकालना, गोंद कैसे बनाना, रेज़िन कैसे तैयार करना, उसको चपड़ा-लाख में कैसे बदलना, उसे बाजार में अच्छे मूल्य पर विक्रय कैसे करना, यह व्यवसायी शिक्षा गाँव के काम की है, शहर के नहीं। जंगलों में जो संथाली लोग रहते हैं वे वन मण्डलाधिकारियों और संरक्षकों से भी ज्यादा जानते हैं। यहाँ संथाली औरतें कमर में एक जड़ी लगा लेती हैं, बच्चा नहीं होता। प्राकृतिक परिवार नियोजन हो जाता है।

ग्रामीण सेवा करने का मन तो बहुत लोगों का है, मगर सेवा के गुण हम लोगों में नहीं हैं। आज़ादी की लड़ाई के समय नेता तो हिन्दुस्तान में बहुत थे, बहुत भाषण दे सकते थे, पर सिर्फ गाँधीजी का इतना प्रभाव क्यों पड़ा? इसलिए कि गाँधीजी चरखा चलाते थे। गाँव के लोग चरखे की बात समझते हैं, क्योंकि बुनकरी हिन्दुस्तान की बहुत प्राचीन ग्रामीण कला है। गाँधीजी ने गोबर-गैस के लिये भी गाँववालों को बहुत ज्यादा उत्साहित किया। गाँव-गाँव में खादीग्राम के लोग गोबर-गैस प्लांट लगाते थे। गाँधीजी ने लोगों को वह शिक्षा दी जिसकी जरूरत हिन्दुस्तान की अस्सी प्रतिशत जनता को थी। इसलिये गाँधीजी की बातों को सब लोगों ने स्वीकार किया।

आज हमारे देश में जो शिक्षा दी जा रही है, उसका बिल्कुल तुक नहीं है। बी.एस.सी. और एम.एस.सी. डिग्रीवाले जरूर पैदा हो रहे हैं, मगर बेकारों की संख्या भी बढ़ रही है। ये लोग बैंक में काम करते हैं तो गलतियाँ करते हैं। सचिवालय में काम करते हैं, वहाँ भी गलतियाँ कर देते हैं। न अंग्रेजी लिखनी आती है, न हिन्दी। गाँव की सेवा करने के लिए ऐसे लोगों की जरूरत है जो गाँव की जरूरत पहचानें। हमने जब से गाय रखी, गोबर-गैस के लिये प्रयास कर रहे हैं। गोबर हमारे पास है, हमें उसकी पूरी जानकारी है, मगर गोबर-गैस संयंत्र लगाने के लिए कोई मिस्त्री नहीं मिल रहा है। शायद हमें गिरिडीह से मिस्त्री बुलाना पड़ेगा। कोई कहता है दिल्ली से बुलाओ मिस्त्री। यहाँ के गोबर-गैस संयंत्र के लिए हम दिल्ली से मिस्त्री बुलाएँ, यह भी कोई शिक्षा है?

आजकल के स्कूल-कॉलेजों में जो शिक्षा है वह एक प्रकार से अहंकार है, थोथा अहंकार। हमने भी स्कूल में पढ़ाई की है, मगर वहाँ हमने जितना पढ़ा, ए-बी-सी-डी, क-ख-ग-घ, 1-2-3-4 को छोड़कर आज कोई चीज हमारे काम नहीं आ रही है। काम आईं वे चीजें जो मैंने गुरुजी के आश्रम में बारह साल सीखीं। पानी न हो तो कैसे लाना, मकान कैसे खड़े करना, दो-तीन सौ लोगों के लिये खाना कैसे बनाना, चावल कैसे साफ करना, कंकड़ और चावल में फर्क क्या है, यह सब हमने सीखा वहाँ। लोगों से कैसे बात करना, लोगों को कैसे पटाना, यह सब सीखा। जीवन में चतुराई, जीवन जीने की क्षमता, ऐसी शिक्षा होनी चाहिए गाँव में।

जब हम कोलम्बिया गये थे तो वहाँ एक कैथोलिक चर्च में ठहरे थे। वहाँ एक चाक रखा हुआ था, जिसके नीचे चर्च के साधु लोगों ने मोटर लगा दी थी। वे चीनी मिट्टी इकट्ठा करके लाते थे, उसके बर्तन बनाते थे, उन्हें आग में पकाते थे और उन्हें गाँव में बेचते थे। इसी से उनका चर्च चलता था। हम वहाँ बहुत दिन रहे, हमने सीखा कि किस तरह से इस मिट्टी को मिलाते हैं, कौन-सा रसायन डालते हैं, कितनी देर पकाते हैं, कितने तापमान पर रखते हैं, कौन-सी लकड़ी जलाते हैं। कोई लकड़ी धुआँ वाली होती है, कोई ज्वाला वाली। किसी लकड़ी में गर्मी ज्यादा होती है, किसी में कम। कोई लकड़ी गर्मी को बहुत देर तक रखती है जैसे बाँस की लकड़ी। उसमें बहुत गर्मी होती है जो बहुत देर तक रहती है। बाकी लकड़ियाँ गर्म तो होती हैं, पर तुरंत ठण्ढी हो जाती हैं। ये सब चीजें वहाँ सीखीं। फिर उसके बाद हम जापान गये। जापान के जिस गाँव में रहे, वहाँ पर वे लोग चीनी मिट्टी में रंग मिलाकर उसे आँगन में पकाते थे। प्यालों में नीला-पीला रंग देखते हो न, वह सब सीखा। मगर अब हम वह नहीं सिखा सकते क्योंकि हमने वह काम छोड़ दिया है।

हमें पानी का पता लगाना भी मालूम है। मुंगेर में हमने कहा था, यहाँ खोदो, यहाँ मिलेगा पानी। हम परम्परागत पद्धति से पानी का पता नहीं लगाते, हमारा दूसरा तरीका है। कहाँ कौन-सा पेड़ है, चींटियाँ निकलती हैं कि नहीं, दीमक का बांबी है कि नहीं, इन सब से पता चलता है। हमने यहाँ कुआँ खुदवाया है। खोदने वाला बोला, 'बाप रे, यहाँ तो इतना पानी है कि पूरी सिंचाई हो सकती है।' सिंचाई का मतलब बारह-चौदह घण्टे ट्यूबवेल चल सकता है। गाँव के लोगों को पानी का पता लगाने की कला सिखाओ

ताकि उन्हें पता लगे कहाँ पानी मिल सकता है, कहाँ नहीं। बांस-बोरिंग सिखाओ। बोरिंग के लिये जी.आई. पाईप की जरूरत नहीं है। बांस को काटकर आपस में मिलाकर केला से बाँधकर डाल दो। मगर यह सब सिखाने वाला होना चाहिए। गाँव के लिये ये सब चीजें जरूरी हैं।

हिन्दुस्तान की हालत इसलिए खराब है कि यहाँ के अस्सी प्रतिशत आदमी आज लाचार हैं। आज ये आदमी अगर जिन्दा हैं तो सरकार के कारण नहीं, सचिवालय के कारण नहीं, सेना की वजह से नहीं। ये जिन्दा हैं केवल अपनी करामात पर। हिन्दुस्तानी आज केवल इसलिए जीवित हैं, क्योंकि उनके पास जीवित रहने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल है। मैं यहाँ से लकड़ी के चार टुकड़े फेंकता हूँ, पाँच मिनट में गायब हो जाते हैं। पत्ते, कपड़े के टुकड़े, सब गायब हो जाते हैं। ये एक-एक चीज का इस्तेमाल करते हैं।

राष्ट्रीय शक्ति का विकास

गाँववालों की सेवा करने के लिए आप जैसे शहरी लोगों के मन में जो तमन्नाएँ हैं, वही काफी नहीं हैं। आप लोगों के पास ज्ञान तो है नहीं। गाँव में पैदा होना, गाँव में रहना और गाँव में मरना, ये तीन चीज़ें जरूरी हैं गाँव की सेवा के लिये। हिन्दुस्तान का नाम गाँव है और गाँव का नाम हिन्दुस्तान। दिल्ली हिन्दुस्तान नहीं है, दिल्ली तो वर्णसंकर जगह है। थोड़ा अंग्रेजी, थोड़ी हिन्दी, थोड़ा चीनी, थोड़ा रूसी। बड़े शहर वालों की कोई संस्कृति नहीं होती। जिस तरह से वृक्ष को बड़ा करने के लिए जड़ों की जरूरत होती है, उसी तरह से किसी भी राष्ट्र, समाज या व्यक्ति के लिये तीन जड़ें होती हैं—चरित्र, आचरण और विचार। तीनों को काट दो तो छोटे का छोटा रहेगा, बोन्साई रहेगा। आप सब बोन्साई हैं। भारत एक बोन्साई संस्कृति है, बढ़ ही नहीं रही है।

जरा चीन को देखो। चीन ने इतनी बड़ी छलांग मारी है कि चीन के राष्ट्रपति ने जब अमेरिका छोड़ते समय कहा कि हमारे देश के अन्दरूनी मामले में तुम हस्तक्षेप नहीं करना, तो अमेरिका का राष्ट्रपति कोई जवाब नहीं दे सका। चीनियों ने साफ कह दिया, तियानान्मेन स्क्वेयर की बात नहीं करना, और हमें नवीनतम परमाणु तकनीक दो। अमेरिका ने दे दिया। हिन्दुस्तान कर सकता है ऐसी बात? जिस राष्ट्र के पास शक्ति है, वही दूसरे राष्ट्र पर शर्त रखेगा। राष्ट्र किसी भौगोलिक क्षेत्र का नाम नहीं, बल्कि

व्यक्तियों के समूह का नाम है। एक-एक आदमी से मिलकर राष्ट्र बनता है। तमाम शिकायतों के बावजूद अमेरिका को नवीनतम परमाणु तकनीक देनी ही पड़ गई। क्यों? क्योंकि चीन में दम है।

घर का बाप बेटे से कहता है, बैठ यहाँ। बेटा बैठ जाता है। तब जाकर दूसरे लोग बाप से बात करेंगे कि ऐसा करो या वैसा करो। बाप का नियंत्रण है बेटे पर। जब तक बाप का बेटे पर नियंत्रण नहीं होगा, जब तक राजा का प्रजा पर नियंत्रण नहीं होगा, उस राष्ट्र से कौन बात करेगा? राजा का प्रजा पर, शासक का जनता पर नियंत्रण आवश्यक है, भले ही वह प्रजातंत्र हो, राज्यतंत्र हो, सैन्य तंत्र हो या और कोई तंत्र। चीन में नियंत्रण है, यहाँ नहीं है।

खैर गाँवों को संभालने के लिए हम चाहते हैं कि कर्मठ और प्रेरित लोग गाँव में आएँ, दो-चार बीघा जमीन लें, अपनी झोंपड़ी या मकान बनाएँ, वहाँ के लोगों से बातचीत करें, उनकी जरूरतों को समझें। गाँव के लोग कैसा कपड़ा पहनते हैं, क्या खाते हैं, कैसे रहते हैं, इन सब चीज़ों को जानें। लोग मुझे सूती साड़ियाँ भेजते हैं। उन्हें मालूम नहीं कि गाँव की औरतें सूती साड़ियाँ नहीं पहनतीं, बल्कि चमकीली, रंगदार सिंथेटिक साड़ियाँ पहनती हैं। बहुत सस्ती मिलती हैं, बहुत दिन तक चलती हैं। हम अगर उन्हें सूती साड़ियाँ देते हैं तो नहीं पहनतीं, रख देती हैं शादी-ब्याह के लिये।



ग्रामीण लोग कौन-सी चप्पल पहनते हैं, क्या इस्तेमाल करते हैं, क्या नहीं करते, एक-एक चीज का पता चलना चाहिये। ग्राम-संस्कृति एक अलग संस्कृति है। इनके सोचने का तरीका बिल्कुल अलग है। ये लोग इतने होशियार हैं कि इन लोगों को मालूम रहता है कि आज कौन-सी तिथि है, एकादशी है या द्वादशी, तिथि क्षय हो गई या बढ़ गई। इन्हें यह सब मालूम रहता है, बतलाने की बिल्कुल जरूरत नहीं है। अपने नियमों, धर्मों और व्रतों का पालन बाकायदा करते हैं। हमने एक लड़की से कहा, तुम आश्रम आकर थोड़ा अंग्रेजी पढ़ो, तो उसने कहा, 'अंग्रेजी पढ़कर करेंगे क्या? गोबर ही तो उठाना है शादी के बाद।' हमने कहा, 'हाँ, बात तो तुम ठीक कहती हो। ठीक है, तुम अंग्रेजी मत पढ़ो, थोड़ा-सा डिस्पेन्सरी का काम सीख लो।' पट्टी कैसे बाँधना, बुखार कैसे देखना, किस प्रकार से घाव को साफ करना, एक्स-रे पढ़ना, यही सब। लड़की थोड़ा पढ़-लिख जाए, थोड़ी पैथॉलॉजी सीख जाए, प्राथमिक उपचार सीख जाए, उसे एक मोपेड दे दो, गाँव-गाँव जाकर यह काम करेगी, पैसा कमाएगी।

गाँव के लोगों को रोजगार की जरूरत है क्योंकि यहाँ खेती अपने में उपार्जन का साधन नहीं है। भारत में कृषि उद्योग या उपार्जन का साधन नहीं, केवल उपभोग का साधन है। उपार्जन के लिये इन लोगों को कुछ बाहर से काम करना पड़ता है। एक बार गाँव का आदमी आत्म-निर्भर हो गया तो हमारे देश की हालत स्विट्ज़रलैण्ड से भी बढ़िया हो जाएगी। बिल्कुल सच्ची बात है। पर इसके लिए ऐसे लोग हों, जो घर-बार छोड़ कर आएँ, संन्यास लें, गाँव में रहें, सबको सिखाएँ। शादी की जरूरत नहीं, और शादी करो भी तो अपनी बीवी को साथ ले आओ। ऋषि वशिष्ठ, विश्वामित्र वगैरह सभी तो शादीशुदा थे।

गाँव में ज़बरदस्त काम होना चाहिए। सरकार यह करेगी नहीं, क्योंकि यहाँ से बदले में कुछ मिलने वाला नहीं है। सरकार वहीं काम करेगी जहाँ लाभ मिलता है। इसलिए आप जैसे लोग यहाँ गाँव में आकर काम करो। पन्द्रह-बीस साल, ज्यादा नहीं। यहाँ के लोग थोड़ी देर में अपने आप समझने लगते हैं, और यहाँ सम्भावनाएँ भी बहुत हैं, जो शहरों में नहीं हैं।

ग्रामीण शिक्षा

मेरी राय में आम मजदूर आदमी के लिए केवल साक्षरता जरूरी है, उसके आगे उनको औपचारिक शिक्षा नहीं, व्यवसायी शिक्षा चाहिए। जैसे यहाँ

के बढ़इयों को हम ने अच्छे औजार मंगा कर दे दिए। एकदम आधुनिक नहीं देते, क्योंकि उनसे कुछ फायदा नहीं। मगर थोड़े-से बेहतर दे देते हैं। गाँव के लोगों के लिए जो जरूरी है, वहीं तक शिक्षा होनी चाहिए, वैसे ही संसाधन होने चाहिए। गाँववालों को जो कविता पढ़ाते हो, वह भी ग्रामीण पृष्ठभूमि की होनी चाहिए। अब इन्हें राजा राम मोहन राय के बारे में पढ़ाने से कोई फायदा नहीं है, इन्हें तो गाँव के बारे में ही पढ़ाना चाहिये। नदी, नाले, जानवर, चूहे, बिल्ली, गाय, हाथी, ऊँट, बकरी, मच्छर, यह सब इनको सिखाना चाहिए। अब उस पर तो कोई कविता है ही नहीं!

हमारे आने के बाद इतना परिवर्तन हुआ है कि यहाँ के विद्यालयों में अब भीड़ है। यहाँ के गाँवों में रामचरितमानस बहुत प्रचलित है। हमने एक बार शुरू किया तो यह जंगल की आग की तरह फैल गई। रामायण देते-देते हमारा भण्डार पूरे-का-पूरा खाली हो गया। एक लड़की यहाँ आई तो हमने उससे कहा कि तुम थोड़ा पढ़ना-लिखना सीख लो। उसने कहा, 'क्या करेंगे पढ़-लिखकर।' एक दिन यहाँ रामायण रखी थी। उसने पूछा, 'यह क्या है?' मैंने कहा, 'रामायण है।' वह बोली, 'मुझे भी दो न।' मैंने कहा, 'ले लो।' जब वह रामायण पढ़ना सीख गई, तो मैंने उससे पूछा, 'अब तुम पढ़ना-लिखना सीख गई?' बोली, 'नहीं, हमें पढ़ना-लिखना नहीं आता, रामायण आती है बस।' पढ़ना और रामायण पढ़ना, ये दो अलग चीजें हुईं उसके लिए, यह विचित्र चीज मैंने पाई। अब यहाँ सब रामायण पढ़ते हैं। कहने का मतलब रामायण के बहाने हमने इन लोगों को साक्षरता दी है।

वैभव बनाम संघर्ष

मैं तो एकान्त-पसन्द आदमी हूँ। आज आप सबसे मिल रहा हूँ, लेकिन जैसे ही सीताजी का विवाह खत्म होगा, मेरा मिलना-जुलना बिल्कुल बन्द हो जाएगा। लोगों से मिलने-जुलने की मेरी प्रवृत्ति कभी नहीं रही। मेरी प्रवृत्ति एकांतवासी की रही है। मुझे अकेले में रहना अच्छा लगता है। अब न तो किताबें पढ़ना अच्छा लगता है, न लोगों से मिलना-जुलना, केवल नाम जपना अच्छा लगता है। उसी में आनन्द आता है। जब मन रुक जाता है, अपने आप, जबरदस्ती नहीं, उस वक्त भगवान का नाम लेने से एक अद्भुत आनन्द आता है। थकावट के बाद सोने में जो आनन्द आता है या तपती गर्मी से ठण्ढे कमरे में आने पर जो आनन्द आता है, वैसा ही आनन्द आता है।

इस आनन्द से अब हम अलग नहीं होना चाहते। इसी आनन्द को लेकर यहाँ से जायेंगे, फिर इसी आनन्द को लेकर वापस आयेंगे।

हम मोक्ष पर विश्वास नहीं करते। हम वापस आयेंगे और जब आयेंगे तो धनवान् के घर नहीं, गरीब के घर ही आयेंगे। इस जीवन में हमारा कर्म था जो वैभवशाली घर में जन्मे और वैभवों के बीच पले। बचपन में वैभव-ही-वैभव देखा। पर हमें यह पसंद नहीं है। जब इतना वैभव देखने पर भी उसका भोग नहीं किया, तब फिर वैभव होने से क्या फायदा? हमने जीवन में इतना वैभव देखा पर कभी उसका भोग नहीं कर पाए। करना भी नहीं चाहा, इच्छा ही नहीं हुई। अब हम सोचते हैं कि बिना वैभव के पैदा होते तो अच्छा होता। गरीब के घर, छोटी जात के घर पैदा होना चाहिए। बेहतर हो अगर वेश्यापुत्र या अनब्याही माँ का बेटा बनकर पैदा हो। मैं कुलीन घर में पैदा होना ठीक नहीं समझता। क्या कुलीन और क्या सम्भ्रान्त? यह सब थोथा अहंकार है लोगों के मन में। साधारण घर में, पापी के घर में, चोर के घर में पैदा होना चाहिए। साधु अगर अच्छे घर में पैदा हो तो उसका फायदा ही क्या है? आखिर साबुन का उपयोग कहाँ होता है? साधु को उस घर में पैदा होना चाहिए जिस घर में गंदगी हो। मन में यही सोचा है, आगे भगवान की इच्छा पर है कि कहाँ भेजते हैं। अगर हमें विकल्प दिया जाए तो उसी घर में पैदा होंगे जहाँ नितान्त अभाव हो।

जीवन में अभाव का पक्ष जिसने नहीं देखा, वह जीवन को पहचान नहीं सकता। संघर्ष के बिना जीवन नीरस है। मैं हमेशा सब लोगों को बतलाता हूँ कि दुनिया का सबसे कल्याणकारी देश है स्वीडन। वहाँ न नौकरी की समस्या है, न शादी की, न बच्चे की, न रहने की, न चिकित्सा की। फिर भी वहाँ सबसे ज्यादा आत्महत्याएँ होती हैं। क्यों? इसलिए कि वे संघर्ष ही नहीं कर रहे हैं। बिना मेहनत के नौकरी मिल जाती है, दवाई मिल जाती है, सब मिल जाता है, संघर्ष ही नहीं करना पड़ता। जहाँ संघर्ष नहीं करना पड़ता, वहाँ अपराध होते हैं, आत्महत्याएँ होती हैं। संघर्ष मनुष्य को आगे बढ़ाने का रास्ता है। यूरोप और अमेरिका के लोगों ने जब तक संघर्ष किया, बहुत आगे बढ़े। अब वहाँ संघर्ष समाप्त हो रहा है, इसलिए उनके पतन के दिन आ रहे हैं।

कोई भी सभ्यता संघर्ष के बिना आगे नहीं बढ़ सकती। जब संघर्ष समाप्त होता है तब उस सभ्यता का अन्त जानो। मैं तो यूरोप में खुलकर कहता था, तुम्हारे दिन गिने हुए हैं। कुछ हद तक अब वे लोग इस बात को मानते भी हैं। मनोवैज्ञानिक, सामाजिक विचारक, इतिहासकार—सब यही कहते हैं।

जिस सभ्यता में संघर्ष समाप्त हो गया, जहाँ बिजली भी मुफ्त मिल जाती है, खाद और बीज भी सस्ते मिल जाते हैं, रेलवे टिकट भी सस्ती मिल जाती है, वहाँ मेहनत क्यों करोगे जी? यह अपंग संस्कृति का लक्षण है। हमारे गाँव के लोग जो हिन्दुस्तान में जीवित हैं वे इसलिये जीवित हैं कि उन्हें पग-पग पर संघर्ष करना पड़ता है। यहाँ से लोग मजदूरी के लिए देवघर जाते हैं, वहाँ एक जगह पर काम के लिए खड़े रहते हैं। कई बार शाम को बिना मजूरी के भी लौटना पड़ता है। घर में खाना नहीं है, बीवी बीमार है, किससे बोलें? किसी से कर्जा लेते हैं, डॉक्टर के पास जाते हैं, वह ढाई सौ रुपये मार लेता है। यह जाँच कराओ, वह जाँच कराओ, एक्स-रे कराओ। इसी संघर्ष में ये लोग अपना जीवन जी रहे हैं।

आप कहते हैं संघर्ष से आदमी आगे बढ़ता है। भारत तो हमेशा संघर्ष करते रहा है, फिर भारत आगे क्यों नहीं बढ़ता?

भारत में कई हजार वर्षों से कुछ ऐसी गलतियाँ होती आई हैं कि इसके विचारों को पंगु बना दिया गया है। विभिन्न धर्म, मत और शासक आए, जिनकी बदौलत विचार निरंतर पंगु होते गए। यहाँ के लोगों को बार-बार बोला गया कि तुम यह काम गलत करते हो, वह काम गलत करते हो। बौद्ध धर्म ने कहा, 'तुम बलि प्रथा बन्द करो, गलत है।' बलि प्रथा भले ही गलत हो, लेकिन वह अभी भी चल रही है वैसी की वैसी। फर्क इतना है कि उस वक्त बलि प्रथा सार्वजनिक होती थी, अब निजी होती है। बन्द नहीं हो सकी। लेकिन इससे हुआ यह कि यहाँ के लोगों के मन में अपूर्णता और हीनता की भावना बढ़ गई।

लोग कहते हैं, 'यहाँ जात-पात बहुत है, छुआछूत बहुत है।' हाँ भाई, छुआछूत बहुत गलत है, पर वह सब जगह है। मुझ से पूछो, मैं तो दुनिया घूमकर आया हूँ, दूसरे देशों में रहकर आया हूँ। जितना नस्लवाद और जातिवाद यूरोप में है, उतना हिन्दुस्तान में भी नहीं है। वहाँ जिप्सी या बंजारा लोग एक हजार साल से रह रहे हैं, लेकिन आज तक उनके रहने के लिए ठिकाना नहीं, क्योंकि वे दूसरी नस्ल के हैं। न वे रूस में बस पाए हैं, न रोमानिया में, न फ्रांस में, न स्पेन में। कहीं भी बस नहीं पाते हैं। चार साल कहीं रहते हैं, फिर वहाँ से निकाले जाते हैं। उनके बच्चे स्कूल में भर्ती नहीं हो पाते हैं, पढ़ नहीं पाते हैं, क्योंकि दूसरी जात के हैं।

हिन्दुस्तान में भी जात-पात है मगर वहाँ जैसा हाल नहीं है। शादी में नाई को बुलाना पड़ता है, उसके बिना काम होगा ही नहीं। घर में कोई पशु मर जाए तो चमार को बुलाना ही पड़ता है। माने उसका भी एक स्थान है। ठीक है, सुधार होना चाहिये, मैं मानता हूँ, मगर हम उतने गिरे नहीं हैं। वहाँ तो एक नस्ल दूसरी नस्ल को सामने देख नहीं सकती। सोवियत संघ के समय युगोस्लाविया एक देश था जिसके बाद में कई टुकड़े किये गए। एक टुकड़े का नाम पड़ा सर्बिया, दूसरे का मैसिडोनिया, तीसरे का बोस्निया, चौथे का क्रोएशिया, पाँचवे का स्लोवेनिया। ये छोटे-छोटे राष्ट्र बन गये। यह कोई पुरानी बात नहीं बतला रहा हूँ, बीसवीं सदी के आखिरी दस-पन्द्रह सालों की बात कह रहा हूँ।

'तुम्हारे यहाँ जाति प्रथा है' ऐसा कहकर हम लोगों के मन में हीनता की भावना बनाई गई है, जबकि जातिवाद और नस्लवाद सारी दुनिया में है। अमेरिका में भी है। वहाँ के मूल निवासियों को रेड इंडियन कहते हैं। उनके रहने के लिए अलग आरक्षित स्थल हैं, जो बड़े उपेक्षित और पिछड़े हुए हैं। ऑस्ट्रेलिया के आदिवासियों को अबॉरीजीन्स कहते हैं, वे भी अलग रहते हैं। उनकी जमीन हथिया ली गई थी, अब उनके निवास स्थल ही अलग हैं। यह हाल है उन लोगों का। फ्रांस में जब कोई लड़की किसी जर्मन लड़के से सम्बन्ध रखती थी तो लड़की को पकड़कर घर में उसका सर मुड़ा देते थे। इतना एक-दूसरे से घृणा करते थे। फ्रांस के लोग इंग्लैण्ड के लोगों को भी एकदम नापसंद करते हैं। फ्रांस में मेरी एक पुरानी शिष्या है, जो कहा करती थी कि अंग्रेजी मूर्खों की भाषा है। आप मेरे गुरु हो और अंग्रेजी बोलते हो, इसलिए हम अंग्रेजी बोलते हैं, नहीं तो अंग्रेजी को लानत है। इस तरह की मानसिकता है वहाँ के लोगों की।

हम लोगों को यहाँ हीनता की भावना सिखाई गई, इस वजह से हम लोग गिरे हैं। दूसरी अहम चीज यह है कि हिन्दुस्तान में जो शासक लोग थे, वे सब भोग में पड़े हुए थे। उन्हें असलियत का कुछ पता नहीं था। नहीं, राजा को प्रजा के साथ रहना पड़ता है, उनकी जरूरतों को समझना पड़ता है।

जब कोई भारतीय संन्यास लेता है और कोई विदेशी भी, तो उन्हें क्या समस्याएँ होती हैं? आखिर दोनों की अलग पृष्ठभूमि होती है।

देखो, एक तो होता है संन्यास आश्रम। गृहस्थ आश्रम देख लिया, वानप्रस्थ आश्रम देख लिया, गरीबी देख ली, अमीरी देख ली, बाल-बच्चे देख लिये,

संन्यास लेकर आश्रम में चले गये वहाँ जिन्दा रहे कुछ दिन तक और मर गये। उसे कहते हैं संन्यास आश्रम। वहाँ कोई समस्या नहीं है, चाहे यूरोपी हो, भारतीय हो, हिन्दू हो, मुसलमान हो, कोई भी हो। न शादी की समस्या, न यह समस्या, न वह समस्या। मगर केवल पचास-साठ की उम्र के बाद ही तो आदमी संन्यास नहीं लेता। संन्यास तो एक भावना का नाम है।

दूसरा होता है संन्यास सम्प्रदाय, जैसे कि ईसाई सम्प्रदाय, शैव सम्प्रदाय या वैष्णव सम्प्रदाय। उसकी दीक्षा होती है, उसकी नैतिकता होती है, धर्माचार होता है। उसके कर्तव्य-अकर्तव्य होते हैं, जिन्हें आचार-संहिताएँ कहते हैं। जो संन्यास सम्प्रदाय में आते हैं, उनमें से कुछ लोग तो उदरनिमित्त आते हैं। आराम से खाना-पीना मिल जाता है। लेकिन उनकी संख्या ज़्यादा नहीं है। अगर कोई इस कारण से संन्यास लेता भी है तो थोड़े समय के बाद बदलाव भी हो जाता है। उसको संगत में जो रहना पड़ता है।

दूसरे लोग हैं, खास करके अठारह-उन्नीस साल की उम्र के, जिनके मन के अन्दर परिवर्तन होता है। उस वक्त एक अकेलेपन का ख्याल आता है और मन में संन्यास की भावना आती है। अधिकांश लोगों के मन में, अठारह से पचीस की उम्र के बीच संन्यास की भावना प्राय: आती है, और उनमें कुछ लोग ऐसे हैं जो संन्यास ले भी लेते हैं। कुछ घर में बोलकर आते हैं, कुछ घर से भागकर भी आते हैं। उनमें ज्यादातर रह जाते हैं, करीब पचीस प्रतिशत लौट जाते हैं, ऐसा अंदाजा है।

अब इन लोगों में, जो रह जाते हैं, किसी-किसी वक्त में किसी-किसी को समस्याएँ भी होती हैं। सबसे बड़ी समस्या है काम वासना। क्रोध, लोभ, ममता या मोह बड़ी समस्या नहीं है। जिनमें मोह-ममता होती है वे पचीस प्रतिशत में आते हैं और पहले ही घर चले जाते हैं। माँ की याद आ रही है तो भैया की याद आ रही है, ऐसी मोह-ममता वाले लोग पहले ही घर चले जाते हैं। बाकियों को सबसे बड़ी समस्या होती है काम वासना की। इनमें कुछ लोग ऐसे होते हैं जो इसको झेल लेते हैं। जैसे सर्दियों में बादल आये, चले गये और धूप आ गई। वह बड़ी समस्या नहीं है, अपना स्वेटर उतार दिया और धूप में बैठ गए। मगर बादल सावन-भादो की तरह घंटों-दिनों तक रहें, सबेरे से शाम तक मन में केवल काम का विचार आए तब जाकर समस्या होती है। तब दो अवस्थाएँ आती हैं—या तो वह आदमी विकृत हो जाएगा या किसी की संगत में पड़ जायेगा, उसे कोई मिल जाएगा। फिर उसके बाद

दो ही विकल्प हैं, या तो वह एकान्तिक, निजी जिन्दगी व्यतीत करे या फिर घर जाकर शादी कर ले। यह सबकी समस्या है, भारतीय लोगों की भी और पाश्चात्य लोगों की भी। फर्क इतना है कि भारतीय समाज इसको स्वीकार नहीं करेगा, जबकि पश्चिमी समाज स्वीकार कर लेता है।

मेरा एक विदेशी संन्यासी शिष्य है जो बारह साल मेरे पास रहा। फिर अपने देश लौटकर शादी कर ली। अभी भी वहाँ के लोग उसे संन्यासी ही कहते हैं। कोई यह नहीं कहता कि गृहस्थ हो गया। उसके पासपोर्ट में, ड्राइविंग लाइसेन्स में, सब जगह उसका संन्यास नाम ही चलता है। समस्याएँ तो सभी मनुष्यों को होती हैं, चाहे भारतीय हो या पश्चिमी, परन्तु पश्चिम के लोग ज्यादा व्यावहारिक और यथार्थवादी हैं। अब बारह साल के बाद मेरे उस शिष्य का मन किया कि शादी कर लें और उसने जाकर शादी कर ली, तो क्या गलती है इसमें? उसे संन्यासी मानें कि नहीं मानें? हम लोग कहते हैं कि संन्यास एक सम्प्रदाय है, पर वे लोग कहते हैं कि संन्यास तो जीवन जीने की पद्धति है, एक आश्रम है। इसलिए पश्चिम में ज़्यादा दिक्कत नहीं है, दिक्कत है यहाँ पर।

उन लोगों के यहाँ एक दिक्कत और कम है। वहाँ बचपन से ही लड़के-लड़कियों को साथ रहने की आदत होती है। माने एक-दूसरे को सहन करने की बचपन से आदत है। लड़के-लड़की के बीच बातचीत, लड़ाई-झगड़ा, दोस्ती, घूमना-फिरना—यह उनके लिये सामान्य है। इसलिये उन पर एक-दूसरे का असर बहुत कम पड़ता है। दस साल वे एक-दूसरे के साथ रह लेंगे, मगर बस, तुम वहाँ हम यहाँ। यह भारतीय लोगों में नहीं हो पाता है। ये बचपन से लड़कियों के साथ रहे नहीं, जब जीवन में अचानक आती हैं तो दिमाग खराब हो जाता है। गलत बात बोल रहा हूँ क्या? यह सहनशीलता हम लोगों में इसलिये नहीं है कि हमें बचपन से उनके साथ रहने की आदत नहीं है। स्वच्छन्द मिलना-जुलना हम लोगों में नहीं है। इसी वजह से थोड़ा भी नजदीक आए तो रिश्ता बन जाता है। अब उसके बाद उपाय क्या है? शादी, और शादी के बाद वे अपने को संन्यासी मानने के लिये तैयार नहीं हैं। पहले अगर इसका नाम पवित्रानन्द था, उसका नाम आत्मानुभवानन्द था, अब वह सब खत्म। कहते हैं हम संन्यासी नहीं, गृहस्थ हैं। भारत और यूरोप में इतना भर फर्क है।

इस समस्या का समाधान केवल एक है—किसी भी हाल में बारह साल तक गुरु का आश्रम छोड़ना नहीं, और वहाँ कर्मयोग ही करना। शारीरिक

परिश्रम में मनुष्य की भावनाओं की निकासी है। हम अनुभव से ही बोल रहे हैं। हम तो बहुत गर्म आदमी थे। हमने जिस जाति में जन्म लिया है, क्षत्रिय जाति, उसका नियम है कोई भी लड़की तुम्हारी। ब्राह्मण या वैश्य जाति में यह नहीं है। हम तो लड़ाई में लड़ने वाले लोग थे। लड़ाई में वहाँ अपनी बीवी थोड़े ही रहती है। हम लोगों को तो सिखाया जाता था इस विषय पर चिंता मत करना। मगर गुरुजी के आश्रम में जो शारीरिक परिश्रम किया जाता है, जैसे खेत कोड़ना, सफाई करना, खाना बनाना, बोझा उठाना, उससे शरीर थक जाता है, भूख बहुत लगती है, पेट अच्छा साफ होता है और अच्छी नींद आती है। माने एक नींद सोना, कोई सपना नहीं। फिर अगर काम विचार आता भी है तो उसे जाना पड़ता है क्योंकि अभी खेत में काम है, पेड़ पर चढ़कर आम तोड़ना है, झाड़ू लगाना है।

जो संन्यासी दिनभर काम में व्यस्त और परेशान रहता है, उसे बीवी की याद कहाँ से आएगी? आएगी भी तो शरद-ऋतु के बादल की तरह छँट जाएगी। आराम की ज़िन्दगी साधक के लिये बहुत खतरनाक है। अपने कमरे में आराम से बैठकर गीता, रामायण और भागवत पढ़ोगे तो एक दिन जरूर फँसोगे। अगर नहीं फँसे तो समझो भगवान की तुम पर विशेष कृपा है।

इसलिए हम अपने संन्यासियों से कहते हैं, स्वाध्याय नहीं, ध्यान नहीं, आसन नहीं, प्राणायाम नहीं, केवल कठोर परिश्रम। हमने अपने जीवन में आसन-प्राणायाम कभी किया नहीं, हाँ सिखाया सबको है। मुझे आसन-प्राणायाम में कभी रुचि नहीं रही। उनके बारे में जानकारी भी नहीं है। कभी किताब भी नहीं पढ़ी। हाँ, किताबें लिखी जरूर हैं और ऐसी की कोई चुनौती नहीं दे सकता। मगर मैंने आसन, प्राणायाम, नेति, धौति, बस्ती, वगैरह का अभ्यास कभी नहीं किया। केवल एक ही चीज की–मेहनत। और मेहनत कब बन्द की? सन् 1983 में। उसके बाद मैंने सब मेहनत बन्द कर दी क्योंकि मैं उस खतरे के क्षेत्र से बाहर हूँ।

इसलिए कर्मयोग एक बहुत महत्त्वपूर्ण चीज है। उससे तुम खतरे से मुक्त हो जाओगे। भले ही एक-आध गलती हो सकती है, मगर किसी प्रकार का बंधन नहीं हो सकता। यदि संन्यासी एक-आध गलती करे भी, मगर संन्यासी रहे और संन्यासी रहकर मरे, तो यह उसकी सफलता ही मानी जायेगी।

दूसरी जरूरी चीज यह कि अच्छा खाना नहीं और अच्छा पहनना नहीं। ठीक खाना, ठीक पहनना। अच्छे खाने और ठीक खाने में फर्क है। लोग

कहते हैं कि साधु के लिए दूध जरूरी है। क्यों जरूरी है जी? दूध में प्रोटीन होता है और प्रोटीन से ही तो सारी गड़बड़ी होती है। प्रोटीन से ही तो तुम पैदा हुए हो। वीर्य का प्रमुख घटक प्रोटीन ही है। इसी तरह शरीर को सुगंधित चीजों की आवश्यकता नहीं। हाँ, शरीर को तेल की जरूरत तो पड़ती है। हम क्या करते थे, नीम का तेल मंगा लेते थे। नीम के तेल से मक्खी-मच्छर नहीं आते और शरीर भी स्वस्थ रहता है। फिर क्यों कपूर का तेल या नारियल का तेल?

अच्छा खाना और अच्छा पहनना साधक के लिये उचित नहीं है। प्रकृति ने मनुष्य के शरीर में इतनी चीजें रखी हैं कि उनके बल पर वह सारी जिन्दगी चला सकता है। थायरॉयड ग्रन्थि का उदाहरण ले लो। करीब बारह-चौदह साल के बाद उसमें से रस या हॉर्मोन निकलना चालू होता है और अधिक-से-अधिक अस्सी वर्ष तक वह चालू रहता है। गोरखनाथ जैसे महात्मा लोग आगे भी चालू रखे हैं, वह बात दूसरी है। सुई की नोक को पानी में डुबाकर निकालो और देखो कितना पानी लगा है, उतना रस वह ग्रन्थि चौबीस घण्टे में देती है। उसी रस के बल पर आपको ठण्ढी में भी ठण्ढ नहीं लगती। थायरॉयड शरीर के अन्दर ताप नियंत्रण की व्यवस्था को नियंत्रित करता है। यह प्रकृति की देन है। अस्सी साल के बाद जब थायरॉयड कमजोर होने लगता है तब स्वेटर की जरूरत पड़ती है, आग की जरूरत पड़ती है, गर्म चाय-कॉफी की जरूरत पड़ती है। यह ताप नियंत्रण व्यवस्था तो तुम लोगों में से किसी की ठीक नहीं है, पर हमारी ठीक है।

मैं यह नहीं कहता कि तुम्हें भोजन नहीं करना चाहिए। जरूर करना चाहिए—अनाज, साग-भाजी, दाल, फल खाओ, लेकिन अण्डा, दूध, घी, मछली, सोयाबीन जैसी चीजों की जरूरत नहीं है। यहाँ बात उन लोगों की चल रही है जो कम उम्र में संन्यास लेना चाहते हैं और संन्यास को जीवन भर निभाना चाहते हैं, प्रकृति के किसी भी विकार में फँसना नहीं चाहते। काम वासना इतनी प्राकृतिक और मौलिक वासना है कि वह भगवान में भी है। आखिर पुरुष और प्रकृति का योग हुआ कि नहीं? दोनों ने मिलकर ही तो सारी सृष्टि पैदा की। संस्कृत में इसे कहते हैं मिथुन। दो विपरीत शक्तियों, दो विपरीत ध्रुवों का आपस में मिलना मिथुन कहलाता है। विज्ञान की भाषा में उसे फ्यूज़न कहते हैं। यह प्रकृति की बहुत बड़ी क्रिया है। इसके ऊपर विजय क्यों प्राप्त करना? इसलिए कि यह मन को एकदम अस्थिर कर देती है, मन

में बड़ी उथल-पुथल मचा देती है। काला सफेद दिखने लगता है और सफेद काला। माने मतिभ्रम कर देता है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा भी है–

संगात् संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥2.62॥
क्रोधात् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥2.63॥

काम वासना शुरू कहाँ से होती है? संग से। संग का मतलब आसक्ति, किसी चीज से चिपक जाना। वहाँ से शुरू होकर वह अंत में बुद्धि को नष्ट कर देती है।

संन्यास लेना बड़ी अच्छी चीज है आज के युग में। राष्ट्र के लिए भी जरूरी है। हम लोग हिन्दुस्तान में अस्सी लाख संन्यासी हैं। अगर हम सब शादी कर लें तो आबादी एक अरब के ऊपर चली जाएगी और अगर अस्सी लाख अन्य लोग संन्यास ले लें तो नब्बे के बदले अस्सी करोड़ रहोगे। उस दृष्टि से तो बहुत अच्छा है।

दूसरी बात, विवाहित जीवन में कितना सुख है और कितना दुःख? कहीं ऐसा तो नहीं कि मथुरा का पेड़ा है, खाने वाला भी पछताए और न खाने वाला भी। अपने माता-पिता, दादा-दादी, मामा-मामी, चाचा-चाची या आस-पड़ोस के लोगों को देख लो। देखने से पता चल जाएगा कि मथुरा का पेड़ा खा रहे हैं या नहीं। अगर तुम यह समझो कि गृहस्थाश्रम में सम्पूर्णता है या मुझे गृहस्थाश्रम की परम आवश्यकता है, तब गृहस्थाश्रम में जाने में कोई हर्ज नहीं। आखिर दुःख झेलना भी तो एक प्रकार का प्रशिक्षण है। लेकिन अगर लगे कि नहीं, हम अकेले रहेंगे, संभाल लेंगे अपने को किसी तरह से, तो फिर तुम्हारे लिए संन्यास मार्ग उपयुक्त है। मगर संन्यासी को उद्देश्यहीन नहीं होना है। संन्यासी भले ही फावड़ा चलाए, पर उसका लक्ष्य होना चाहिये आध्यात्मिक। संन्यास का लक्ष्य सेवा नहीं, अध्यात्म है। अपनी आत्मा की जानकारी प्राप्त करना संन्यासी का लक्ष्य होता है, जो गृहस्थाश्रम में लगभग असम्भव है। अगर असम्भव नहीं तो कठिन जरूर है। अपने शरीर के परे जो इन्द्रियाँ हैं, इन्द्रियों के परे जो मन है, मन के परे जो आत्मा है, और आत्मा के भी परे जो परमात्मा है उसकी जानकारी संन्यासी का लक्ष्य है। अनादिकाल से हम लोगों के ऋषि-मुनियों ने यही बताया है। इसके अलावा संन्यास का दूसरा प्रयोजन नहीं है। बाकी जो तुम

करते हो वह संन्यास को सिद्ध करने के लिए करते हो। तुम यहाँ से अगर बम्बई जा रहो हो, तो वहाँ जाने के लिये तुम्हें कलकत्ता भी जाना पड़ेगा, रास्ते में सोना भी पड़ेगा, चाय-नाश्ता भी करना पड़ेगा, इधर-उधर की बात भी करनी पड़ेगी। उसी तरह, अपने लक्ष्य को सामने रखकर संन्यास में बहुत-से काम किये जा सकते हैं।

स्वामीजी, आपने कहा कि आत्मज्ञान गृहस्थ के लिये असम्भव नहीं तो कठिन जरूर है। क्यों?

इसलिए कि गृहस्थाश्रम को समाज के इशारे पर चलना पड़ता है। समाज का दबाव है कि ऐसे रहो, ऐसे सोचो, ऐसे पहनो, ऐसा करो, ऐसा मत करो। सब समाज के गुलाम हैं। आदिकाल में गृहस्थाश्रम को भी उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति का एक अंग माना जाता था, लेकिन आज गृहस्थाश्रम का लक्ष्य केवल उपार्जन और उपभोग रह गया है।

संन्यासाश्रम उतना कठिन नहीं जितना लोग सोचते हैं। विशेषकर लड़कियों को कोई खास दिक्कत नहीं है। घर छोड़ना तो उनके लिए स्वाभाविक आदत है। मुश्किल केवल यही है कि वे साधना ठीक ढंग से करें। साधना में पहली चीज है कर्मयोग। गीता में भी श्रीकृष्ण ने कर्मयोग के बारे में पहले कहा है। राजयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग बाद में आया है। कर्मयोग नींव है और स्वामी शिवानन्दजी भी कहते थे, पहले सेवा। गुरु सेवा और आश्रम जीवन का जो महत्त्व है, उसे केवल हम नहीं कहते बल्कि शास्त्रों में भी जगह-जगह बोला गया है। राम जी ने गुरु-सेवा की, कृष्ण जी ने गुरुजी की सेवा की। गुरु-सेवा का मतलब क्या होता है? गुरु का कपड़ा धोना? आखिर कितना साफ करोगे मेरी लंगोटी को, एक ही तो है। गुरु सेवा का मतलब होता है आश्रम की सेवा करना या जो भी काम गुरु दे उसे पूरा करना। अगर गुरु जी कह दें कि वहाँ गाँव में चले जाओ, झोपड़ी बना दो और सबको हल चलाना सिखाओ, तो वही करो।

युवावस्था में ऊर्जा बहुत रहती है। उस ऊर्जा को दिशा की जरूरत है। यह दिशा है कर्मयोग। हमारे गुरुजी ने हमें जो मंत्र दिया था, उसके अलावा हम कोई साधना नहीं करते थे। हमारे गुरुजी ने कहा था, 'अभी साधना मत करो। तुम्हारी गाड़ी अभी आई नहीं है, प्लैटफॉर्म पर ही समय बिताओ।' हमने कहा, 'ठीक है, तो कितना समय निकालना है?' उन्होंने

कहा, 'चालीस-पचास साल।' अगर तुम रेल्वे स्टेशन पर तीन घण्टे पहले आ जाओगे तो गाड़ी तुम्हारे लिए जल्दी थोड़े ही आ जाएगी। तुम्हें तो समय निकालना है, चाहे मूँगफली खाओ, प्रतीक्षा कक्ष में बैठो, अखबार पढ़ो या प्लैटफॉर्म पर खड़े होकर किसी से बात करो। मैंने समय निकाला। जो ऊँची साधनाएँ होती हैं, उनके लिये योग्य होना चाहिये।

संन्यास का मुझे जरा भी ख्याल नहीं था। मैं तो ऐशो-आराम की जिन्दगी बिताता था। मुझे यह भी नहीं मालूम था कि माँस खाना या मदिरा पीना खराब है। किसी ने नहीं कहा था। यह तो गुरुजी के आश्रम में आने के बाद पता चला। संन्यास का मुझे बिल्कुल विचार नहीं था। किताबों में पढ़ा था कि आध्यात्मिक अनुभव होते हैं। तब एक योगिनी से सम्पर्क हुआ जिसने मुझे अनुभव कराया और मेरा दिमाग बदल गया। मेरा सारा कार्यक्रम चौपट हो गया। मैं तो खूब पैसा कमाना और आराम की जिन्दगी चाहता था। मैंने जब घर छोड़ा तो संन्यास के लिये नहीं, बल्कि मैं तो गुरु खोजने निकला था। संन्यास क्या होता है, मुझे पता भी नहीं था। हाँ, हमारे यहाँ आनन्दमयी माँ और स्वामी नित्यानन्द जी जैसे कई महात्मा आते-जाते थे पर मैंने कभी ख्याल नहीं किया। जब उस योगिनी ने मुझे अनुभव करवाया तब उसने कहा, अगर तुम्हें स्थायी अनुभव चाहिए तो तुम गुरु खोजो। तब गुरु की खोज में निकला, खोजते-खोजते गुरु भी मिल गए, पर तब भी मैंने संन्यास स्वीकार नहीं किया। संन्यास तो मेरी खोपड़ी में था ही नहीं। घर छोड़ने के बाद भी नहीं था।

मेरे कहने का मतलब यह कि जिसको संन्यासी बनना है, वह बनेगा ही। दूसरों से दिल लगाना, पुरानी बातों को याद करना, यह मेरा स्वभाव कभी रहा ही नहीं। जो मर गया सो मर गया। संन्यास है तो बहुत अच्छी चीज, लोगों को सोचना भी चाहिए इसके बारे में, मगर जिसे संन्यास लेना है उसके मन में दो विचार नहीं होते। जिस प्रकार आत्महत्या करने वाले के मन में दो विचार नहीं आते, आत्महत्या करूँ या न करूँ, उसी प्रकार संन्यास के प्रति दो विचार नहीं आते। मुझसे एक व्यक्ति ने कहा, मरने को जी चाहता है। मैंने कहा, तो मर जाओ न! उसने कहा, अगर आप कहो तो। मैंने कहा, देखो, जो पूछता है वह आत्महत्या नहीं करता। इसी तरह जो पूछता है वह संन्यास नहीं लेता। संन्यास एक तरफा मार्ग है। यह तो अपने अन्दर का दृढ़ संकल्प है। अगर अपने भीतर दृढ़ कल्पना, दृढ़ निश्चय है, तभी संन्यास लेना।

– 7 नवम्बर 1997



अध्याय 7

गाँवों में ज्यादातर लड़कियों में अब तक भी पढ़ाई का शौक नहीं है। इनको पता नहीं है कि पढ़ाई से इनका भविष्य सुरक्षित होगा। इन लोगों के दिमाग में घुसा हुआ है कि स्त्री की सबसे अधिक सुरक्षा विवाहित जीवन में है। शहरों में वातावरण कुछ बदल रहा है। लड़कियाँ समझने लग गई हैं कि उनकी सुरक्षा शिक्षा और नौकरी-पेशे में भी हो सकती है। स्वावलम्बन की भावना अगर लड़की के दिमाग में चली जाए तो बहुत कुछ हो सकता है, क्योंकि लड़कियाँ बहुत अच्छे नम्बर लेकर पास हो सकती हैं। शहरों में जो परीक्षाएँ होती हैं उनमें लड़कियों का परिणाम बहुत अच्छा निकलता है।

लड़कियों के मन में हजारों सालों से एक चीज घुसी हुई है कि उनका भविष्य विवाह है और यही बात हमलोग उनके मन में डालते हैं। विवाहित जीवन भविष्य का एक संस्कार है जो प्राय: सबको करना है, लेकिन विवाहित जीवन ही लड़की का भविष्य हो, यह सम्पूर्ण नहीं, आधा सच है। यह बात अगर लड़कियाँ जल्दी नहीं समझेंगी तो आगे जाकर उन्हें मौका नहीं मिलेगा। अभी तो लड़कियों को बहुत सुविधाएँ मिल रही हैं, नौकरियों में बहुत-सी सुविधाएँ मिलती हैं। आगे जाकर बन्द हो जायेंगी, फिर मर्दों से टक्कर लेनी होगी।

इसलिए लड़कियों के मन में शिक्षा के प्रति सद्भाव और उत्साह, यह दोनों देना माता-पिता का कर्तव्य है। हमारे शास्त्र इस बात पर जो जोर देते हैं, उसे हमलोग भूल गए हैं। हमारे वैदिक धर्म में, जिसे आप हिन्दू धर्म कहते हैं, विवाह का चुनाव लड़की पर छोड़ा गया है, माता-पिता पर नहीं। हमारे धर्मशास्त्र कहते हैं कि लड़की को स्वयं वर-वरण का अधिकार है। स्वयंवर का यही मतलब होता है, खुद चुनना। लड़की चुनती है खुद। प्राचीन काल में तो

होता ही था, कथाओं में पढ़ा होगा। उस स्वयंवर के भी अलग-अलग तरीके होते थे। कहीं पर मत्स्यभेदन होता था, कहीं पर धनुष यज्ञ होता था। कहने का तात्पर्य यही है कि हालाँकि विवाह समाज का एक बहुत बड़ा आधार है, समाज की अत्यंत अनिवार्य क्रिया है, पर फिर भी केवल यही लड़की का भविष्य नहीं है। आने वाले युग में लड़की का भविष्य सिर्फ विवाह नहीं हो सकता।

हर धर्म, हर समाज, हर व्यक्ति को अपनी आलोचना सुनने की आदत होनी चाहिए। कबीरदास जी कहते थे, 'निन्दक नियरे राखिये'। आखिर दुनिया में किसी ने अपना चेहरा तो देखा नहीं है। अगर देखा है तो किसी दूसरे या दर्पण के सहारे। अगर दूसरा नहीं होता या दर्पण नहीं होता तो पता ही नहीं लगता अपना चेहरा कैसा है। सन्त-महात्मा कहते हैं कि जिस तरह से मनुष्य अपना चेहरा नहीं देख पाता है उसी तरह से मनुष्य अपने स्वभाव को भी नहीं देख पाता है। आपको अपने विचारों की थोड़ी बहुत जानकारी हो सकती है, मगर आपको अपने मन की जानकारी नहीं है। किसी को भी नहीं है। मनोवैज्ञानिक भी यही कहते हैं। मनुष्य अपने विचारों को भले ही थोड़ा-सा देख ले, पर एक चीज है मन, जिसे कोई नहीं देख सकता है।

स्वामीजी, मुझे समस्या है। मैं सत्संगों में जाता हूँ, यहाँ भी आता हूँ, मगर मन्दिर नहीं जाता। वहाँ जो पण्डे-पुजारी होते हैं, उनसे एलर्जी होती है। मन्दिर में जो पैसा माँगते हैं मुझे देने की इच्छा नहीं होती। अमरकंटक गया, वहाँ भी मन्दिरों में पैसा देने की इच्छा नहीं हुई, पर वहाँ जो यात्री थे उनकी सेवा करने की इच्छा रही। यह समस्या क्या है मुझे समझ में नहीं आती?

हर एक आदमी का अपना-अपना विचार और विश्वास होता है। बहुत-से लोग मन्दिर में प्रसाद लेकर पैसा चढ़ाने में संकोच नहीं करते, और बहुत-से लोग चाहेंगे कि पैसा यहाँ न देकर बाहर गरीबों को दिया जाए। यह अपना-अपना विचार है। सबके विचार अगर आप ही की तरह हों, या सभी के विचार केवल मेरी तरह हों तब तो समाज चलेगा नहीं। हमारा मन्दिर बनाने का मन करता है, पर तुम कहोगे मन्दिर बनाकर क्या करोगे, अस्पताल या अनाथालय बनाओ। तुम भी ठीक कहते हो, मगर सारे लोग अनाथालय ही बनाते जाएँगे तो बीमार लोग कहाँ जाएँगे? सब लोग अस्पताल के लिये चन्दा दें तो फिर अनाथ लोग कहाँ जाएँगे? समाज को मन्दिर की भी आवश्यकता

है, अस्पताल, अनाथालय और धर्मशाला की भी जरूरत है, और साथ ही समाज के लोगों को होटल की भी जरूरत है।

हमारे वैदिक धर्म में अर्थशास्त्र जुड़ा है। अर्थशास्त्र के बिना न तो धर्म का महत्त्व है, न मोक्ष का, न ही समाज का। जब पैसा ही नहीं रहेगा तो समाज कैसे चलेगा? आपने अभिषेक के लिए इक्यावन किलो दूध ले लिया, किसी का दूध बिक गया, छः-सात सौ रुपये की कमाई हो गई। भगवान की पूजा की जितनी हमें आवश्यकता है उतनी ही उन लोगों की पेट-पूजा की आवश्यकता है। भगवान की पूजा करके अगर किसी की पेट-पूजा न करवा सकें तो भगवान की पूजा बेकार है। हिन्दुस्तान के मंदिरों में लोगों के जाने से लाखों-करोड़ों लोगों का पेट-पालन होता है। अगरबत्ती बिकती है, केला बिकता है, माला बिकती है, दोना बिकता है, धूप बिकता है, सिन्दूर बिकता है, पेड़ा बिकता है। अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ हमारे धर्म में बताये गये हैं। जैसे सब्जी में नमक, हल्दी, जीरा और पानी भी मिला-जुला रहता है, वैसे ही ये चारों पुरुषार्थ एक-दूसरे से मिले-जुले हैं।

समाज में केवल मन्दिर की जरूरत नहीं है। मन्दिर समाज का एक क्षेत्र मात्र है। कई लोग मरते समय अपना पैसा तालाब वगैरह बनाने के लिये दान दे जाते हैं। कोई धर्मशाला के लिए दे जाते हैं, बहुत-से लोग अस्पताल के लिए दे जाते हैं। बहुत लोग किसी ट्रस्ट को दे जाते हैं अच्छे विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति के लिए। समाज की अनेकों आवश्यकताएँ हैं। इसमें आपका एक विचार है, उनका विचार दूसरा है, सबका विचार अलग है।

हर एक आदमी अपना एक विचार लेकर पैदा होता है। यमुनोत्री का मन्दिर सन् 1988 में बाढ़ आने से बह गया तो एक जन ने करोड़ों रुपये देकर मन्दिर बनवा दिया। ठीक है, हजारों मिस्त्रियों को काम मिला। आखिर हम या आप जो मन्दिर जाते हैं पर्यटक बनकर थोड़े ही जाते हैं। वहाँ तो हम देवता की शरण में जाते हैं, देवता से कुछ याचना करने के लिये जाते हैं, देवता को कुछ समर्पण करने को जाते हैं।

समर्पण के भाव से जाएँ और उनका उल्टा-सीधा व्यवहार हो, तो व्यवहार देखकर मन नहीं करता मन्दिर जाने को।

व्यवहार के बारे में आपका अपना नज़रिया भी तो हो सकता है। अगर आपका बस चले तो मुफ्त में पूजा करवाकर आ जाइयेगा, साथ में प्रसाद भी लेते

आइयेगा। मगर हम कहते हैं कि नहीं, हम भगवान को कुछ नहीं दे रहे हैं। हम भगवान के नाम पर दे रहे हैं और दे रहे हैं इसी जनता को। एक बूढ़े पण्डे को पचास रुपये मिल गये, इससे उसके बच्चे पढ़ेंगे। फूलवाली के फूल बिक गए सौ-पचास, उसके बच्चे पढ़ेंगे। भगवान को न तो केले की जरूरत है, न फूल की और न ही गंगा जल की, क्योंकि वही तो सबको देने वाला है। चन्द्रमा और सूर्य उसकी आँखें हैं, दीपक हैं। अब जिसके पास इतने बड़े दीपक हों, उसकी तुम आरती करो, कितनी अचरज की बात लगती है!

जब हम मन्दिर में जाते हैं, तो वहाँ अपनी भावना समर्पित करते हैं। अपनी कंजूसी समर्पित करते हैं, अपने छोटेपन को समर्पित करते हैं। मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी क्या है? छीनना-झपटना ही मनुष्य का काम है, वह देता कुछ नहीं। केवल टट्टी और पेशाब करता है। दुनिया में जितने भी अन्य जीव हैं, जितने भी पशु-पक्षी हैं, वे निस्संकोच देते हैं। गाय दूध देती है, मुर्गी अण्डा देती है, मगर मनुष्य छीना-झपटी करता है। यही उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है।

दुनिया में जितने भी जीव हैं वे परमार्थ के लिये जीवित रहते हैं, जबकि मनुष्य स्वार्थ के लिये जीवित रहता है। मरने के बाद भी उसका कोई काम नहीं आता है। घरवाले कहते हैं इसे जल्दी निकालो, पता नहीं भूत बनकर खा जाएगा! अब इस स्वार्थी इन्सान को परमार्थ की ओर मोड़ने के लिए शास्त्रों ने देने का तरीका बताया। मन्दिर को दो, गरीब को दो, अन्धे को दो, कोढ़ी को दो। दूसरे को देना, यह मनुष्य का धर्म होना चाहिए।

वैसे जो मन्दिर जाते हैं न, सब बीमार हैं। जैसे शरीर का बीमार अस्पताल जाता है, वैसे मन का बीमार मन्दिर जाता है। मन की बीमारी क्या है? चिन्ता, शोक, भय—अभी ये तीन मन की बीमारियाँ बता रहा हूँ, पर मन की और भी कई बीमारियाँ हैं, जिन्हें रामचरितमानस में मानस रोग कहा गया है। तीन-तीन मानसिक बीमारियों से ग्रस्त प्राणी कहाँ जाएगा? डॉक्टर के यहाँ जाएगा, अथवा वैद्यनाथ, बद्रीनाथ या केदारनाथ जाएगा? मन की बीमारी का इलाज केवल भगवान के दर्शन, पूजा, आराधना और शरणागति में है।

अब सवाल यह है कि जिस मन्दिर में तुम जा रहे हो, आखिर उस मन्दिर का भी कोई ढाँचा है, कुछ प्रशासन है, व्यवस्था है, रोशनी है, दरवाजे हैं। उन्हें कौन देखेगा? जो देखेगा उसका घर कैसे पलेगा? इसलिए हमारी परम्परा ने कहा कि ठीक है, मन्दिर में कुछ चढ़ा दो। सबको कुछ-न-कुछ मिल



जाएगा। जो द्वारपाल है उसे पाँच सौ रुपया महीना मिल जाएगा। पुजारी जी पढ़े-लिखे हैं, उन्हें दस-पन्द्रह हजार रुपया महीना मिल जाएगा। यह व्यवस्था हमारे ऋषि-मुनियों ने की, अन्यथा भगवान को कुछ नहीं चाहिए। ईश्वर समर्पण, प्रेम और भक्ति के अलावा तुमसे और कुछ नहीं चाहते।

मंदिर को चलाने के लिए पैसे की जरूरत तो पड़ती ही है, और वह पैसा कहाँ से आएगा? तुम और हम देंगे न? आप अखबार का ग्राहकी शुल्क देते हो, क्लब का सदस्यता शुल्क देते हो, पर मन्दिर का शुल्क देते हो? नहीं। हाँ, मैं यह मानने के लिये तैयार हूँ कि कुछ चीजों के कारण हमारे मन्दिरों के कर्मकाण्ड अव्यवस्थित हो गए हैं। ठीक से मंत्र-पाठ नहीं करते, ठीक से रहते नहीं, आदतें थोड़ी खराब हैं, मंदिर गंदा है। इन कमियों को हम स्वीकार करते हैं, मगर मंदिरों की आवश्यकता ही नहीं, ऐसी बात नहीं। अगर भगवान के पास जाएँ और सिर्फ नमस्कार करके आ जाएँ तो पुजारी भूखा मर जाएगा!

बहुत-से लोगों को मन्दिर में जाने से आराम मिलता है, शान्ति मिलती है। आत्म-विचार होता है, कुछ बुराइयाँ हटती हैं। मगर कई लोगों को इसकी जरूरत नहीं है, वे नहीं जाते हैं। उन्हें केवल देखना, हरे-भरे मैदानों और ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों की खुली हवा में सैर-सपाटा पसन्द है। अब ऐसे लोगों के लिये समाज में कुछ होना चाहिए। हमारे समाज में विभिन्न आवश्यकताओं वाले लोग रहते हैं और उनके लिये हमें विभिन्न चीजों का, विभिन्न स्थानों का इन्तजाम करना होगा। केवल मन्दिरों से काम नहीं चलेगा। बहुत-से लोगों को एकान्त और शान्त स्थान चाहिए। मनाली में चारों ओर ऊँचे पहाड़ हैं, कोई मकान नहीं है, नीचे नदी बहती है। अपने बीवी-बच्चों को लेकर वहाँ पर चले जाओ और पन्द्रह-बीस दिन बिताओ। कुछ यह करो, कुछ वह करो और चार-पाँच हजार रुपया खर्च कर लो। खर्चा किए बिना अर्थशास्त्र लंगड़ा हो जाता है।

अर्थशास्त्र का आखिर रहस्य क्या है? जेब से पैसा निकालो। समृद्धि का अर्थ सिर्फ कमाना नहीं होता, खर्चा करना भी होता है। यह अर्थशास्त्र है। तुम किसी से शॉल खरीदोगे, किसी होटल में जाओगे तो किसी की आमदनी होगी। किसी से साड़ी खरीदोगे तो किसी की साड़ी बिकेगी और कल उसकी ही बीवी के लिए साड़ी खरीदी जाएगी। समृद्धि का रहस्य है खर्चा करो, बैंक में मत रखो। बच्चों के लिए बैंक में जमा करके रखना फालतू बात है। यह बात हमेशा के लिए याद रख लो। समृद्धि का रहस्य पैसा जमा करना नहीं, बल्कि पैसा खर्च करना है। सोना-चाँदी, हीरा-मोती लॉकर में जमा करके रखने का मतलब है अर्थव्यवस्था को लंगड़ा कर देना।

जब तक आदमी खर्चा नहीं करेगा उसे आमदनी का ख्याल ही नहीं आएगा। घर में दस तोला सोना पड़ा हो, बैंक में पैसा पड़ा हो, दो-चार मकान किराए पर दिये हों तो आदमी का संघर्ष ही खत्म हो जाता है। जिस जाति में संघर्ष नहीं होता वह जाति कभी उठ नहीं सकती। जो आदमी संघर्ष करता है वही उठता है। संघर्ष मनुष्य के भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन के लिए, आनन्द की प्राप्ति के लिए अति आवश्यक है। एक उदाहरण देता हूँ। गर्मी के दिन तीन मील चलकर आओ और कोई तुम्हें ठण्ढा पानी पिलाए तो बहुत अच्छा लगेगा। लेकिन ठण्ढे कमरे में बैठे हो और कोई तुम्हें बुलाए कि आकर पानी पी लो तो कहोगे, अभी नहीं पीना है। पानी का मजा तब जब प्यास लगे। शीतलता का आनन्द तभी ले सकते हो जब गर्मी लगे।

संघर्ष चाहे व्यापार में हो या व्यवसाय में, चाहे राजनैतिक जीवन में हो या पारिवारिक जीवन में, जो आदमी संघर्ष करना नहीं चाहता, उसके लिए सब रास्ते बन्द रहते हैं। जिन जातियों ने संघर्ष करना छोड़ा उन लोगों का क्या हुआ? यूनान मिट गया, रोम मिट गया, मिस्र मिट गया। हिन्दुस्तान भी मिट गया। हिन्दुस्तान की सभ्यता किसी समय बहुत ऊँची थी, दुनियाभर के लोग यहाँ आते थे। इसे तो सोने की चिड़िया कहा जाता था। पर मिट गया। क्यों मिटा? संघर्ष खत्म। यहाँ पानी है, यहाँ छः मौसम होते हैं। यहाँ के लोगों को कुछ संघर्ष नहीं करना पड़ता है। कुछ मिल जाता है, सालभर निकाल लेते हैं किसान लोग। महीने में चार-पाँच सौ कमाई हो जाती है, महीना निकाल लेते हैं। यूरोप में छः महीने बर्फ पड़ती है। ग्रीनहाउस में सब्जी उगानी पड़ती है। चौबीस घण्टे गर्म कपड़े पहनने पड़ते हैं। हर कमरे में हीटर रखना पड़ता है। कैरोसीन चूल्हा नहीं जला सकते। यह सब संघर्ष उनको करना पड़ता है।

लेकिन यह भी तो कहा जाता है कि संघर्ष के बजाय संतोष करना चाहिए।

संतोष का मतलब क्या होता है, वह बाद में बताऊँगा, पहले संघर्ष को समझना होगा। संघर्ष का मतलब होता है निरंतर घर्षण। परिस्थिति इधर को जा रही है और तुम उधर को जा रहे हो, उसे कहते हैं संघर्ष। प्रतिकूल परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाना, यह संघर्ष है। रही बात संतोष की, जिन-जिन जातियों में संतोष का पाठ पढ़ाया वे सब जातियाँ आज गरीब हैं। केवल गरीब ही नहीं, पिछड़ी भी हैं। केवल पिछड़ी नहीं, अपाहिज हो गई हैं। यह हालत है। बीसवीं शताब्दी खत्म हो रही है, इक्कीसवीं शताब्दी शुरू हो रही है, पर यहाँ सत्तर प्रतिशत लोगों के लिए ठीक-सा शौचालय नहीं है। उनको संतोष है क्या? नहीं, उनको इस स्थिति में रहना पड़ रहा है, इसलिए रह रहे हैं। सुबह चार बजे उठकर जंगल में टट्टी करने जाते हैं, करना पड़ रहा है। हम इसको संतोष नहीं कहते।

हम संतोषी हैं। क्यों? इसलिए कि हमारी कोई इच्छा ही नहीं है। संतोष उसे होना चाहिए जिसकी कोई इच्छा न हो। इच्छाओं के रहते उन्हें दबाना संतोष नहीं, दमन है। तुम पड़ोसी का टीवी देखते हो, उसकी मोटरसाईकल देखते हो, उसके गहने देखते हो, उसका घर देखते हो, तुम्हारे मन में भी इच्छा होती है, बीवी-बेटे से बात भी करते हो। तब कहो संतोष कहाँ गया? यह सब पाखण्ड है, ढोंग है।

कहते हैं संतोष से मानसिक शान्ति मिलती है।

वैसा संतोष तो करना ही पड़ता है। उस संतोष को दूसरे शब्दों में कहेंगे मन मार के रहना। तुमने किसी से कुछ माँगा, उसने कहा, नहीं। तब तो मन मारकर बैठना ही पड़ेगा। ऐसा संतोष, इच्छाओं को दबाना है, और कुछ नहीं। जब तक तुम्हारे मन में इच्छाएँ, लालसाएँ और कामनाएँ हैं तब तक संतोष नाम की कोई वस्तु नहीं है। संतोष एक स्वाभाविक अवस्था है, जो तब आती है जब इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं। नहीं, इच्छाएँ खत्म नहीं होती हैं, उनका रूप बदल जाता है। जो इच्छाएँ पहले व्यक्तिगत जीवन को लेकर होती हैं कि मेरी गाड़ी हो, मेरा घर हो, मेरी सम्पत्ति हो, मेरा यह हो, मेरा वह हो, जब वे दूसरों के लिए होने लगती है, जब आदमी दूसरों के बारे में सोचने लगता है, तब उसको संतोष की प्राप्ति होती है, वरना नहीं होती। यह हम अपने अनुभव से कह रहे हैं।

इच्छा मनुष्य की विशेषता है। जिसको इच्छा नहीं होगी वह तो पागल है, मूढ़ है। इच्छा मनुष्य की पहचान है। इच्छा का मतलब क्या होता है? कुछ प्राप्त करने का मन, कुछ खाने का मन, किसी जगह जाने का मन, किसी से प्रेम करने का मन, किसी से मिलने का मन, किसी किताब को पढ़ने का मन, मन्दिर में जाने का मन, तीर्थयात्रा करने का मन, इंग्लैंड देखकर आने का मन—इसको कहते हैं इच्छा। उसकी साड़ी बहुत बढ़िया है, हमारे पास भी हो, इसको कहते हैं इच्छा। आकांक्षा, अभीप्सा, लालसा, महत्त्वाकांक्षा—ये इच्छा के अलग-अलग नाम हैं। महत्त्वाकांक्षा क्या है? हम विधायक बन जाएँ, विश्वविद्यालय के कुलपति बन जाएँ, अखबारों में हमारी तस्वीर छपे, हमारी किताब पाँच लाख बिके, इसे कहते हैं महत्त्वाकांक्षा—महत्त्व की आकांक्षा।

इच्छा मनुष्य के जीवन का सपना है, इसे खत्म नहीं करना चाहिए। इसलिये संतोष की बात तो करो ही मत। जो भी संतोष के बारे में बोलता है वह केवल राजनीति है। संतोष हो तो बहुत अच्छा, मगर संतोष है क्या? मन को मारना संतोष नहीं है। संतोष का मतलब है, मुझे जो चीज मिल गई है, मेरे लिये उतनी ही ठीक है। बाकी सब दूसरों के लिए है। माँ क्या करती है? बच्चे को खाना देती है, पति को खाना देती है, सास-ससुर को खाना देती है, और जो बचता है खाती है। उसे कष्ट होता है क्या? वह सच्चा संतोष है।

हमारे बुजुर्गों को संतोष हो गया, पर आज हमको इच्छाएँ हों, तो उसके साथ कैसे समझौता किया जाए?

नहीं होगा, पीढ़ियों का फासला जो है। पहले के ज़माने में बड़ा जो कहता था छोटे को, छोटा चुपचाप मान लेता था, मगर अब के ज़माने में नहीं है। आज के लोग मानते हैं कि वे ही अपने भविष्य के निर्माता हैं, और बात सही है। इस बात को हर व्यक्ति याद रखे। कोई किसी का रास्ता नहीं, कोई किसी का आधार नहीं है। न पति, न पत्नी, न बाप, न बेटा, न गुरु, न चेला। हर एक अपने भाग्य को लेकर आता है और अपने भाग्य को लेकर जाता है। सबकी अपनी-अपनी नियति है। अब जब मेरी अपनी नियति है तो मेरे पिता को मेरी नियति में दखल देने का कोई हक नहीं है। मैं मानता हूँ तुम मेरे पिताजी हो। वैसे वह भी मैं मानने को तैयार नहीं हूँ। मैं तुम्हारा बेटा इसलिए बना क्योंकि एक बायोलॉजिकल एक्सीडेंट, एक जैविक दुर्घटना हो गई। क्या तुमने मुझे पैदा करने के लिये योजना बनाई? आप लोग बुरा नहीं मानना, पर

क्या किसी के बाप ने उसे पैदा करने के लिए कोई प्लानिंग की? क्या सच्चे दिल से ब्रह्मचर्य का पालन किया? या देवी-देवताओं की अर्चना की? क्या ऐसे किसी यम-नियम का पालन किया कि राम, हनुमान, बुद्ध या महावीर जैसे पुत्र को जन्म दूँ? नहीं, भोग के समय तुम पैदा हो गए, हम पैदा हो गए। हम तो पशु-सृष्टि हैं अपने माता-पिता की। कुत्ता, बिल्ली, हाथी, घोड़ा, बकरी, कीट-पतंग जैसे पैदा होते हैं, हम भी वैसे पैदा हुए। अब ऐसे बच्चे से तुम क्या आशा करोगे? और ऐसे माता-पिता से आप क्या आशा करोगे?

इस प्रक्रिया में माता भी तो शामिल है न?

माता की भूमिका ज्यादा है, पिता की कम। बच्चे के जीवन के लिए माता जिम्मेदार है, क्योंकि बच्चा उसके पेट से पैदा होता है, उसके साथ रहता है, उसका दूध पीता है। पहली आवाज उसकी सुनता है, पहली संगत उसी की पाता है, पहला स्पर्श उसी का पाता है। बच्चा तो माँ का होता है, बाप का नहीं। कानूनी दृष्टि से भले ही बाप का हो, मगर वैज्ञानिक दृष्टि से बच्चा माँ का होता है।

जीजाबाई ने शिवाजी को कैसे पैदा किया? गर्भधारण करने के पहले वह घोड़े पर चढ़कर पहाड़ चढ़ती-उतरती थी, दौड़ती थी। उसने अपने अन्दर पहले संस्कार तैयार किया। प्रह्लाद को गर्भ में धारण करने के लिए माँ ने अपने आपको तैयार किया। भगवान बुद्ध को गर्भ में धारण करने के लिए उसकी माँ महामाया ने अपने को तैयार किया। लव और कुश को तैयार करने के लिये सीताजी को वाल्मीकि आश्रम में रहना पड़ा। ये तैयारियाँ हैं। माँ इसके लिये जवाबदेह है। मनोविज्ञान भी कहता है कि सात वर्ष तक बच्चे को जो कुछ भी सिखाना है वह माँ सिखा सकती है– *माता प्रथमो गुरुः*। माँ पहली संरक्षक, पहली मार्गदर्शिका है। बौद्धिक शिक्षा सात साल के बाद शुरू होती है जिसे पुराने जमाने में उपनयन, गुरुकुल आदि नामों से पुकारते थे।

आज हमारे समाज में बच्चे जो गुमराह हैं, वे माँ की वजह से हैं, क्योंकि माँ तो खुद फूहड़ गंवार है। सत्तर प्रतिशत माताएँ गंवार हैं। जिसे तुम्हारी प्रथम शिक्षिका होना चाहिए वह अयोग्य है। उसे मालूम नहीं कि मनोविज्ञान क्या है, बच्चे को किस तरह से क्या संस्कार देने चाहिए। आने वाली शताब्दी में बच्चों को किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा? माँ-बाप दोनों को सबेरे काम पर निकलना पड़ेगा तो बच्चे का क्या करेंगे? घर पर छोड़कर जाएँगे

क्या? बच्चे को 'बेबी सिटर' के हवाले करना पड़ेगा। यह एक नई संस्कृति जो यूरोप में है, जिसमें बड़े-बड़े घर की लड़कियाँ इस तरह बच्चों की देखभाल का काम करती हैं, अब भारत में भी आने वाली है।

इसी तरह सवाल उठेगा उनकी शादी का। 'जब तक तुम कमाते नहीं, तब तक तुम शादी मत करो,' ऐसा आपको उपदेश देना होगा, 'हम तो तुम्हारी शादी करायेंगे नहीं, यह पक्की बात है बेटा। हम पर भरोसा मत करना। अब रह गया यह मकान, यह ज़मीन-जायदाद, हम वसीयतनामा तैयार करके यह सब दे रहे हैं किसी ट्रस्ट को। हमें अनाथालय बनाने की इच्छा है, हमने अपने सचिव से कह दिया कि हमारे मरने के बाद उसको दे दिया जाए, तुमको नहीं, याद रख लो। इसलिये हमारे भरोसे मत रहो तुम। शादी तुम जरूर करो, मगर हमारा कहना है कि जब तक तुम अपने पैर पर खड़े न हो पाओ, अपना बीमा नहीं दे सको, अपनी पत्नी का बीमा नहीं दे सको, अपना घर किराये पर न ले सको, शादी नहीं करना। क्योंकि शादी माने घर में सफ़ेद हाथी को लाना।'

गलत बात नहीं बोल रहा हूँ। यह जो शादी के पीछे पागलपन है, इसे रोकना पड़ेगा। नहीं तो लड़की के पैदा होते ही उसकी शादी के बारे में सोचने लग जाते हैं। यह शादी का जो बुखार हमारे समाज को चढ़ा है, यह आज के युग के अनुकूल नहीं है। शादी जीवन की आवश्यकता है, हम शत प्रतिशत मानते हैं। हम यह नहीं कहते कि शादी के बिना समाज चले, मगर जिस बुखार के साथ आज हम हैं, शादी हमारा मानसिक रोग हो गया है। बाल सफेद हो जाते हैं माता-पिता के। कई लोगों को तो दिल का दौरा हो जाता है। नहीं होता है क्या?

बच्चा चौदह साल का होने लगे, उसे एक साल पहले नोटिस दे दो– 'बेटा, देख अब तू मर्द हो रहा है। अगले साल से तुझे कोशिश करनी है अपने पैरों पर खड़े होने की। तुझे अपनी कमाई खुद करनी होगी। सबेरे जाओ, अखबार बेचो, इतनी तुमको सलाह दे सकते हैं।' लड़का सोच सकता है, 'अरे बाप रे! हमारे बाप का इतना बड़ा पेट्रोल पम्प और हम अखबार बेचें,' मगर यही उसके लिए सही है।

एक तरीका तो यह है जो मैंने अभी आपको बताया। दूसरा तरीका है, 'बेटा, तुम्हें चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं। सारी दुकान तुम्हारी है। आखिर मेरे बाद है ही कौन, तुम ही इकलौते वारिस हो।' यह खतरनाक

चीज है। तुम अपने बच्चे की जिन्दगी बरबाद करने पर तुले हो, अपनी ममता और अविद्या की वजह से। यह अगली शताब्दी के अनुकूल जीवन नहीं है। दुनिया बहुत तेजी से बदल रही है, और ख़ास करके हिन्दुस्तान। हिन्दुस्तान बड़ी तेजी से पश्चिम की सभ्यता की ओर भाग रहा है। पाश्चात्य संगीत आ गया, साधन-समान, नाच-गाना, खाने का तौर-तरीका सब पश्चिम से आ गया। तुम्हारी रसोई पश्चिमी हो गई है। जब तुम्हारी सब चीजें पश्चिमी हो गई हैं, तब फिर इस चीज को भी पश्चिमी क्यों नहीं बनाते कि तुम्हारा बच्चा अपने पैरों पर खड़ा हो?

पश्चिम के बच्चे मजबूत क्यों हैं? उन्हें माता-पिता की विरासत से कुछ नहीं मिलता है। वहाँ आदमी मरने के पहले वसीयत लिखकर जाता है, अपनी सम्पत्ति पैसा बच्चों के लिए नहीं छोड़ता। इससे बच्चों में परावलम्बन नहीं रहता। जो बच्चे माँ-बाप की छाँव में सुरक्षित रहते हैं, वे जीवन में कुछ बन नहीं पाते। आप लोगों का समय तो गुजर गया, मगर आगे आने वाली पीढ़ी को मजबूत बनाओ। उन्हें संघर्षशील बनाओ, उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होने लायक बनाओ। साथ ही लड़कियों की शिक्षा को शत-प्रतिशत लाना है। लड़कियों को विदुषी होना है। भावी माताएँ विदुषी होंगी तो बच्चों पर असर पड़ेगा। माँ का योग्य होना हर दृष्टि से ज़रूरी है। देश को सरकार नहीं उठा सकेगी। सरकार एक संस्था है, जिसकी अपनी एक सीमा है।

आप लोग जिस जमाने में जागे उस वक्त आपके देश में समाजवाद था। सरकार दुकान चलाती थी, सड़क बनाती थी, बिजली लाती थी, शौचालय बनाती थी, शौचालयों को साफ करती थी, सड़कें साफ करती थी। सरकार ही सब कुछ करती थी। मगर हम इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं हैं। हम कहते हैं सरकार का काम सिर्फ मार्गदर्शन है। वह केवल कहे ऐसा होना चाहिए। सरकार हमारे सामाजिक या धार्मिक जीवन में दखलअंदाज़ी नहीं कर सकती। हर व्यक्ति को अपनी दुकान खुद चलानी होगी। हमें अपना बैंक खुद चलाना होगा, सरकार के भरोसे नहीं। यह जमाना समृद्धि का है, साम्यवाद या समाजवाद का नहीं। समाजवाद और साम्यवाद राजनीति में एक चरण था, एक अवस्था थी। जो साम्यवादी देश समय के साथ नहीं बदले वे गिर गए, और जो बदले वे उठ गए। चीन ने साम्यवादी होते हुए भी पूंजीवाद को अपनी आर्थिक नीति का आधार बनाया।

इक्कीसवीं शताब्दी अर्थ और काम की शताब्दी है। महात्माओं ने कहा है कि कलियुग में धर्म और मोक्ष दूसरे दर्जे का होगा, अर्थ और काम प्राथमिक। अर्थ माने समृद्धि, काम माने इच्छाएँ। यह इच्छाओं और समृद्धि का युग आ गया है। कोई अगर धर्म-कर्म भी करेगा तो केवल अर्थ और काम के लिये। अर्थ और काम कलियुग के पुरुषार्थ माने जाते हैं। इसलिए जो आने वाला समय है वह अर्थ प्रधान युग है।

इस अर्थ प्रधान युग की झाँकी तुम्हें यूरोप के देशों में मिलेगी। तुम्हें मालूम है अभी स्कॉटलैंड के विश्वविद्यालयों में वीडियो गेम्स की डिग्री दी जाएगी, उसका विभाग हो गया है। जैसे अंग्रेजी, हिन्दी, फ्रेंच, गणित या रसायन शास्त्र पढ़ाया जाता है, वैसे ही यह भी पढ़ाया जा रहा है। शुरू हो गया है वहाँ। उनका कहना है कि इस फैकल्टी को लाकर हमने अपने देश में लाखों-करोड़ों पाउण्ड प्रतिवर्ष आमदनी बढ़ाई है। माने राष्ट्र में समृद्धि कैसे लाना, यह तरीका देखो उनका। यह विभाग खोलने से विश्वविद्यालय में टीवी आ जाएँगे, वीडियो सेट आ जाएँगे, सब विद्यार्थियों को सिखाया जाएगा। उतने सेट फिर बनेंगे, उतने चिप्स बनेंगे, उनकी प्रोग्रामिंग होगी, उतने लोगों को नौकरी मिलेगी। समृद्धि का यही मतलब है।

इक्कीसवीं सदी को पेन-पेन्सिल रहित सभ्यता बनाने का काम अमेरिका में शुरू हो गया है। बच्चा ढाई साल की उम्र में टीवी के पास बैठकर ए-बी-सी-डी सीखेगा। शिक्षिका केवल बच्चे को वहाँ बैठाएगी, बाकी सब व्याकरण, गणित वगैरह टीवी द्वारा सिखाया जाएगा। वे लोग कहते हैं, इससे इतनी ज्यादा आमदनी होगी कि तुम कल्पना नहीं कर सकते। अगर सब स्कूलों में टीवी लग जाएँ, तो अमेरिका वाले कहते हैं कि हमलोगों को तो टीवी आयात करना पड़ेगा, हम उतना उत्पादन ही नहीं कर पाएँगे। समृद्धि का रहस्य बता रहा हूँ। समृद्धि कैसे आती है, बस तरीका बदल दीजिए। आखिर एक कॉपी और पेन्सिल में जो आमदनी होती है उससे कई गुना आमदनी टीवी में होती है न।

मेरे कहने का मतलब यही है कि हर राष्ट्र को समृद्धि बढ़ाने के उपाय ढूँढने होंगे। फिर उस समृद्धि का उपयोग आप चाहे भोग में करो, चाहे योग में करो। चाहे वैष्णो देवी में खर्चा करके आओ, चाहे एवरेस्ट शिखर घूमकर आ जाओ, चाहे तो कैलास पर्वत घूमकर आ जाओ, कोई हर्ज नहीं। अर्थ तो साधन है।

स्वामीजी, हमारे जो बच्चे हैं, हमारे साथ ही जुड़ जाते हैं, ऐसे में क्या करें?

बच्चे से कहो, पैसा ले लो, व्यापार खोल दो अलग से, हमारे साथ मत रहो। बच्चे से अलग काम कराना चाहिये, बच्चे के पैर मजबूत करने चाहिए।

अपने व्यापार के लिए तो अपने हाथों की जरूरत पड़ती है न? नहीं तो हमें दूसरे आदमी को रखना पड़ेगा।

हाँ, दूसरा आदमी रखना चाहिये। दो का पालन वह करे, दो का पालन तुम कर लो, चार का पालन हो जाएगा। कोई दूसरा व्यक्ति अवश्य प्रबंधक हो सकता है।

दूसरा व्यक्ति विश्वासपात्र हो सकता है?

विश्वासपात्र? क्या बात कर रहे हो? आज के युग में यह बात करना, मतलब आपकी व्यवस्था गलत है। व्यापार ईमानदारी पर नहीं चलता है। यह जरूरी नहीं कि नौकर ईमानदार हो। आज सब व्यापार और लेनदेन व्यवस्था पर चलता है। दुनिया में बेईमानी ज्यादा है, यह मानकर चलो। यह भी बेईमान है, वह भी बेईमान है, ऐसा मानकर चलो और तब एक ऐसी व्यवस्था बनाओ कि वह बेईमान आदमी भी ठीक ढंग से काम करे।

अब देखो, ये जितनी भी बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ हैं, ये कैसे काम करती हैं? हवाईजहाज बनाने वाली बोइंग कम्पनी का मुख्यालय कहाँ है? सीयाटल, वॉशिंगटन। चीन में उसकी फैक्टरी लग रही है जहाँ विमानों का निर्माण होगा। फैक्टरी का नियंत्रण हो रहा है वॉशिंगटन से, उसका मैनेजर है चीन में। अगर वह बेईमान रहा तो? बेईमानी मनुष्य की एक प्रवृत्ति है जो कुछ परिस्थितियों में प्रकट होती है, कुछ में नहीं होती। जब मनुष्य किसी व्यवस्था के अन्तर्गत हो जाता है तो फिर बेईमानी का अवसर नहीं रहता। बैंकों में क्या होता है? क्या खजांची लोग पैसा लेकर भाग जाते हैं? एक-आध बार ऐसा होता भी है तो वह खजांची पैसा लेकर कब तक, कहाँ तक भागेगा?

इसी तरह तुम्हें अपने व्यापार-धंधे में एक व्यवस्था बनानी होगी। हमलोगों के यहाँ इसी व्यवस्था की कमी है। बेटा ईमानदार होगा, ऐसा कोई जरूरी नहीं है। जितने भी देश प्रगतिशील हैं वे बाप और बेटे के बीच में एक औपचारिक सम्बन्ध रखते हैं, और यह औपचारिक सम्बन्ध रहना चाहिए। अनौपचारिक

नहीं रहना चाहिए, क्योंकि अनौपचारिक सम्बन्धों में अवज्ञा होती है, तिरस्कार होता है। औपचारिक सम्बन्धों में नियम होता है, परिवार में स्त्री और पुरुष के बीच में, देवर-भाभी के बीच में, भाई-भतीजे के बीच में। ये सब जितने सम्बन्ध हैं वे औपचारिकताएँ हैं।

सुनने में आता है कि पश्चिमी देशों में बहुत विषाद होता है।

विषाद ज्यादा है क्योंकि वहाँ हर एक आदमी का आँकड़ा आ जाता है। यहाँ किसी गाँव-शहर का आँकड़ा लिया है क्या? तब फिर कैसे कह सकते हो? कोई चिड़िया अंधी पैदा होती है तो उसकी माँ उसको छोड़ जाती है और वह तुरंत मर जाती है। कोई भी चिड़िया, साँप वगैरह अन्धे होते हैं तो तुरन्त मर जाते हैं। अब हम कहें कि कोई चिड़िया या साँप अंधा नहीं होता, तो इसका मतलब हमने कारण का विश्लेषण नहीं किया। इसी तरह तुम अपने समाज का विश्लेषण नहीं करते हो कि कितना विषाद है। यहाँ हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बँटवारे में लाखों गायब हो गये, ऐसे में लोगों की मनोदशा क्या रही होगी?

पूर्व में भी परिवार अब विच्छिन्न होते जा रहे हैं।

परिवार का मतलब यह नहीं कि सब एक ही जगह, एक ही छत के नीचे रहें। घर के चार सदस्य बेशक चार अलग जगह पर रहें, मगर एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध रहे। तुम्हारे बच्चे का जन्मदिन हो तो तुम्हारा भाई जन्मदिन मुबारक का कार्ड भेजे, जब कभी घर में शादी हो उस समय सब आ जाएँ, त्यौहार के अवसर पर सब इकट्ठे हो जाएँ, इसी को परिवार कहते हैं। भावनात्मक एकता का नाम परिवार है। भावना में अगर एकता नहीं है तो फिर वे भाई कैसे जो एक-दूसरे पर मुकदमा चलाएँ, गोली चलाएँ!

संवेदना, सहानुभूति और भावनात्मक एकता को परिवार कहते हैं, फिर चाहे तुम यहाँ हो, दूसरा भाई अमेरिका में हो। सहानुभूति के बिना, प्रेम के बिना और भावना के बिना परिवार नहीं होता। बेटा बैठा है अमेरिका में, पिताजी रहते हैं शिमला में। पिताजी को बीमारी होगी तो बेटा फोन पर कहता है, 'पापा आप दिल्ली क्यों नहीं जाते हैं अपनी जाँच करवाने के लिए? या मैं आपको टिकट भेजता हूँ, यहाँ आइए।' यह परिवार नहीं है क्या? जो तुम्हारे और हमारे बीच सूत्र है वही तो परिवार है न? खाली एक ही घर में रहने को

परिवार कहते हैं, यह सोचना गलत है। जो तुम कह रहे हो, एक जमाने में यह परिभाषा थी, पर अभी परिवार की परिभाषा बदलेगी। सहानुभूति, स्नेह और भावना परिवार का रूप है।

देखा जाए तो यूरोपीय संस्कृति और भारतीय संस्कृति में कोई भिन्नता नहीं है। फर्क केवल इतना है कि भारत पर आक्रमणों के कारण बीच में कुछ परिस्थितियाँ बदल गईं। औरतों की स्थिति बदल गई, औरतों की मर्यादाएँ बढ़ गईं, खाने का, बैठने का तरीका बदल गया, कपड़े बदल गये, यह बदल गया, वह बदल गया। मगर हिन्दुस्तान के लोगों को पाश्चात्य सभ्यता पकड़ने में कोई दिक्कत नहीं रहेगी। आज भी तुम देखो, टाई या कोट-पैंट पहनने में कोई दिक्कत हुई?

पाश्चात्य सभ्यता कहते किसको हैं? पाश्चात्य सभ्यता के कुछ विशेष लक्षण हैं। पहली चीज है स्त्री-पुरुष का समान दर्जा। चाहे बेटा हो या बेटी, दोनों समान हैं। कानूनी, सामाजिक, सभी दृष्टियों से। पुरुष औरत को धमका नहीं सकता, और अगर धमकाता है, पिटाई करता है तो स्त्री को उसको छोड़ने का हक है।

दूसरी चीज है विचारों की स्वतंत्रता। सबका अपना-अपना विचार है, ईश्वर के बारे में, धर्म के बारे में, समाज के बारे में, इसके बारे में, उसके बारे में। विचारों की ऐसी स्वतंत्रता आज हमारे हिन्दुस्तान में कम है, हालाँकि आदिकाल से यहाँ ईश्वर के बारे में उन्मुक्त विचार हुआ, सब चीजों के बारे में स्वतंत्र विचार हुआ है।

तीसरी चीज़ सबसे महत्त्वपूर्ण है, शिक्षा। पाश्चात्य सभ्यता का आधार शिक्षा और पढ़ाई-लिखाई है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि माता शत्रु है, पिता वैरी है, अगर उसने बच्चे को पढ़ाया नहीं। पाश्चात्य सभ्यता का भी यही सिद्धान्त है। अगर वहाँ बच्चे स्कूल नहीं जाते तो माँ-बाप को हथकड़ी लगा देते हैं, जेल में डाल देते हैं। सब अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं, ऐसा वहाँ का कानून है। शिक्षा हमारी सभ्यता का भी प्राचीन काल से आधार रही है।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यश:सुखकरी विद्या गुरूणां गुरु:।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्याविहीन: पशु:॥

हमारे यहाँ हनुमान जी बहुत पढ़े-लिखे माने जाते हैं। पढ़ा है न हनुमान चालीसा में, विद्यावान गुनी अति चातुर। वे विद्यावान थे, गुणी थे, अति चतुर थे। चतुर तो बहुत होते हैं, लेकिन वे अति चातुर थे। तब जाकर रामचन्द्र जी से हनुमान जी की पटरी बैठी। आखिर रामचन्द्र जी चतुर शिरोमणी जो थे, चतुर लोगों में सबसे ऊपर। सबसे ऊपर वाले ने सबसे उच्च कोटि वाले को ही चुना।

विद्या और योग्यता पाश्चात्य सभ्यता का मूल मंत्र है। चाहे अंग्रेज हों, चाहे फ्रेंच हों, चाहे स्विस हों, वे जो आज समृद्धि में हैं, विज्ञान, कला और राजनीति के क्षेत्र में जो आगे बढ़ रहे हैं, उसका मुख्य कारण शिक्षा है और कुछ नहीं।

हमारे समाज में भी अब इस दिशा में कुछ परिवर्तन होना चाहिए। जो पानी बहता नहीं, वह सड़ जाता है। जो समाज बदलता नहीं, वह भी सड़ जाता है। सोलहवीं शताब्दी में जो जीवन था आज भी यहाँ वही जीवन है। लगता है हिन्दुस्तान में अनेकों शताब्दियाँ एक साथ जी रही हैं। दिल्ली में जाओ, वहाँ आज की संस्कृति मिलेगी। यहाँ संथाली गाँव में जाओ, तुम्हें सोलहवीं शताब्दी मिलेगी।

कई परिवार अपने लड़कों को पढ़ाना चाहते हैं, लेकिन वे छोड़कर भागते हैं।

उसका कारण है। हर व्यक्ति को उसके ढंग की शिक्षा चाहिए। शिक्षा के तीन आयाम होते हैं। पहला आयाम माँ के साथ। संस्कार और अक्षरों का ज्ञान माँ से मिलता है। फिर दूसरा आयाम होता है साक्षरता, जिसमें भाषा सीखो, गणित सीखो। यह साक्षरता और मध्यम स्तरीय शिक्षा सबके लिये अनिवार्य है, जिससे लड़के किताब पढ़ सकें, गिनना-घटाना-जोड़ना सीख सकें और अपना छोटा-मोटा काम कर सकें, अर्थ उपार्जन कर सकें। चाहे गौशाला में गोबर साफ करना पड़े, मुर्गीशाला में सफाई करनी पड़े, मकान बनाना पड़े या लोहार के यहाँ काम करना पड़े, उसे पैसे कमाने चाहिए। यह पहली चीज है। बेईमानी से नहीं, चोरी-डकैती से नहीं बल्कि श्रम करके। कहीं भी काम करे। उसके बाद मैं लिखकर देता हूँ, हर एक बच्चा, हर एक लड़का, हर एक लड़की पढ़ने की इच्छा जरूर करेगा। यह मनोविज्ञान का तथ्य है। उस बच्चे के मन में ख्याल आएगा, नहीं हम जरूर पढ़ेंगे। जिस चीज को उसके

माता-पिता जबरदस्ती घुसा रहे थे, वह खुद उसकी खोपड़ी से पैदा होती है। क्यों? उस बच्चे को तुमने सड़क पर छोड़ करके स्वत: स्वतंत्र किया है।

स्वतंत्र मनुष्य के ही दिमाग में विचार आता है। परतंत्र के मन में कोई विचार नहीं आता। परतंत्र तो गुलाम है, नौकर है, दास है। वह तुम्हारा स्वतंत्र बेटा नहीं है। लेकिन एक बार जब वह खुद से पढ़ने की कोशिश करेगा, तब उसकी उच्च शिक्षा का आरंभ होता है। विदेशों में यही होता है। चौदह साल के बाद लड़का घर से निकला, कहीं मुर्गीखाने में सफ़ाई की, यहाँ काम किया, वहाँ काम किया, पैसा कमा लिया, उसके बाद सोचता है चलो पढ़ेंगे। तब जाकर बच्चा विश्वविद्यालय में जाता है। वहाँ के विश्वविद्यालयों में यहाँ की तरह नहीं पढ़ाते हैं। ऐसा नहीं कि साल भर पढ़ाई होती है। वह तीन महीना रसायन शास्त्र की पढ़ाई करता है, उसके बाद कहीं काम करने चला जाता है, तनख्वाह मिल जाती है। पैसा लेकर वे लोग भागते हैं जापान, चीन या हिन्दुस्तान की ओर। सस्ते टिकट पर आते हैं, एक दिन देर किया तो टिकट खत्म। यहाँ आकर कोई भरतनाट्यम् सीखता है, कोई योग सीखता है, कोई कुछ सीखता है। फिर यहाँ से लौटकर अपनी पढ़ाई जारी रखता है।

असली बात यही है कि बच्चों को उनके मानसिक विकास के अनुसार शिक्षा देनी चाहिए। इस दृष्टि से हमारी शिक्षा व्यवस्था गलत है। हम लोगों के यहाँ बहुत-सी फालतू चीजें सिखाई जाती हैं जिनका जीवन में कोई उपयोग नहीं होता। औरंगजेब कितने साल में मरा, उसकी कितनी बेटियाँ थीं, यह जानकर क्या करेंगे? हमको उससे क्या मतलब है? इतिहास और साहित्य में जो पढ़ाते हैं उनमें बहुत-सी चीजें हमारे जीवन से कोई मतलब नहीं रखती हैं। हमने तो घर और स्कूल में जो पढ़ा, एक भी चीज हमारे काम नहीं आई। हाँ, गुरुजी के आश्रम में जो सीखा सब काम आया, सौ प्रतिशत। हर एक से बात करना, मेहनत करना, पाँच आदमी से लेकर पाँच सौ आदमियों का खाना बनाना, उनके रहने का इन्तज़ाम करना, मकान बनाना, बाग-बगीचे का काम, गौ-पालन, टाईप करना, टेलिफोन करना, लेखा-जोखा करना, सब सीखा, सब काम आया। कभी सोचते हैं अठारह साल की उम्र में गुरुजी के आश्रम में आए, छ: साल में ही आते तो बढ़िया रहता!

शिक्षा आवश्यकता के अनुसार होनी चाहिये, पर हमारे यहाँ आज जो शिक्षा है वह हमारी जरूरत के अनुसार नहीं है। हर एक आदमी डॉक्टर नहीं

बन सकता। हर एक आदमी अस्सी प्रतिशत अंक नहीं पा सकता। हाँ, कुछ बच्चे हैं जो अस्सी प्रतिशत अंक लाते हैं, वकालत पढ़ते हैं, डॉक्टरी पढ़ते हैं, पर बहुत-से बच्चे ऐसे भी होते हैं जो पढ़ाई छोड़ देते हैं।

जो माता-पिता अपने बच्चों की पढ़ाई के बारे में बहुत चिन्तित रहते हैं, उन्हें बाल मनोविज्ञान के बारे में कुछ मालूम नहीं होता। वे शुरू से गलती करते हैं। देखो, एक सरल नुस्खा बताता हूँ। आप अपनी सारी जमीन-जायदाद बेच दो, पैसा बैंक में रखो, दस प्रतिशत ब्याज मिलता है, कहीं छोटी-सी जमीन लेकर मकान बनाकर रहो, अपना भगवद्-भजन करो। लड़के लोगों से कहो, जाओ तुम अपना पालन खुद करो। सबका दिमाग ठीक हो जाएगा। हिन्दुस्तान में सब लड़कों का दिमाग इसलिये ठीक नहीं क्योंकि वे जानते हैं कि बाप के बाद सब तो मेरा ही है। इसलिए सब आराम से बैठे हुए हैं। जब जानेंगे कि बाप के बाद कुछ मिलने वाला नहीं तब जाकर दिमाग ठीक होगा ।

सरकार ने पिछड़ी जातियों के लिये जगह आरक्षित कर रखी है और 70-80 प्रतिशत के नीचे अंक वालों को प्रवेश ही नहीं मिलता।

ठीक ही तो है। आपने कई शताब्दियों से उन्हें उठने का मौका ही नहीं दिया, अब आपको जुर्माना चुकाना पड़ेगा। आप कहते हैं शूद्र की छाया पड़ने से ही नरक मिलता है। निचली जातियों को हमेशा दबाया गया। उन्हें कोई पद नहीं दिया गया, उनको शिक्षा का कोई अधिकार नहीं दिया गया। यहाँ तक कि आपने स्त्रियों को भी पढ़ने से मना किया, गायत्री पढ़ने से मना किया है। विधवाओं को मंगलकारी स्थान पर उपस्थित होने से मना किया है। आप अपनी गलती को क्यों नहीं पहचानते हो? माना कि आप नहीं थे, हम नहीं थे, मगर हमारे बाप-दादा तो थे न? दोष न आपका है, न मेरा है, सारी पीढ़ी की बात बोल रहा हूँ। आज जो हो रहा है वह उसकी प्रतिक्रिया है, और उसका एक ही इलाज है, सामाजिक समन्वय। सरल भाषा में कहें तो विभिन्न जातियों के लड़के-लड़कियाँ विवाह सूत्र में आबद्ध हो जाएँ। लड़का डॉक्टर है, ब्राह्मण है, लड़की पढ़ी-लिखी है, दूसरी जाति की है, प्रेम हो गया, शादी हो गई उनकी। इसको कहते हैं सामाजिक एकता।

जातिवाद के नाम पर जो कुछ हो रहा है, हम नहीं कहते सब ठीक हो रहा है, मगर हम जानते हैं यह होगा ही। इन लोगों में भी कई प्रतिभाशाली

होते हैं। हमारे आश्रम में भी अन्य जाति के लोग हैं, जिन्हें आप शूद्र कहते हैं। बड़े प्रतिभाशाली हैं। आश्रम में ही नहीं, समाज, कला और विद्या के क्षेत्र में भी बहुत प्रतिभाशाली लोग हैं। हम खुद तथाकथित नीच जातियों के बीच ज्यादा रहे हैं। भले ही हम उस जाति के नहीं हैं, पर हमने उनके बीच काफी समय बिताया है। हम उनकी परिवार व्यवस्था, उनका आचरण–इन सब चीजों को जानते हैं और यह हम खुलकर कह सकते हैं कि ऊँची जातियों से उनका चरित्र बेहतर है। उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। उनकी औरतों में गर्भधारण करने की शक्ति बहुत अच्छी है।

पता नहीं कब से इन्हें नीच जाति कहा गया, मगर उनका आचरण ऊँचा है और उनके सोचने का तरीका सबसे अच्छा है। ईश्वर पर उनकी आस्था, ईश्वर के प्रति उनकी भोली भक्ति को देख लो। जितने भी सन्त और कवि हुए हैं, उन्हें देखो। रैदास को देखो, आज के युग में अपने राष्ट्रपति को देखो, डॉ. अम्बेडकर को देखो, जिन्होंने भारत का ऐसा संविधान लिखा जो विश्व में एक नमूना है। उसमें किसी प्रकार का कोई पक्षपात नहीं है। बहुत ही अच्छा संविधान लिखा है भारत का, हमने उसे पढ़ा है।

इसलिए हम तो समझते हैं कि इन्हें नीची जाति कहना ही नहीं चाहिए। गाँधीजी कहते थे हरिजन। वे शूद्र शब्द बोलने से हिचकिचाते थे। हमारे शास्त्रों में शूद्र की परिभाषा दी है–*जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते*। जन्म से हर आदमी शूद्र होता है, संस्कार से ही वह ऊँचा होता है।

इन सब चीजों पर हमलोगों को विचार करके कार्य करना चाहिए। हम यह नहीं कहते कि किसी कसाई की तरह अपनी बेटी का किसी से भी पल्ला बाँध दो। कॉलेजों में अच्छे लड़के हैं, अच्छी लड़कियाँ हैं, नीची जाति के लोग हैं और ऊँची जाति के भी लोग हैं। वैसे आनुवांशिक दृष्टिकोण से कोई ऊँची जाति या नीची जाति नहीं होती है। यह एक राजनैतिक व्यवस्था है जो हमको दी गई। राजनैतिक व्यवस्था से शिक्षण व्यवस्था प्रभावित हुई और शिक्षण व्यवस्था से यह जाति व्यवस्था शुरू हुई है। हमारे शास्त्रों में जाति व्यवस्था के बारे में लिखा गया है, मगर गुण-कर्म के अनुसार। जो दुकान करे, वह व्यापारी या वैश्य वर्ग, जो स्कूल में पढ़ावे, वह बुद्धिजीवी या ब्राह्मण वर्ग, जो फैक्टरी में काम करे, वह मजदूर या शूद्र वर्ग। गुण-कर्म के मुताबिक ही वर्ग होना चाहिए।

–10 नवम्बर 1997



अध्याय 8

जीवन की कठिनाइयों को हर मनुष्य अपने दृष्टिकोण से देखता है और हर एक की दृष्टि उसकी उम्र पर निर्भर करती है। एक सच्ची घटना बताता हूँ। अमेरिका में एक व्यापारी था जिसकी कपड़े की फैक्ट्री थी। आग लग गई, फैक्ट्री स्वाहा हो गई। उसने किसी तरह बची-खुची चीजें नीलाम करके बैंक को अपना कर्जा चुकाया और कहीं देहात में जाकर खेती-बाड़ी देखने लग गया। उसकी हमसे बात भी हुई उस समय। बोला, मिल के चले जाने से मुझे कोई शोक नहीं है, क्योंकि उसमें मेरा वश नहीं है। वह वहाँ पाँच-छः महीने रहा, रोज अखबार वगैरह पढ़ता था। एक दिन उसने अखबार में पढ़ा कि सरकार एरीज़ोना राज्य में पाँच हजार वर्ग मील का क्षेत्र खोल रही है, यूरेनियम जैसी परमाणु सामग्री के अनुसंधान के लिए, और उसने ठेकेदारों और कम्पनियों से पता लगाने के लिए कहा है। जैसे लोग तेल खोजते हैं न, वैसे ही। एक कम्पनी ने कहा कि जो इसे खोजना चाहेगा उसे गाड़ी मिलेगी, सेन्सर-मीटर मिलेंगे, और गाड़ी का पेट्रोल वगैरह खर्चा मिलेगा। जब वह यूरेनियम का पता लगा लेगा तो उसे इस-इस हिसाब से पैसा मिलेगा।

इस व्यक्ति ने कहा, चलो कोशिश करें, अपना भाग्य आजमाएँ। उसने कम्पनी से जीप और सेन्सर ले लिये। वह क्षेत्र बहुत बड़ा था, उसमें एक जगह से दूसरी जगह रोज जीप से आने-जाने लगा। चार-पाँच महीने हो गए, मीटर से कुछ पता नहीं चला। उसने सोचा कि हम एक महीना और करेंगे, फिर छोड़ देंगे। एक दिन उसने कहीं जाकर जीप रोकी, पानी पिया, सैण्डविच खाया, बैठ गया। एक-दो बजे का समय रहा होगा। उठा तो देखा उसका मीटर हिल रहा है। उसने पूरे इलाके की छानबीन की, नक्शा बनाया।

एक-दो महीने लगे, फिर कम्पनी को पूरे कागज तैयार करके दिए। कम्पनी ने अपने तकनीकी लोग भेजे, उसकी खोज की पुष्टि की। उसे लाखों डॉलर का कमीशन मिला, जो उसके कपड़े की फैक्ट्री के दाम से कई गुना ज्यादा था।

मनुष्य को जीवन में, व्यापार में या परिवार में झटके तो जरूर लगते हैं। यह सम्भव नहीं है कि जीवन में किसी आदमी को मुश्किल हो ही नहीं। मुश्किल चाहता कोई नहीं, सब लोग चाहते हैं कि बस उन्नति हो, लेकिन यह जीवन का नियम नहीं है। न ही यह शरीर, समाज, राष्ट्र या व्यापार का नियम है। वहाँ पर जो मुश्किलें आती हैं वे आदमी के मन को प्रभावित करती हैं, और फिर शरीर को भी प्रभावित करती हैं। दिल पर असर पड़ता है। दिल बहुत मजबूत हुआ तो फेफड़ों को प्रभावित करती हैं, फेफड़े मजबूत हुए तो गुर्दे को, सब कुछ मजबूत हुआ तो पेट को, कहीं-न-कहीं अपना प्रभाव छोड़ती हैं। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है वैसे-वैसे असर ज्यादा होते जाता है।

अब ऐसी हालत में दो-तीन चीजें करनी पड़ती हैं। सबसे पहले चीज तो यह है कि आपको स्थिति को कुबूल करना होगा। वह स्थिति चाहे पारिवारिक हो या पढ़ाई-लिखाई में हो या नौकरी में हो, पहले तो उसे मान लेना चाहिए। दूसरी चीज, उस वक्त आदमी को अपने रहने के स्तर को घटाना चाहिए, अपनी जीवनशैली को सरल बनाना चाहिए। यह मैंने यूरोप में देखा है। मैंने अरबपतियों को किराए के मकान में रहते हुए देखा है। मैं ऐसे लोगों को जानता हूँ जो पहले अपने निजी हवाई जहाज पर एक देश से दूसरे देश व्यापार करने के लिए जाया करते थे। बाद में देखा, सब बेचकर छोटे-से किराए के मकान में रहते हैं। बच्चों को सरकारी स्कूल में डाल दिया है। मतलब जीवन-स्तर को इतना गिरा देते हैं, इतना हल्का कर देते हैं। जिस परिस्थिति में वे होते हैं उसके अनुकूल जीते हैं। हम भारतीय लोगों की समस्या है कि गड़बड़ होने पर भी हमारा जीवन-स्तर वैसा ही रहता है। उससे होता यह है कि सबसे पहले तनाव बढ़ता है। इसलिए ऐसी परिस्थिति में अपने जीवन को सरल बनाओ। रसोई को सरल बनाने से शुरू करके, एक-एक करके अपने नौकर-चाकर, गाड़ियाँ वगैरह, सब कम करते जाओ।

ऐसा नहीं कि मनुष्य के जीवन में उतार ही उतार होता रहे, झटका ही लगता रहे। वह तो आदमी को शिक्षा देने आता है, कहाँ पर गलती की है, यह बतलाने आता है। तुमने निर्णय लेने में कहाँ पर गलती की थी, तुमने

अपनी व्यवस्था को कहाँ पर कमजोर रखा था, उसको बतलाने के लिए यह झटका लगता है। झटका जीवन की सीख है। ऐसा समझकर आदमी को पहले अपना जीवन सरल और सादा करना चाहिए। भूल जाओ कि तुम उद्योगपति या करोड़पति हो। सोचो कि तुम एक साधारण मध्यम वर्ग परिवार के हो। इससे क्या होगा? घर में मुश्किलों से पैदा होने वाले जो असन्तोष हैं, जो शिकवा-शिकायतें वगैरह हैं, बन्द हो जायेंगे।

मान लो कि तुम बहुत बड़े व्यापारी हो और अचानक कारोबार चौपट हो गया। एक लड़का शिमला में पढ़ रहा है, दूसरा लड़का अमेरिका में पढ़ रहा है, लड़की कुनूर मे पढ़ रही है, उनके पास पाँच-पाँच गाड़ियाँ हैं। और यहाँ कुछ है नहीं। घी, तेल, नमक सब खत्म। उस वक्त सब तरह के झगड़े होने लगते हैं, आपस में खींचातानी होने लगती है। उस समय अगर कुछ घटा दिया जाए, कुछ चीजें कम कर दी जाएँ तो शान्ति हो जाती है। शान्ति सबसे महत्वपूर्ण चीज है। मन को ठीक करने के लिए पहले अपने वातावरण और परिस्थितियों को सामान्य बनाना पड़ता है।

तीसरी चीज यह कि ऐसे वक्त में घर के लोगों को एक-दूसरे पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए। ऐसा न हो कि तुम अपने बेटे पर दोषारोपण करो, बेटा बाप पर दोषारोपण करे, भाई पर दोषारोपण करे, पत्नी पर करे, नौकर पर करे। मुश्किलों के लिए किसी को जिम्मेवार ठहराने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। अपने आपको एकदम दबाना पड़ता है। उस वक्त यह दर्शन काम करेगा कि न तो इनकी गलती थी, न उनकी, सब तकदीर में लिखा हुआ था, सब भगवान की इच्छा थी। यहाँ पर यह दृष्टिकोण लाना चाहिए, और वह सब बराबर कर देता है। यह सच्चाई तो नहीं है, मगर प्रभावी दर्शन है।

जीवन में मुसीबतों और झटकों से बचने के लिए क्या करें?

वही तो बोल रहा हूँ, जैसे ही जीवन में झटका लगे तुरंत अपना जीवन-स्तर गिरा दो।

यह तो होने के बाद, लेकिन होने के पहले के लिए कोई एहतियात?

अपनी व्यवस्था को जाँचो कि कहाँ पर गलती है। तुम्हारी बेचने की प्रणाली सही है क्या? तुम्हारी प्रबन्धन प्रणाली सही है क्या? तुम अपने मजदूरों

को कम तन्ख्वाह या कम बोनस तो नहीं देते? बाजार में आज बहुत ज्यादा प्रतिस्पर्धा तो नहीं हो गई?

कई बार व्यवसाय चलाने में शासकीय बाधाएँ भी आती हैं?

देखो भाई, शासकीय बाधाएँ हर युग में आती हैं, और हर युग में शासकीय बाधाओं से निपटने के लिए उपाय निकाले गए हैं। शास्त्र कहता है कि राजा के भय को दूर रखने का एक ही तरीका है, 'वित्तं' माने ठन ठन। ऐसा नहीं कि शासकीय बाधाएँ एक ही व्यक्ति को आती हों, वे सब को आती हैं। व्यापारी और उपभोक्ता के बीच सबसे बड़ा रोड़ा शासन ही है। यह आज के युग में नहीं, हर युग में और हर देश में होते आया है। राजा अपना अंश जरूर माँगेगा। राजा माने मंत्री हो, सरकारी पदाधिकारी हो, आयकर वाला हो, वह अपना हिस्सा लेता ही है। इसको तुम रोक नहीं सकते। चाहे तुम अखबार में छापो, चाहे उन पर मुकदमा करो, यह रुकने वाला नहीं है। यह जो आजकल लोग एक-दूसरे पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाते हैं, यह केवल राजनैतिक चाल है एक-दूसरे को गिराने के लिए। एक चोर दूसरे को चोर कहता है, क्यों? जब तक हम तुम्हें गाली नहीं देंगे तब तक तुम अलोकप्रिय कैसे होगे? और जब तक तुम अलोकप्रिय नहीं होगे तब तक मुझे वोट कैसे मिलेंगे। इतनी सी बात है, बाकी चीजें गिनो ही मत। मानकर चलो कि सभी भ्रष्ट हैं।

इसलिए हमेशा शासक को प्रसन्न रखना चाहिये। शासक को प्रसन्न रखने से खोया माल भी मिल जाता है, क्योंकि उसके पास शक्ति बहुत रहती है। शासक को अप्रासंगिक नहीं बनाना, नहीं तो फिर चोर-डाकू तुम्हें तंग करेंगे। बेहतर है कि शासन को खुश रखो बजाय इसके कि किसी दादा या गुण्डा को हफ्ता देने के चंगुल में फंसो। इस बात को हमेशा याद रखना।

मेरा क्या लक्ष्य होना चाहिए? जीवन में मैं कुछ कर पाऊँगी भी या नहीं?

देखो जी, यह प्रश्न तुम्हें अपने से पूछना होगा। अगर मनुष्य चाहे तो केवल अपने से सब कुछ कर सकता है, पर जब तक उसके हाथ-पैर में बेड़ी है तब तक सोचने से कोई फायदा नहीं। मनुष्य ने खुद ही अपने लिए कुछ ऐसे बन्धन बना लिए हैं जो उसे लक्ष्य की ओर बढ़ने से रोकते हैं।

उदाहरण के लिए?

बाल-बच्चों को देखना है, सास-ससुर या माता-पिता की सेवा करनी है, पत्नी या पति का धर्म निभाना है, ये सब अपनी बनाई हुई मान्यताएँ हैं जिनमें सच्चाई कुछ भी नहीं है। हाँ, सच्चाई उनके लिए है जो उसे ठीक समझते हों। मगर तुम चाहती हो कि तुम्हें कुछ करना है। कर तो सब रहे हैं, कोई बेटा बनकर कर रहा है, तो कोई बहू बनकर तो कोई भतीजा बनकर तो कोई भाई बनकर, मगर तुम जीवन में या अध्यात्म में वाकई कुछ करना चाहते हो तब उसके लिए कुछ मान्यताओं को छोड़ना पड़ता है। अपनी जवाबदेही कम करनी पड़ती है। मैं जीवन में कुछ करना चाहता हूँ, मुझे अपने माता-पिता को उस किनारे करना होगा। जो भूख से आतुर होते हैं, उनके लिए खट्टे-मीठे का कोई प्रयोजन नहीं होता। जो मिल गया, खा लिया। *कामातुराणां न भयं न लज्जा*–जो काम से आतुर है वह भय और लज्जा इधर-उधर फेंक देता है। *विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा*–विद्या के लिए आतुर सुख को इधर फेंकता है, निद्रा को उधर। उसी तरह से जीवन में आध्यात्मिक अथवा लौकिक उन्नति के लिए व्यक्ति को बहुत-सी मान्यताओं को इधर-उधर फेंकना ही पड़ेगा। तुम चाहो कि हँसो और गाल भी फुलाओ, यह नहीं हो सकता।

गुरुजी, संघर्ष और परीक्षा कितनी लेंगे, बहुत थक गई हूँ।

यह केवल मानसिक विचार है, इसमें वास्तविक कुछ नहीं है। हमें एक चीज समझ में नहीं आती कि आदमी वर्तमान से संतुष्ट क्यों नहीं है। मेरे पास जो कुछ है वही बहुत है, ऐसा क्यों नहीं समझते हो? अगर सुख मनुष्य जीवन की एक अनुभूति है तो दु:ख भी जीवन की एक अनुभूति है। सम्पत्ति जीवन की एक अवस्था है और विपत्ति भी। तुम हमेशा सुख और सम्पत्ति ही क्यों चाहते हो? किसी संत ने कहा है–

सुख के माथे सिल परे, नाम हृदय से जाये।
बलिहारी वा दु:ख की, पल-पल नाम रटाये॥

अब यह विचार ही दूसरा है। संत कहता है कि मुझे दु:ख दो ताकि मैं भगवान का नाम ले सकूँ, भगवान को याद कर सकूँ, जीवन की गहराइयों में जा सकूँ। एक बात को याद रखो, जो आदमी सुखी रहता है वह जीवन की परिधि पर ही रहता है। पर जो आदमी बार-बार दु:खी होता है वह जीवन की

गहराई में उतरता है। जो आदमी स्वस्थ रहता है वह ऊपर-ऊपर रहता है, पर जो बीमार रहता है वह शरीर की गहराई में जाता है।

मनुष्य के जीवन में सुख-दु:ख दिन और रात की तरह निश्चित रूप से आते हैं, आते रहेंगे, कोई इसे रोक नहीं सकता। इसलिए अपने को ऐसा प्रशिक्षण देना चाहिए कि दोनों अवस्थाओं में अपने को ठीक से रख सकें। हम लोगों को अपने माता-पिता या बड़े-बूढों से क्या प्रशिक्षण मिला है? सुख को भोगना और दु:ख में रोना। यही तो प्रशिक्षण हमें मिला है। हमें यह नहीं कहा गया कि सुख को तो भोगो संयम के साथ, और दु:ख में अपने को समझना सीखो। दु:ख अपने को समझाने के लिए आता है। दु:ख मनुष्य की गलती सुधारने का समय है। जब तुम स्कूल में गलती करते हो तो मास्टर साहब कॉपी में लाल निशान मार देते हैं और तुम्हें अपनी गलती समझनी पड़ती है। वैसे ही दु:ख और विपत्ति आत्म-परीक्षण का समय है।

इस बात को तुम याद रख लो कि बिना सुख-दु:ख का जीवन किसी का नहीं है। जिसकी आमदनी तीस रुपये रोज है उसे भी सुख-दु:ख लगता है और करोड़पति को भी। सुख और दु:ख मनुष्य की अपनी विचारधारा से, अपने सोचने के ढंग से सम्बन्धित है। श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम थे, उनके जीवन में सुख कब आया और दु:ख कब, बतलाओ। वे पैदा हुए, सब को सुख मिला। सात साल के हुए तो गुरुकुल चले गये। वहाँ जमीन पर सोना, गुरुजी के गाय-बैल को धोना, गुरु माँ की सेवा करना, खेती-बाड़ी करना, बारह साल तो यही किया। घर लौटे तो फिर अयोध्या से पैदल चले गए विश्वामित्र जी के साथ। कहाँ? जनकपुरी। रास्ते में कभी ताड़का से झगड़ा तो कभी मारीच और सुबाहु से टक्कर हो गई। सीताजी को ब्याह कर लाए, सोचा कि बड़े सुख-चैन से रहेंगे, युवराज बनेंगे। लेकिन वनवास हो गया, वह भी दो-चार साल का नहीं, चौदह साल का। वह भी उस वक्त का। तुम आज मोटर साइकिल और टेंट वगैरह लेकर वनवास करोगे तो भी भारी पड़ेगा। उस वक्त तो उनके पास कुछ नहीं था।

सबसे बड़ी त्रासदी तब हुई जब सीताजी का अपहरण हुआ। उस युग की मान्यता ऐसी थी कि जिस पुरुष की स्त्री का अपहरण हो जाए, उस पुरुष को अपनी नाक कटवा लेनी चाहिए। रावण ने सीताजी का जो अपहरण किया, उससे रामजी की नाक कटी न। बड़ी बेईज़्ज़ती का सवाल है। उनकी सारी इज़्ज़त, सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल गई। रघुवंश का राजपुत्र और उसकी स्त्री

को कोई उठाकर ले गया? कैसा क्षत्रिय है, अपनी औरत को भी नहीं सम्भाल सकता। यह त्रासदी हुई। उसके बाद भयंकर दुष्ट आदमी से जबरदस्त लड़ाई हुई। जीतकर वापस आए तो कुछ दिन सुख से बीते। फिर सीताजी के ऊपर आरोप हुआ। अब वे सीताजी को इतना प्रेम करते थे कि उनके बिना रह नहीं सकते थे। उनका प्रेम बहुत गहरा था, मगर युग की व्यवस्था के अनुसार, समाज की मर्यादा और लोकरीति के अनुसार अलग हो गए। यह एक महापुरुष के जीवन की त्रासदी का उदाहरण प्रस्तुत किया।

दूसरा उदाहरण कृष्णजी का। पैदा होने से पहले ही उनका नाम कंस की हिट-लिस्ट में आ गया था। उसके आगे की कहानी तो तुम्हें मालूम है। और आखिर में क्या हुआ? श्रीकृष्ण का वध हुआ। उनके जीवन में बहुत दुश्मन रहे। जरासंध, शिशुपाल, रुक्मि, हस्तिनापुर वाले सभी उनके दुश्मन थे। अंत में मारे गए और उनके मरने के पहले यदुवंश भी नष्ट हो गया। इससे बढ़कर त्रासदी क्या हो सकती है कि बाप के सब बेटे मर जाएँ और बाप जिन्दा रहे।

मैं दु:ख और सुख को समझाने के लिए ये उदाहरण दे रहा हूँ। यह बात सबको समझनी है कि दु:ख और सुख सबके जीवन में दिन और रात की तरह आते हैं। सवाल केवल यह उठता है कि आपको प्रशिक्षण कैसा मिला है या आपने अपने लिए किस प्रकार का जीवन-दर्शन बनाकर रखा है। आप दु:ख से घबराते हैं या दु:ख से जूझते हैं? सुख के साथ आपका रिश्ता किस तरह से चलता है? मनुष्य अगर चाहे कि दु:ख उसपर भारी न पड़े तो उसे तय करना होगा कि सुख के साथ उसका सम्बन्ध कितना रहेगा। हाथ में पैसा है, चाहो तो हवाई जहाज से उड़ सकते हो, महलों में रह सकते हो, कुछ भी कर सकते हो। तुम्हें समझना होगा कि मैं क्या करूँगा, क्या नहीं करूँगा। पैसे के बल पर प्राप्त किया हुआ सुख बाद में दु:ख का कारण होता है। सुख वास्तव में सम्पत्ति में नहीं है। जो सोचते हैं कि पैसा है तो वही सब कुछ है, गलत सोचते हैं।

दुनिया का सबसे अच्छा कल्याणकारी राष्ट्र है स्वीडन। अभी इस समय स्वीडन की सबसे अच्छी सरकार, सबसे बढ़िया सामाजिक व्यवस्था मानी जाती है। लेकिन वहाँ दुनिया में सबसे अधिक आत्महत्याएँ होती हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि सुख इतनी अच्छी चीज नहीं है, कि हम उसी के लिए लालायित रहें, और दु:ख उतनी बुरी चीज नहीं है कि हम हमेशा घबराएँ।

जिनके पास पैसा है, सम्पत्ति है, साधन हैं उन्हें अपने धन का एक हिस्सा गरीबों के लिए निकाल लेना चाहिए और किसी अच्छी संस्था के माध्यम से देना चाहिए। रामकृष्ण मिशन अच्छी संस्था है, ऐसे और भी बहुत-से आश्रम हैं। दूसरी चीज, खुद एक गरीब आदमी की तरह रहना चाहिए। धर्मशाला में रहना चाहिए, तीर्थों में जाना चाहिए। हमारे यहाँ तीर्थ इसलिए तो बने हैं। पहले तो तीर्थ बहुत मुश्किल थे न? बोलते थे, बद्री गया तो वहीं रह गया, ऐसे कठिन तीर्थ थे।

अपना पैसे का एक हिस्सा धार्मिक कार्यों के लिए, एक हिस्सा परोपकार के कार्यों के लिए, एक हिस्सा राष्ट्र के कार्यों के लिए, एक हिस्सा अपने व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए, एक हिस्सा अपने बाल-बच्चों के लिए रखना चाहिए। ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जो हमें पाश्चात्य देशों से सीखनी होंगी। उनके यहाँ होता है यह सब। वहाँ बूढ़े लोग जब मरते हैं तो पैसा बच्चों को नहीं दे जाते हैं। नहीं, वकील से अपना वसीयतनामा बनवाकर जाते हैं जिसमें किसी धार्मिक संस्था, अनाथालय, अस्पताल, विकलांग केन्द्र या पुस्तकालय को अपनी धन-सम्पत्ति दे जाते हैं। यही कारण है कि उनके बच्चे अपने पैरों पर खड़े हो पाते हैं। उन्हें मालूम है कि बाप से तो कुछ मिलने वाला है नहीं। चौदह साल के होते-होते वहाँ के लड़के-लड़कियों को बोल दिया जाता है, तुम्हारे पैर मजबूत हो गए हैं, अब तुम जाओ। कहीं अपना घर लेकर रहते हैं, सबेरे कहीं मुर्गीखाना या सड़क साफ करते हैं, किसी तरह पैसा कमाते हैं, आगे की पढ़ाई करते हैं। अपने घर नहीं आते, कभी हफ्ते में माँ-बाप से मिल लेते हैं।

अपने पैर पर खड़े रहने वाली सभ्यता सुख-दु:ख को सहन कर सकती है। मगर मुफ्त का माल तोड़ने वाले बच्चों को पैसे के चले जाने के बाद दिल का दौरा हो जाता है। उन्हें लगता है, बाप रे! अब तो फैशन वाले कपड़े नहीं पहन सकेंगे, क्रीम-पाउडर नहीं आ सकेगा, वीडियो कैसेट कैसे देखेंगे। सब फालतू चीज है। हमारे देश में आज सम्पत्ति बहुत तेजी से आ रही है, जबकि हम लोग अब तक बहुत गरीब रहे हैं। सम्पत्ति की चकाचौंध में हम यह भूल रहे हैं कि सुख और दु:ख मनुष्य के मन की अवस्था का नाम है। पैसे से इसका कोई मतलब नहीं है। क्या करोड़पति दु:खी नहीं होता? दु:ख और सुख मात्र एक व्यक्तिगत अनुभव है, सोच है, उसमें वास्तविक कुछ भी नहीं।

हमें हमेशा से ऐसा लगता रहा है कि सारी दुनिया केवल अपने लिए सोचती है। यहाँ तक कि साधु-महात्मा भी अपने ही मोक्ष के बारे में साचते हैं, लेकिन दूसरों के दु:ख-सुख का कोई ख्याल ही नहीं रखता। दुनिया में कितने लोग लंगड़े हैं, कोढ़ी हैं। कोई उनके बारे में नहीं सोचता, सब अपने बारे में ही सोचते हैं। अभी हाल में इंग्लैण्ड की राजकुमारी डायना की मृत्यु हुई। सारे संसार में तहलका मच गया। केवल इसलिए नहीं कि वह राजकुमारी थी, उसके अलावा वह एक कोमल हृदय, करुणा से परिपूर्ण व्यक्ति भी थी। आप लोग तो यही देखते थे कि वह किस मर्द के साथ घूमती है, मगर यह नहीं देखते थे कि दुनिया में कहाँ-कहाँ कितनी संस्थाओं की उसने कितनी मदद की है। उसने अपने जूते, कपड़े, जेवर, सब चीज़ें नीलाम करवा दीं और उससे जो लाखों डॉलर मिले, उससे अफ्रीका से लेकर फिलिपीन्स तक, सब जगह सैकड़ों संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया।

इस कलियुग में मनुष्य का सबसे बड़ा गुण परोपकार है। उसका व्यक्तिगत आचरण कैसा है, यह कोई अर्थ नहीं रखता, मगर तुम कितनों का भला करते हो, यह महत्त्वपूर्ण होता है। तुम कितने ही अच्छे आदमी क्यों न हो, पर उसका क्या फायदा अगर तुम किसी के काम नहीं आए तो। जो मनुष्य इस युग में दूसरे के काम नहीं आएगा वह आचरणहीन है, आज के युग का यही संदेश है। महात्मा गाँधी का यही संदेश था न? तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में क्या लिखा है? कलियुग में केवल दो चीजें काम आएँगी, नाम का जप और दूसरों का भला, *परहित सरिस धर्म नहीं भाई।* इन दो के अलावा और कोई चीज तुम्हारे काम नहीं आएगी।

तुम शाकाहारी हो या मांसाहारी हो, पतलून पहनते हो या धोती पहनते हो, हमें उससे कोई मतलब नहीं। हमें यह बतलाओ कि तुम दूसरे के लिए क्या कर रहे हो, तुमने कितने लोगों के आँसू पोंछे हैं, कितने लोगों को तुमने अपनी रोजी-रोटी कमाने लायक बनाया है। लंगड़े को तुम पैर तो नहीं दे सकते, पर ट्राइसाईकिल तो दे ही सकते हो न, ताकि ट्राइसाईकिल में जाकर कोई चपरासी वगैरह का काम कर सके, एक-दो हजार रुपये कमाकर अपने बीवी-बच्चों को खिला सके। ऐसा विचार मन में क्यों नहीं आता है? मैं तो कहता हूँ कि कोई व्यभिचारी हो, दुराचारी हो, चोर हो, जुआरी हो, पर अगर दूसरे के काम आता हो तो वह आज का संत है। तुम्हारी जिन्दगी किसी काम की नहीं अगर दूसरे के काम न आए। तुम्हारी व्यक्तिगत जिन्दगी से हमें

क्या मतलब है? हमें भूख लगी है और तुम वहाँ हलवा-पूड़ी खा रहे हो, अरे भाई! थोड़ा हमें भी दे दो न? माँ जब खाती है तो उसे ख्याल आता है कि पता नहीं छात्रावास में मेरे बेटे ने क्या खाया होगा। तब वह दूसरे के बारे में ऐसा क्यों नहीं सोच सकती? सबसे बड़ा गुण है दूसरों के बारे में भी सोचना, और सबसे बड़ा अवगुण है केवल अपने ही बारे में सोचना।

स्वामीजी, आजकल के जो बच्चे हैं, वे गाँधीजी और गोडसे में से गोडसे को ज्यादा पसंद करते हैं।

नहीं, ऐसी बात नहीं है। आप लोगों से कुछ कह देते होंगे, लेकिन गोडसे ऐसा व्यक्ति नहीं था जिसकी कोई पूजा करे। जबकि गाँधीजी ने हिन्दुस्तान और दुनिया को जो दिया है, वह आज तक किसी ने नहीं दिया है। उन्होंने एक जीवन-दर्शन दिया, जिसकी मिसाल उनकी अपनी जिन्दगी थी। उनकी वजह से हरिजनों के प्रति लोगों का ध्यान गया। हरिजन उद्धार, अछूत उद्धार, ग्राम उद्धार, विधवा विवाह, बुनियादी शिक्षा—कितनी चीजें उन्होंने दी। गोडसे तो एक सामाजिक प्रतिक्रिया थी। गलतियाँ तो महात्मा गाँधी से भी हुई होंगी, मगर उन गलतियों का परीक्षण करने का अधिकार हमें नहीं है। हमें केवल एक चीज से मतलब रखना चाहिए कि क्या उन्होंने मनुष्य जाति को मनुष्य जाति के प्रति जागृत किया या नहीं? हाँ, बिल्कुल किया। गाँधीजी यही कहा करते थे कि दूसरों के बारे में भी सोचो। हमारी गीता और रामायण में यही चीज लिखी है। हमारे प्रत्येक धर्मशास्त्र में एक ही बात पर जोर दिया हुआ है कि मनुष्य को दूसरे के काम आना चाहिए। गाय दूसरे के काम आती है, घोड़ा दूसरे के काम आता है, पेड़ दूसरे के काम आते हैं, मगर इन्सान केवल अपने ही काम आता है और मजे की बात यह कि उसके मरने के बाद उसकी एक भी चीज किसी के काम आने वाली नहीं। गाय मरेगी तो कम-से-कम उसकी चमड़ी से जूता तो बनेगा। मनुष्य मरे तो उल्टी लकड़ी भी नष्ट होती है उसको जलाने के लिए।

इसलिए हमें सबसे पहले यह चीज उजागर करनी होगी कि हर मनुष्य का दूसरों के प्रति भी कुछ दायित्व है। कलियुग में मनुष्य परोपकारी को पहचानेगा, ब्रह्मचारी को नहीं। इस युग में मनुष्य गाँधीजी जैसे आदमी को पहचानेगा जो दूसरे के लिए जीवन बलिदान करता है। यह नहीं पूछेगा कि तुम मांस खाते हो या नहीं, चुटिया रखते हो या नहीं, जनेऊ पहनते हो या नहीं, शैव हो या शाक्त हो, हिन्दू हो या मुसलमान हो, तुम्हारी एक पत्नी है या दो, कोई नहीं पूछेगा,

केवल मनुष्य को मनुष्य के काम आना चाहिए। कोई गरीब बच्चा प्रतिभाशाली हो तो उसके लिए छात्रवृत्ति देना, ग्वाले को गाय देना, कुम्हार को चाक देना, परोपकार के ऐसे कितने छोटे-मोटे काम किए जा सकते हैं।

भारत बहुत गरीब और पिछड़ा देश है। दिल्ली, कोलकाता, मुम्बई या चेन्नई भारत नहीं है। भारत वह है जहाँ मैं रहता हूँ। भारत का सत्तर प्रतिशत ठीक वैसा ही है जहाँ मैं रहता हूँ। सब जानते हैं कि भारत कृषिप्रधान देश है। यहाँ की अधिकांश जनता कृषि पर अवलम्बित है, न कि तकनीकी पर। गाँव में रहने वाले किसान और मजदूर बड़े स्वावलम्बी हैं। अगर उन्हें थोड़ी-सी भी मदद हो जाए तो कहाँ से कहाँ पहुँच जाएँगे। उनके पास जीवित रहने की अद्‌भुत क्षमता है। भगवान से इतनी ही प्रार्थना करते हैं कि उन्हें सम्पत्ति नहीं, समृद्धि दो। सम्पत्ति और समृद्धि में बहुत अन्तर है। किसान की समृद्धि क्या है? पानी, बीज, खाद, बैल, खेती। मजदूर की समृद्धि क्या है? रोज उसे चालीस-पचास की मजदूरी मिल जाए।

स्त्री-सम्मान

तंत्र-शास्त्र में शक्ति साधना के अनेकों रूप हैं। उसमें देवी की पूजा अपनी जगह पर है, लेकिन स्त्री जाति के प्रति सम्मान और संवेदनशीलता की भावना हमारे मन में हमेशा रही, और इसलिए हमने यहाँ की नववधुओं को शादी



के तोहफे देने का निश्चय किया है। जब से मैं यहाँ आया हूँ हमने हर साल करीब पाँच सौ ऐसे सेट बाँटे हैं। इस साल और भी होंगे। अगर हर एक सेट को देखोगे तो दंग रह जाओगे। तुमने अपनी बेटी को भी शायद इतना कुछ नहीं दिया होगा। कम-से-कम चालीस-पचास हज़ार का सामान होता है, कभी-कभी तो एक-डेढ़ लाख तक का भी होता है।

हमने कभी भी स्त्रियों के साथ अपने सम्बन्ध को छिपाया नहीं है। आखिर जो हमारी माँ रही है, या बहन रही है, या बेटी रही है, उसके साथ हमारा सम्बन्ध जन्म से मृत्यु तक, पालने से लेकर अर्थी तक रहना चाहिए। स्त्री जाति के प्रति हिन्दुस्तान के लोगों को अपनी सोच बदलनी चाहिये। स्त्री की शिक्षा पुरुष से अधिक आवश्यक है। अगर हमारे समाज में किसी को रक्षा की आवश्यकता है, तो पुरुष को है। पुरुष बिगड़ा हुआ है, स्त्रियाँ बिगड़ी नहीं हैं।

स्त्रियों की शिक्षा उच्च कोटि की होनी चाहिये। उसे नौकरी-रोज़गार में जाना चाहिये, चाहे वह करोड़पति की लड़की हो या मजदूर की। पैसा कमाने के लिए नहीं, बल्कि समाज से सम्पर्क बनाने के लिए, समाज की जानकारी प्राप्त करने के लिए, समाज को अपना एक योगदान देने के लिए। स्त्री में जो ममता, वात्सल्य, सहनशीलता और विवेक-बुद्धि है, उसका लाभ केवल परिवार को ही नहीं, समाज को मिलना चाहिए। समाज को केवल पुरुष का अक्खड़पन मिला है, इसलिए जहाँ-जहाँ पुरुष प्रधान समाज है वहाँ सब गड़बड़ी है, और जहाँ स्त्रियाँ समाज में आगे आई हैं उन्होंने समाज को सुधारा है, संभाला है, क्योंकि स्त्री लक्ष्मी का ही रूप होती है। जिस दिन पैदा हुई उस दिन से तुम्हारे घर में सुन्दरता और कोमलता ले आई। जब तुम्हारे घर से दूसरे घर गई तो खाली हाथ नहीं गई, बैग पर बैग भर कर गई। कोई लड़की खाली हाथ ससुराल नहीं जाती, भिखारी की लड़की भी नहीं।

उस लड़की के प्रति तुमने क्या किया है? सारे नियम-कानून उस पर ही लाद दिए। आदमी विधुर बनता है तो वही कपड़ा पहनता है, पर औरत विधवा बनती है तो सफेद कपड़ा पहनती है, यह कौन-सा कानून है? आदमी विधुर होता है तो भी सब मंगलकारी कार्यों में भाग लेता है, लेकिन स्त्री विधवा बनती है तो किसी मंगलकार्य में भाग नहीं ले सकती। यह कैसा सामाजिक न्याय है? जो तुम्हारे घर खाली हाथ नहीं आई, जो अपनी खेत-क्यारी छोड़कर तुम्हारी खेत-क्यारी में आई है, उसके प्रति तुम्हारे मन में इतने दुराग्रह? उसके लिए तुमने इतने सारे नियम बनाए, वह भी ऋषि-मुनियों का नाम ले-लेकर!

आखिर किस ऋषि-मुनि ने ऐसा कहा है? ऋषि-मुनियों ने तो कहा है– *यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता:*–जहाँ स्त्री का सम्मान होता है वहाँ देवता निवास करते हैं। उन्होंने कहीं पर भी यह नहीं कहा कि जहाँ स्त्रियाँ पूजी जाती हैं वहाँ सब बन्टाधार हो जाता है। पते की बात यह कि हमारे ऋषि-मुनियों ने कभी भूलकर भी राम-सीता या कृष्ण-राधा कहा ही नहीं। हमेशा पहले स्त्री का नाम रखा। तुम्हारे नाम में भी, जैसे श्री गोयन्का, 'श्री' का नाम ही तो पहले आया। पहले लड़की आई, फिर तुम्हारा नाम, है कि नहीं?

हमारे यहाँ हमेशा से स्वयंवर हुए हैं, स्वयंवर का मतलब वर खुद चुनना। किन्तु हमारा समाज कई सदियों तक गुलाम रहा और विदेशी प्रभावों के कारण कई परिवर्तन आए। आज हम यह बात सबसे कहते हैं कि लड़की को अपना वर खुद चुनना चाहिए। अपना चुनाव करने के लिए लड़की में योग्यता भी होनी चाहिये। उसमें बुद्धि भी होनी चाहिए, विवेक भी होना चाहिए, दुनिया देखनी चाहिए। अगर दुनिया देखोगे नहीं तो चुनने में गलती हो जायेगी। इसलिए लड़की को लायक बनाना होगा। उसी से परिवार का कल्याण हो सकता है।

अब तकरीबन सारी दुनिया में लड़कियों के बारे में एक खुलापन आ गया है। सब जगह लोग यह चाहते हैं कि लड़कियाँ अच्छे-अच्छे काम सम्भालें। वे राजनीति में आएँ, उद्योग में आएँ, कारोबार में प्रबंधक बनें, शिक्षा में आएँ। जब भी किसी देश की कोई महिला प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति बनती है तो काफी सम्मान होता है। अभी न्यूज़ीलैण्ड में प्रधानमंत्री महिला बनी है। श्रीलंका की प्रधानमंत्री स्त्री है, आयरलैण्ड की राष्ट्रपति स्त्री है, बांग्लादेश की प्रधानमंत्री स्त्री है। लोग इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि हमें औरतों को उनके जायज अधिकार देने चाहिए। औरतों को जायज अधिकार देने का मतलब होता है अपना मातृ-ऋण चुकाना। तुमने मातृ-ऋण चुकाया कहाँ, वह तब चुकेगा जब हमारे यहाँ महिलाओं का समाज पढ़ा-लिखा हो, विद्वान् हो। न्यायपालिका में जाओ, वहाँ लड़की दिखे; सेना में जाओ, वहाँ भी लड़की दिखे; संसद में जाओ, वहाँ लड़कियाँ बैठें–यह स्वप्न प्रत्येक भारतीय का होना चाहिये। उसके बिना देश की उन्नति के बारे में कुछ सोचना ही नहीं। जिस घर में स्त्री की उन्नति नहीं होती, उस घर में उन्नति खाली दिखावे की उन्नति है। मर्यादा की रक्षा स्त्री ही करती है, पुरुष नहीं।

–11 नवम्बर 1997



अध्याय 9

ब्राह्मण की परिभाषा

प्राचीन काल में हमारे समाज में जो बहुत प्रतिभाशाली लोग होते थे, उन्हें ब्राह्मण कहते थे, और ये ब्राह्मण उस काल में बहुत ऊँचा जीवन बिताते थे। वे विवाहित भी होते थे और अविवाहित भी। वे भिक्षा पर जीवनयापन करते थे, सम्पत्ति नहीं रखते थे और नियमों का कड़ाई से पालन करते थे। ये ब्राह्मण दो प्रकार के होते थे। कुछ तो जाति से ब्राह्मण होते थे, और दूसरे द्विज होते थे, जो किसी अन्य जाति के होते थे, पर उनका संस्कार होता था दूसरी बार। द्विज माने दुबारा जन्मा, जिसका दूसरा संस्कार हो गया। द्विज संस्कार में उपनयन या यज्ञोपवीत बहुत जरूरी संस्कार माना जाता था। इस संस्कार के बाद बारह साल तक गुरुकुल में रहना पड़ता था जहाँ वेद विद्या का अध्ययन किया जाता था।

जन्मना जायते शूद्रः, संस्कारात् द्विज उच्यते।
वेदपाठी भवेत् विप्रः, ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः॥

ब्रह्म का मतलब वेद होता है। यद्यपि बाद में ब्रह्म का मतलब परमात्मा से लिया गया, मगर प्राचीन काल में, वेदों में ब्रह्म का मतलब होता था वेद। जो वेद को जानता है वह ब्राह्मण। ब्राह्मण का मतलब यही होता था। वे ब्राह्मण इतनी ऊँची कोटि के होते थे कि उनमें श्राप देने की भी शक्ति होती थी। अगर वे गलती से भी श्राप दे देते थे तो वह सच हो जाता था। रामचरितमानस में आपने प्रतापभानु की कहानी तो पढ़ी ही होगी, जिसे ब्राह्मणों का घोर श्राप सहना पड़ा।

राजा और राजनीति

प्रतापभानु की गलती यह थी कि जो कपटी राजा उसे मुनि-वेष में मिला था, उसके साथ उसने साठगाँठ की। राजा को ऐसा नहीं करना चाहिए। शासन के नियमों के अनुसार राजा को केवल सभापति की तरह कार्य करने का अधिकार होता है। राजनैतिक षड्यंत्र, दाँवपेंच आदि जितने भी अधिकार होते हैं, वे प्रधानमंत्री या अमात्य को होते हैं। कहीं षड्यंत्र करना हो या किसी को मरवाना हो या किसी के देश पर हमला करना हो या किसी से चुपचाप मिलना हो या किसी से कोई संवाद करना हो, राजा उसका निर्णय नहीं कर सकता। राजा शब्द का अर्थ होता है जो विराजमान है, जो अध्यक्ष है। राजा केवल बैठक की अध्यक्षता करता है। मन्त्री लोग गपशप करते हैं, निष्कर्ष निकालते हैं और राजा केवल हाँ कह देता है। वह केवल संशोधन या अनुमोदन करता है, इसलिये राजा हमेशा रबर-स्टाम्प होकर रहता है। प्राचीन काल से राजा क्षत्रिय हुआ करता था और प्रधानमन्त्री ब्राह्मण, क्योंकि वह बहुत तेज आदमी होना चाहिए। वह हमेशा नीति-नियम पर चलता था, राजा के इशारों पर नहीं। राजा को भोग-विलास और ऐशो-आराम में रखा गया, तुम इतना भर करो कि ठप्पा लगा दो, बाकी हम लोग निश्चित कर लेंगे।

प्रतापभानु ने यही गलती की कि उस कपटी से गुपचुप समझौता किया जो राजा को नहीं करना चाहिये था और इसीलिये वह दोषी था। अगर वह अपने प्रधानमन्त्री, धर्मरुचि से कह देता कि जंगल में ऐसा-ऐसा हुआ, पुरोहित को बदल दिया गया है तो बात दूसरी थी। न उसके बेटे को मालूम था, न पत्नी को मालूम था, किसी को मालूम नहीं था। राजा का मुनि के साथ समझौता हुआ कि वह राजपुरोहित को हर ले जाएगा और उसके बदले खुद पुरोहित बन जाएगा। यह एक प्रकार से षड्यंत्र था, गुप्त समझौता जिसको कहते हैं। राजा को यह गुप्त समझौता क्यों करना चाहिए था? उसने मुनि से यह बात कही कि मैं महा-शक्तिशाली बनना चाहता हूँ। मुनि ने कहा, यह रास्ता है। राजा को कहना चाहिए था, ठीक है मैं अपने मंत्री से बात करता हूँ, हम निश्चित करेंगे, तुम भी आओ। लेकिन उसने सब कुछ निजी तौर पर किया। चुपचाप वह महल में पहुँच गया और लोगों को लगा कि वह आखेट से वापस आ गया है। उसके अलावा किसी और को खबर तक नहीं थी।

राजा को अकेले कोई भी राज-कार्य करने का अधिकार नहीं होता। प्रजातंत्र में भी नहीं होता। किसी भी राजनैतिक तंत्र में राजा को अकेले

निर्णय करने के अधिकार नहीं होते, और जब एक को ऐसे अधिकार होते हैं, उसको कहते हैं तानाशाही या सामन्तशाही या निरंकुश शासन। इसमें एक ही आदमी सब निर्णय ले लेता है।

खुद सब निर्णय ले लेना ही प्रतापभानु की सबसे बड़ी गलती थी। यह उसके चरित्र का मुख्य दुर्गुण था जो रावण में भी प्रकट हुआ। रावण भी ऐसा ही था। वह जब सीता का हरण करना चाहता था तो दस-बीस से पूछता। वह जब मारीच के पास गया मदद के लिये तो उसने मना कर दिया। रावण ने डरा-धमकाकर उसे मजबूर किया और मारीच ने डर के मारे साथ दिया। उसके बाद जब मंदोदरी को पता चला तो उसने भी रावण को समझाया, पर उसकी बात नहीं माना। माल्यवन्त ने समझाया, उसकी बात भी नहीं माना। विभीषण ने उसे समझाया, उसकी बात भी नहीं माना। उसके नाना, ऋषि पुलस्त्य ने भी उसे चिट्ठी भेजी, उनकी बात भी नहीं माना। वह बड़ा निरंकुश था, जो संस्कार प्रतापभानु में था वही उसमें आया।

जब मारीच ने श्रीराम को अवतार के रूप में पहचान लिया था तो फिर रामजी की आवाज में लक्ष्मण और सीताजी को क्यों पुकारा?

पति-पत्नी जानते हैं कि उन्हें साथ में रहना है फिर भी रोज नोक-झोंक क्यों होती है? मालूम होने पर भी ऐसा होता है। मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ज्ञान होते हुए भी वह अज्ञानी है। कोई भी व्यक्ति इसका अपवाद नहीं है। वह सब कुछ जानता है, फिर भी अज्ञानी का जीवन बिताता है। सब लोग बोलते हैं कि भगवान ही सब कुछ करते हैं, मरना-जीना मनुष्य के अधीन नहीं हैं। सब मानते हैं, विश्वास भी करते हैं, मगर जब व्यवहार की बात आती है तो सब विफल हो जाते हैं। कोई बीमार होता है तो लोग क्यों घबराते हैं? अज्ञान की वजह से। घर में जब कोई मर जाता है तो लोग क्यों इतने शोकाकुल हो जाते हैं? इसका यथार्थ से कोई मतलब नहीं है, अज्ञान से मतलब है। रात के बाद दिन आता है, दिन के बाद रात आती है, पतझड़ के बाद बसंत आता है, बसंत के बाद पतझड़ आती है, सब जानते हैं, मगर फिर भी जब घर में कोई मुसीबत आती है सब पूरी तरह से पटरी से उतर जाते हैं। पति और पत्नी को मालूम है जीवन भर साथ रहना है फिर भी रोज झगड़ते हैं। लोगों को मालूम है मद्यपान करने से बुद्धि नष्ट होती है, पीने वाला भी जानता है, फिर भी पीता है।

मनुष्य के जीवन में ज्ञान और अज्ञान के बीच यह द्वन्द्व चलता ही रहता है। इसलिए मारीच को यद्यपि मालूम था कि श्रीराम भगवान के अवतार हैं और उसे यह कह देना चाहिए कि सीताजी के अपहरण का प्रयत्न हो रहा है, उसने यह सब नहीं कहा क्योंकि वह अज्ञान के वश में था। मुख्य चीज यह है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य को समझ या ज्ञान या अक्ल थोड़ी देर के लिए आती है, और उसके बाद वह अक्ल खत्म हो जाती है। अक्ल में निरन्तरता नहीं है। अपने व्यावहारिक जीवन में देख लो, कोई नई बात तो नहीं बोल रहा हूँ। अगर वह ज्ञान बना रहे लगातार, मनुष्य गलती नहीं करेगा। मगर ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि मनुष्य का मन चंचल है और वह सदा एक समान नहीं रहता। जैसे हमारे यहाँ बिजली की वोल्टेज कभी 230 हो जाती है तो कभी 210 तो कभी 240, वैसे ही मनुष्य का दिमाग भी ऊपर-नीचे होता है और कभी-कभी उसका फ्यूज़ भी उड़ जाता है।

सच्ची बात यह है कि मनुष्य को ज्ञान होना काफी नहीं है। ज्ञान तो सब में है, जब तुम दूसरों को समझाते हो तो कितना अच्छा समझाते हो! मगर जब खुद को समझाना होता है तब नहीं समझा पाते हो। *पर उपदेश कुशल बहुतेरे*—जब तुम दूसरों को समझाते हो तो कितने कुशल हो जाते हो। मनुष्य सब कुछ जानता है, उसे मालूम है मृत्यु अनिवार्य है, उसे यह भी मालूम है कि मृत्यु का कारण कुछ भी हो सकता है। उसे यह भी मालूम है कि सम्पत्ति-विपत्ति दिन-रात की तरह आती है। उसे यह भी मालूम है कि *सब दिन जात न एक समान*। उसे यह भी मालूम है कि *कर्म गति टारे न टरे।* मनुष्य यह सब जानता है, मगर जब परिस्थिति अपने ऊपर आती है तो आग्रह करता है कि ऐसा न हो। क्यों? इसलिए कि मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी या सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह परम आनन्द की प्राप्ति चाहता है और दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति। यह मनुष्य का मूल स्वभाव है, उसका धर्म है।

परमानन्द का मतलब होता है आनन्द ही आनन्द। मनुष्य चाहता है कि उसको ऐसा आनन्द मिले जिसमें कोई बाधा ही न हो। साथ ही चाहता है कि दु:ख केवल थोड़ी देर के लिये निवृत्त न हो, बल्कि दु:ख की पूरी निवृत्ति हो जाए। परमानन्द की प्राप्ति और दु:ख की पूर्ण निवृत्ति—यह जीव का स्वभाव है। जीव किसको कहते हैं? जो परमात्मा का अंश तुम्हारे अन्दर है—*ईस्वर अंस जीव अबिनासी, चेतन अमल सहज सुख रासि।* उसका सहज स्वरूप ही सुख है। अब जब तक मनुष्य उस तक नहीं पहुँचेगा, ईश्वर अंश से नहीं

जुड़ेगा तब तक परमानन्द का अनुभव होगा ही नहीं। परमानन्द प्राप्ति नहीं है, यह अनुभूति है। इसी प्रकार से दु:ख और सुख प्राप्ति नहीं, अनुभूति होती है। सुख एक अनुभूति का नाम है, दु:ख एक अनुभूति का नाम है। लोग कहते हैं मृत्यु से दु:ख होता है। नहीं, मृत्यु से दु:ख नहीं होता। अगर होता तो हम जिन्दा ही नहीं रह पाते, क्योंकि रोज तो लाखों मर रहे हैं। कोई बस से मर रहा है, कोई बम से मर रहा है, कोई आत्महत्या से मर रहा है। रोज रोते हो क्या तुम लोग? नहीं, मृत्यु दु:ख का कारण नहीं, उससे दु:ख तब होता है जब उसका सम्बन्ध तुम्हारी अनुभूति से हो। तुम्हारी अनुभूति सीमित है ममता से। ममता एक तार है जो तुम्हें दूसरों से जोड़ती है। ममता ही मृत्यु को दु:ख का कारण मानकर दिमाग में घुसाती है। असली बात वही है।

जब भी कोई घटना मनुष्य जीवन में घटती है तो एक बात याद रखो कि उस घटना का कहीं-न-कहीं से कुछ सम्बन्ध जरूर होता है। समझ में ज्यादा आवे या न आवे, पर यह मानकर चलो कि कहीं की घटना का सम्बन्ध कहीं से होता है। मारीच का रावण के साथ एक सम्बन्ध था और उसका श्रीराम के साथ भी एक सम्बन्ध था। फिर सीताजी के अपहरण में उसकी जो भूमिका रही, वह क्यों थी? कर्मों का एक गणित होता है और वह अचूक होता है। अब उसमें मनुष्य देह धारण करके भगवान भी आएँगे तो उन्हें शरीर के धर्मों का पालन करना पड़ेगा। अगर करोड़पति का लड़का किसी फिल्म में भिखारी की भूमिका अदा करे तो उसे भिखारी के धर्म का पालन करना पड़ेगा। वह यह नहीं सोच सकता कि मैं करोड़पति का लड़का हूँ। उसी तरह जब भगवान भी मानव शरीर में आते हैं तो मानव देह, समाज और राष्ट्र के जितने धर्म होते हैं, उन सबका पालन करना पड़ता है। इसलिए रामजी को मर्यादा का पालन करते हुए सीताजी का त्याग करना पड़ा, यद्यपि वह अनुचित माना गया। उन्हें ताड़का का वध करना पड़ा यद्यपि वह स्त्री थी और स्त्री का वध नहीं किया जा सकता था। उन्हें रावण का वध करना पड़ा यद्यपि रावण शास्त्र के अनुसार अवध्य था, वह ब्राह्मण जो था।

जीवन का धर्म परिस्थिति, देश और काल के अनुसार बनता है। कृष्ण जी आए, कितने समर्थ थे, मगर कर्म से मुक्त नहीं रहे। खुद गीता में उन्होंने कहा है, *गहना कर्मणो गति:*। कर्म का बहुत गहरा विज्ञान है। मारीच रामजी की दिव्यता को पहचानता था, उसने रावण को अच्छी तरह से समझाया भी था। फिर वह काम क्यों किया रावण के कहने पर? क्या वह सीताजी को एक

इशारा नहीं दे सकता था कि मैं नकली हूँ? क्या हो गया उसकी मति को? खाली कह देता सीताजी से कि हम जाली हैं, काम चल जाता। इतनी दूर दौड़ाना नहीं पड़ता। या कह देता रामजी से कि मुझे मत मारो, मैं मारीच हूँ। नहीं, कुछ नहीं बोला। आखिर उसकी मति क्यों मारी गई? कर्म ही मनुष्य की मति को तय करता है। रामचरितमानस में कहा है *'सुमति कुमति सब कें उर रहहीं'*। सुमति कुमति तो सबके मन में रहती है, मगर कहीं पर सुमति प्रमुख हो जाती है तो कहीं पर कुमति।

मैं अभी शादी करने की बजाय उच्च शिक्षा के लिए संस्कृत में जाना चाहती हूँ। इसमें क्या संभावनाएँ हैं?

देश-विदेश के लोग वैदिक संस्कृति और वाङ्मय पर शोध करते हैं और यहाँ की सभी प्राचीन परम्पराएँ, इतिहास और शास्त्र संस्कृत में ही लिपिबद्ध हैं। हिन्दुस्तान में जितने भी विश्वविद्यालय हैं, वहाँ चीन, रूस, अमेरिका और जापान जैसे देशों के लोग अनुसंधान करते हैं। वे लोग शोध करने के लिए यहाँ आते हैं और उन्हें अनुसंधान के लिए अपने विश्वविद्यालय से अनुदान मिलता है। यहाँ आकर के वे लोग किसी संस्कृतविद् को ले लेते हैं, चाहे लड़का हो या लड़की। मान लो किसी को ऋग्वेद में सोम याग पर कोई शोध करना है। अब जो संस्कृत जानता है वह उसको अनुवाद करके देगा और उसके लिये भुगतान होता है। ऐसे संस्कृत विद्वानों और विद्यार्थियों का कुछ विश्वविद्यालयों की शोध परियोजना में नाम दर्ज किया जाता है। मतलब वे किसी नौकरी में बंधे नहीं, स्वतंत्र रहते हैं। जब कोई आता है उन्हें चिट्ठी लिखी जाती है कि फलाने देश से फलाना आदमी आया हुआ है, शोध करना चाहता है, उससे मिल लो। उसके बाद संस्कृत का विद्वान् उन्हें अनुवाद करके देता है अंग्रेजी या फ्रेन्च या जर्मन में। हमारे बहुत-से संन्यासी गुरु-भाई काशी में रहते हैं, सब विश्वविद्यालय से जुड़े हैं। अपनी-अपनी कुटिया है या किसी मठ में रहते हैं। शोधवाला आता है तो बुलावा जाता है, स्वामीजी, आप आइए। स्वामीजी को सामग्री दी जाती है, वे अनुवाद टाइप करके दे देते हैं। संन्यासियों में भी विद्वान् संन्यासी बहुत हैं जो अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाएँ जानते हैं। उन्हें चार-पाँच हजार मिल जाता है। वे आराम से कुटिया में रहते हैं, इधर-उधर भिक्षा माँगने के बदले एक जगह रहकर भगवान का भजन करते हैं। कहने का

मतलब यह कि संस्कृत भाषा जानने वाले व्यक्ति अपना अच्छा उपयोग कर सकते हैं, मगर उसके लिए विश्वविद्यालय के लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित करना चाहिये।

जहाँ तक शादी का सवाल है, मेरा ऐसा विचार है कि चाहे लड़की हो या लड़का, विवाहित जीवन धार्मिक संस्कार भी है और समाज के लिए अनिवार्य भी। इसमें दो मत नहीं। यह मनुष्य की प्राकृतिक आवश्यकता भी है। प्राकृतिक आवश्यकता को सामाजिक रूप दिया गया है, यह मानने के लिए मैं तैयार हूँ, मगर लड़की के लिए केवल यही एक विकल्प हो, यह मैं आज मानने को तैयार नहीं। जीवन का एक आधार होना चाहिए, और पहले विवाह जीवन का एक आधार होता था। उस समय लड़कियों के लिए कोई दूसरा रास्ता तो था नहीं, मगर आज उनके सामने दो और विकल्प, दो और दरवाजे खुले हैं—शिक्षा और स्वावलम्बन। केवल ये दो ही नहीं हैं, बल्कि तीसरा विकल्प भी बहुत तेजी से खुल रहा है—महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति। क्या लड़कियों में महत्त्वाकांक्षा नहीं होती? क्या पुरुष ही महत्त्वाकांक्षा धारण करते हैं? दोनों के मस्तिष्क अलग हैं क्या? नहीं, लड़कियों में भी महत्त्वाकांक्षा होती है, और उतनी ही होती है जितनी लड़कों में होती है। किन्तु हम लोगों ने ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनैतिक कारणों से उनकी महत्त्वाकांक्षाओं को पनपने नहीं दिया। ठीक है, तुम्हें महत्त्वाकांक्षा न हो, मगर तुम्हारी लड़की को निश्चित होगी। हो सकता है बोले नहीं, पर क्या वह नहीं चाहती कि किसी विश्वविद्यालय से उसे चालीस-पचास हजार डॉलर अनुदान मिल जाए तो फ्रांस में जाकर अनुसंधान करे? क्या वह यह नहीं चाहती कि चार-पाँच साल दुनिया घूमे?

लड़कियों के जीवन को लड़कों के जीवन से सामाजिक आधार पर अलग नहीं मानना। यह गलत विश्लेषण है। इसका सामाजिक कारण क्या है? मध्य युग में तुम जानते हो समाज में कैसे होता था, इसलिये लड़की को बारह-तेरह साल की उम्र में रवाना करना पड़ता था। लाल टीका लगाकर शादी का ठप्पा लगाना पड़ता था। यह सब करना पड़ता था, लेकिन जहाँ हम परिस्थितियों से हार मान लेते हैं वहाँ युग का निर्माण नहीं कर सकते। अगर हमें नया ज़माना लाना है तो हमें परिस्थितियों से हारना नहीं है। आज परिस्थितियाँ बदल रही हैं, बदल चुकी हैं। समाज इस बात को स्वीकार कर चुका है। मेरे कहने का मतलब यह कि आज समाज ने स्त्री जाति को ऊँचा

उठाने का सोच लिया है। समाज को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि गृहस्थी की गाड़ी के दो पहिये होते हैं। अगर एक पहिये में छेद है तो गाड़ी ठीक से नहीं चलेगी।

हम लोगों की शादी-ब्याह के बारे में जो मान्यता है वह वैदिक सभ्यता की मान्यता नहीं है, वह बाहरी सभ्यताओं के प्रभाव का अवशेष है। वैदिक सभ्यता में स्वतंत्रता और स्वाधीनता रही है। धर्म के बारे में स्वतंत्र चिन्तन हुआ है। किसी ने कहा ईश्वर एक है, किसी ने कहा तेंतीस करोड़ देवता होते हैं, किसी ने कहा दस अवतार होते हैं। मतलब विभिन्न प्रकार के चिन्तन चले यहाँ और सबको हमने स्वीकार किया है। वैदिक धर्म के शास्त्रों में लिखा है कि विवाह में वर चुनने का अधिकार लड़की का है। शादी का हक, शादी का कर्तव्य लड़की का है, न कि माता-पिता का। हमारे यहाँ स्वयंवर शब्द तो बहुत प्रचलित है न, क्या इसके अनुवाद की जरूरत पड़ती है? बेवकूफ भी समझता है स्वयंवर का मतलब खुद चुनना। मगर लड़की चुनेगी कैसे जी? पढ़ी-लिखी है नहीं, गंवार और फूहड़ है, तब कैसे चुनेगी? स्वयंवर का अधिकार उसी को है जो विदुषी हो, जो शिक्षित हो, जो सब कुछ समझती हो।

इसलिए सबसे पहले लड़कियों को शिक्षित करना आवश्यक है। उसके बाद उन लोगों को अच्छे काम में लगाओ। उसके साथ-साथ विवाहित जीवन भी जरूरी है। हम यह नहीं कहते कि विवाह नहीं होना चाहिये, आखिर वह



तो प्राकृतिक धर्म है। भगवान ने यह नियम बनाया है कि स्त्री-पुरुष एक साथ रहें और उस प्राकृतिक धर्म को समाज ने विवाह का रूप दिया। शास्त्र कहते हैं कि हर मनुष्य के मन में कामनाएँ होती हैं। कौन-सी कामनाएँ? संतान की कामना सबके मन में समान है। धन-सम्पत्ति की भी कामना रहती है। घर में चावल हो, आटा हो, बर्त्तन हों, चीनी हो, चाय हो, तेल हो, रुपया हो, पैसा हो, गहने हों, कपड़े हों। यह भी स्वाभाविक कामना है। आखिर चूहा भी तो अन्न बटोरता है न? स्त्री-पुरुष के मिलन की कामना भी सब में स्वभाविक है, और यश की कामना भी सबमें है। तुम चाहते हो कि आस-पड़ोस में सब हमें जाने, नहीं चाहते हो क्या? यह कोई सामाजिक चीज नहीं, प्राकृतिक चीज है, जिसे कहते हैं लोक कामना। हमें मंत्री बनना है, हम पी.एच.डी. करने लंदन जा रहे हैं, इस तरह की ईश्वर-प्रदत्त कामना हर व्यक्ति के मन में है। आपके मन में नहीं होती है क्या ऐसी कामना, भले आप पूरी न कर सकें पर कभी-न-कभी तो कामना रही होगी न? सपने केवल पुरुष ही नहीं देखता, स्त्री भी देखती है। सपना गरीब भी देखता है और अमीर भी। सदाचारी, दुराचारी, व्यभिचारी—सब लोग ख्वाब देखते हैं। इस प्राकृतिक धर्म के साथ अपने संतानों को लेकर आगे बढ़ो, हो सकता है उनमें कोई गाँधी बन जाए, कोई न्यूटन बन जाए।

प्रतिभा और नशा

अमेरिका के एक व्यक्ति की बात बतलाता हूँ। वह बहुत साधारण-सा व्यक्ति था, पर उसे एक कला मालूम थी। वह चित्र बनाना जानता था, बहुत अच्छी तस्वीर बना लेता था। सन् 1968 में मेरी उससे ऐसे ही मुलाकात हुई। उसने कहा, स्वामीजी हम आपका चित्र खींचेंगे। हमने कहा खींचो। यह न्यूयॉर्क की बात है। अठारह-बीस साल का लड़का था, हिप्पी किस्म का। उसने मेरा चित्र बनाया, और बहुत ही अच्छा बनाया। मैं जब हँसता हूँ तो आपने देखा होगा, मेरी एक खास मुस्कुराहट है। वह उसने पकड़ी और चित्र में निकाली। चेहरा तो सबका एक-सा ही होता है, मगर हर आदमी की कुछ विशेष मुद्रा या भंगिमा होती है। पुलिस के लोग इसे अच्छी तरह समझते हैं। कोई आदमी वेष बदल ले, लेकिन भंगिमा पर पकड़ा जाता है।

मैंने कहा, तुम तो विशेष आदमी हो। वह एल.एस.डी. लेता था। मालूम है न क्या होता है? वह एक प्रकार का मादक द्रव्य है जिसे लेने के बाद आदमी

को वैसे अनुभव होने लगते हैं जैसे काकभुशुण्डी, अक्रूर, यशोदा या गीता के ग्यारहवें अध्याय में अर्जुन को हुए थे। उसमें कितनी दुर्घटनाएँ भी हो जाती हैं। कुछ को ऐसे अनुभव हुए हैं कि बीसवीं-तीसवीं मंजिल से कूद गए हैं। सोचते हैं कि आगे सड़क है, महाभ्रम हो जाता है। मेरे पास उसको लाए थे एक हिन्दुस्तानी महात्मा। अलीगढ़ के रहने वाले थे, उनका नाम था डॉ. राममूर्ति मिश्रा। अब तो नहीं हैं, उनका शरीर चला गया। वे पहले न्यूयॉर्क के अस्पताल में न्यूरो सर्जन थे, फिर उन्होंने सर्जरी छोड़ दी और वहीं रह गए। साधुओं की तरह संस्कृत, वेद-वेदान्त और योग सिखाते थे। उन्होंने मुझे इस लड़के से मिलवाया। मैंने लड़के से कहा, तुम इस कला में रहो। उसने पूछा, एल.एस.डी. छोड़ दूँ। मैंने कहा, 'देखो, लेना-छोड़ना तुम्हारी मर्जी, मैं किसी की अच्छाई-बुराई में नहीं जाता, मैं इतना जानता हूँ कि तुम सूक्ष्म चीजों को पकड़ने की क्षमता रखते हो और तुम इसी क्षेत्र में जाओ।'

उसने ऐसा किया और आज वह अमेरिका का सबसे विख्यात कलाकार है। उसका नाम है पीटर मैक्स और वह विख्यात ही नहीं, करोड़पति भी है। रोल्ज़ रॉयस गाड़ियाँ रखता है। कुछ साल पहले रियो डी जनेयरो में जो बहुत बड़ा पर्यावरण सम्मेलन हुआ था, उसमें जितने भी चित्र वाले विज्ञापन थे, सभी का उसने ठेका लिया। ठेका लिया का मतलब सैकड़ों चित्रकार उसके निर्देशों पर काम कर रहे थे। पर्यावरण को दर्शाने वाले सभी चित्रों का ठेका उसको दिया गया। बड़े-बड़े राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री वहाँ गए थे। सोचो, एक छोटे-से लड़के के अपने स्वप्न थे, उसकी अपनी एक योग्यता थी, और एक आदमी ने केवल उसे 'यह करो' बोल दिया और उसने उस बात को पकड़ लिया!

अब आप लोगों को मेरी बातें थोड़े ध्यान से सुननी होंगी। नशा खराब है, यह आयुर्वेद में भी लिखा है, धर्मशास्त्रों में भी लिखा है, सब जगह लिखा है, मगर योगशास्त्र क्या कहता है? योगशास्त्र सिद्धि की चर्चा करता है। सिद्धि की व्याख्या क्या है? अपने मन के अन्दर छिपी हुई प्रतिभा को प्रकट करने का नाम सिद्धि है। जैसे पानी से बिजली को प्रकट किया, यूरेनियम से परमाणु उर्जा को पैदा किया, लोहे के खनिज से लोहे को पैदा किया, दूध से मक्खन को पैदा किया और काठ के अन्दर से अग्नि को पैदा किया, वैसे ही अपने मन में एक छिपी हुई प्रतिभा है, जिसे प्राप्त करने के लिये योगशास्त्र पाँच उपाय बताता है। उनमें एक उपाय औषधि भी है। जिसने पातंजल योग दर्शन पढ़ा है वह मेरा इशारा समझ जाएगा– *जन्मौषधिमंत्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः*। मंत्र,

तप और मन की एकाग्रता के द्वारा भी सिद्धि प्राप्त होती है, और औषधि के द्वारा भी वह अवस्था लायी जा सकती है। अब वह औषधि है क्या?

सब से प्राचीन औषधि थी सोमरस। उस समय सोम नाम की लता होती थी। शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा तक उसकी एक-एक पंखुड़ी निकलती थी, उसको टीप लिया जाता था, और फिर पूर्णमासी के बाद वह सब गिरने लगती थी। उसे पेड़ों से निकालकर घड़े में भरकर जमीन के अन्दर डाल देते थे। उसमें और कुछ मिलाते थे, खमीर उठता था जैसे अंगूर को करते हैं। उससे शराब बनाते थे। शराब शब्द कहता हूँ, खमीर उठाए गए पानी को शराब कहते हैं। आब माने पानी, शर माने सड़ा हुआ। उस शराब को वे पीते थे, और उस वक्त केवल ब्राह्मण ही उसे पीता था। ब्राह्मण की परिभाषा पहले बता चुका हूँ तुम लोगों को। पहले केवल त्यागी, तपस्वी ब्राह्मण सोमरस पिया करते थे, जो अपने पर संयम रखते थे। लेकिन बाद में जब सबने लेना शुरू कर दिया तो इसे धीरे-धीरे खत्म कर दिया गया।

आधुनिक युग में अमेरिका और हॉलैण्ड, इन दो देशों में सबसे पहले पता चला कि कोई ऐसा रसायन बनाया जा सकता है, जो मनुष्य की इन्द्रियों को सुन्न कर देता है और मन-मस्तिष्क को विस्तारित करता है। उनमें एक अमरीकी आदमी था जिसका नाम था टिमोथी लियरी। वह बड़ा विद्वान् था, उसने एल.एस.डी. पर बहुत-से प्रयोग किए, और अमरीकी लोग उस नशे को भरपूर लेने लग गए। इसके परिणामस्वरूप वहाँ 'हिप्पी' नाम के



समुदाय का जन्म हुआ। ये हिप्पी लोग सामान्य जीवन नहीं जीना चाहते थे। ये गाने वाले, बजाने वाले, नाचने वाले, लड़का-लड़की के बीच फर्क नहीं देखने वाले लोग थे। कुछ भी खा लिया, कहीं पर भी खा लिया, कहीं भी बैठ गये, कहीं पर भी सो गये, एक मस्त और बेफिक्र किस्म की सभ्यता ने जन्म लिया। मगर वहाँ की सरकार ने उन्हें काबू में करने के लिए कड़े कानून बनाने शुरू किए। टिमोथी को अमेरिका से निकाला गया, वह स्विट्ज़रलैण्ड भाग गया। डॉ. राममूर्ति मिश्रा, जिनकी बात मैं कह रहा था, टिमोथी के बहुत अच्छे दोस्त थे। उन्हें भी निष्कासित किया गया, वे बाद में हमें लंदन में मिले थे और पूरी कहानी बतला रहे थे।

जब लोगों ने देखा सरकार हमें बहुत तंग करती है तो उन्होंने कहा कि सीधा गाँजा पीना शुरू कर दो। गाँजा चल पड़ा और दुनियाभर में फैल गया। इतना फैला कि आज कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ गाँजा नहीं पहुँचता। कई देशों में तो सरकार पर दबाव हो रहा है कि इसे कानूनी बनाओ। उस पर वैज्ञानिक अनुसंधान हो रहे हैं कि उससे कितने रोगों में फायदा होता है। वह मेक्सिको से ज्यादा आता है, नेपाल से भी आता है। अफगानिस्तान से अफीम चली गई है। अफगानिस्तान के लोग इतने मालदार हो गए हैं कि टैंक और हवाई जहाज लेकर लड़ रहे हैं आपस में।

पाश्चात्य देशों में ये चीजें जो गई हैं उसका मुख्य कारण यही है कि योगशास्त्र का औषधि शब्द उन लोगों के दिमाग में घुसा हुआ है। उन लोगों का यह मानना है कि मनुष्य को कुछ हद तक नशा चाहिए ही, या तो वह बाहर से ले, या अपने अन्दर पैदा करे। अगर तुम पूछो कि अपने अन्दर नशा कैसे पैदा करें तो वैज्ञानिकों ने अनुसंधान किया और मैंने भी किया है कि ध्यान जैसे-जैसे गहरा होते जाता है वैसे-वैसे हमारे शरीर के अन्दर एक विशेष हॉर्मोन पैदा होता है जिसका नाम है हिस्टामीन। वह खून में मिलकर हमारे अन्दर वह स्थिति पैदा करता है जो तुम शराब पीने से पैदा करते हो। बोलते हैं न बाबाजी बड़े मस्त रहते हैं, वह मस्ती कहाँ से आती है? किसी शराबी या गंजेड़ी को देखकर कहते हैं, अरे वह तो नशा करता है। एक के बारे में कहते हैं, नशा करता है और दूसरे के बारे में कहते हैं, मस्त रहता है। बात एक ही है।

खून में हिस्टामीन की मात्रा बहुत थोड़ी होती है। एक चम्मच नहीं, एक बूँद नहीं, बल्कि सुई की नोक में जितना पानी अटे उतनी मात्रा में

पैदा होता है गहरे ध्यान में जाने के बाद या तीन-चार घण्टे 'श्रीराम जय राम जय जय राम' बोलने के बाद। वैज्ञानिकों का यह कहना है मनुष्य को थोड़ा बहुत नशा चाहिए, अगर यह नशा कम हो जाएगा तो उसका रक्तचाप बढ़ जाएगा, दिल पर दबाव बढ़ जाएगा और दिल के दौरे की सम्भावना अधिक रहेगी। इसलिए अभी अमेरिका और अन्य पाश्चात्य देशों में बहुत जोर लग रहा है कि गाँजा कानूनी होना चाहिए। अभी कानूनी नहीं है, इसके पीछे एक कारण यह है कि वहाँ शराब बहुत बड़ा उद्योग है। शराब बनाने और बेचने वाले आदमी वहाँ अरबपति होते हैं। अगर वहाँ के लोग गाँजा पीने लग जाएँगे तो शराब उद्योग चौपट हो जाएगा। गाँजा तो बहुत सस्ता होता है, अठन्नी-चवन्नी में मिल जाता है, जबकि शराब की बोतल एक-दो हजार की होती है। अब तुम रातभर में हजार की चीज पियोगे या अठन्नी-चवन्नी की चीज। आखिर वहाँ भी तो कम आमदनी वाले लोग हैं। खैर अब वहाँ बहुत जोर लग रहा है, मैं तो समझता हूँ कि अगले बीस वर्षों में यह सब जगह कानूनी हो जाएगा।

हमारे यहाँ साधु-महात्माओं को गाँजा पीने में कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा। बहुत-से साधु-महात्मा और नागा बाबा नेपाल चले जाते हैं, क्यों? वहाँ इन्हें गाँजा मुफ्त मिलता है। राजा की तरफ से साधुओं को वहाँ दो चीजें मुफ्त मिलती हैं, लकड़ी और गाँजा। अब मिलती है कि नहीं, पता नहीं, मैं तो बहुत सालों से गया नहीं हूँ। पर मेरे कहने का मतलब यह कि गाँजा या भाँग खराब है ऐसी बात नहीं है। खराब तब होती है जब तुम इसके उपयोग का कारण नहीं जानते हो। आखिर तुम लोग जो अंग्रेजी दवा खाते हो, वह क्या है? अंग्रेजी दवाओं में शायद ही कोई ऐसी दवा हो जिसमें कोई प्रशान्तक न मिलाया गया हो, या जो शराब मुक्त हो। कुछ आयुर्वेदिक दवाओं में भी शराब रहती है जैसे कुमारी आसव। इन सबमें शराब रहती है, और यह बहुत प्राचीन काल से चला आया है।

इन चीजों से नुकसान भी निश्चित रूप से हो सकता है। आखिर विष और अमृत में केवल उपयोग का फर्क है। एक उपयोग से वह विष बनता है और दूसरे से अमृत बनता है। साँप काटने की दवा क्या है? साँप का जहर। साँप के जहर को निकाला जाता है, फिर उससे सीरम निकाला जाता है और फिर दवा में उसको भरा जाता है। उसे कहते हैं 'एण्टी वेनम सीरम'। विष ही विष को काटता है। केवल उपयोग का फर्क है, और कुछ तो है नहीं।

ग्रामीण जीवन

हिन्दुस्तान की संस्कृति का आधार कृषि और कृषि सम्बन्धित श्रम है। कृषि सम्बन्धित श्रम क्या होता है? हल चलाना, रोपा करना, घास निकालना, फसल काटना, पशुपालन–यह कृषि सम्बन्धित श्रम है। हिन्दुस्तान में करीब सत्तर प्रतिशत लोग इसमें सीधे सम्मिलित हैं। जिस देश की 70 प्रतिशत जनता कृषि पर अवलम्बित है उस देश की संस्कृति को टेक्नॉलोजी की दिशा में मोड़ना बहुत कठिन काम है क्योंकि टेक्नॉलोजी में धन का निवेश बेहद होता है और उतना तुम्हारे पास है नहीं। मगर कृषि के बारे में हमारे लोगों को अच्छी जानकारी है। कम-से-कम दिन में दो रोटी मिल ही जाती है इन लोगों को।

आज विडम्बना यह है कि इस तरफ किसी भी पढ़े-लिखे व्यक्ति का, किसी भी राजनैतिक शक्ति का या किसी भी सरकार का ख्याल नहीं जा रहा है। स्टेडियम या लाईब्रेरी बनाने के लिए तुम्हारे पास पैसे हैं, किसी नेता का स्मारक बनाने के लिए तुम्हारे पास पैसे हैं, देश-विदेश में अपनी संस्कृति फैलाने के नाम पर नाच-गाना दिखाने के लिए पैसे हैं, लेकिन गाँव में चापाकल बिठाने के लिये, ताल-तालाब बनाने के लिये तुम्हारे पास पैसे नहीं हैं। यहाँ गाँवों में किसी टेक्नॉलोजी की आवश्यकता नहीं है, गाँवों को केवल एक चीज की आवश्यकता है–पानी। ठीक है, आजकल टीशू कल्चर जैसी अच्छी आधुनिक तकनीकें हैं, अगर वह न भी दे सको, अगर तुम आधुनिक खाद भी न दे सको, पर यदि हर किसान के पास सिंचाई का ठीक साधन हो, ऊपरवाले पर अवलम्बित न रहे तो हिन्दुस्तान के सामने कोई भी मुल्क खड़ा नहीं रह सकता। यह देश बहुत तेजी से आगे बढ़ेगा क्योंकि यहाँ का किसान कुल मिलाकर संतोषी है। अगर फसल की कटनी में उसका सालभर का अनाज हो जाए और दीपावली-दशहरा में बच्चों के लिये कपड़ा मिल जाए और दो-चार साल में लड़की के लिए कुछ गहने भी निकल आएँ तो किसान इसी से संतुष्ट है। उसे ज्यादा जरूरत नहीं है। वह फटी चप्पल भी पहन सकता है, बिना चप्पल के भी रह सकता है, जमीन पर भी सो सकता है, मच्छर उसे काटता ही नहीं है। आखिर चोर वहीं जाता है जहाँ पैसा होता है। मच्छर वहीं जाएगा जहाँ खून होगा। उसके पास खून ही नहीं है, इसलिए मच्छर नहीं जाता उसके पास। सब मच्छर शहर चले जाते हैं तुम लोगों को खाने के लिए। कौए भी यहाँ नहीं रहते, सब शहर चले जाते हैं, बोलते हैं

क्या करेंगे यहाँ, कुछ मिलता ही नहीं है। खुद तो तुम दो दिन में एक रोटी खाते हो, क्या दोगे हमको? इसलिए कौआ, चिड़िया, कुत्ता सब देवघर में रहते हैं, यहाँ से पलायन कर गए सब। यह भले ही मजाक के रूप में बोल रहा हूँ, मगर है यह बहुत गंभीर बात।

दूसरी चीज है स्वास्थ्य और चिकित्सा। हमें किसी ने कहा कि यहाँ अस्पताल खोलना चाहिए। हमने कहा नहीं, दस-बारह लाख रुपये खर्च करके क्या फायदा। एक छोटी-सी क्लिनिक बनाकर फूस की छत लगा दी। डॉक्टर भी नहीं रखा, एक नर्स रखी है जो इंग्लैण्ड से आई है। और बीमारी क्या है यहाँ? उच्च रक्तचाप नहीं है, दिल की बीमारी भी नहीं होती है। केवल दस्त, सर्दी, बुखार, खुजली–यही सामान्य बीमारियाँ होती हैं इन लोगों की। इनकी चवन्नी की बीमारी होती है जबकि शहरी लोगों को सौ टके की बीमारी होती है। ये लोग सारा दिन काम करते हैं। टट्टी-पेशाब के लिए इन्हें दूर जाना पड़ता है, नहाने के लिए दूर जाना पड़ता है, बाजार के लिये दूर जाना पड़ता है। इनकी हर चीज में परिश्रम है, और हम लोगों का क्या है, जरा-सा पलटो और शौचालय मौजूद है। दो कदम खिसको और रिक्शा मिल जाता है। हम लोगों की शारीरिक मेहनत इतनी कम हो गई है कि हमारे शरीर में ढेरों विषाक्त द्रव जमा हो गए हैं जो रोगों को पैदा करते हैं।

अगर गाँवों पर थोड़ा-सा भी ध्यान दिया जाए तो हमारा देश स्वर्ग हो सकता है, लेकिन ऐसा नहीं हो रहा है। यहाँ के लोग बहुत अच्छे हैं। हम तो दुनिया के हर देश में रहे हैं, पर हमें यहाँ सबसे अच्छा लगता है। गाँव के लोगों से मिलना-जुलना बहुत अच्छा लगता है। मैं तो रात-दिन इन लोगों को बोलते रहता हूँ, पढ़ो, लड़कियों को पढ़ने दो। अब यहाँ धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा है। हमारे यहाँ जितने माध्यमिक और उच्च विद्यालय हैं, सब में भर्ती हो रही है। लड़कियाँ भी अब पढ़ने लगी हैं।



–12 नवम्बर 1997



अध्याय 10

पश्चिम की प्रगति का मुख्य आधार है अस्त्र-शस्त्र और टेक्नॉलॉजी। वे लोग अपनी टेक्नॉलॉजी को विकसित करते रहते हैं, अपना सामान बेचते जाते हैं और यहाँ के लोग लेते जाते हैं। यह जो मच्छरदानी देख रहे हो, वहीं बनती है। केवल सूता डाला जाता है, मशीन से अपने आप बनती जाती है। पहले के जमाने में मच्छरदानी को आदमी बनाता था। एक आदमी एक महीने में एक मच्छरदानी बनाता था। सवाल देर से बनाने या जल्दी बनाने का नहीं, आदमी को काम देने का है। एक मशीन आज जो काम करती है, वह पहले सौ आदमी करते थे। मतलब एक मशीन लगा देने से निन्यानवे का काम खत्म।

हमारे देश में बेरोजगारी बढ़ने का एक कारण यह भी है। पहले आदमी अपने हाथ से सूता बनाते थे, सूता कातते थे, उसके पहले कपास को साफ करना, फिर कपास को धोना, फिर उसको सुखाना, फिर उसका सूता बनाना, फिर उसको घुमाकर रखना, फिर उसके बाद उसको चरखे में डालना, उसके बाद उसका कपड़ा बनाना—इसमें सैकड़ों आदमी लगे रहते थे। इनको कोरी कहते हैं, कोरी जाति के लोग। यह पूरे हिन्दुस्तान में घर-घर का उद्योग था। जब अंग्रेज हिन्दुस्तान आए तो उन लोगों ने अपने मैन्चेस्टर जैसे नगरों में कपड़े के उद्योग शुरू किए। वे लोग यहाँ से सूती कपड़ा मँगाते थे और फिर वहाँ से तैयार कपड़े भेजते थे। उस समय हिन्दुस्तान में बहुत बड़ा अकाल पड़ा था। बिहार, बंगाल और उड़ीसा में लाखों लोग मरे। यह बहुत बड़ी विपदा इसलिए हुई कि अंग्रेजों ने सूती कपड़ा निर्यात करना प्रारम्भ किया और तैयार कपड़ा यहाँ लाने लगे। इसे वही लोग खरीद सकते थे जिनमें

खरीदने की क्षमता थी। जुलाहे के लिये कोई कार्य नहीं था। इस कारण सारा देश अकाल में जा रहा था।

कताई, बुनाई यह काम हर परिवार किया करता था और यही गांधीजी की दृष्टि ने पकड़ा। उन्होंने घर-घर में चरखा शुरू किया। यह उनकी सफलता का एक बड़ा कारण था। न सिर्फ हिन्दुस्तान में, तुम तिब्बत जाओ, कश्मीर जाओ, तुम्हें चरवाहे मिलेंगे जो अपने मवेशियों को पालते हैं और फिर ऊन कातते हैं। दिन और रात, आदमी, औरत और बच्चे, सब कातते हैं। मैंने वे दिन देखे हैं। वे चरखा चलाते हैं, स्वेटर बनाते हैं, लोई बनाते हैं, कपड़े बनाते हैं। उत्तर भारत में वे ऊन की चीजें बनाते हैं, पश्चिम भारत में सूती चीजें और दक्षिण भारत में रेशमी चीजें। इससे हिन्दुस्तान में हर व्यक्ति को कुछ रोजगार मिलता था, कुछ खाने को मिलता था।

कपड़ा बनाने की मशीनें आने के बाद हिन्दुस्तान में बेरोजगारी आई, हर व्यक्ति का काम मशीनों ने छीन लिया। गांधीजी इसके खिलाफ थे। गांधीजी कभी नहीं चाहते थे जो आज हिन्दुस्तान में हो रहा है। गांधीजी कहते थे कि मशीनों का होना, टेक्नॉलॉजी का होना अच्छा है, परंतु लोग ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। इन मशीनों को रखने का क्या फायदा जब हजारों लोग भूखे हैं? कम-से-कम उन्हें कुछ तो मिले। वे बड़े उद्योगों के पक्ष में नहीं थे। उनका विश्वास घरेलू उद्योग में था। साम्यवाद ऐसे ही मजदूरों और कामगारों के हक के लिए लड़ाई लड़ रहा था, लेकिन वह हार गया। पहले रूस में, अब चीन में भी। भारत में तो साम्यवाद की कोई शक्ति ही नहीं रही।

पश्चिम में भी गरीब लोगों की संख्या काफी है, भारत की तरह, लेकिन वे उन्हें हर सप्ताह बेरोजगारी भत्ता दे देते हैं। पश्चिम के लोग कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। वे युद्ध का सृजन करते हैं, हथियार बेचते हैं और पैसे कमाते हैं। उन्होंने इराक को खूब आधुनिक हथियार बेचे, अब वे चाहते हैं कि उसके पास जो है उसे खत्म करो ताकि वह फिर खरीदे। उनकी राजनीति समझना बहुत कठिन है। वे हर देश को हथियार-बारूद बहुत बेचते हैं और जब तुम नहीं खरीदो तो वे तुमसे नाराज होते हैं। उन्हें भारत पसन्द नहीं क्योंकि हम उनसे खरीदते नहीं हैं। श्रीलंका खरीदती है, पाकिस्तान खरीदता है, भारत नहीं। पाकिस्तान को एफ-16 जैसे लड़ाकू विमान अमेरिका ने एडवान्स के रूप में कई साल पहले ही दे दिए थे। फिर अमेरिकन सेनेट ने संशोधन किए जिससे वे नहीं बेच पाए। अब अमेरिका को पैसे लौटाने होंगे,

लेकिन वह ऐसा करेगा नहीं। बात यह है कि ये सारी कंपनियाँ जो हथियार बनाकर हमें और तुम्हें बेचती हैं, ये बैंक से पैसा उधार लेकर हथियार बनाती हैं। अगर ये हथियार नहीं बेच पाते तो बैंक का कर्ज चुकाएँगे कैसे? फिर बैंक डूब जाएगा और सरकार को बीच में आना पड़ेगा।

इराक पर अभी व्यापार प्रतिबन्ध हैं। इराक का कोई सामान बाहर नहीं जा सकता। इराक को यहाँ से कुछ निर्यात भी नहीं कर सकते। अगर तुम चाहो कि चना, गेहूँ, कपड़ा, दवाई जैसा सामान जो एक सामान्य आदमी को चाहिये, उसे वहाँ के बाजार में भेजना, तो नहीं भेज सकते, उस पर प्रतिबन्ध है। इराक की हालत बहुत खराब है। लाखों मर गये हैं वहाँ भूख से। वहाँ पानी नहीं है, सामान नहीं है, कुछ नहीं है। कहाँ से आयेगा? वे जाने ही नहीं देते सामान। आयात-निर्यात की अनुमति ही नहीं है। कोई जहाज नहीं जाएगा, उसको पार ही नहीं करने देंगे। यह प्रतिबन्ध सन् 1993 से संयुक्त राष्ट्रसंघ ने लगाया है। अभी हाल में एक और प्रतिबन्ध लगा है। पहले लोगों के खाने-पीने का सामान अन्दर जा सकता था, अब वह भी कल से बन्द हो जाएगा।

स्वामीजी, एक तरफ ये मानव अधिकार की बातें करते हैं और दूसरी ओर ये प्रतिबन्ध, क्या यह ठीक है?

देखो जी, मानव अधिकार की जो बातें होती हैं, वे कमजोर लोगों के लिए होती हैं। मानव अधिकार छोटे आदमी को तंग करने के लिए बड़े आदमी के हाथ में एक शस्त्र है। तुम्हारे और तुम्हारी बीवी के बीच रोज झगड़ा होता है, मगर तुम अपने नौकर से कहते हो कि तुम अपनी बीबी को क्यों मारते हो! वह यह नहीं कह सकता कि तुम अपनी बीवी को क्यों मारते हो। मानव अधिकारों की जो बातें होती हैं वे बड़े आदमियों के नखरे हैं, छोटे लोगों को तंग करने के बहाने हैं।

मानव अधिकार पश्चिम में नहीं टूटते हैं क्या? आखिर मानव अधिकार की परिभाषा क्या है? तुम मानवाधिकार को कैसे परिभाषित करोगे? मनुष्य के क्या अधिकार हैं? कुछ भी बक देना, कहीं भी चले जाना? मानव अधिकार की भी कोई परिभाषा होनी चाहिए, कोई सीमा होनी चाहिए। वह सीमा क्या है? हर देश का समाज उसकी सीमा है। वह समाज उसकी मर्यादा को निश्चित करता है। हमारे यहाँ लोगों के लिये निश्चित है कि लड़का बाप को जवाब नहीं दे सकता। उसे माता-पिता के पैर छूने पड़ेंगे,



बाप से हाथ नहीं मिला सकता। यह हमारे समाज की आज तक की परिभाषा है। अब जब तुम बेटे के अधिकारों की बात करते हो तो इस परिभाषा पर आधारित करना होगा।

यूरोप-अमेरिका में लड़कों को तो छोड़ो, लड़कियों को भी कोई रोक-टोक नहीं है। रात हो या दिन, उनकी लड़कियों को ऐसी रोक-टोक नहीं होती जैसी यहाँ होती है। उनका समाज ही वैसा है, जबकि हमारे समाज में कहा जाता है कि लड़की को शाम के बाद घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए। हमारे समाज ने यह व्याख्या की है, परिस्थितियों को देखते हुए। अब वह लड़की पूछे कि मेरा अधिकार? हाँ, तुम्हारा अधिकार है, मगर वह अधिकार समाज के अनुसार होता है। समाज ही तुम्हारे अधिकारों को परिभाषित करता है। समाज की परिस्थिति तुम्हारे अधिकारों को परिभाषित करती है। वहाँ औरत और मर्द में बात नहीं बनती तो दोनों अलग हो जाते हैं, कोई समस्या नहीं है। यहाँ तो मुश्किल हो जाएगा, औरत तो भूखी मर जाएगी। मान लो मर्द औरत को तलाक दे दे और चला जाए, बम्बई-दिल्ली की बात नहीं कर रहा हूँ, आम हिन्दुस्तान की बात कर रहा हूँ, तो वह कहाँ जाएगी? पढ़ी-लिखी तो है नहीं, भूखी मरेगी या कोठे पर चली जायेगी। अब कहो कि पति

को तलाक देने का अधिकार है, यह मानव अधिकार है, मगर समाज अभी इसके लिये तैयार है क्या?

इस समय मानव समाज दो गुटों में बँटा है, यूरोपीय समाज और एशियाई समाज। एशियाई समाज एक ढंग से चलता है और यूरोप का समाज दूसरे ढंग से। उसी आधार पर मानव अधिकार की बातें कही जाती हैं। उनके यहाँ भी मानव अधिकारों का खण्डन होता है। अमेरिका में काले लोगों के ऊपर कितना अन्याय होता है? इंग्लैंड जाओ, जहाँ काले लोग रहते हैं, उस बस्ती में जाओ और जहाँ गोरे लोग रहते हैं, उनकी बस्ती में देखो, अंतर साफ मालूम पड़ेगा।

अभी इस समय दुनिया में अमेरिका को कोई पसंद नहीं करता। अमेरिका सब देशों को पैसा देता है, इज़राइल को अरबों डॉलर के अस्त्र-शस्त्र प्रदान करता है, मगर वही देश उसको गाली देते हैं। पाकिस्तान की उसने कितनी मदद की, अब पाकिस्तान उसी को मारता है। इतिहास में भी यही हुआ। जब मिस्र बहुत बड़ा साम्राज्य था, सारी दुनिया में उसकी सेना फैली हुई थी, उसने क्या किया? यहूदी लोगों को, अफ्रीकी लोगों को पकड़-पकड़ कर अपने देश का गुलाम बनाया, सब काम करवाया और खुद मौज में रहे। अंत में उसका पतन हो गया, खत्म हो गया। रोम कितना बड़ा साम्राज्य था, पर वह भी खत्म हो गया। यूनान का साम्राज्य सारी दुनिया जानती है, वह खत्म हो गया। यूनान का साम्राज्य तक्षशिला चला आया, झेलम पार कर लिया, पाटलीपुत्र तक पहुँच गया था। पाटलीपुत्र में लड़ाई हुई थी चन्द्रगुप्त से। इतनी दूर तक ये लोग पहुँच गये थे, पर फिर सब सिमट गये।

पहले के लोग आज से बहुत भिन्न रहे होंगे, दुनिया बिल्कुल भिन्न रही होगी?

पहले के लोग केवल लड़ाई जानते थे, लड़ाई के बल पर जीवित रहते थे। लड़ाई उनका व्यवसाय था। चीन और हिन्दुस्तान कृषि प्रधान देश हैं, अफ्रीका कृषि और वन प्रधान देश है, पर उत्तर के जितने देश हैं, वे कृषि प्रधान देश नहीं हैं। वहाँ कृषि होती है, मगर वे कृषि प्रधान नहीं हैं। अमेरिका का जो दक्षिणी हिस्सा है, वह भी कृषि प्रधान देश है। उस समय वहाँ चिब्चा, इन्का, माया जैसी अलग-अलग जातियाँ रहती थीं, जिनको स्पैनिश लोगों ने मारा-पीटा।

लगता है उस समय लोगों के मनोरंजन का कोई साधन नहीं था। अभी क्लब, पर्यटन जैसी कितनी सारी चीजें हैं।

ऐसी बात नहीं है। ये जो क्लब की प्रथा है, नाचने-गाने, खाने-पीने और जुआ खेलने की आदत आदिकाल से है। यहाँ की जो जनजातियाँ हैं, जैसे संथाली, या मध्यप्रदेश में कोल और भील, इनमें भी यह सब होता है। हमने देखा है, हर गाँव में एक जगह होती है जिसके हर जगह अलग-अलग नाम हैं। मध्यप्रदेश में उसे घुटुल कहते हैं। वह गाँव का एक तरह का क्लब होता है, जहाँ लड़का-लड़की जाते हैं, नाच-गाना, शराब पीना, जुआ खेलना होता है। यह आदिकाल से चला आ रहा है।

फिर भी यहाँ कितने प्रकार के खेलकूद हैं, कितने प्रकार के मनोरंजन हैं?

नहीं, खेलकूद और मनोरंजन आदिकाल से चले आ रहे हैं, ये आज की चीजें नहीं हैं। संस्कृत में इसे केलि कहते हैं। केलि का मतलब खेल– *केलि क्रीडा कौतुकम्*। कौतुक माने तमाशा। इसी तरह द्यूत माने जुआ। द्यूत क्रीडा तो आज का शब्द नहीं है, बहुत पुराना है। तुलसी रामायण में चौगान शब्द लिखा है, उसका मतलब होता है हॉकी। उस वक्त भी हॉकी खेली जाती थी।

लेकिन स्वामीजी, जुआ जितना चीन में है उतना संसार में कहीं नहीं है।

नहीं, जुआ दुनिया में सब जगह है। हमारे हिन्दुस्तान में तो दीवाली के दिन जो आदमी जुआ नहीं खेलता था वह दीवाली मना ही नहीं सकता था। दीवाली तो जुए का त्यौहार था। घर में औरतें जुआ खेलती थीं भई, हमें मालूम है, बचपन में देखा है। दीवाली मनाने का तरीका है–दिया जलाना, जुआ खेलना, मिठाई खाना, कपड़े पहनना, पटाखे फोड़ना।

गीता के विभूतियोग अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं कि दुनिया की सभी चीजों और कलाओं में जो उच्च हैं, वह मैं ही हूँ। एक जगह वे कहते हैं– *द्यूतं छलयतामस्मि*। छलकपट करने वालों में मैं जुआ हूँ। मतलब जब गीता लिखी गई तब भी जुआ था। जैसे आजकल तुम किसी के घर जाकर भोजन का निमन्त्रण देते हो कि भई आज हमारे घर में आओ, दावत खाओ, वैसे ही प्राचीन काल में जुए के लिये निमन्त्रण देते थे। नल तो अपना पूरा राज्य

जुए में हार गये। दमयन्ती और राजकुमार को छोड़कर चले गये। युधिष्ठिर तो धर्मराज थे, मतलब बहुत भले आदमी थे। मगर उस जमाने में उच्च चरित्र वाला आदमी भी जुआ खेल सकता था। उस वक्त जुआ बुरा नहीं माना जाता था। उस वक्त कोई नहीं कहता था, अरे धर्मराज! तुम जुआ खेलते हो। हाँ, जरूर खेलेंगे, यह तो हम लोगों का रिवाज है। जुआ उस वक्त एक स्वीकृत, सम्मानित क्रिया थी और उसका फायदा दुर्योधन ने छल करके उठाया।

स्वामीजी, चीनी लोग तो रात-रात भर जुआ खेलते हैं। बड़ी-बड़ी दुकानें होती हैं, पीछे कमरे रहते हैं जहाँ जुआ खेलते रहते हैं, जिसके कारण कभी-कभी रातों-रात दिवालिया हो जाते हैं, दुकानें बन्द हो जाती हैं।

यहाँ देवघर में कहीं पर भी जाओ, दुकान में बैठकर चार आदमी ताश खेलते मिलेंगे। कोई ग्राहक आया तो उसे सामान देकर फिर बैठ जाते हैं ताश खेलने। यह सब चलता है क्योंकि मनुष्य को अपने को भुलाने के लिये कुछ साधन चाहिये, जिसे मनोरंजन कहते हैं। मन को भुलाना पड़ता है, किसी चीज में लगाना पड़ता है। मन को किसी भी काम में व्यस्त रखने को ही मनोरंजन कहते हैं। मन को हमेशा काम में लगाकर रखो, कुछ नहीं तो ताश ही सही। नहीं तो आदमी सारा दिन दुकान में बैठकर क्या करेगा? रामायण पढ़ेगा? रामायण तो मनोरंजन नहीं होता।

दुनिया का कभी विश्लेषण करो तो सोचने में बहुत मजा आता है। नॉर्वे, स्वीडन, डेनमार्क और फिन्लैंड जैसे देशों में लोग क्या करते हैं, मालूम है? वहाँ हर घर में 'सॉना' होता है। घर के पीछे एक-के-ऊपर-एक बड़े-बड़े पत्थर रख देते हैं और नीचे आग लगा देते हैं। पत्थर गर्म होता है और ऊपर लकड़ी का कमरा बनाते हैं। कमरा इतना गर्म हो जाता है कि अंदर शरीर से पसीना छूटने लगता है और बाहर बर्फ होती है। अब तो यह गर्मी लकड़ी से नहीं, बिजली से पैदा होती है। यह प्रसिद्ध हुआ नॉर्वे और स्वीडन जैसे देशों में। लोग कपड़े उतारकर जाते हैं, एक पेड़ की शाखा होती है जिसे लेकर एक-दूसरे के शरीर पर मारते हैं, उससे बदन खुलता है। पसीना एकदम पानी की धार की तरह निकलता है। उसके बाद सब बाहर निकलते हैं, बर्फ में नहाते हैं। बाहर का तापमान बेहद कम होता है, पर बर्फ में जाकर नहाते हैं और खूब कूदते हैं। जब शरीर बिल्कुल ठण्ढा हो जाए, एकदम बन्दर के मुँह

की तरह लाल हो जाए, तब फिर वे वापस आते हैं सॉना में। ऐसा दो-तीन बार करते हैं, उसके बाद कमरे में जाकर अपने को पोंछ कर, कपड़े बदल कर सो जाते हैं। सॉना से चमड़ी के छोटे-छोटे छिद्र खुलकर अन्दर की गंदगी को पसीने के साथ बाहर करते हैं।

अपना मनोरंजन करना, अपनी कामनाओं की पूर्ति करना, यह किस हद तक ठीक है?

भारतीय परंपरा में कहा गया है कि अगर तुम अपनी कामना को अभिव्यक्त करना चाहते हो और उस चाह को नियंत्रित नहीं करना चाहते तो कोई अंत ही नहीं है। सड़क अंतहीन है, उसकी कोई सीमा नहीं है। कहीं-न-कहीं तो सीमा बांधनी होगी, रेखा बनानी होगी ताकि तुम्हारे कृत्य तुम्हारे लिए ही समस्या न खड़ी कर दें। समस्या तुम्हारे भाई-बहन, पत्नी, बेटी या माँ-बाप के लिए नहीं, तुम्हारे लिए ही होगी। तुम्हें सोचना होगा, दूसरों के लिए नहीं, केवल अपने लिए। अगर अपने आप को अभिव्यक्त करना है तो यह सोचना पड़ेगा कि मैं यह अभिव्यक्ति स्वयं को चोट पहुँचाए बिना, अपने आप को खोए बिना कैसे करूँ, और जब जानते हो कि तुम्हारा नुकसान होगा तो मत करो। जब कहाँ तक का सवाल आए तब सड़क तो अंतहीन है।



तुम्हें जब कोई गाड़ी दी जाती है तो कहा जाता है कि इस गाड़ी की अधिकतम गति इतनी है। मान लो वह गतिसीमा 200 मील प्रति घण्टा है। उससे ज्यादा उसका मोटर नहीं चल सकता। तुमने कहा, ठीक है हम 200 मील की गति से गाड़ी चलायेंगे क्योंकि गाड़ी की वह सीमा है। इसमें एक ही सवाल उठता है। गाड़ी की सीमा तुम्हें बता दी, मगर सड़क की स्थिति तो नहीं बतायी। क्या तुम उस सड़क पर 200 मील की गति से गाड़ी चला सकते हो?

जब तुम्हें मालूम पड़ गया कि भई यहाँ सड़क ऊबड़-खाबड़ है, 200 मील नहीं चलेगा इस हालत में, तो कितना चलेगा? 45, 50 या 100। इसको कहते हैं संयम। जीवन में तुम्हारी अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ हो सकती हैं, पर अपने शरीर, मन, परिवार और समाज की परिस्थितियों को देखो। तब जाकर तुम अपने लिये सीमा बना सकते हो। अपनी सीमा आदमी खुद तय करता है। तभी तो जो व्यवहार हिन्दुस्तान में खराब माना जाता है, अमेरिका में उसे ठीक मानते हैं, और जो व्यवहार वहाँ गलत माना जाता है उसे यहाँ ठीक मानते हैं।

ऋतं और सत्यं

हर समाज की अलग-अलग परिस्थिति होती है। समाज की परिस्थिति का निर्णय धर्म देता है, राज्य का कानून नहीं। भगवान ने दुनिया में दो प्रकार के कानून बनाये हैं। एक कानून तो उन्होंने प्रकृति का बनाया है और दूसरा बनाया मनुष्य का। मनुष्य के कानून को तुम कानून कहते हो और प्रकृति के कानून को धर्म। जो प्राकृतिक नियम हैं, उनका अध्ययन करके ऋषि-मुनियों ने कहा कि यह करना और वह नहीं करना, ऐसे खाना, ऐसे नहीं खाना, ऐसे सोना, ऐसे नहीं सोना, ऐसे शादी करना, ऐसे शादी नहीं करना, ऐसे अन्त्येष्टि करना, ऐसे अन्त्येष्टि नहीं करना। उन्होंने अपनी मर्जी से नहीं कहा, बल्कि प्रकृति का नियम बतलाया।

दूसरी ओर मनुष्य और समाज ने मिलकर नियम बनाए कि ऐसा करने से यह होगा, ऐसा करने से वह होगा, ऐसा करने से यह दण्ड होगा, वैसा करने से वह दण्ड होगा, ऐसा करने से जेल जायेगा, वैसा करने से फाँसी देंगे। ये तो नियम हैं जो मनुष्य ने बनाये जिसे तुम कानून कहते हो। इसे हम लोगों के यहाँ ऋतं और सत्यं कहते हैं। नियम, विधान और कानून ऋतं है। वह हर देश का अलग-अलग होता है। जो प्राकृतिक नियम है, उसे कहते हैं सत्यम्। ऋतं और सत्यं—सारी सृष्टि, सारे समाज का मार्गदर्शन इन दो कानूनों से होता है। मार्गदर्शन का मतलब क्या हुआ? तुम गाड़ी की चाबी घुमाते हो, गाड़ी चलती है। मगर गाड़ी को कौन-सी चीज नियंत्रित करती है? स्टीयरिंग गाड़ी को नियंत्रित नहीं करता, वह तो दिशा को नियंत्रित करता है। गाड़ी की गति को दो चीजें नियंत्रित करती हैं, एक्सीलेटर और ब्रेक।

उसी तरह से मानव जाति को नियंत्रित करने के लिये ऋतं और सत्यं—ये दो नियम बनाये गये हैं, क्योंकि मनुष्य मूलत: पशु है। पशु की जितनी

भी प्रवृत्तियाँ हैं, वे आदमी पर भी लागू होती हैं। पशु के जीवन में चार मूल प्रवृत्तियाँ हैं–खाता है, सोता है, बच्चे पैदा करता है और डरते रहता है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन–ये पशु के चार नियम हैं और ये मनुष्य में भी हैं। अब मनुष्य भले ही पशु है, किन्तु थोड़ा-सा समर्थ पशु है। पेड़ पर चढ़ जाता है, हाथ से चीजों को पकड़ लेता है, दनादन बोलकर दूसरों को समझा देता है, कुछ टेढ़ा-मेढ़ा भी सोच लेता है, छल जानता है, कपट जानता है, पाप जानता है, पुण्य जानता है, सत्य बोलता है, झूठ बोलता है, पीछे से मारना जानता है, माने सब चीजें जानता है क्योंकि उसके पास बुद्धि है। मनुष्य एक समर्थ पशु है क्योंकि उसके पास पशु के चार गुणों के साथ एक और गुण है। उस गुण को चाहे ज्ञान कहो या समझ या जानकारी। अब इतना समर्थ पशु अगर नियंत्रण से बाहर हो गया तो दुनिया में प्रलय मचा देगा। जैसे रावण ने मचाया, हिटलर ने मचाया, कइयों ने मचाया। इसलिये इस मनुष्य को नियंत्रित करने के लिये इसके ऊपर धर्म और कानून का अंकुश होना चाहिये, जिसे ऋषि-मुनियों ने ऋतं और सत्यं के रूप में समझाया।

धर्म वह है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने व्यक्तिगत जीवन को स्वयं अनुशासित करता है। जब तुम्हें बाहर से नियंत्रित किया जाता है, जब समाज तुमको नियंत्रित करता है, तब वह कानून है और जब तुम अपने को नियंत्रित करते हो, तब वह धर्म है। क्या करना, क्या नहीं करना, यह धर्म और अधर्म की भाषा है। धर्म में पाप और पुण्य होता है। कानून में पाप और पुण्य नहीं होता, वहाँ अपराध कहते हैं। तुमने किसी को कुछ किया, यह कानूनी अपराध है, जबकि धर्म इसे पाप कहता है। प्रकृति की दृष्टि में जो गलत है वह पाप है, और मनुष्य की दृष्टि में जो गलत है उसे अपराध कहते हैं। ये सब चीजें हमारी किताबों में लिखी हैं, हम कोई नयी बात नहीं समझा रहे हैं।

हर देश का अपना-अपना समाज होता है। चीन में जिनके घर में लड़कियाँ होती हैं, वे लोग परेशान हो जाते हैं। वहाँ भी यही हाल है, लड़कियों की शादी में बहुत खर्च करना पड़ता है। यह पहले के जमाने की बात कह रहा हूँ। अब तो चीन में ऐसा कड़ा कानून है कि अगर दूसरा बच्चा हो जाए तो जेल की सजा हो जाती है। वहाँ की सरकार बहुत कठोर है। वे बोलते हैं, ज्यादा बच्चे पैदा मत करो और जो ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं उन्हें सीधे जेल भेज देते हैं। आखिर चीन की आबादी भी तो एक अरब से ज्यादा है न? लेकिन गोरी

जाति में ऐसा नहीं है। वहाँ लड़का और लड़की, दोनों को एक समान मानते हैं। उनका एक-सा व्यवहार होता है, एक-सा खान-पान होता है, सब चीजें एक-सी होती हैं। सम्पत्ति के अधिकार भी बराबर होते हैं।

क्या कारण है कि सभी पश्चिमी देशों में एक या दो बच्चे ही होते हैं और पूर्व में जितने भी देश हैं, उनमें बहुत बच्चे होते हैं?

यह जो गोरी जाति है, इनके यहाँ सब पढ़े-लिखे होते हैं। वहाँ कोई अनपढ़ नहीं मिलेगा। बहुत अच्छी शिक्षा होती है। छोटी उम्र से लड़के-लड़कियों को एक ही साथ पढ़ाते हैं। लड़कियों का स्कूल अलग, लड़कों का स्कूल अलग, ऐसा नहीं होता। लड़के-लड़कियाँ एक साथ पढ़ते हैं, एक साथ खेलते हैं। छोटी उम्र से एक साथ रहते हैं। बड़े होने पर भी एक साथ रहते हैं। लड़के और लड़की के बीच जो भेद हमारे समाज में है, वह भेद इनके समाज में बिल्कुल नहीं है।

जो समाज इस तरह पढ़ा-लिखा होता है, अनुभव वाला होता है, वह अपनी जनसंख्या को नियंत्रित कर सकता है, निर्णय ले सकता है कि एक संतान हो या दो। अब ये गाँववाले निर्णय नहीं कर सकते, उन्हें प्रजनन के नियम मालूम नहीं हैं। रजस्वला होने के बाद ऋतु काल आता है, उस वक्त ही संतान हो सकती है, बाकी दिनों में संतान नहीं होती। अब यह कौन बतायेगा इनको? पढ़े-लिखे लोग इस चीज को जानते हैं कि सुरक्षित और असुरक्षित अवधि कौन-सी है। एक तो यह बात गाँववालों को मालूम नहीं, दूसरी चीज इनको तो बोलने में भी शर्म लगती है। इसके बारे में बात करना ही मुश्किल हो जाता है। तीसरी चीज डॉक्टर लोग गर्भनिरोधन के बारे में जो बतलाते हैं, वे बातें शिक्षित लोग जानते हैं, इसलिए उनके यहाँ ज्यादा बच्चे नहीं होते। यहाँ न तो पिता को मालूम है, न माता को, न दादा को, न दादी को।

इसका मतलब यह नहीं कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध हो ही नहीं, मगर उसका परिणाम गलत नहीं होना चाहिये। अब आठ-दस बच्चे हो गये, उन्हें खिला नहीं सकते हो, फिर भी उसी घर में बच्चे पर बच्चा पैदा होता जा रहा है। जब तुम अपने घर में बच्चों को खिला नहीं सकते तो पैदा क्यों करते हो? कहते हो, भगवान ने दिया। गलत बात है। बच्चे भगवान की नहीं, परिस्थितियों की देन हैं।

—13 नवम्बर 1997



अध्याय 11

आजकल समाज में बेईमानी और भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया है। इस समस्या का समाधान कैसे हो?

बेईमानी मनुष्य का मूल स्वभाव नहीं है। समाज ही मनुष्य को झूठा, बेईमान, चोर, व्यभिचारी और दुराचारी बनाता है। ये सब चीजें समाज की देन हैं। और कैसे समाज की? जिस समाज में कोई व्यवस्था नहीं है। हमारे समाज में क्या होता है? औरत मर जाती है, आदमी में कोई बदलाव नहीं होता, वह वही कपड़े पहनता है। पर आदमी मर गया तो औरत के कपड़े बदल जाते हैं, गहने उतर जाते हैं। यह कैसी व्यवस्था है? व्यवस्था का मतलब एक ऐसी प्रक्रिया जो तर्क-संगत हो, न्याय-संगत हो।

बैंक में पैसे के हिसाब-किताब की एक व्यवस्था होती है। वहाँ एक मैनेजर होता है, उसके अधिकार और दायित्व निश्चित होते हैं। इसी तरह एसिस्टेंट मैनेजर या कैशियर की जिम्मेदारी निश्चित होती है। पैसे का लेन-देन होगा तो उसे हस्ताक्षर करना होगा। तुम्हारे हजारों-लाखों रुपये तुम्हारे पास नहीं, उसके पास रहते हैं, मगर तुम्हें डर नहीं लगता कि वह लेकर भाग जाएगा। जिसके पास वह पैसा है, क्या वह ईमानदार है? कोई जरूरी नहीं, वह बेईमान भी हो सकता है। लेकिन एक व्यवस्था है जो बेईमानी पर नियंत्रण रखती है। ऐसी व्यवस्था सब जगह होनी चाहिये। परिवार में वह व्यवस्था नहीं है, इसलिये नौकर बेईमान हो जाता है। समाज में वह व्यवस्था नहीं है, इसलिए शासक बेईमान हो जाता है।

वैसे भी राजा के हाथ कभी दूध के धुले नहीं होते, उनमें कहीं-न-कहीं खून लगा रहता है। प्राचीन काल में राजा-महाराजा सेना रखते थे, लड़ाइयाँ

















लड़ते थे। आजकल लड़ाइयाँ चुनाव के रणक्षेत्र में दलबल के साथ लड़ी जाती हैं। इस लड़ाई में भी पैसा चाहिये, सेना चाहिये। हर नेता को अपना निर्वाचन क्षेत्र जीतने के लिये सेना की आवश्यकता पड़ती है। पहले घोड़े, घुड़सवार, बन्दूक, तलवार, भाले और बर्छे थे, आज का हथियार कुछ और है। आज के हथियार के लिये वह पैसा कहाँ से लायेगा? और उस पैसे पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिये, नहीं तो लड़ ही नहीं सकेगा। अगर हम-तुम चुनाव लड़ें, तुम बीस लाख खर्च करो और हम एक करोड़, तो निश्चित रूप से हम जीत जायेंगे। लड़ाई तो जीतने के लिये लड़ी जाती है न, हारने के लिये कौन लड़ता है?

जब कौरव-पाण्डव या रावण-राम का युद्ध हुआ तो इतनी सेना कैसे बटोरी गयी? आखिर खर्चा तो हुआ होगा न। राम जी कहाँ से लाये वह धन? यह सब तो रामायण में नहीं लिखा है, मगर सोचो कि इतनी बड़ी सेना के सदस्य आखिर कुछ तो खाते होंगे, दवा-दारू भी होती होगी, हथियार रहे होंगे। ऐसी बात तो नहीं कि रावण के खिलाफ बिना हथियार के जीत गये। आखिर वह बड़ा बलशाली राजा था। उस समय राजा होता था, आज उसे एम.एल.ए. या एम.पी. कहते हैं। उसे लड़ाई लड़ने के लिए साधन की जरूरत तो पड़ती ही है। इसलिये यह कहना कि फलाना नेता पैसा मारता है निरर्थक है। रह गये अधिकारी लोग, उन्हें तो वैसे ही बहुत कम पैसा मिलता है।

मेरे कहने का मतलब यह है कि गाँवों पर खर्च करने के लिए पहले तो बहुत कम पैसा दिया जाता है, और वह भी गाँववालों तक आते-आते नहीं के बराबर रह जाता है। क्या यह गलत नहीं?

सबसे पहली चीज, हिन्दुस्तान के गाँवों में जितने लोग हैं, प्रायः उन्हें मालूम ही नहीं कि उनके क्या अधिकार हैं, उन्हें क्या करना चाहिये। पढ़ा-लिखा तो कोई है नहीं। गृहस्थी की गाड़ी में एक टायर पुरुष होता है और दूसरा टायर स्त्री। पर हमारे समाज में दूसरा टायर तो पूरी तरह पंक्चर है। तब गाड़ी कैसे चलेगी? अधिकारों के लिये तब लड़ा जाता है जब अधिकारों की जानकारी होती है। हम किन अधिकारों के लिये लड़ सकते हैं, हमें इसकी जानकारी होनी चाहिये। इस मुद्दे से जुड़ी ऐसी बहुत-सी बातें हैं, इसलिए एक-तरफा बात नहीं कही जा सकती कि सरकार की ही गलती है। जनता की भी गलती है।

राम जी को युद्ध के लिए इतने पैसे कहाँ से मिले?

सुग्रीव से। वे बन्दर थोड़े ही थे, वानर नाम की जाति थी। जैसे मंगोल, अरब, आर्य, हूण, खस या किरात जातियाँ होती थीं, वैसे ही वानर, रीछ आदि दक्षिण भारत की जातियाँ थीं। वे सब अगस्त्य मुनि से प्रभावित थीं, इसलिये भगवान श्रीराम ने सबसे पहले अगस्त्य जी के दर्शन किये। अगस्त्य मुनि तमिल भाषा के जनक माने जाते हैं। उन्होंने ही तमिल व्याकरण बनाया था। उनकी दक्षिण भारत पर जबरदस्त पकड़ थी। जैसे ईसाइयों पर पोप की पकड़ होती है, वैसे ही उनकी पकड़ थी। इसलिये राम जी पहले उनसे मिले।

रावण बड़ा प्रबल सम्राट् है और उसी ने सीता का अपहरण किया, इसका पहला इशारा जटायु ने दिया, फिर दूसरा इशारा कबन्ध से मिला, तीसरा संकेत शबरी से मिला और चौथा इशारा सुग्रीव से मिला। तब राम जी को लगा कि राजकोष के बिना कुछ नहीं हो सकेगा, किसी तरह राजकोष लेना होगा। बालि वहाँ का बहुत बड़ा राजा था, उन्होंने बालि को हटाकर वहाँ सुग्रीव को बैठाया। आखिर राजगद्‌दी पर अपना आदमी होना चाहिये न। सुग्रीव दक्षिण भारत का प्रबल सम्राट् हो गया। पूरा-का-पूरा दक्षिण उसके नियंत्रण में आ गया। वानर, रीछ आदि सब जातियाँ सुग्रीव के अधीन थीं।

सुग्रीव को राजा बनाने का एक और कारण था। जैसे रूस और हिन्दुस्तान की मैत्री संधि है, वैसे ही बालि की रावण के साथ मैत्री संधि थी। बालि रावण के विरुद्ध श्रीराम की मदद नहीं करता, इसलिये बालि को हटाना पड़ा।

श्रीराम को अयोध्या से भी कोई उम्मीद नहीं थी, क्योंकि अयोध्या और लंका के बीच दशरथ के पूर्वजों के समय से युद्ध न करने का समझौता था। तुम लोगों को यह इतिहास भले ही मालूम न हो, पर हमने सब पढ़ा है। दशरथ के पूर्वज अनरण्य थे, उनके समय रावण ने अयोध्या पर हमला किया था, जिसमें अनरण्य की मृत्यु भी हुई थी। उसके बाद दोनों पक्षों के बीच युद्ध न करने का समझौता हुआ था। इसलिये अयोध्या और लंका के बीच लड़ाई की कोई सम्भावना नहीं थी। अगर राम जी कहते तो भी लड़ाई नहीं हो सकती थी। प्राचीन काल में जब राजपुत्रों को वनवास दिया जाता था, उस समय वे राज्य की किसी भी चीज का उपभोग या उपयोग नहीं कर सकते थे। यह उस वक्त का नियम था, आज के नियम भले ही दूसरे हैं। जो राजपुत्र या नायक अपना नहीं हुआ, उसे देश से निकाल देते थे। फिर उसका राज्य पर अधिकार नहीं रहता था। नियमानुसार राम जी का अयोध्या पर किसी भी

प्रकार का अधिकार नहीं था। इसलिये उन्हें बालि को हराकर दक्षिण भारत को सुग्रीव के अधीन करना पड़ा।

यह भी तो हो सकता है कि अयोध्या इतनी दूर थी कि वहाँ से सेना का लश्कर नहीं आ सकता था।

आने-जाने की बात नहीं है। सबसे बड़ी बात यह थी कि उस वक्त राजाओं के बीच संधि होती थी, जिसका हर हाल में पालन किया जाता था। हिन्दुस्तान उस वक्त अलग-अलग राज्यों में बँटा हुआ था, जैसे आज अलग-अलग राज्य हैं। हर राज्य का अपना मुख्यमंत्री है, किन्तु दिल्ली केन्द्र है, वहाँ प्रधानमंत्री का शासन है। उस समय उसे चक्रवर्ती बोलते थे। हर युग में अलग-अलग चक्रवर्ती हुए। पाण्डवों के समय चक्रवर्ती सम्राट् हस्तिनापुर में बैठता था, इक्ष्वाकु वंश के समय अयोध्या में। वैसे अयोध्या-नरेश दशरथ का अपना राज्य केवल अवध था। हिन्दुस्तान में बाकी जितने राजा थे, वे राजा दशरथ को अपना सम्राट् मानते थे, जैसे बिहार, बंगाल, तमिलनाडु, आदि के लोग आज दिल्ली को मानते हैं। हाँ, कश्मीर के कुछ लोग दिल्ली को मानने को तैयार नहीं हैं, इसलिए वहाँ झगड़ा हो रहा है, तुम जानते ही हो।

संधि की वजह से राम जी को अयोध्या से कोई मदद मिलने की सम्भावना नहीं थी। पर विन्ध्य से दक्षिण तक जितने राज्य थे, वे अयोध्या से मुक्त थे। उनका अलग संघ था, बालि का संघ। श्रीराम ने सुग्रीव को वहाँ स्थापित किया, वहाँ से उनको राजकोष मिला।

जब अयोध्या के राजा मान्धाता ने लवणासुर के साथ युद्ध किया तो उस युद्ध में मान्धाता मारा गया। उसके बाद अयोध्या का राज्य तो लवणासुर के अधीन होना चाहिये था, पर ऐसा हुआ नहीं। क्यों?

किसी देश को जीत लेने का एक नियम होता है, जो आज तक लागू है। तुम यहाँ से हवाई जहाज ले लो और पूरे पाकिस्तान पर बमबारी कर दो, सब मंत्रियों को मार दो, फिर भी तुम यह नहीं कह सकते कि पाकिस्तान को जीत लिया। पाकिस्तान का विध्वंस कर दिया, मगर उसे जीता नहीं। जीतने का मतलब, तुम्हारी पैदल सेना को देश में प्रवेश करना होगा और जनता का सामना करना होगा। किसी भी राष्ट्र पर विजय का यही नियम



है। पैदल सेना को अन्दर प्रवेश करना होगा और अपना झण्डा गाड़ना पड़ेगा। तब माना जायेगा कि उस देश को जीत लिया। सेनापति तो नौसेना का भी होता है और वायुसेना का भी, मगर थलसेना का सेनापति कमांडर-इन-चीफ कहा जाता है, क्योंकि असली निर्णायक वही है। जब तक वह उस देश में प्रवेश नहीं करेगा, तब तक तुमने वह देश जीता नहीं है। हवाई जहाज या नौसेना किसी देश पर निर्णायक विजय नहीं कर सकती, आज भी यह माना जाता है।

जब श्रीराम ने लंका पर विजय पाई तो अयोध्या का झण्डा नहीं फहराया?

नहीं, श्रीराम ने न लंका को जीतने के लिये रावण पर हमला किया था, न विभीषण को राज्य देने के लिये। केवल सीता जी को मुक्त करने के लिये लंका पर आक्रमण किया था। लंका को जीतकर जब सीता जी को उन्होंने मुक्त कर लिया, फिर उन्हें लंका से क्या मतलब? वहाँ झण्डा क्यों गाड़ेंगे? उन्होंने लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, अंगद आदि को कहा कि जाओ, विभीषण का राज्याभिषेक करा दो, और तब सुग्रीव अपनी पलटन सहित लंका में प्रविष्ट हुए।

इतने सारे राक्षस, वानर और रीछ मरे तो उनकी अंत्येष्टि कैसे हुई होगी? उनकी अन्त्येष्टि के लिए इतनी जगह थी?

युद्ध ऐसे नहीं होता जैसे महाभारत या रामायण धारावाहिक में देखते हो। तुम तो क्षत्रिय जाति के हो नहीं, तुम्हारे माँ-बाप ने तुम्हें युद्ध के बारे में कुछ नहीं बताया। हम तो उस जाति में जन्मे हैं जो हर समय लड़ती रही है। हमारे पूर्वज तो हमेशा लड़ाई में मरे। लड़ाइयाँ ऐसे नहीं होतीं, जैसे तुम समझते हो। लड़ाइयाँ टोली में होती हैं, वह उनसे जूझता है, हम इनसे जूझते हैं, वह उनसे टक्कर लेगा, हम इनसे टक्कर लेंगे। महाभारत धारावाहिक में देखो तो सब एक-दूसरे से लड़े जा रहे हैं। लड़ाई ऐसे नहीं होती, अलग ढंग से होती है। एक दिन निर्धारित कर लिया कि आज चक्रव्यूह बनायेंगे, अभिमन्यु अंदर चला गया, बाकी सेना इधर-उधर खड़ी है। एक दिन निर्णय हुआ कि भीष्म और अर्जुन का युद्ध होगा, बाकी सब चुप रहेंगे। आज राम और रावण का युद्ध होगा, हम सब चुप रहेंगे।

यह निर्णय कौन लेता है?

सेना के कमांडर होते हैं, उनके निर्णय होते हैं। युद्ध दो प्रकार के होते हैं, एक प्रत्यक्ष, दूसरा छद्म। छद्म युद्ध को आजकल हम अँग्रेजी में गुरिला युद्ध कहते हैं। रामायण या महाभारत में छद्म युद्ध नहीं, प्रत्यक्ष युद्ध था। आमने-सामने निर्णय होता था कि आज का सेनापति कौन है, आज किस शस्त्र का उपयोग होगा, कहाँ पर लड़ाई लड़ी जायेगी, कौन किससे लड़ाई लड़ेगा। उसकी बकायदा घोषणा की जाती थी, क्रिकेट या हॉकी मैच की तरह। उस समय युद्धविद्या में नियम होते थे, जिनमें से कई आज भी लागू हैं।

फिर भी स्वामीजी, हजारों लोग मरते होंगे, उनको उठाना तो मुश्किल होता होगा?

हाँ, उन्हें उठाया जाता था और जो उठाते थे उन्हें योगिनी, वेताल, पिशाच आदि कहते थे। आज वेताल या पिशाच का चित्र तुम्हारे मन में दूसरा बन गया है। उन्हीं लोगों को आजकल हम रेड-क्रॉस कहते हैं। उनका एक पद था, दायित्व था। वे घायलों और मुर्दों को उठाया करते थे और उनके ऊपर हमला नहीं होता था। आज भी रेड-क्रॉस की गाड़ियाँ जब लड़ाई के मैदान में जाती हैं, कोई उन पर गोली नहीं बरसा सकता, यह आदेश है। यह

अन्तरराष्ट्रीय कानून है कि घायल आदमी की जो सेवा करे उस पर हमला नहीं किया जाए। जिस अस्पताल में घायल लोग हों, उस अस्पताल पर हमला न हो। आज भी यह नियम है। कभी-कभी नियम का उल्लंघन हुआ है, मगर अन्तरराष्ट्रीय कानून के मुताबिक उसे वर्जित मानते हैं। अब तो एक कानून और हो गया है, पत्रकारों पर भी हमला नहीं हो सकता। उन्हें सुरक्षा दी जाती है। आजकल अफगानिस्तान या बोस्निया में जो युद्ध हो रहा है, उसे ज्यादातर महिला पत्रकार ही कवर कर रही हैं। पत्रकार किसी भी कमांडर से मिल सकता है, इस तरफ के कमांडर से भी, उस तरफ के भी, उसकी पूरी सुरक्षा होती है। उसे कोई हाथ नहीं लगा सकता। उसके पास पहचान-पत्र होता है। वह इससे भी पूछ सकता है, उससे भी। फिर खबर करता है, उसे खबर देने की पूरी आजादी है।

ये युद्ध के कानून हैं जो सब जगह माने जाते हैं। प्राचीनकाल में भी इन नियमों का पालन किया जाता था। जो युद्ध के लिये नहीं खड़ा है, उस पर हमला नहीं होगा, चाहे वह तुम्हारा जानी-दुश्मन ही क्यों न हो। कर्ण पर हमला अनुचित था, इसलिये उसने विरोध किया, 'मैं निहत्था हूँ, मेरे ऊपर हमला क्यों हो रहा है? यह धर्म के विरुद्ध है।' मगर श्रीकृष्ण की जबान बड़ी तेज थी। वे तर्क देने में बहुत कुशल थे। उन्होंने कहा, 'जब तुम द्रौपदी का चीरहरण कर रहे थे, तब तुम्हें धर्म याद नहीं आया। अब तुम्हारी जान पर आ बनी है, तो तुम धर्म और कानून की दुहाई दे रहे हो। अगर तुम्हें कानून की दुहाई देनी है, तो सब जगह देनी चाहिये।' फिर अर्जुन से कहा, 'मार दो इसे। यह आज मरा तो मरा, नहीं तो कभी नहीं मरने वाला। जिसको जो बोलना है बोले, देखा जाएगा।'

महाभारत युद्ध में भीष्म पितामह तो अर्जुन के सिवाय किसी पर हमला ही नहीं करते थे। उन्होंने कहा था कि रोज दस हजार सैनिक मारेंगे और महारथियों में केवल अर्जुन से लड़ेंगे, अन्य पाण्डवों में से किसी को नहीं मारेंगे। कहने का मतलब युद्ध जंगल की चीज नहीं है, उसमें भी कानून और नियम होते हैं। आज भी नियम प्रायः वही हैं, जो आज से पाँच हजार साल पहले थे। थोड़ा बहुत अंतर हो सकता है। कहीं-कहीं पर अपवाद भी हुए हैं, लोगों ने गलतियाँ की हैं। जापान पर जो परमाणु बम गिराया गया, इतिहास उसकी सदा निन्दा करेगा, क्योंकि वह युद्ध शास्त्र के विरुद्ध था।

काव्य शास्त्र पर

रामचरितमानस पूरी की पूरी कविता ही है। प्राचीन काल में पद्य गद्य से अधिक महत्त्व रखता था। जब से किताबें छपने लगीं, तब से गद्य का प्रयोग किया जाने लगा। पर गद्य की अपेक्षा पद्य दिमाग में जल्दी बैठ जाता है। तुम रामचरितमानस को कण्ठस्थ कर सकते हो। पर इसी को गद्य शैली में कर दो तो तुम्हें याद नहीं रहेगा, क्योंकि गद्य छंदबद्ध नहीं होता, वह भाषाबद्ध होता है। कविता छंदबद्ध होती है और छंद लय में चलता है। मस्तिष्क में जो विद्युत-चुम्बकीय क्रियाएँ होती हैं, वे तरंगों में चलती हैं, उनकी लय होती है और काव्य भी ऐसे ही चलता है। गद्य में वह नहीं होता, इसलिये गद्य लोगों को याद नहीं हो पाता। गाने कितनी जल्दी याद हो जाते हैं। गाँव में पीढ़ी-दर-पीढ़ी गाते आये हैं, वे सबको याद रहते हैं।

काव्य शास्त्र तो आदिकाल से चला आ रहा है। वाल्मीकि ऋषि को हम लोग आदिकवि कहते हैं। इतिहास में यह माना जाता है कि मनुष्य ने लिखने से पहले चित्र बनाना सीखा। और गद्य के पहले उसने पद्य कहना सीखा। हो सकता है प्राचीन काल में वार्त्तालाप पद्य रूप में होता हो। सम्भव है कि विश्वामित्र और राम जी के बीच संवाद कविता में ही हुआ हो। क्या मालूम? पद्य में शब्द बहुत कम खर्च होते हैं, जबकि गद्य में बहुत-से व्यर्थ के शब्द आ जाते हैं। अभी मैं आप सब से बात कर रहा हूँ, बहुत लम्बा करना पड़ता है। कविता में किफायत से बोल सकता हूँ।

हम लोगों के यहाँ प्राचीन काल सूत्रकाल रहा है–ब्रह्मसूत्र, योगसूत्र, वास्तुसूत्र, नीतिसूत्र, कामसूत्र–इस तरह के बहुत सूत्रों का प्रचलन हुआ। इन सूत्रों में पूरे-के-पूरे विषय को एक छोटी-सी पंक्ति में कह दिया गया है। जैसे *योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:,* चार शब्द मिलाकर एक विचार दे दिया। सूत्रकाल में गुरुजन लम्बे-लम्बे व्याख्यान नहीं देते थे, बल्कि शिष्य को एक छोटा-सा सूत्र कह देते थे। लेकिन आजकल हर विषय को, चाहे वह कानून हो, साहित्य हो, चिकित्सा हो या इंजीनियरिंग, उसे विस्तार से समझाना पड़ता है। इसीलिये आजकल अधिकांश लोग गद्य का इस्तेमाल करते हैं। लेकिन कविता फिर भी ज्यादा अच्छी लगती है, *काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।*

– 14 नवम्बर 1997



अध्याय 12

मनुष्यों, पशु-पक्षियों, वनस्पतियों या कीड़े-मकोड़ों का पैदा होना एक अद्‌भुत प्रक्रिया है। इसके पीछे एक बहुत बड़ा विज्ञान है। केवल यह कह देना कि संतान भगवान देता है उचित नहीं है। ऐसा जवाब वही देते हैं जो नहीं जानते हैं। मनुष्य के जन्म के पीछे एक बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जिसे डी.एन.ए. कहते हैं। डी.एन.ए. के संकरण से संतान की उत्पत्ति होती है, चाहे वह काला हो या गोरा, छोटा हो या लम्बा, स्वस्थ हो या बीमार। बहुत-से लोग बचपन से ही बीमार रहते हैं, उसके पीछे यही कारण है। यह डी.एन.ए. बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जिसे लोग पहले नहीं जानते थे, पर जब से जैनेटिक विज्ञान की खोज हुई है, तब से लोगों ने इसे स्वीकार किया है।

हमारे वैदिक धर्म में विवाह की जो प्रथा थी, अब तो खैर खाली नाम रह गया है, उसमें भी यही मानते थे कि संकरण के लिए डी.एन.ए. का विपरीत होना आवश्यक है। डी.एन.ए. सिर्फ पशु या मनुष्य में ही नहीं, बल्कि वनस्पतियों में भी होता है। मकई के संकरण को संकर मकई कहते हैं, वह अच्छा होता है। वैसे ही धान और गेहूँ की कई प्रकार की जातियाँ हैं। ऐसे ही गायों में होता है, साहिवाल गाय के साथ जर्सी गाय का संकरण करते हैं। ये जातियाँ डी.एन.ए. के संकरण से ही बनती हैं।

डी.एन.ए. पर अभी बहुत प्रयोग हो रहे हैं। कैंसर जैसी बीमारियों का प्राय: अंतिम अवस्था में जाकर पता चलता है, जब वे इलाज के बाहर हो जाती हैं। यदि शुरू में ही कैंसर का पता लग जाए, तो कैंसर लाइलाज नहीं है, उसका इलाज हो सकता है। वैज्ञानिक डी.एन.ए. पर प्रयोग करके पता लगा रहे हैं कि अगर उसमें कैंसर का विकास हो सकता है तो शुरू में ही



उसका इलाज कर देंगे। मगर यह जैनेटिक विज्ञान अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है।

विवाह, जिसमें स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध होता है, बहुत ही महत्त्वपूर्ण क्रिया, घटना और पद्धति है। इसमें गलती हुई तो जन्म में गलती होती है। विवाह केवल स्त्री-पुरुष की आपसी रुचि का विषय नहीं। भावनात्मक दृष्टि से किसी में प्रेम हो गया, यह तो एक व्यक्तिगत चीज है। दो परिवार इकट्ठे हुए, यह तो सामाजिक चीज है। मगर विवाह इनसे ऊपर है।

विवाह एक सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें एक प्राकृतिक क्रिया को जोड़ा जाता है। उस प्राकृतिक क्रिया में धनात्मकता और ऋणात्मकता को जोड़ा जाता है। इसमें स्त्री ऋणात्मक का प्रतिनिधित्व करती है और पुरुष धनात्मक का। उनकी जो संतान पैदा होगी, वह स्वस्थ होगी या रोगी, सदाचारी होगी या गुण्डा-बदमाश। साधु-महात्मा, सदाचारी-व्याभिचारी, चोर-संत सब उसी क्रिया से पैदा होते हैं, मगर अंतर कहाँ पर आता है? अंतर आता है बीज-तत्त्व में। जिसे तुम डी.एन.ए. कहते हो, उसे हम लोग बीज कहते हैं।

कुछ लोग बहुत मजबूत होते हैं। जब भीम छोटे थे, तब उनके गिरने से पत्थर टूट गया था। हनुमान जी की वज्र जैसी देह थी। अभी भी दुनिया में बहुत मजबूत लोग हैं। एस्किमो लोग बर्फ में कैसे रहते हैं? हमें तो समझ में नहीं आता कि बर्फ के मकानों में वे कैसे रहते हैं? अफगानिस्तान के लोगों

को मैंने देखा है, वे बहुत मजबूत होते हैं। कजाकिस्तान के लोग बहुत सुन्दर होते हैं। उनकी ओर देखो तो आँख हटाने को मन नहीं करता। कई जगह के लोग ऐसे होते हैं कि उनको देखने का मन नहीं करता। यह कैसे हुआ? यह सब बीज पर निर्भर करता है।

इस बीज के वपन करने की कुछ प्रणाली, कुछ नियम होते हैं। पहला नियम है कि स्त्री और पुरुष के बीच का संकरण जितना दूर हो उतना अच्छा है। इसलिये न केवल गोत्र, बल्कि वर्ण का भी संकर होना चाहिये, वर्णसंकर। तुम संकर मकई या संकर गेहूँ क्यों पैदा करते हो? क्योंकि फसल अच्छी होती है। केले में संकरण क्यों करते हो? क्योंकि उससे एक घौद में 500-600 केले होते हैं। गाय-भेड़ में संकरण क्यों करते हो? ज्यादा माल मिलता है, फायदा होता है। गाय 15-20 लीटर दूध देती है, भेड़ से ज्यादा ऊन मिलती है। फिर आदमी का संकरण क्यों नहीं करते? इससे बढ़िया संतान होगी। अगर कोई बच्चा मजबूत, बुद्धिमान, ज्ञानवान, धनवान हो, तो क्या नुकसान है?

आखिर विश्वामित्र और मेनका अलग-अलग देश के थे। मेनका एक अप्सरा थी और विश्वामित्र एक साधु। उनकी संतान कैसी निकली? उस संतान से जिस बच्चे की पैदाइश हुई, वह बच्चा कुत्ते के साथ नहीं, बाघ के साथ खेलता था। विश्वामित्र और मेनका की पुत्री थी शकुन्तला और शकुन्तला का बेटा था भरत। छोटा-सा बालक बाघ के साथ खेले, यह क्या मामूली गुण है?

अर्जुन को तो विषाद हुआ था न कि युद्ध के बाद वर्णसंकर होगा?

नहीं, गीता में जो वर्णसंकर शब्द कहा गया है, वह दूसरे दृष्टिकोण से कहा गया है। पाँच हजार वर्ष पहले, जिस समय महाभारत हुआ, जिस समय गीता का उपदेश दिया गया, उस समय भारत की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति गई-गुजरी थी। भारत बहुत पतन की स्थिति से गुजर रहा था, जिसका प्रमाण यह है कि भारत में गृहयुद्ध हो रहा था।

किसी भी देश में जहाँ राजनीति और समाज स्वस्थ हो, क्या वहाँ गृह युद्ध हो सकता है? अफगानिस्तान में गृहयुद्ध हो रहा है न? बोसनिया में हो रहा है न? गृहयुद्ध कहाँ होते हैं? जहाँ लोगों की खोपड़ी खराब हो गई हो। उस समय भारत की हालत बहुत ही दयनीय थी। क्योंकि गलत बातों को सही और सही बातों को गलत कहते थे।

वर्णसंकर और नाजायज में अन्तर है। अगर तुम्हारी शादी किसी भी व्यक्ति से करें, जो किसी भी जाति का हो, तो उससे जो संतान होगी उसे वर्णसंकर कहते हैं। परन्तु यदि तुमने किसी से नाजायज सम्बन्ध रखे और तुमको संतान हो गई, तो उसे वर्णसंकर नहीं, बल्कि उसे अवर्ण या जारज कहते हैं। विवाहित जीवन से उत्पन्न संतान को वर्णसंकर कहा जाता है, यह बहुत अलग चीज है।

पश्चिम के लड़के-लड़कियाँ कहते हैं कि हम अपने ढंग से शादी करेंगे, माँ-बाप के कहे मुताबिक नहीं। माँ-बाप की पसंद हमारी पसंद कैसे हो सकती है? माँ-बाप फ्रेंच होंगे तो कहेंगे कि फ्रेंच से शादी करो, जर्मनी वाला कहेगा कि जर्मन से शादी करो, यूनानी कहेगा कि यूनानी से शादी करो। पर हम किसी दूसरे देश जाकर शादी करेंगे, आजकल सब विदेशी लड़के-लड़की यही कहते हैं। वर्णसंकर कोई खराब शब्द नहीं है। जब दूसरे वर्ण में शादी होती है, तो जैनेटिक तत्त्वों का संकरण होता है।

अगर किसी ब्राह्मण की बेटी की शादी हिन्दुस्तान में शर्मा, पाठक या वाजपेयी परिवार में होती है, तो वह वर्णसंकर नहीं होता, वह सजातीय विवाह होता है। पर तुम यह नहीं कह सकते कि उससे उत्पन्न संतान प्रतिभाशाली होती। प्रतिभाशाली का मतलब होता है कि बच्चे कर्मठ हों, पुरुषार्थी हों, अपने पैरों पर खड़े हों, सही तरीके से मेहनत करके सम्पत्ति कमा सकते हों, आज के युग में विद्या का अर्जन कर सकते हों, विज्ञान, साहित्य, कला, धर्म, अध्यात्म में उन्नति कर सकते हों, चिन्तनशील हों। आज तो ऐसे बच्चों की आवश्यकता है न? अब मान लो वह ब्राह्मण लड़की अमेरिका में चली गई, वहाँ किसी ऐंग्लो-सैक्सन लड़के से उसकी शादी हुई। ऐंग्लो-सैक्सन इण्डो-यूरोपियन जाति हुई। इण्डो-यूरोपियन जातियाँ हमेशा बुद्धिमान् होती हैं और वे लोग विज्ञान और टेक्नॉलाजी में बहुत आगे रहते हैं।

एंग्लो-सेक्सन विद्या विनोदी होते हैं, इन्हें पढ़ने में, सीखने में, घूमने में, जानने में बहुत रुचि रहती है। ये बहुत ही खुले दिमाग के होते हैं, धर्मनिरपेक्ष होते हैं। उनका अपना धर्म चाहे कुछ भी हो, मगर वे इस्लाम का भी अध्ययन कर लेंगे और कीर्तन-भजन भी कर लेंगे। उनको किसी खास धर्म से कोई लगाव नहीं होता। ये बहुत विद्या विनोदी होते हैं, इसलिये अंग्रेजी साहित्य में आपको आज दुनिया का कोई भी विषय प्राप्त हो सकता है। किसी भी देश का भूगोल, इतिहास, विज्ञान, काम-शास्त्र, धर्म-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र,

मोक्ष-शास्त्र, आपको सबका साहित्य अंग्रेजी में मिल जायेगा। उनके लिये पढ़ाई मनोरंजन है। तब उस जाति के साथ हमारी लड़की का विवाह होता है, तो उससे जो संतान होगी, उसमें तुम वह सब देखोगे और पाओगे।

यह लड़कियों के उन्नयन का काल है। पहले तो समाज 'न' कहता था न? अब तो समाज भी 'हाँ' कह रहा है, राजा भी 'हाँ' कह रहा है और परिस्थिति भी अनुकूल है, लड़की बाहर निकल सकती है। पहले तो निकल भी नहीं सकती थी। आज के दौर में जो लड़की विवाहित जीवन न चाहे, कोई व्यापार करना चाहे, वकालत करना चाहे या कोई विद्या अर्जन करना चाहे तो उसे करने देना चाहिये। उसके लिये सिर्फ शादी विकल्प नहीं रहा है। पहले जमाने में लड़की के लिये एक ही रास्ता था, उसके बिना उसकी गुजर-बसर नहीं होती थी। मगर आज लड़की के सामने विवाहित जीवन तीसरा विकल्प है। प्रथम विकल्प शिक्षा, द्वितीय विकल्प कैरियर और तीसरा विकल्प शादी है।

पहले के जमाने में लड़कियों को संन्यास नहीं दिया जाता था। जब हमने लड़कियों को संन्यास देना शुरू किया, तब कहीं भी महिला संन्यासी नहीं मिलती थीं। लोग कहते थे कि लड़कियाँ संन्यास मार्ग के लिये होती ही नहीं हैं। जब हमने उन्हें संन्यास देना शुरू किया तो लोगों के कान खड़े होने लगे, मगर अब तो लड़कियाँ संन्यास लेती हैं, गेरू वस्त्र पहनती हैं, सिर मुड़ाती हैं, कोई हर्ज नहीं लगता। पहले के जमाने में और आज के जमाने में बहुत अन्तर है, आगे और अन्तर आयेगा। लड़की आपकी हो या किसी और की, पढ़ना चाहे तो उसको पढ़ाना चाहिये, कैरियर बनाना चाहे तो कैरियर में भेजना चाहिये। अगर व्यापार में जाए तो बहुत अच्छा है, क्योंकि लड़कियाँ जो काम करती हैं, वह बहुत नियम, बड़े ढंग से करती हैं। यह मेरा अपना अनुभव है, मैंने तो लड़कियों से बहुत काम कराया है।

कहते हैं कि रामायण में कई जगह आकाशवाणी हुई, जैसे लक्ष्मण के क्रोध के समय। क्या उस समय सचमुच में कोई आवाज आती थी या मन में आवाज उत्पन्न होती थी, वह क्या चीज थी?

आकाशवाणी मनुष्य में अपने अन्दर से उत्पन्न होने वाली आवाज का नाम है। यह सबको सुनाई नहीं देती है। क्या विचार है, यह तुम्हें भले ही पता चल जाए, मगर वाणी का मतलब होता है, आवाज। किसी ने कुछ बोला,



उसे वाणी कहते हैं। यह आकाशवाणी हर किसी को सुनाई नहीं देती, मगर यह बात निश्चित है कि कई लोगों ने सुनी है, हमने भी सुनी है। हमने तो इस जगह का नाम सुना कान से। हम त्र्यम्बकेश्वर में थे, गहरा ध्यान तो नहीं था, पर आँखें बन्द थीं। हमने आवाज सुनी है, शब्द सुने हैं। वे शब्द हमें याद हैं। और एक बार नहीं, कई बार मैंने यह आकाशवाणी सुनी है। आवाज आती है, पर वह आवाज बाहर से आती है, हम यह नहीं मानते। हम मानते हैं कि हमारे अन्दर जो हमारी आत्मा है, या जो ईश्वर है, या जो शुद्ध अन्तःकरण है, जो भी नाम दे दो, उसकी आवाज है। वह आवाज हमने सुनी है। त्र्यम्बकेश्वर में दो बार सुनी, यहाँ आकर भी सुनी है और उसके पहले भी सुनी है। आकाशवाणी होती है, मगर सबको सुनाई नहीं देती।

मगर जब लक्ष्मण को आकाशवाणी हुई, तो श्रीराम और सीता जी को भी सुनाई दी।

हाँ, उन्होंने सुना होगा। उस समय कोई भी सुन सकता होगा। कई मन आपस में जुड़े हुए भी हो सकते हैं।

क्या उस समय कुछ दिखाई भी देता है?

नहीं, कोई जरूरी नहीं है कि कुछ दिखाई भी दे। दिखाई दे भी सकता है और नहीं भी। कई बार बिजली जैसी कड़क होती है, कभी तूफान की तरह आवाज होती है, अलग-अलग तरह के अनुभव हो सकते हैं। हमें जब पहले त्र्यम्बकेश्वर में सुनाई दी, तो पहले तूफान आता हुआ मालूम पड़ा। लगता था बहुत जोर से तूफान है, बहुत जोर से बरसात हो रही है, उसके बाद आवाज सुनाई दी। यह आवाज सिर्फ हमें नहीं, बहुतों को सुनाई दी है। मीराबाई के पदों में आता है–

बरसे बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
दादुर मोर पपीहा बोले, भनक पड़ी पीय आवन की॥

'पीया' का मतलब यहाँ ईश्वर है। 'भनक', यह जो आवाज होती है, वह ईश्वर की आवाज मानी जाती है। जैसे तुम बाहर से आये। हमने तुम्हें देखा तो नहीं, मगर तुम्हारे पैरों की आवाज तो सुनाई दी न? तुम्हें देखा नहीं है, हमें केवल भनक पड़ी कि कोई आ रहा है। इसी तरह यह आकाशवाणी जो है, वह भनक जैसी है। उसी के बारे में उन्होंने अपने पद में बोला है, *'बरसे बदरिया सावन की।'* यह उनका अनुभव है। उस समय पानी बरसने का अनुभव होता है, मानो लगातार मूसलाधार बारिश हो रही है। उसमें डर नहीं, बल्कि अच्छा लगता है। मन में उमंग छा जाता है। *'दादुर मोर पपीहा बोले,'* ये सब उसके लक्षण हैं, जिसे आकाशवाणी या अन्तरवाणी कहो, कोई भी नाम दे दो।

अंग्रेजी में इसे *वॉयस ऑफ स्पिरिट* कहते हैं। लोगों ने अलग-अलग नाम दिये हैं। इस्लाम में भी इसका जिक्र है। मुहम्मद साहब तो अनपढ़ थे, वे स्कूल ही नहीं गये थे, पर सारी कुरान उन्होंने लिख दी। कैसे? अन्दर से जो आवाज आती है, उसे तुम ईश्वर की आवाज ही मानकर चलते हो, क्योंकि ईश्वर बाहर भी है और अन्दर भी। आकाशवाणी भगवान की ही आवाज है। उसी से वेद लिखे गये हैं। ऋषि-मुनियों ने जो वेद लिखे हैं, उन्हें श्रुति कहते हैं। श्रुति का मतलब होता है सुना हुआ।

जैसे कुरान श्रुति है, ईसाई लोग बाईबिल को श्रुति मानते हैं, वैसे हम लोग वेदों को श्रुति मानते हैं। अच्छा, उसी तरह से रामचरितमानस है। रामचरितमानस को तुलसीदास से लिखवाया गया। इसको कहते हैं

अपौरुषेय। वाल्मीकि से भी लिखाया गया, पर वाल्मीकि तो कवि थे। उन्हें आदिकवि कहा जाता है। तुलसीदास कवि नहीं थे, इसलिए हम कवि तुलसीदास नहीं कहते हैं। तुलसीदास संत थे, पर उन्हें कवि बनना पड़ा। संत होने के नाते जब उनकी ब्रह्मराक्षस से भेंट होती है, तब उनके अन्दर ज्ञान उजागर होता है और वे लिखना शुरू करते हैं।

तुलसीदास बनारस में संस्कृत पढ़ते थे, वे संस्कृत के विद्वान् थे, इसलिए पहले उन्होंने संस्कृत में लिखना शुरू किया। रात में लिखते थे, पर सुबह सब कागज गायब रहते थे। फिर उन्हें अपनी भाषा में लिखने का आदेश सुनाई दिया, तब जाकर उन्होंने अपनी भाषा में लिखा। उस भाषा को हिन्दी कहो, अवधी कहो या कुछ भी कहो, उस समय वही भाषा बोली जाती थी। उस समय खड़ी बोली नहीं बोलते थे।

रामायण का आधार इस युग में वाल्मीकि हैं, मगर एक बात आप याद रखना कि कथा का आधार सदा लोकवाणी होती है। लोग जो कथा करते हैं, कीर्तन-भजन गाते हैं, चित्र बनाते हैं, जिन परम्पराओं का पालन करते हैं, उसी आधार पर अक्सर बाद का साहित्य लिखा जाता है। रामचरितमानस की मौलिक संरचना वाल्मीकि रामायण से ली गयी है, पर दोनों में आमूल भिन्नताएँ भी हैं। जहाँ वाल्मीकि के लिये श्री राम मर्यादा पुरुषोत्तम और आदर्श पुरुष हैं, वहाँ तुलसीदास जी के लिये साक्षात् ईश्वर हैं। ईश्वर के अवतार नहीं, बल्कि साक्षात् ईश्वर हैं। उन्होंने काकभुशुण्डी के द्वारा यही बोलने की कोशिश की है। तुलसीदास के राम केवल मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं, बल्कि परब्रह्म पुरुष थे।

यह रचना किसने की? वाल्मीकि ने तो इसे लिपिबद्ध किया है, लेकिन रामायण की रचना सबसे पहले कब हुई, किसने की?

रामायण की कथा तो *सत कोटि अपारा,* कितनी ही बार लिखी गयी है। इस समय जितनी भी राम कथाएँ प्रचलित हैं, चाहे जिस भी अस्त-व्यस्त-भ्रष्ट रूप में हैं, वे भारत के अलावा बर्मा, बाली, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो और लाओस जैसे देशों में भी हैं।

क्या यहीं से गयी हैं?

देखो, अगर मुझसे पूछने लगोगे तो मुझे और ज्यादा बोलना पड़ेगा। तुम जो बात कह रहे हो, यह इस शताब्दी की बात कह रहे हो, जब जावा, बोर्नियो,

इण्डोनेशिया और सुमात्रा एक भौगोलिक इकाई है। आज से दो लाख साल पहले इनकी भौगोलिक स्थिति क्या थी? लंका कहाँ थी? हिमालय कहाँ था? विन्ध्याचल कहाँ था? अरब सागर था या नहीं? अफ्रीका कहाँ था? आज से दो-चार लाख साल पहले महाद्वीपों की स्थिति क्या थी? श्री राम कब पैदा हुए? त्रेता के अन्त में। त्रेता के बाद पूरा द्वापर युग निकल गया, तब द्वापर युग के अन्त में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ और उनके जाने के बाद कलियुग आया। कलियुग के भी पाँच हजार साल निकल गये। ये पाँच हजार साल, फिर द्वापर युग और फिर उसके पहले तीन-चार हजार साल, सबको जोड़ लो तो श्री राम का समय पता चल जाएगा। उनका जन्म हर युग में होता है, हर बार सीता का हरण होता है, हर बार रावण का जन्म होता है, यही फिल्म बनती है, ऐसा लिखा है।

महाभारत भी?

अभी केवल रामायण की बात बोली जा रही है। जिस समय रामायण हुई, उस समय भारत की भौगोलिक स्थिति क्या थी? लंका कहाँ थी? यह मत कहो कि लंका यहीं थी, क्योंकि द्वीपों-महाद्वीपों की स्थिति में परिवर्तन बराबर होता रहता है। आज जहाँ हिमालय है, वहाँ एक समय समुद्र था। यह पक्की बात है, क्योंकि वहाँ से फॉस्सिल मिले हैं। तुम गंगोत्री-यमुनोत्री गये होगे तो वहाँ जगह-जगह पर गोल-गोल पत्थर देखे होंगे। ये गोल पत्थर वहीं होते हैं, जहाँ सैकड़ों-हजारों वर्षों तक पत्थर बहते पानी में पड़े रहते हैं। वहाँ तो ऐसा कुछ है नहीं, फिर भी पहाड़ों में गोल पत्थर मिलते हैं। विंध्याचल भी एक समय समुद्र था, अब उठ गया है।

डॉ. सम्पूर्णानन्द और लोकमान्य तिलक, इन दो विद्वानों ने पुस्तकें लिखी हैं। एक की पुस्तक का नाम है 'द ओरियंट' और दूसरे की पुस्तक का नाम है 'द आर्कटिक होम ऑफ द वेदाज़।' इसमें उन्होंने अच्छी तरह से, प्रमाणों के साथ इन बातों को समझाया है। मान लो कि जब श्री राम का जन्म हुआ, उस समय अगर रामेश्वरम् यहीं था, लंका भी यहीं थी, चित्रकूट भी यहीं था, तब फिर वह दस-बीस हजार वर्ष पहले की बात है। यदि श्री राम का जन्म त्रेता के अन्त में हुआ और युगों का प्रमाण शास्त्रों के हिसाब से माना जाए कि इतने साल सतयुग, इतने साल त्रेता इत्यादि, तब तुम्हें यह उत्तर मिलेगा कि न तो यह रामेश्वरम् हो सकता है, न ही यह चित्रकूट और न ही यह लंका हो सकती है।

इण्डोनेशिया आज मुसलमानों का सबसे बड़ा राष्ट्र है। लेकिन वहाँ लोग हनुमान को मानते हैं, पूजते हैं। छोटे लड़के कहते हैं कि हम हनुमान बनेंगे। वहाँ रामायण का नृत्य, नाटक, गीत-संगीत सब होता है। उन लोगों के नाम, वहाँ के स्थानों के नाम रामायण से लिए गए हैं। बाली, जावा, सुमात्रा—ऐसे बहुत-से द्वीप हैं वहाँ। थाइलैण्ड में तो रामकथा का नाम ही रामकीर्ति है। इसी तरह बर्मा में भी है।

कहने का मतलब यह कि राम-कथा दक्षिण-पूर्व एशिया की ओर चलती हुई मालूम पड़ती है। अब किष्किंधा कहाँ है? जब तुम यह जानने की कोशिश करते हो, तो यह मानकर क्यों न चलो कि रामचन्द्र जी वनवास में दक्षिण-पूर्व की तरफ गये। आखिर बाली द्वीप तो उधर ही है। जिसे तुम अब किष्किंधा कहते हो, उसे बाली द्वीप कहो न! आज बाली द्वीप इण्डोनेशिया की तरफ है। वहाँ आज भी हिन्दू लोग रहते हैं, हिन्दी बोलते हैं।

एक और पुस्तक मैंने पढ़ी है, 'गोण्डवाना'। यह एक ऑस्ट्रेलियन की लिखी बहुत अच्छी पुस्तक है। उसमें बहुत-सी तस्वीरें और फोटो भी हैं। चट्टानों, पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों जैसी चीजों के आधार पर उसने शोध किया है। वह कहता है कि उस समय विंध्याचल से दक्षिण का भारत, आज का अरब सागर और बंगाल की खाड़ी, दक्षिण-पूर्व एशिया, ऑस्ट्रेलिया और अफ्रीका मिलकर गोण्डवाना नामक महाद्वीप था। यह बहुत अच्छी शोधपरक पुस्तक है, जिसमें उन्होंने इन चीजों को विस्तार से लिखा है। हमारे देश की भूतकाल की कथाओं को आज के भूगोल के परिपेक्ष्य में नहीं देखना चाहिये, यह मेरे कहने का मतलब है।

सन् 1950 में मैं अपने गुरुजी के साथ भारत भ्रमण पर गया था। उस यात्रा के दौरान हम कच्छ से होते हुए भी गए थे। उस समय कच्छ नाव से पार करते थे, वहाँ इतना पानी था। जब मैं मुंगेर में था और मैंने वहाँ दुबारा यात्रा की तो कार से, पानी गायब हो गया था। बीस-पच्चीस साल में ही इतना परिवर्तन!

कॉन्टिनेन्टल शिफ्ट यानि महाद्वीपों का खिसकना एक प्राकृतिक वास्तविकता है। यह तो हम मानते ही हैं। दूसरी चीज है ग्लोबल वार्मिंग। इसका सिद्धांत भी यथार्थ है। अगर पृथ्वी गर्म होती जायेगी तो अगले सौ साल में कई द्वीप जो अभी समुद्र तट से दो-तीन फुट ऊँचे हैं, ये सब डूब जायेंगे। अगर तापमान बढ़ा औसतन 2 डिग्री भी बढ़ गया तो हमारे समुद्र-तट पर कई गाँव डूब जायेंगे। यदि तापमान कम हो गया तो बहुत-से द्वीप

निकल भी आयेंगे। इन सब चीजों को देखने के बाद कभी-कभी मुश्किल हो जाती है। इसलिये जब हम रामचरितमानस पढ़ते हैं तो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से नहीं पढ़ते। हम केवल भक्ति और भावना के दृष्टिकोण से पढ़ते हैं। हम यह नहीं देखते कि लंका कहाँ है। हमें केवल यही दिखाई देता है कि भगवान को प्राप्त करने का सबसे सरल साधन सब कुछ उन्हीं की कृपा पर छोड़ देना है। उनसे कहना, 'प्रभु! मैं जप कर रहा हूँ। मन नहीं लगता है, इसलिये कर रहा हूँ। भजन, पूजा-पाठ, सब कर्म भी करता हूँ, लेकिन मुझे मालूम है कि इस रास्ते से तुम मिलने वाले नहीं हो। तुम तभी मिलोगे जब तुम चाहोगे।' बस यही चीज तुम्हें रामचरितमानस में मिलेगी—
'बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता।'

हमने आजकल रामचरितमानस को इसी दृष्टिकोण से अपनाया है क्योंकि इतिहास की गहराइयों में जाना किसी भी मनुष्य के लिये सम्भव नहीं है। एनी बेसेन्ट, कर्नल ऑलकॉट और मिस्टर लेडबीटर थियोसॉफिकल सोसायटी के कुछ मुख्य लोग रहे हैं। इन लोगों ने पृथ्वी के नक्शों की एक शृंखला निकाली जिसमें दिखलाया कि आज से पचीस हजार साल पहले पृथ्वी कैसी थी, आज से डेढ़ लाख साल पहले पृथ्वी कैसी थी। आखिर जब से पृथ्वी सूर्य से अलग होकर एक पिण्ड के रूप में सघन हुई है, जब से इसमें पानी पड़ा है, तब से इसके द्वीप और महाद्वीप समय-समय पर परिवर्तित होते रहे हैं।

आज जो नक्शे आप देख रहे हैं, कुछ अरसे बाद यही नक्शा नहीं रहने वाला है। दक्षिण के जितने भी देश हैं, वे सब स्थानांतरित होकर उत्तर की तरफ चले जायेंगे। जैसे-जैसे उत्तर की तरफ सरकेंगे, वैसे-वैसे उत्तर की तरफ पहाड़ निकलते आयेंगे। हो सकता है कि उनमें से कुछ टूटते भी जाएँ। यकीनन कुछ कहना बहुत मुश्किल है, ये विचार हैं।

डॉ. सम्पूर्णानन्द और लोकमान्य तिलक का तो यह कहना है कि वेद उत्तरी ध्रुव में लिखे गये हैं, जिसे अंग्रेजी में नॉर्थ पोल कहते हैं। सम्पूर्णानन्द जी और तिलक जी ज्योतिष के विद्वान् भी थे। उनका कहना है कि अभी पृथ्वी का ध्रुव उत्तर की तरफ है, पर धीरे-धीरे, घूमते-घूमते ध्रुव की दिशा बदलती है। उन्होंने एक कहानी का उल्लेख किया है और उस कहानी के आधार पर यह बताने की कोशिश की है कि उत्तरी ध्रुव में जो बर्फ रहती है, वह कब से शुरू हुई। यह कहानी पुराणों से ली है। पुराणों

में एक कहानी आती है कि किसी समय एक बहुत बड़ा राज्य था। एक बार वहाँ का राजकुमार, मंत्री का बेटा और अन्य सब राजपुत्र खेल रहे थे। वहाँ एक ऋषि गये, उन्होंने उन बच्चों से बातचीत करना शुरू किया। उस बच्चे ने बड़े अपमानजनक तरीके से उस महात्मा को जवाब दिया। महात्मा को बड़ा गुस्सा आया, तब उन्होंने कहा कि सब बर्फ हो जाए। रात-दिन बर्फ पड़ती रही और लगातार बर्फ पड़ते-पड़ते वह उत्तरी ध्रुव बन गया। यह तो कहानी है, मगर यह कहानी 'आईस एज' यानि बर्फानी युग की अवधारणा को दर्शाती है। बर्फ इस उत्तरी ध्रुव में तब आई जब इसकी दूरी थोड़ी-सी खिसकी और इसे उन्होंने कहानी से दर्शित किया है।

फिर डॉ. सम्पूर्णानन्द जी ने यह बताने की कोशिश की है कि किस तरह से हिन्दुस्तान के लोग यहाँ से बाहर गये। काराकोरम तरफ से हिमालय उठने लगा, समुद्र घटने लगा, कश्मीर में नीलांचल उठने लगा। कश्मीर तो पहले समुद्र था। यह दो-चार हजार साल पहले की बात नहीं है। समुद्र घटने लगा, सब लोग भागे उस समय। उस समय एक जाति यहूदियों की थी, जिन्हें इब्राहिम की संतानें, सोलोमन की संतानें कहते हैं। ये लोग भागे और इज़रायल में बसे।

लोगों का जो दूसरा समूह भागा, उन्हें पारसी कहते हैं। पारसियों के धार्मिक ग्रंथ, ज़ेन्दावेस्ता में लिखा हुआ है कि कहाँ उन्हें मक्खी-मच्छर, खटमल, बिच्छू, सर्प मिले। कहाँ गर्मी मिली, कहाँ पानी कम मिला, कहाँ पत्थर मिले, यह सारा वर्णन इनके ग्रंथ में है। ये लोग जब देश छोड़कर जा रहे थे, तब कहाँ-कहाँ रहे, उनकी गाथा में इसका पूरा-का-पूरा इतिहास है, जिससे पता चलता है कि पारसी पहले हिन्दुस्तान के रहने वाले थे।

हिन्दुस्तान से पहले भी बहुत बड़े स्तर पर लोगों का पलायन हुआ है। कई लाख साल पहले जब विंध्याचल और हिमालय पर्वत उठे, तब बहुत भूकम्प हुए होंगे। उसी समय इस देश में डायनासॉर की मृत्यु हुई है। यह बीस-तीस लाख साल पहले की बात है। हिन्दुस्तान में डायनासॉर जैसे बड़े-बड़े जानवर हुआ करते थे। वे डायनासॉर उस समय मरे हैं। सम्पूर्णानन्द जी उनको दानव और असुर कहते हैं। खैर ये सब कहानियाँ हैं, लोगों की अटकलें हैं या, लोगों का अपना अनुमान है, हम लोग वास्तव में नहीं जानते। प्राचीन इतिहास में जाना हम लोगों के बस की बात नहीं है, कोई इसके बारे में निश्चित रूप से नहीं कह सकता।

हम हिमालय को जितना पवित्र मानते हैं, क्या चीन भी उसे उतना ही पवित्र मानता है? आखिर हिमालय से जितनी औषधियाँ, वन, नदियाँ और अन्य लाभ हम लोगों को मिलते हैं, वे उनको भी मिलते होंगे?

नहीं, ऐसी बात नहीं है। हम तिब्बत गये हैं, सब जगह घूमे हैं। हिमालय का उधर जो हिस्सा है, वह सूखाग्रस्त है। वहाँ तो मॉनसून पहुँचता ही नहीं है। हम लोग हिमालय को पवित्र क्यों मानते हैं? पवित्रता की परिभाषा उसके उपयोग से लगती है। वह पवित्र इसलिए है कि वहाँ ऋषि-मुनि रहते हैं। ऋषि-मुनि क्यों रहते हैं? वह तुम जानते हो।

सबसे बड़ी चीज यह है कि हिमालय ने हिन्दुस्तान को सींचा है। सारी नदियाँ वहीं से आई हैं। चाहे सिन्धु हो, गंगा हो या यमुना हो, सब हिमालय से ही आई हैं। हिमालय रत्नों की खान है, वनस्पतियों का भण्डार है, इसमें भी कोई शक नहीं है, मगर यदि गंगा, यमुना, सिंधु नहीं होतीं तो हिन्दुस्तान सऊदी अरब की तरह बंजर होता।

हिन्दुस्तान में पवित्रता का अर्थ धार्मिक और लौकिक, दोनों दृष्टियों से लगाते हैं। फिर ऋषि-मुनि हिमालय में क्यों रहे? इसलिए कि वहाँ ठण्ढ थी और ठण्ढ में वे अपना जप-ध्यान कर सकते थे, एकांत में रह सकते थे। इसलिए वह पवित्र है। लोगों ने वहाँ पूजा-पाठ के लिए सुरक्षित स्थानों पर बड़े-बड़े मन्दिर बनाये ताकि उनको कोई तोड़ न सके।

मगर चीन को हिमालय से क्या मिलता है? कुछ नहीं। मॉनसून जाता है, हिमालय से टकराकर वापस आता है। उस तरफ तो केवल सूखे जंगल, सूखे पहाड़, सूखी चट्टानें मिलेंगी।

वैसे चीन ने दुनिया को बहुत-सी चीजें दी हैं। बारूद का खोजकर्ता चीन है। कागज भी वहीं बना। चीन का भारत से बौद्धकाल से सम्बन्ध रहा है। यहाँ के आचार्य वहाँ रहते थे। यहाँ से बौद्ध धर्म भी गया और संस्कृति भी। जापान को भी बौद्ध धर्म चीन से मिला है, हिन्दुस्तान से नहीं। पहले वह चीन गया, चीन से कोरिया, फिर कोरिया से जापान गया। चीन और जापान की पहले पटती नहीं थी। जब उन्होंने राजनैतिक सम्बन्ध सुधारे, तब फिर जापान ने चीन में जाकर संस्कृत, पाली और बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। चीन से फाह्यान और ह्वेनसांग जैसे बहुत-से यात्री भारत आए हैं, जापान से नहीं आए।

चीन में अभी भी संस्कृत है?

नहीं है, ऐसा बोलना चाहिये, क्योंकि भाषा राजनीति का एक प्रमुख आधार है। राजनीति में जो बहुत बड़ी भूमिका निभाती है, वह होती है भाषा। जब संस्कृत भाषा यहाँ से वहाँ गई, इसका मतलब राजनीति यहाँ से वहाँ गई। भाषा राजनीति की सिपाही होती है। इसी तरह धर्म भी राजनीति का सिपाही होता है। राजा हर्षवर्द्धन के बाद भारत और चीन के सम्बन्ध बिगड़े। उनकी बहन राज्यश्री का अपहरण हुआ, फिर हर्षवर्द्धन ने हूणों से युद्ध किया। ये हूण चीन से काराकोरम के रास्ते भारत में घुसे थे। खैर, उसको तो रोक दिया गया और राज्यश्री को फिर से प्राप्त कर लिया गया, किन्तु हर्षवर्द्धन ने अपनी राजधानी कन्नौज में चीन के राजदूतों से मिलने के लिए मना कर दिया। चीन के राजदूतों को राजसभा में इंतजार करवाया तो वे लोग गुस्सा हो गये और चले गये।

उसके बाद चीन और हिन्दुस्तान का राजनैतिक सम्बन्ध शताब्दियों तक टूटा रहा। इसके बाद तिब्बत को कई सालों तक जो स्वतंत्र रखा गया, उसका मुख्य श्रेय या दोष जो भी है, वह भारत को जाता है। सैकड़ों वर्षों तक लामा तिब्बत एक स्वतंत्र राष्ट्र रहा जो चीन के हाल के आक्रमण के बाद चीन का अंग हो गया। इसका दोष भी भारत को जाता है। तिब्बत को स्वतंत्र रखने का श्रेय भारत को है। कई शताब्दियों तक तिब्बत बिल्कुल अलग रहा। उस समय यह समझौता हुआ था कि जो भी दलाई लामा होगा उसका चुनाव चीन से होगा। जितने भी दलाई लामा हुए हैं, ये मूल रूप से तिब्बती नहीं, चीनी हैं, चाहे वे किसी भी प्रांत के हों। यह राजनीति है, समझने की चीज है। लोग इसे मुँह खोलकर बोलते नहीं हैं। यह एक राजनैतिक संधि है। ऐसा ही कश्मीर के सम्बन्ध में है। कश्मीर की बहुसंख्या मुसलमान और राजा शुद्ध हिन्दू, वैदिक धर्म मानने वाला है। यह एक ऐसी राजनैतिक संधि है जो अन्दर होती है, पर बाहर से पता नहीं चलता है। इसका जनता से कोई खास मतलब नहीं होता। तिब्बत का देश तिब्बतवालों का रहा है, मगर उनका जो गुरु था, प्रशासक था, वह चीनी था। चुनाव की जो व्यवस्था है वह सब ठीक है, लेकिन सच्ची बात यह है कि वह चीनी है।

तब तो दलाई लामा के पुनर्जन्म की बात सच्ची नहीं होगी?

यहाँ पर अभी पुनर्जन्म की बात नहीं कही जा रही है। हम यह नहीं कहते कि पुनर्जन्म की बात गलत है। ये सब बातें कि लामा ने फलानी जगह पर जन्म

लिया, उसे माला याद आ गई, जूता याद आ गया वगैरह अपनी जगह पर ठीक हैं, लेकिन यह राजनैतिक बात भी सही है कि जितने भी दलाई लामा हुए वे चीनी थे।

राजनीति में जब दो तंत्रों में आपसी संधि होती है, तब एक ऊपर की संधि होती है और एक अन्दर की। अन्दर की संधि कुछ कूटनीतिज्ञों को छोड़कर किसी को भी पता नहीं चलती। आज भी भारत-पाकिस्तान की राजनीति में अन्दर की चीजें कुछ और हैं, बाहर की कुछ और। हम तो उस खानदान में जन्मे हैं, जिसके खून में राजनीति होती है। हम तो इन सब चीजों को जल्दी से पहचान लेते हैं।

रुमाल उड़ेगा, चार दिशाओं में जायेगा, पाँच अफसर जायेंगे, निर्णय लेंगे, बच्चे को ले आयेंगे, वह दलाई लामा का पुनरवतार घोषित होगा—यह सब होगा मगर वह आदमी होना चाहिये चीनी। सारे लामा चीनी रहे हैं, क्योंकि कई सौ साल पहले चीन और भारत के सम्राटों के बीच एक समझौता हुआ था कि तिब्बत को एक अलग, स्वतंत्र राष्ट्र होना चाहिए, क्योंकि वे लोग बौद्ध धर्म के महायान मत में विश्वास करते थे। वे महायान दर्शन के अनुसार जीवन व्यतीत कर सकें, यह तभी संभव है जब उनका अपना राष्ट्र हो, क्योंकि चीन का दर्शन भिन्न है। उनकी सरकार, नियम, कानून, सब भिन्न है। भारत तिब्बत को एक महायान राष्ट्र के रूप में देखना चाहता था। चीन के राजा भारत के शासकों के साथ रजामंद तो हो गये, लेकिन उन्होंने कहा कि तिब्बत का गुरु या मुख्य व्यक्ति चीन से होगा। भारतीयों ने कहा, 'ठीक है।' तो बात ऐसी है। इसी तरह से कश्मीर में है।

अब आधुनिक युग में पंचशील के कारण भारत हस्तक्षेप नहीं करता, और इसलिए तिब्बत चीन का हिस्सा बन गया। यह हमारे लिये बहुत अच्छी चीज नहीं है। इससे भारत को एक खतरा और हो सकता है। वह है गंगा और सिंधु नदियों का उद्गम। तिब्बत में मानसरोवर झील है जो गंगा का उद्गम है। उसी के बगल में एक तालाब है, राक्षस-ताल। वहाँ से सिंधु का उद्गम हुआ है। यह बात खुल जायेगी तो हिन्दुस्तान घाटे में रहेगा। उसे अपनी राजनैतिक भूल के लिये भारी कीमत चुकानी पड़ेगी।

अन्तरराष्ट्रीय कानून के अनुसार अगर नदी तुम्हारे यहाँ प्रकट होती है, तो उसपर तुम्हारा अधिकार होता है। तुम उसके निर्णायक होते हो। हमने करीब चालीस साल पहले स्वामी प्रणवानन्द जी की एक पुस्तक पढ़ी थी।

कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उसे प्रकाशित किया था। वे हर साल कैलास-मानसरोवर जाते थे। साथ में रबर की नाँव भी ले जाते थे। मानसरोवर के बीच जाकर जगह-जगह से पानी का, पत्थर का नमूना लाते थे, फिर कलकत्ता में आकर परीक्षण करते थे। गंगा और मानसरोवर के जल में समानता है, इस पर उन्होंने पुस्तक भी लिखी है, 'कैलास-मानसरोवर।'

जब चीन ने तिब्बत पर आक्रमण किया, तब कैलास जाने का रास्ता बन्द किया गया। मैं उसी तरफ का हूँ, अल्मोड़ा के पहाड़ों का रहने वाला हूँ। उस समय कैलास जाने के लिये एक रास्ता अल्मोड़ा से था, दूसरा रास्ता पिथौरागढ़ से होते हुए जाता था। आगे जाकर दोनों एक ही हो जाते हैं। जब हम गये थे तब पिथौरागढ़ से गये थे। हम साधु बनने के बाद गये थे, पहले नहीं। उस समय बहुत-से लोग कैलास-मानसरोवर की तीर्थयात्रा पर जाते थे। पहला झंझट तब शुरू हुआ जब दलाई लामा भाग कर भारत आए और हिन्दुस्तान की सरकार ने उनको शरण दी। दूसरा झंझट हुआ जब चीन और भारत का सीमा को लेकर युद्ध हुआ। उसके बाद कैलास-मानसरोवर जाना बन्द हो गया था।

अभी लोग साल में एक बार जा पाते हैं। खैर, हिन्दुस्तान की सरकार तो ज्यादा जोर नहीं देती है, वरना असल में देखा जाए तो जैसे पाकिस्तान में सिक्खों का बड़ा तीर्थ ननकाना साहिब है, वैसे हिन्दुओं का सबसे बड़ा तीर्थ कैलास है। धार्मिक स्थानों के प्रति लोगों की जो भावना होती है, वह बहुत गहरी होती है। मगर भारत सरकार धर्म-निरपेक्ष है, ज्यादा बोलती नहीं है।

गंगोत्री से जल लाते समय नर्मदा होते हुए जाना अशुभ क्यों माना जाता है? ऐसा ही कुछ निषेध मगध के बारे में भी आता है।

अपने यहाँ कुछ तो आदिकालीन परम्पराएँ होती हैं और कुछ स्थानीय परम्पराएँ। उनका शास्त्रों से कोई मतलब नहीं। हाँ, कर्मनाशा नदी के बारे में हमारे शास्त्रों में कई स्थानों पर बुराई की गई है, और कई जगह पर मगध की भी बुराई की गई है। मगर वे जितनी चीजें हैं तत्कालीन हैं। उनके पीछे मगध के सोचने का तरीका हो सकता है। आखिर मगध तो बौद्धों का घर रहा है और जैनों का भी।

आज बौद्धों, जैनों और हिन्दुओं में कोई टक्कर नहीं है, मगर किसी जमाने में थी। यहाँ तक कि चन्द्रगुप्त के समय में भी टक्कर रही है।

चाणक्य पाटलीपुत्र छोड़कर पढ़ने के लिए तक्षशिला क्यों गए जबकि पाटलीपुत्र में अच्छी संस्कृत शिक्षा थी, वहाँ बड़े विद्वान् थे? इसलिए कि यहाँ का राजा महापद्म नन्द, बौद्ध लोगों को बहुत आश्रय देता था। चन्द्रगुप्त मौर्य भी अपने राज्य काल के बाद जैन धर्म अंगीकार करके दक्षिण भारत में कर्णाटक चला गया था। चन्द्रगुप्त का जैन धर्म की तरफ बहुत रुझान था, उसके पौत्र अशोक का बौद्ध धर्म की तरफ रुझान बाद में आया। उस समय बौद्ध, जैन और हिन्दू धर्मावलम्बियों में काफी राजनैतिक टक्कर थी। हो सकता है कि उस टक्कर की वजह से तीर्थयात्रियों ने मगध का बहिष्कार किया हो।

मगध के साथ यह जो सम्बन्ध है कि कर्मनाशा नदी पार नहीं करेंगे, इसका कारण स्थानीय है। इसका कोई शास्त्रीय या पौराणिक कारण नहीं है। परम्परा यह है कि जो गंगोत्री से जल लाते, वे उत्तराखण्ड से होते हुए, मिथिला से होते हुए, वैद्यनाथ धाम के आसपास होते हुए, उड़ीसा होते हुए जाते थे। उसका एक मुख्य कारण था। बहुत पुरानी बात नहीं कह रहा हूँ, सौ साल पहले की बात कह रहा हूँ। आज से सौ साल पहले मध्यप्रदेश निर्जन देश था। किसी तीर्थयात्री को जब एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ भेजना हो, तो उसको वही मार्ग बताना चाहिये जो जनसंकुलित हो।

गंगोत्री से उतरे तो ब्रजभूमि आए, अवध आए, मिथिला आए, फिर इसके बाद भोजपुर आए, वैद्यनाथ धाम से निकले, फिर उड़ीसा गये, वहाँ से आंध्र गये, फिर रामेश्वरम् पहुँच गये। यहाँ दो चीजें हैं। एक तो यह मार्ग जनसंकुलित है। दूसरी चीज है कि तीर्थयात्री कितनी नदियाँ पार करेगा? उस समय नदी पार करने का इन्तजाम कहाँ था? जब यह प्रथा बनी कि गंगोत्री का गंगाजल रामेश्वरम् में चढ़ाना पुण्यकारी है, उस समय लोगों ने यह भी सोचा कि किस-किस रास्ते से नहीं जाना चाहिये। ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि मगध एक खराब देश है या कर्मनाशा बुरी नदी है या नर्मदा कोई अपवित्र नदी है। नर्मदा जहाँ से गुजरती है, वहाँ अभी भी ऐसे घने जंगल हैं जहाँ आदमी पैदल नहीं जा सकता। पेड़ से पेड़ टकराते हैं। मध्यप्रदेश तो वन-संकुलित देश है। वहाँ बहुत घने जंगल हैं, इसलिये लोग उस रास्ते से जाने से कतराते हैं। सुविधा की दृष्टि से लोगों को एक मार्ग से भेजा और दूसरे मार्ग से जाने को मना किया, यही मानना पड़ेगा।

नर्मदा की परिक्रमा का इतना महत्त्व क्यों है?

हिन्दुस्तान में कुछ सभ्यताएँ मिलकर एक सभ्यता बनी है जिसे वैदिक सभ्यता कहते हैं। पहली सभ्यता है सिंधु घाटी की सभ्यता, दूसरी है गंगा घाटी की सभ्यता, तीसरी है ब्रह्मपुत्र घाटी की सभ्यता, चौथी है नर्मदा घाटी की सभ्यता और पाँचवी है कावेरी क्षेत्र की सभ्यता। इन पाँचों से मिलकर वैदिक सभ्यता बनी है और इन्होंने वेदों को स्वीकार किया है। इनके यहाँ पूजा-पाठ, शादी-विवाह, अंत्येष्टि इत्यादि जो भी होता है, उसका आधार वेद है, बाईबिल या कुरान नहीं।

इनमें से सिंधु घाटी की सभ्यता बड़ी गतिशील सभ्यता रही है। राजनीति, शिल्प-कौशल, व्यापार, रुपया-पैसा, सोना-चाँदी, देश-विदेश आना-जाना, ये एक गतिशील संस्कृति के लक्षण हैं, जो तुम आज विदेशियों में देखते हो।

गंगा घाटी की सभ्यता ज्ञान की सभ्यता रही है, वेद, पुराण, उपनिषद, मंत्र, महाभारत, रामायण और अध्यात्म की सभ्यता रही है। सिंधु घाटी की सभ्यता एकदम नागरिक सभ्यता है, उसमें रुपया-पैसा कमाओ, लड़ाई-झगड़ा करो, यह राजा बदलो, वह राजा बदलो, जबकि गंगा घाटी की सभ्यता का इन सबसे कोई मतलब नहीं है, वह पूरी तरह आध्यात्मिक है।

ब्रह्मपुत्र घाटी से तंत्र शास्त्र और कामाख्या जैसी देवियों की उपासना मिली। इसका प्रभाव बंगाल और उड़ीसा तक रहा। नर्मदा की घाटी योग, तंत्र-मंत्र और जादू-टोना से संबंधित है, जिसे आप रहस्यात्मक संस्कृति कहते हैं, और कावेरी नदी की सभ्यता संगीत, साहित्य, नृत्यकला और शिल्पकला से जुड़ी है। खाली पैर हिला देना या कमर मटका देना नृत्य नहीं होता। नृत्य एक भाषा होती है, इससे तुम भाव व्यक्त कर सकते हो। नृत्य मुद्राओं की भाषा है और उस पर पुस्तकें हैं। भरतनाट्यम् पर संस्कृत में एक पुस्तक है, जिसमें नृत्य की भंगिमाओं, गतियों, मुद्राओं, लय, ताल इत्यादि सबको संस्कृत भाषा में समझाया है।

उसी तरह से शिल्पकला है। दक्षिण भारत में कितने विशाल मंदिर हैं! दक्षिण भारत का मन्दिर एक शहर की तरह होता है। कुम्भकोणम् मन्दिर के बारे में जानते हो? यहाँ कुम्भ का तात्पर्य कुम्भ राशि से है और कोण का मतलब तो तुम जानते ही हो। जब कुम्भ का सूर्य सिंहस्थ होता है, केवल उसी समय उस मन्दिर की छाया मन्दिर की परिक्रमा से बाहर गिरती है, अन्यथा

नहीं। वह महाविशाल मन्दिर है। उसकी ऊँचाई, चौड़ाई और लम्बाई में ऐसा अनुपात है कि सूर्य पूर्व से पश्चिम में ढल जाता है, मगर छाया परिक्रमा से बाहर नहीं गिरती, केवल कुम्भ राशि के समय गिरती है। ऐसा बारह साल में एक बार होता है और उस दिन वहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है, जिसे कहते हैं महामखम्। मख का मतलब यज्ञ होता है। उस समय लाखों पण्डित, विद्वान्, आचार्य, शास्त्री, महात्मा, तीर्थयात्री, चारों वर्णों के लोग आते हैं और उस यज्ञ में भाग लेते हैं।

कावेरी सभ्यता ने कुम्भकोणम् जैसे कई जबरदस्त मन्दिर बनाए हैं। कितने वैज्ञानिक ढंग से बनाया है! उसी तरह से रामेश्वरम् मन्दिर, मदुरै में मीनाक्षी मन्दिर और शबरी मलई मंदिर हैं। सब एक-से-बढ़कर-एक!

इन पाँच सभ्यताओं ने वेदों में जो लिखा है, उन आदर्शों को स्वीकार किया। इन लोगों के धर्म, तीर्थ-पर्व, पंचांग, सोलह संस्कार, शादी-विवाह आदि सभी वेदों के अन्तर्गत होते हैं। इन पाँचों सभ्यताएँ में से नर्मदा की सभ्यता मूलत: योग से सम्बन्ध रखती है। साकार उपासना वाले लोग भगवान को मूर्तियों या तीर्थों में यानि बाहर मानते हैं, पूजा करते हैं, मगर योग वाले कहते हैं कि यह सब अन्दर है। इस प्रकार नर्मदा सभ्यता अन्तर-देवता की उपासना लेकर आई, कावेरी की सभ्यता साहित्य, संगीत, कला के रूप में आई, ब्रह्मपुत्र घाटी की सभ्यता तंत्र-मार्ग को लाई और गंगा की सभ्यता शास्त्र, वेद, पुराण के रूप में आई।

इसलिये जो नर्मदा की परिक्रमा करते हैं, उनका नियम होता है कि उन्हें साधु की तरह फक्कड़ होकर रहना होगा, भिक्षा माँगकर खाना होगा। वे लोग गाँव में रहते हैं, दो-चार घरों में चले जाते हैं और खाना ले लेते हैं। आजकल तो जेब में पैसा रखते हैं, मगर पहले ऐसा नियम नहीं था। पहले के जमाने में नर्मदा की परिक्रमा केवल साधु ही किया करता था या कर सकता था, दूसरा व्यक्ति नहीं करता था। जैसे ब्रज की परिक्रमा कोई भी कर लेता है, गृहस्थ भी कर सकता है, मगर नर्मदा की परिक्रमा केवल फक्कड़ के लिये थी, और उसे वही कर पाते थे।

गृहस्थ जीवन में पति-पत्नी के बीच सामंजस्य कैसे रखा जा सकता है?

परिवार में स्त्री और पुरुष, एक व्यक्ति का नहीं, दो व्यक्तियों का नाम होता है। दो व्यक्तियों के दो मन होते हैं और दो मन कभी एक सरीखे नहीं

हो सकते। पति और पत्नी का मन अलग-अलग होता ही है। एक मन हो गया तो घर-गृहस्थी नहीं चल सकती। घर-गृहस्थी चलने के लिये दो पहियों का अलग रहना जरूरी है। यह पक्की बात है।



पुरुष और स्त्री में विभिन्न गुण होते हैं और दोनों के गुणों के मेल से ही परिवार चलता है। अगर घर में स्त्री न बोल सके तो फिर उसका परिवार से क्या मतलब? केवल पति के बोलने का क्या महत्त्व? पत्नी बोले तो बदतमीज है, यह रवैया ठीक नहीं। आखिर बुद्धिमानी का ठेका किसी एक ने तो नहीं ले रखा। स्त्री और पुरुष, दोनों के अपने-अपने विशेष गुण होते हैं।

स्त्री की सबसे बड़ी विशेषता है विवेक, जबकि पुरुष में विवेक की कमी होती है। शील स्त्री के लिये स्वाभाविक है, पुरुष के लिये स्वाभाविक नहीं है। यह स्त्री का बहुत बड़ा गुण है। परिवार को चलाने के लिये शील बहुत आवश्यक है। तीसरी चीज है क्वालिटी की परख। आप मर्दों और औरतों के कपड़े देख लीजिये, कपड़ों की किस्म से ही पता चल जाता है। अगर मर्द को घर में खाना बनाना पड़े तो दाल-चावल से ही काम चलायेगा, लेकिन घर की स्त्री कितने प्रकार के पकवान बना लेती है। व्यवसाय में भी हमने देखा है। जिस-जिस व्यापार क्षेत्र में औरतें हैं, उसकी क्वालिटी, उसकी गुणवत्ता बहुत अच्छी है। स्त्रियाँ गुणवत्ता पर बहुत ध्यान देती हैं, जबकि आदमी बिक्री पर अधिक ध्यान देता है। आदमी देखता है कि ज्यादा बिक्री कैसे हो, औरत सोचती है कि अच्छा माल कैसे बने। विवेक, शील और गुणवत्ता की परख–ये जो तीन गुण महिलाओं में हैं, किसी भी व्यक्ति के लिये क्या यह कम योग्यता है?

जब समाज में गुण्डे-बदमाश बहुत हो जाते हैं और राजा सुरक्षा नहीं दे पाता, उस समय स्त्री अबला बन जाती है। स्त्री हमारे समाज की बहुमूल्य सदस्य है। उसे घर की चहारदीवारी में बन्द मत करो, बल्कि उसे योग्य बनाओ, सशक्त बनाओ और सुशील भी बनाओ। जरूरी तो नहीं कि सशक्त दु:शील बने।

–15 नवम्बर 1997



अध्याय 13

इस साल सीता कल्याणम् में इस क्षेत्र की तीन-चार सौ नववधुओं को सुहाग प्रसाद दिया जाएगा। यह कोई मामूली प्रसाद नहीं, कपड़े-गहने मिलाकर पूरी सुहाग पेटी सत्तर-अस्सी हजार से कम नहीं होती। यहाँ पर हमने यह परम्परा इसलिए स्थापित की है कि सब नववधुएँ सीता जी का प्रतिनिधित्व करती हैं। सीता कल्याणम् में सीता जी को जो भी दहेज मिलता है वह सब इन नववधुओं में बाँट देते हैं। हम यही मानते हैं कि जब लड़कियाँ शादी करके अपने ससुराल जाती हैं तो उन्हें अपने माँ-बाप से खूब मिलना चाहिए। यह माँ-बाप का धर्म है कि वे कंजूसी न करें, बल्कि अपनी लड़की को सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात सब दें क्योंकि लड़की लक्ष्मी का रूप है।

विश्व की आद्या शक्ति देवी स्वरूपा है, और घर की लड़की उसी देवी का अंश होती है। जब वह दूसरे घर में जाती है तो खाली हाथ नहीं जाती। कंगाल घर की लड़की भी कुछ-न-कुछ तो ले जाती है न? सोना-चाँदी, हीरे-मोती—ये लक्ष्मी के प्रतीक हैं। ऐसा नहीं कि एक बंडल पेड़ा उसके साथ बाँध दिया या एक पैकेट हर्बल-टी ही दे दिया। हम तो सबको बोलते हैं कि सीता कल्याणम् में आओ तो भारत की सबसे बढ़िया साड़ी लाओ। यहाँ की लड़कियाँ बहुत गरीब हैं। सब मजदूर हैं, दिनभर की आमदनी तीस-पैंतीस रुपये होती है। मेरे सभी पड़ोसियों का यही हाल है। जिंदगी में एक बार ही सही, पर उन्हें ऐसी साड़ी मिल जाए जो दिल्ली के अमीर घरानों में पहनी जाती है, या ऐसे गहने जो आप अपनी बेटियों को देते हो, तो कितनी खुशी होगी उन्हें!

वेदान्त में सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है आत्मभाव। *अहं ब्रह्मास्मि* भी वेदान्त का एक सिद्धान्त है जिसे आप लोग शायद जानते होंगे, पर उससे

ज्यादा जरूरी है आत्मभाव। आत्मभाव का मतलब दूसरों में खुद को देखना। अगर तुम्हारा बेटा बीमार पड़ जाए तो तुम्हें बहुत चिंता हो जाती है। वह सफलता की ऊँचाइयाँ छू ले तो तुम्हारी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। लेकिन क्या दूसरे के बेटे के साथ ऐसा होता है? अगर पड़ोसी का लड़का बीमार हो जाए तो तुम शायद पूछ लो कि क्या हो गया। मगर यह भावनात्मक नहीं, बौद्धिक प्रश्न है। किसी का बेटा बड़ा आदमी बन जाए तो तुम कह दोगे कि बहुत खुशी की बात है, पर क्या वह खुशी तुम सचमुच महसूस करते हो? नहीं, वह एक बौद्धिक प्रतिक्रिया है जिसमें भावना नहीं रहती। जब किसी पराये व्यक्ति के साथ भी तुम भावनात्मक स्तर पर उसी तरह जुड़ सको जैसे अपनी बीवी, बेटे या बेटी से जुड़े हो तो वह होगा आत्मभाव। वेदान्त मार्ग में आगे बढ़ने के लिए यह भाव बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके बिना आत्मदर्शन सम्भव नहीं। केवल *अहं ब्रह्मास्मि* कह देना काफी नहीं। वह मात्र दार्शनिक सिद्धान्त रहता है। अपने को दूसरों में देखो और दूसरों को अपने में—यह बात ईशावास्य उपनिषद् में कही गई है और गीता में भी।

आत्मभाव बहुत गहन भावना है। ये लड़कियाँ, जो शादी करके दूसरे घर में जा रही हैं, बहुत गरीब परिवारों से हैं। सस्ती साड़ियाँ और नकली जेवर, ये भी इन्हें मिल जाएँ तो बड़ी बात होगी। तो फिर इन्हें बढ़िया साड़ी, बढ़िया गहने, यहाँ तक कि विलायती इत्र क्यों न दिया जाए? ग्रीस, फ्रांस और स्विट्ज़रलैण्ड में जो सबसे बढ़िया इत्र या साबुन मिलता है, मैं अपने भक्तों से लाने को कहता हूँ। हाँ, मेरे मन में पहली चीज तो जेवर-गहने रहते हैं। किसी भी लड़की की शादी गहनों और मंगलसूत्र के बिना अधूरी है। और वे खालिस सोने के होने चाहिए। मैं अपने उन सभी भक्तों से साफ-साफ कहता हूँ जो अपने लिए ही कमा रहे हैं, अपने बीवी-बच्चों पर ही खर्च कर रहे हैं कि एक महीने के लिए अपनों पर खर्च करना बंद कर दो और उन पैसों से एक छोटी-सी सुहाग-पेटी तैयार कर लो। उसमें एक बढ़िया साड़ी, ब्लाऊज़, पेटीकोट, गहने, चप्पल, साबुन, घड़ी वगैरह हो और साथ ही लड़की के पति के लिए भी इसी तरह का बढ़िया सामान हो। लड़कियों के लिए जो सोलह शृंगार होते हैं न, सभी शामिल हों। इसके अलावा हम सत्रहवाँ शृंगार भी जोड़ देते हैं—सैनिटरी टॉवल, क्योंकि लड़कियों के लिए जरूरी है और गाँव में इन लोगों को मालूम नहीं है। मिलता भी नहीं है। ये लड़कियाँ और उनके माँ-बाप बस दो चीजों से बहुत खुश हो जाते हैं। एक, जब वे गहने

देखते हैं तो उनका मुँह खिल जाता है, और दूसरा, सैनिटरी टॉवल देखकर भी उन्हें बहुत खुशी होती है कि चलो भाई, एक झंझट तो इनकी खत्म हुई।

यह आत्मभाव हमें देवघर में आकर हुआ। इससे पहले तो हम बस बोलते जाते थे, ऐसी-ऐसी चीजों पर भी जिनके बारे में कुछ मालूम नहीं था। भगवान पर भी बहुत कुछ बोला है। विद्वान् लोग पहले कहते हैं कि भगवान अज्ञेय है, उसको जाना नहीं जा सकता। फिर कहते हैं अनन्त है, अनादि है। अरे, अगर भगवान अज्ञेय है, मन और वाणी के परे है तो कैसे पता चला अनन्त और अनादि है? तुम्हें यही कैसे पता चला कि भगवान एक है। पता नहीं, तैंतीस करोड़ भी हो सकते हैं, तुमने कुछ तो देखा नहीं है। हम सब इसी तरह के विचित्र बुद्धिवादी हैं।

लेकिन देवघर आने के बाद हमें स्पष्ट आवाज़ सुनाई दी, जिसे तुम लोग आकाशवाणी कहते हो। हमने आकाशवाणी कई बार सुनी है। जैसे हमारी-तुम्हारी बातचीत चल रही है वैसे ही एकदम स्पष्ट शब्द होते हैं। तब हमने अपने आप से कहा, 'सारे संसार का ज्ञान एक तरफ और अपने पड़ोसियों के प्रति संवेदना, करुणा और आत्मभावना दूसरी तरफ–सत्यानन्द चुन ले!' पहले रास्ते से अपनी मंजिल पहुँचोगे, जरूरी नहीं है, लेकिन जो अपने को दूसरों के साथ जोड़ सकता है, एक कर सकता है, वह उनका हो जाता है। अगर तुम्हारे-हमारे बीच प्रेम हो जाए, तुम्हारा दिल हममें लग जाए, हमारा दिल तुममें लग जाए तब हम दोनों एक हो गये न? दो कहाँ रहे फिर। शरीर दो रहे, पर आत्मा तो एक हो गई न? उसी तरह अगर हम दूसरों से अपने को जोड़ सकें तो हमें अद्वैत की अनुभूति हो जाएगी। द्वैत फिर रहेगा कहाँ?

दूसरों के साथ अपने को जोड़ना बुद्धि नहीं, भावना के स्तर पर होना चाहिए। और हमें यह रास्ता बहुत अच्छा लगा। हम हमेशा अपने से प्रश्न करते थे, 'सत्यानन्द! तुम बोलते तो बहुत हो, निष्ठा भी बहुत है, मगर तुम्हें जानकारी कितनी है? तुमने किताबें तो बहुत लिखी हैं, व्याख्यान भी बहुत दिए हैं। किसी भी विषय पर तुम बोल सकते हो। ईश्वर के बारे में तो घण्टों बोल सकते हो, पर सच बोलो, तुम्हें अनुभव कितना है?' जवाब मिलता था–सिफर, शून्य, ज़ीरो। हम केवल तोते की तरह बोलने वाले थे, पर यहाँ आने के बाद हम कह सकते हैं, 'अब हम जानते हैं। जो दिखाई देता है उसके परे की चीजों को देख सकते हैं।'



इसलिये हमने सीता-कल्याणम् का यह कार्यक्रम पिछले साल से शुरू किया है। सुहाग की पेटियाँ ट्रकों में भर-भर कर आती हैं, और मजे की बात यह है कि उन लड़कियों ने हमें न कभी देखा है, न ही देखेंगी। हम भी अपनी जिन्दगी में उन्हें देखेंगे या नहीं, पता नहीं। जितनी लड़कियों को अभी तक दिया है, आमना-सामना कभी नहीं हुआ है। कहीं हम जाएँगे तो पता नहीं पहचानेंगी या नहीं कि रिखिया वाले स्वामीजी हैं। मतलब किसी के प्रति एकता का भाव स्थापित करने के लिये उसके साथ प्रत्यक्ष स्तर पर मिलने की जरूरत नहीं। हमारे और भगवान के बीच, या हमारे और तुम्हारे बीच एकता का संबंध शरीर के स्तर पर नहीं, आत्मा के स्तर पर होता है।

भगवान की सृष्टि और उनका अवतार

यह दुनिया तो भगवान का बगीचा है। यहाँ एक तरफ काँटे वाला गुलाब भी होता है, काँटे वाला बबूल भी होता है, जहरीला साँप भी होता है, तो दूसरी तरफ अमृत सदृश तुलसी भी होती है, अमृत जैसा बेलपत्ता भी होता है। किसी बगीचे में खाली आम के ही पेड़ हों तो वह बगीचा थोड़े ही है। भगवान के घर में विविधता है। देवता भी यहीं है, राक्षस भी यहीं है। यह सब भगवान की सृष्टि है और भगवान खुद कुछ नहीं करते, वे अकर्ता हैं। भगवान सिर्फ संकल्प कर सकते हैं, और कुछ नहीं। क्रियाशक्ति और इच्छाशक्ति देवी

में है, प्रकृति में है। भगवान अगर किसी रूप में अवतार लेना चाहते हैं तो सिर्फ संकल्प की क्षमता है उनमें। बिना प्रकृति के सहयोग के वे अवतार नहीं ले सकते। और जैसे ही वे प्रकृति के साथ जुड़ते हैं, जन्म-मरण जैसे सभी प्राकृतिक धर्मों के अधीन हो जाते हैं।

जो कुछ भी होता है, प्रकृति करती है, और यह प्रकृति तीन गुणों वाली है—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। दुनिया में सभी अच्छी-बुरी चीजें इन तीन गुणों के दायरे में आती हैं। इन तीन गुणों का विनाश नहीं होता, हाँ, अनुपात जरूर बदलता है। जिस दिन विनाश हो जायेगा उस दिन सृष्टि ही समाप्त हो जायेगी।

भगवान जब संकल्प लेकर अवतार लेते हैं तो क्या अपने लिये करते हैं?

नहीं, भगवान का अपना कोई संकल्प नहीं होता, भक्त भगवान को संकल्प लेने के लिए मजबूर करता है। जैसे यहाँ बल्ब है और बिजली भी है, दोनों आपस में जुड़े भी हैं, पर वह बल्ब अपने आप नहीं जलेगा, किसी को स्विच ऑन करना पड़ेगा। वैसे ही जब-जब भक्त भगवान को विवश करता है तब भगवान के अन्दर जो संकल्प का बीज होता है वह जाग्रत होता है। ज्यादातर लोग तो यही कहते हैं कि भगवान का अवतार दुष्टों के विनाश के लिये होता है, लेकिन हम मानते हैं कि भगवान का अवतार भक्तों की मदद के लिए होता है।

मान लो तुम सुन्दर कपड़ा बनाते हो और उसके बारे में लोगों को बतला देते हो। लेकिन तुम कपड़ा दिखाओगे तभी तो उसको मोल लेंगे न? अभी तक तो तुम निर्गुण की बात ही कर रहे थे—अच्छा कपड़ा, अच्छा कपड़ा, मगर कहाँ है वह कपड़ा? दिखता तो नहीं है। इसी तरह भगवान भक्तों को सहारा देने के लिये अवतार धारण करते हैं और लीला करते हैं, ताकि हम उनका ध्यान कर सकें, उनकी लीला का ज्ञान प्राप्त कर सकें और उनके भरोसे अपनी साठ-सत्तर साल की जो थोड़ी-सी जिन्दगी है, उसे शान्ति से निभा सकें। नहीं तो जिन्दगी भर निन्यानवे का फेर ही लगा रहता है।

भगवान भक्तों के कातर आग्रह से आते हैं—'हे भगवान! तुम निर्गुण हो, सब जगह रहते हो, पर हमें तो कहीं दिखते नहीं। तुमसे हम क्या प्रार्थना करें? हमें कुछ समझ में नहीं आता।' तब भगवान कहते हैं, 'ठीक है, मैं आ

जाता हूँ राम के रूप में। जाओ खूब कीर्तन करो, रामायण पढ़ो।' भक्त को एक आधार मिल जाता है। अगर भगवान अवतार नहीं लेते तो तुम उनके बारे में क्या बोल पाते? तुम अद्वैत हो, अजर हो, अमर हो, अनन्य हो—बस सबमें 'अ' लगाते जाओ। भगवान ने अवतार लेकर भक्तों को भक्ति का एक आधार दिया, सच्ची बात तो यही है।

भक्तों के आग्रह से भगवान के अन्दर संकल्प जागता है। तब वे प्रकृति का आश्रय लेकर उतरते हैं। जब उतरते हैं तब प्रकृति के धर्मों के अनुसार चलते हैं क्योंकि भगवान कर्त्ता नहीं हैं। हाथ भी नहीं हिला सकते, खा भी नहीं सकते। वह सब प्रकृति करती है। खाना, पीना, सोना, उठना, बैठना, गाना, नाचना, जंगल में जाना, लड़ाई करना, सीता से प्रेम करना या धनुष भंग करना—ये प्रकृति के धर्म हैं। प्रकृति पर आश्रित होकर भगवान जो कुछ करते हैं उसे लीला कहते हैं। जैसे फिल्मों में अभिनेता कभी भिखारी की भूमिका अदा करता है तो कभी डाकू की, कभी राजा की तो कभी चोर की, लेकिन वास्तव में तो वह अभिनेता ऐसा नहीं है न?

संगीत का दौर

संगीत शास्त्र विकास के एक मार्ग पर चल रहा है। किसी भी विद्या में ठहराव नहीं होना चाहिये। पानी अगर बहता नहीं है तो सड़ जाता है। जो संगीत शास्त्र आज है वह दो हजार साल पहले ऐसा नहीं था। चाहे वह संगीत हो या साहित्य, कला या विज्ञान, उसमें नित्य-निरंतर विकास होना चाहिये और वह होना चाहिये मनुष्य की स्थिति के मुताबिक। आज का इन्सान तेज-तर्रार है। हर चीज तेज है, गाड़ी भी तेज चलती है, हवाई जहाज भी तेज चलता है। खाना भी तेज बनता है, टट्टी भी जल्दी करके आ जाते हो। पहले तो आधा घण्टा मैदान पहुँचने में लगता था और आधा घण्टा वापस आने में लगता था। अब तो पाँच मिनट में सब हो जाता है। सब चीजें तेज हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य का मन भी तेज चीज में ही रुकता है, वरना नहीं रुक पाता है।

जितने भी आध्यात्मिक या धार्मिक किस्म के संगीत हैं, उन सबके सामने आज बहुत बड़ी चुनौती है, क्योंकि यह जो पाश्चात्य संगीत आया है जिसे तुम पॉप म्यूज़िक कहते हो, यह न आध्यात्मिक है, न धार्मिक। मैंने संगीत का कुछ अध्ययन किया है, इसलिए बतला रहा हूँ। यह पाश्चात्य संगीत नहीं है, इस संगीत का जन्म हुआ है अफ्रीका में। पश्चिम से होकर

आ रहा है इसलिए तुम इसे पाश्चात्य संगीत कहते हो। पर यह असल में वेस्टर्न म्यूज़िक नहीं, नीग्रो म्यूज़िक है। नीग्रो का मतलब होता है काला। यह काले लोगों का संगीत है। अभी भी तुम अफ्रीका में जाओ, वहाँ के गाँवों में लोग जब हजारों की संख्या में गाते हैं और नाचते हैं तो क्या गजब की लय-ताल रहती है। जो संगीत आज यहाँ आया है और सिनेमा में आजकल जो नृत्य देखते हो, वह दायें-बायें-आगे-पीछे उछलने-कूदने वाला, वह सब मूलत: अफ्रीका का है।

बहुत पहले यह संगीत अफ्रीका और एशिया में एक जगह था, जब गोण्डवाना द्वीप हुआ करता था। मैं तुम्हें इतिहास की बात बता रहा हूँ, दो हजार साल पुरानी नहीं, चालीस-पचास हजार साल पुरानी। तब वर्तमान ऑस्ट्रेलिया, बाली, जावा, सुमात्रा, दक्षिण भारत, अरब सागर, बंगाल की खाड़ी और अफ्रीका एक महाद्वीप था जिसका नाम था गोण्डवाना। बाद में भौगोलिक परिस्थितियों के बदलने से अफ्रीका अलग हो गया, ऑस्ट्रेलिया अलग हो गया, दक्षिण भारत अलग हो गया। वह उत्तर भारत से मिल गया, विंध्याचल ऊपर उठ गया, बंगाल की खाड़ी बन गई, मगर लोग वही रहे, संगीत की लय वही रही। गाँवों में आज भी लोग ऐसे ही नाचकर नहीं गाते हैं क्या?

लोक संगीत एक ऊँची चीज है, इस बात का ख्याल रखो। कभी संगीत के रास्ते में जाओ तो ऐसा संगीत बनाओ कि लोग झूमने-नाचने पर मजबूर हो जाएँ। वह शराब नहीं जो आदमी को मस्त न करे, वह जहर नहीं जो आदमी को मारे नहीं, और वह संगीत नहीं जो आदमी को नचा न सके। वह संगीत ही कैसा जो आदमी को सुला दे! संगीत सुलाने के लिये नहीं होता है, संगीत नचाने के लिये होता है। 'पी ले पी ले हरिनाम का प्याला, उसे पीकर और पिलाकर हो जा मतवाला'—इतना गाओ कि नशा चढ़ जाए।

चाहे वह संगीत हो या साहित्य या कला, ये निरंतर विकासशील विद्याएँ हैं। जो हिन्दी तुम आज बोल रहे हो, चार-पाँच सौ साल पहले ऐसी हिन्दी थोड़े ही बोली जाती थी। जो संस्कृत आज बोलते हैं, वह पहले ऐसी नहीं थी। वेदों के समय दूसरी संस्कृत बोली जाती थी। जो कपड़े तुम्हारे दादा-परदादा पहनते थे आज तुम पहनते हो क्या? वस्त्रों में, घर निर्माण कला में, भोजन बनाने के तरीके में, औषधि विज्ञान में, हर जगह परिवर्तन हुआ है, विकास हुआ है। संगीत में भी जरूर होना चाहिये। जिप्सी लोग, जो कई सदियों पहले हिन्दुस्तान छोड़कर यूरोप गये, वहाँ भी गाना गाते हैं, नाचते

हैं। रूस में रहते हैं, बल्गोरिया में रहते हैं, वे कहीं एक जगह टिकते नहीं हैं। उनकी परम्पराएँ, उनका संगीत हिन्दुस्तान जैसा है। फर्क इतना है कि अब वे लोग ऊँची एड़ी वाले जूते पहनकर नाचते हैं।

आने वाली शताब्दी की मुख्य वस्तु है संगीत। वही सबसे अधिक लोकप्रिय होगा। हमारे ऋषि-मुनियों ने भी यही कहा है कि कलियुग में संकीर्तन से ही मुक्ति मिलेगी। इसलिये संगीत को तो तुम लोग एकदम जमाकर रखो। चाहे लड़का हो या लड़की, लड़की ससुराल जाए या कहीं भी जाए, संगीत हमारे घर की संस्कृति बननी चाहिये, सबको सीखना चाहिये। साहित्य, संगीत और कला के बिना मनुष्य की अपनी पहचान नहीं है। *साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः*—ऐसे मनुष्य बिना पूँछ और सींग के जानवर ही हैं। *ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति*—वे दुनिया के लिये भार हैं और मनुष्य के रूप में घूमने वाले जानवर ही हैं। ऐसा कहा है भर्तृहरि ने।

हमारे यहाँ चैतन्य महाप्रभु और रामकृष्ण परमहंस जैसे बहुत-से अच्छे संत-महात्मा हुए हैं जो कीर्तन करते-करते बेहोश हो जाते थे, उन्हें भाव-समाधि लग जाती थी। मीराबाई कीर्तन में इतनी मस्त हो गई कि आखिर उसे घर छोड़ना पड़ा। मीराबाई कीर्तन से बहुत प्रेम करती थी, पर राजमहल के लोग उसके रहन-सहन को पसंद नहीं करते थे। मंदिरों में जहाँ भी कीर्तन



होता, वहाँ जाती और नाचने लगती थी। साधारण घर का आदमी भी अपनी बहू का नाचना पसंद नहीं करेगा, फिर वह तो चित्तौड़ की महारानी थी। एतराज होने लगा। एतराज बढ़ा तो राजमहल वालों ने कहा कि हटा ही दो न, खत्म कर दो। राणा ने विष का प्याला भेजा, बहुत तरीकों से मारने की कोशिश की गई, पर किसी तरह वह बच निकली। कहते हैं अन्त में मीराबाई कीर्तन करते-करते निर्गुण में समा गई, उसका शरीर भी नहीं मिला।

आज पश्चिम के लोग भी बड़े कीर्तन-प्रेमी हो गये हैं। वहाँ भजन नहीं, नाम-संकीर्तन चलता है, भगवान का नाम बार-बार दुहराया जाता है। यह नाम-संकीर्तन बहुत लोकप्रिय हो गया है। बहुत-से संन्यासी जो अच्छा गाते हैं, यहाँ से वहाँ जाते हैं, कैसेट-सीडी बनाकर बेचते हैं। बिकता भी अच्छा है।

स्वयं को जानना

बीमारी अगर शरीर में होती है तो उसे दूर करने के लिये आसन-प्राणायाम हैं। पर केवल शरीर बीमार होता है, ऐसी बात तो नहीं है। मन भी बीमार होता है। बीमार मन के उपचार के लिये धारणा-ध्यान है। केवल मन ही बीमार नहीं होता, बल्कि मनुष्य की जीवात्मा, उसका पूरा व्यक्तित्व बीमार है। उसके लिये योग से काम नहीं चलता। तब उसे सत्संग में जाना चाहिये जहाँ उसे प्रेरणा मिले, अपने आप को देखने-जानने का मौका मिले। जब व्यक्तित्व बीमार होता है तो आदमी यह नहीं कहता कि बीमार हो गया, बल्कि कहता है कि बहुत दुःखी हूँ। शरीर में कुछ हुआ तो कहेगा यहाँ बीमारी है, वहाँ बीमारी है, लेकिन जब आदमी का व्यक्तित्व बीमार हो जाता है तब बोलता है बहुत कष्ट में हूँ। क्या कष्ट है? लड़का नालायक निकल गया या पति घर में रोज पीकर आता है, बड़ा तंग करता है। यह भी बीमारी है और इस बीमारी का उपचार योग के पास नहीं है। दुनिया में ज्यादा लोग इसी के शिकार हैं। मूल समस्या यही है कि मनुष्य की जीवात्मा बीमार है। पैर का दर्द, नाक का दर्द, यह कोई बड़ी बीमारी नहीं है। ऐसी छोटी-मोटी बीमारियों को आसन-प्राणायाम जैसे छोटे उपायों से दूर करते हैं। बड़ी बीमारी का उपाय है सत्संग, विवेक।

मुनष्य की सबसे बड़ी कमजोरी, सबसे बड़ी सीमा यह है कि उसने अपना चेहरा अपनी आँखों से कभी देखा ही नहीं। आईने में जो देखा है वह तुम्हारा चेहरा थोड़े ही है, चेहरे का प्रतिबिम्ब है। तुमने अपना चेहरा अपनी आँखों से

नहीं देखा। किसी ने नहीं देखा। उसी तरह से एक मजबूरी यह भी है कि मनुष्य अपने मन को जानता नहीं। मन एक चीज है और विचार दूसरी चीज, जैसे यह बल्ब और उसका उजाला। तुम बल्ब नहीं, उसके उजाले को देख रहे हो। इसी तरह तुम अपने विचारों को देख रहे हो कि गुस्सा आ रहा है, चिन्ता हो रही है, थकावट लग रही है, तनाव हो रहा है, मगर तुम अपने मन को नहीं देख सकते। मन को देखना सबसे कठिन काम है। जिसने अपने मन को देख लिया वह ईश्वर के समान हो जाता है। मन को देखना, इसी को सुकरात बोलता था Know thyself, इसको रमण महर्षि तमिल में बोलते थे, 'नान यार' और इसी को उपनिषद् कहते हैं– *आत्मानं विजानीमहि।* मैं कौन हूँ, यह जानो।

स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि यह जानने के लिए इसकी कक्षाएँ लेनी पड़ेंगी। जैसे बी.ए. या बी.कॉम. करने के लिये पहले प्राइमरी स्कूल में भर्ती होना पड़ता है, सीधे ही कॉलेज नहीं जा सकते, वैसे ही अध्यात्म में भी दर्जे होते हैं। पहली कक्षा है सेवा, दूसरी है प्रेम करना और तीसरा क्लास है केवल लेना ही नहीं, बल्कि देना भी। सेवा, प्रेम और दान–ये तीन हो गये तुम्हारा मैट्रिकुलेशन। अब इसके बाद आई कॉलेज की पढ़ाई–आत्मशुद्धि और ध्यान। उसके बाद अपनी आत्मा का दर्शन होता है, तब जाकर मनुष्य अपने मन को जानता है। जिस दिन मन का पता चल जाता है, उस दिन वह आदमी एटम-बम की तरह बहुत शक्तिशाली हो जाता है।

अपने को जानना दुनिया में सबसे कठिन चीज है। लाखों में शायद कोई एक अपने को जानता है। मनोविज्ञान में मनुष्य अपने विचारों को, अपनी कुण्ठाओं को जानता है, पर मूल मन को नहीं जानता। कमल को तो देख लिया, मगर जिस कीचड़ से कमल निकला उस कीचड़ को नहीं देखा। इस मन के बारे में विचित्र बात यह है कि एकदम कीचड़ की तरह है और इसके तीन अवयव हैं–सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। इन तीन गुणों से मिलकर मन बना है। इसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश–इन पाँच तत्त्वों का संतुलित योगदान है। इसीलिये योगियों और संत-महात्माओं ने जितनी साधनाएँ बताई हैं वे इन तत्त्वों को लेकर ही हैं।

आसन-प्राणायाम सिखाओ, शरीर की बीमारी ठीक हो जायेगी, पर व्यक्तित्व कैसे ठीक हो? उसके लिए है सत्संग। रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने कहा है– *बिनु सतसंग बिबेक न होई, राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।* बिना सत्संग के विवेक नहीं होता। विवेक का मतलब होता है भले-बुरे की

पहचान, खोटे-खरे की पहचान। और यह सब होता है भगवत्कृपा से। सत्संग में थोड़ा समय भी अगर आदमी दे, एक घड़ी, आधी घड़ी या आधी की भी आधी घड़ी तो अनेकों उपाधियाँ दूर होती हैं—'तुलसी संगत साधु की हरे कोटि उपाधि'।

हमारे यहाँ तीन प्रकार की बीमारियाँ मानी जाती हैं—आधि, व्याधि और उपाधि। बुखार हो गया, पैर में दर्द हो गया, यह है व्याधि। मन में चिन्ता हो रही है, नींद नहीं आ रही है, ऐसी मानसिक बीमारी को कहते हैं आधि, और जब पूरा व्यक्तित्व बीमार हो जाता है तो उसको कहते हैं उपाधि। जैसे कोई अपने को कहे, डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर मल्होत्रा, तो नाम सिर्फ मिस्टर मल्होत्रा है जबकि डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट उपाधि है जो नाम के ऊपर जोड़ी जाती है। इसी तरह जब आदमी अपने ऊपर एक उपाधि जोड़ लेता है कि मैं जीव हूँ तो उससे फिर अहंकार का भाव आ जाता है। आदमी मानने लगता है कि मैं विद्वान् हूँ या मैं मूर्ख हूँ या मैं बहुत बड़ा आदमी हूँ या मैं छोटा आदमी हूँ या मैं बदमाश आदमी हूँ या मेरे जैसा दुनिया में कौन है। अपने को कुछ मान लेना, अभिमान करना, इसे उपाधि कहते हैं। यह मेरा बेटा है, यह मेरी बेटी है, यह मेरा पति है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा भाई है, यह मेरा बाप है, यह सब भी उपाधि के अंतर्गत आता है। मनुष्य जब किसी वस्तु को अपने मन में बसा लेता है तो उसे उपाधि कहते हैं। तुम दु:खी नहीं हो, पर तुमने अपने को दु:खी मान लिया। इसी तरह तुमने अपने को स्त्री मान लिया या पुरुष मान लिया, तुमने अपने को महान् मान लिया या अपराधी मान लिया। जो नहीं है, उसको मान लेना अभिमान है, और यही अभिमान उपाधि है। कई लोग अपने नाम के आगे लिखते हैं 'भूतपूर्व मंत्री' या 'भूतपूर्व कलेक्टर'। अरे सीधा नाम लिखो, भूतपूर्व कलेक्टर लिखने की क्या जरूरत है? यह जो पूँछ तुम्हारे साथ चलती है वह है उपाधि।

भारत का भविष्य

हम बचपन में गाँधी जी के सेवाग्राम आश्रम गए थे, फिर वर्धा आश्रम भी गए थे। यह करीब साठ साल पहले की बात है। खैर उस वक्त की तो बात ही दूसरी थी, वह जमाना ही दूसरा था, मगर आशा-निराशा के बीच यह देश तब भी झूल रहा था। और आज भी यह देश आशा और निराशा के बीच झूल रहा है कि आगे क्या होगा। उस वक्त की मूल समस्या थी विदेशी सरकार, कैसे

उसको हटाएँ। कोई बोलता बन्दूक से हटाओ, कोई कहता छापामारी युद्ध करो तो कोई कहता था, 'अरे काहे को हटाओगे? टाई-कोट पहनकर, बाबू साहब बनकर अंग्रेजों से हाथ मिला लो।' लेकिन जो रास्ता गाँधी जी ने दिया वह हिन्दुस्तान की जनता को बहुत पसंद आया, क्योंकि वह रास्ता राजनीति पर नहीं, यथार्थ पर आधारित था। उस समय कपड़े मैनचेस्टर से बनकर आते थे, लाखों-करोड़ों लोग अपनी जीविका से वंचित हो चुके थे। ऐसी हालत में उन्होंने घर-घर में चर्खा चलवा दिया। चर्खे के माध्यम से गाँधी जी घर-घर पहुँच गये। उन्होंने लोगों को बताया कि हाँ, यह एक रास्ता है। लोगों के मन में आशा की किरण जागी, और अच्छे-अच्छे लोग, चाहे नेहरु हों या सरदार पटेल, सब उनके पीछे चले। सबको लगा कि यह आदमी ठीक बात बोलता है। हालाँकि सुभाषचन्द्र बोस जैसे क्रांतिकारियों को भी यह देश मानता है, मगर व्यावहारिक रास्ता दिया गाँधी जी ने।

हमें याद है कि उस वक्त भी 'इस देश का क्या होगा' यही प्रश्न उठता था। शायद आज भी लोगों के मन में यही प्रश्न उठ रहा है। मगर आज समस्या का कारण विदेशी सरकार नहीं है। कारण कुछ और है। हम यह नहीं कहेंगे कि वह भ्रष्टाचार है, यह शब्द तो बहुत मामूली है, शरीर में फोड़े की तरह है। फोड़ा हो गया तो इलाज करने से क्या फायदा, तुम्हारे खून में ही खराबी है। दवा करोगे तो यही होगा कि फोड़ा एक जगह से हटकर दूसरी जगह पर हो जायेगा। मूल गलती कहीं और है।

एक बार जब स्वामी रामतीर्थ जापान गये थे तो वहाँ के राजभवन में ठहरे। वहाँ उन्होंने देखा कि मेज पर चिनार के छोटे-छोटे पेड़ रखे हैं, करीब एक-डेढ फीट ऊँचे। उनके मेज़बान ने जब पूछा कि आप क्या देख रहे हैं, तो वे बोले, 'चिनार का पेड़ देख रहा हूँ। बहुत छोटा है, लगता है आप ने अभी लगाया है।' मेज़बान ने कहा, 'नहीं, ढाई सौ साल पुराना है।' 'ढाई सौ साल! हमारे यहाँ तो दस साल में चालीस फीट ऊँचे हो जाते हैं।' 'यह बोन्साई है।' 'बोन्साई क्या होता है?' 'इनकी तीन जड़ें काट देते हैं नीचे से। पेड़ जीता रहता है, मगर बढ़ता नहीं।'

बस यही हाल है यहाँ के लोगों का। आचरण, व्यक्तित्व और विचार–ये मनुष्य जीवन की तीन जड़ें होती हैं, जिनमें दो जड़ें दिखाई देती हैं, एक दिखाई नहीं देती। मनुष्य का आचार और उसका व्यक्तित्व दिखाई देता है, उसके विचार दिखाई नहीं देते। ये तीनों जड़ें काट दी गई हैं।

तो क्या करना चाहिये?

गमले से निकलो और कहीं जंगली धरती पर बैठ जाओ हमलोगों की तरह। हमलोग जंगली धरती के हैं। 'मैं जंगल का फूल रहा हूँ, उपवन का उल्लास नहीं हूँ।' मैं बगीचे का फूल नहीं, जंगल का फूल हूँ। अगर मैं बगीचे का फूल रहता तो शायद तहसीलदार बनता या सब-इंस्पेक्टर। जंगल का फूल रहा तो जो बनना चाहा सो बना। कभी लेखक बनना चाहा तो लेखक बन गया, कभी विचार हुआ दुनियाभर में घूमो और जितने भी लाइब्रेरी-म्यूज़ियम है उन्हें जाकर देखो, वह भी कर लिया। कभी सोचा कि सभी देशों की संस्कृति देखकर आते हैं तो वह भी कर लिया। अन्त में सोचा, सब छोड़ दो और भगवान का भजन करो, वह भी कर रहा हूँ। तुम लोग चाहते हुए भी यह सब नहीं कर पाओगे क्योंकि बगीचे के फूल हो, उपवन के उल्लास हो।

आचरण, व्यक्तित्व और विचार—ये तीन चीजें मनुष्य को परिभाषित करती हैं। गुलाम उसी को कहते हैं जिसकी इन तीन चीजों में आज़ादी नहीं। हमारे आचरण, हमारे व्यक्तित्व और हमारे विचारों में एक गुलामी जैसी है। स्वतंत्र चिन्तन कहीं नहीं हो पा रहा है। आज कोई ऐसा माई का लाल नहीं जो कहे शादी नहीं करूँगा। कोई मेरे जैसा अलबेला निकल गया तो सोच लिया। आज कोई सोच ही नहीं सकता कि शादी के बिना भी जिन्दगी बीत सकती है। कोई सोच ही नहीं सकता कि शादी के बिना बच्चा हो सकता है। अरे, बिना शादी के बाल-बच्चे नहीं हो सकते क्या? जब हजारों चेले हों तो कोई बच्चा पैदा क्यों करेगा? ताकि बुढ़ापे में सेवा करे और मरने के बाद आग दे? ये सब चेले मेरी सेवा भी कर रहे हैं और जहाँ तक आग देने का सवाल है, मैं तो जमीन में सोने वाला हूँ। कहने का मतलब यह कि लोगों का सोच-विचार का अपना कोई तरीका नहीं है। वही पुरानी परिपाटी चल रही है। दुनिया बदल चुकी है, जरूरतें बदल चुकी हैं, रहन-सहन के सब तरीके बदल चुके हैं, बोलचाल की भाषा बदल चुकी है, मगर आदमी के सोचने का तरीका, जो जीवन की असली चीज है, बिल्कुल वैसे का वैसा है, पुराना और घिसा-पिटा। वही कुण्ठा, वही ग्लानि, वही सामाजिक कुरीतियाँ, हमलोग इनसे बाहर नहीं आ पाते। पता नहीं किस तरह हम जी रहे हैं।

हम भ्रष्टाचार वगैरह की बात कभी नहीं करते हैं। ईमानदारी और बेईमानी नाम की कोई चीज नहीं होती, हम तुम लोगों को साफ-साफ बोल रहे हैं। और वह जायेगी भी नहीं, वह ऐसी ही रहेगी जैसे आज है, क्योंकि यहाँ कोई

प्रणाली नहीं है, कोई सिस्टम नहीं है। आखिर अमेरिका में बसी कम्पनी हॉन्गकॉन्ग में व्यापार नहीं चलाती क्या? अरबों के बैंक चलते हैं न? बोईंग कम्पनी का दफ्तर है वॉशिंगटन में और कारखाना है चीन में। क्या आमने-सामने रहकर ही ईमानदारी हो सकती है? नहीं, बेईमानी इसलिए होती है क्योंकि सिस्टम नहीं है। तुम्हारे यहाँ क्या सिस्टम है? नौकर को छः सौ रुपये देते हो, बेईमानी नहीं करेगा तो क्या करेगा। उसको छः हजार रुपये दो, उसके दिमाग में बेईमानी आ ही नहीं सकती। वह तो सोच भी नहीं सकेगा कि छः हजार रुपये कब और कैसे खर्च करे। बाहर के देश वाले भरपूर पैसा देते हैं, इसलिए कभी बेईमानी का सवाल नहीं उठता।

लोग कहते हैं कि भ्रष्टाचार कानून से सुधरेगा या उपदेशों से सुधरेगा या दण्ड से सुधरेगा, मगर कुछ सुधरने वाला नहीं है। रावण पैदा होते ही जाएगा। सबसे जरूरी चीज यह कि नागरिकों के व्यक्तित्व में, राष्ट्र के सामाजिक चिन्तन में परिवर्तन की आवश्यकता है। यूरोप के देशों में भी सामाजिक चिन्तन हमारे जैसा ही था। दौ सौ साल पहले की बात बोल रहा हूँ। मगर इसके बाद बड़े अच्छे-अच्छे सामाजिक चिन्तक और शिक्षाविद् आए। फ्रॉयड जैसे चिन्तकों ने तो ईसाई धर्म को धराशायी कर दिया। फ्रॉयड बड़ा मनोवैज्ञानिक था जिसने अपने चिंतन को विज्ञान की तरह रखा। ईसाई धर्म की जितनी भी मान्यताएँ थी, सबको उसने गलत ठहराया। आज पाश्चात्य सभ्यता फ्रॉयड की विचारधारा से प्रभावित है। वहाँ के सामाजिक नियम और कानून उससे प्रभावित हैं। वैसे ही विज्ञान का चिन्तन आया। कितने वैज्ञानिकों को पादरियों ने कटवाया, तुम तो जानते हो। दुनिया गोल है, पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है–गैलिलियो जैसे वैज्ञानिकों की कहानियाँ तो तुम सब को मालूम हैं। उन लोगों ने ईसाई धर्म और बाईबिल की सब मान्यताओं को धराशायी किया। आज यूरोप में कोई ईसाई थोड़े ही हैं? वहाँ ईसाई धर्म नाम मात्र का है। हमलोग तो वहाँ जाते हैं, सीधे-सीधे सबको गेरू पहनाते हैं, माला देते हैं, सर मुड़वाते हैं।

कोई भी सभ्यता स्वतंत्र चिंतन के बिना आगे बढ़ नहीं सकती। इस स्वतंत्र चिन्तन में पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, शिक्षा, विद्या, सब चीजें आनी चाहिये। परिवर्तन जीवन का सिद्धान्त है। जाड़ा आता है तो स्वेटर पहनते हो, गर्मी आती है तो स्वेटर उतार देते हो। जब ऋतु के साथ कपड़े बदलते हो, तो परिस्थितियों के साथ समाज को क्यों नहीं बदलते हो?

–17 नवम्बर 1997



अध्याय 14

स्वामीजी, क्या ईश्वर की भी भावनाएँ होती हैं?

ईश्वर की तुम्हारी यह अवधारणा ईसाई मत पर आधारित है। पर दर्शन की दृष्टि से देखें तो ईश्वर हर घटना, हर चीज का द्रष्टा मात्र है। वह करता कुछ नहीं है। प्रकृति ही सब कुछ करती है। अब रही बात भावनाओं की। भावनाएँ मनुष्य की होती हैं। मनुष्य प्रकृति के नियमों के अंतर्गत रहता है, इसलिये वह भावनाओं को अनुभव और अभिव्यक्त करता है। अगर तुम प्रकृति के परे चले जाओगे तो तुम भावनाओं के ऊपर उठ जाओगे।

भावना आखिर क्या है? प्रेम-घृणा, सुख-दुःख, भय-हर्ष, ये सब भावनाएँ हैं। भावना एक तरह की प्रतिक्रिया है। अगर कुछ अच्छा होता है तो तुम्हें अच्छा लगता है, अगर बुरा होता है तो बुरा लगता है। अगर सुखद घटना होती है तो तुम सुखी होते हो, अगर दुर्घटना होती है तो तुम दुःखी हो जाते हो। अलग-अलग परिस्थितियों की वजह से तुम अलग-अलग भावनाएँ महसूस करते हो। अब यह भावना महसूस कौन करता है? 'मैं' अनुभव करता हूँ। मैं कौन हूँ? मन। मेरे मन को ही अच्छा या बुरा महसूस होता है। अगर मैं पागल हो जाऊँ या मुझे बेहोशी की दवा दे दी जाए या मैं मंदमति हूँ तो मुझे कुछ भी महसूस नहीं होगा। भावना मनुष्य के मानसिक स्तर पर निर्भर करती है। भावनाओं की अनेक श्रेणियाँ होती हैं। अन्य चीजें भी होती हैं समाज और संस्कृति के मुताबिक। भारतीय लोग खुशी-खुशी गोमूत्र पान करते हैं, लेकिन यूरोपवासी उसे पसन्द नहीं करेंगे। उनकी भावनाएँ हमसे भिन्न हैं। वे मदिरा-पान करेंगे और खुश होंगे, पर भारतवासी कहेंगे यह बुरा है। इस तरह भावना तुम्हारी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप होगी। ईश्वर से उसका कोई वास्ता नहीं है।

क्या भगवान को भी अकेलापन महसूस होता है?

हाँ, क्यों नहीं! उपनिषदों में कहा गया है, भगवान एक है और उसके समान दूसरा कोई नहीं है। वह अमर है और बाकी सब की मृत्यु होती है। वह शुद्ध है, अन्य सब कुछ अशुद्ध है। वह निराकार है, शेष जगत् का रूप और आकार है। उसका कोई नाम नहीं, जबकि बाकी सब चीजों का कोई-न-कोई नाम है। उसके जैसा दूसरा कोई नहीं है, इसलिए वह अकेला है। अगर तुम भी हम सब लोगों से भिन्न होगे तो अकेला महसूस करोगे।

लेकिन कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। ईश्वर में एक से अनेक होने का संकल्प है। किन्तु वैसा होगा नहीं, वह मात्र संकल्प है। संकल्प को साकार करने के लिए वह प्रकृति के साथ, माया के साथ संयुक्त होता है। फिर वह ईसाइयों का गॉड, मुसलमानों का अल्लाह और हिन्दुओं का भगवान हो जाता है, जिसकी वे गिरजाघर, मस्जिद और मन्दिर में पूजा-आराधना करते हैं। वह ईश्वर जिसका चिन्तन किया जा सके, जिसका अनुभव किया जा सके, जिसकी हम आराधना कर सकें, वह ईश्वर जो हमें प्यार करता है, जिसकी भावनाएँ हैं, तुम जिस ईश्वर की बात कर रहे थे, यही वह ईश्वर है। किन्तु जब ईश्वर का प्रकृति से संयोग होता है, तब उसमें प्रकृति के गुण और धर्म आ जाते हैं। जब वह अवतार लेता है तो वह प्रकृति के गुणों के अधीन हो जाता है। वह माँ के गर्भ से जन्म लेता है, बच्चों जैसी लीला करता है। उसे भूख लगती है, उसे नींद आती है। वह जवान होता है, उसका विवाह होता है, बच्चे होते हैं। वह प्रेम भी करता है और क्रोध भी। अंत में उसकी मृत्यु भी होती है। परन्तु फिर भी वह भगवान है। जब वह प्रकृति के संसर्ग में आता है तो उसे प्रकृति के समस्त धर्मों को स्वीकार करना पड़ता है।

उदाहरण के लिए, बिजली एक प्रकार की ऊर्जा है। जब वह बल्ब में प्रवेश करती है तो उसे बल्ब के समस्त गुण-धर्मों को धारण करना पड़ता है। जब बिजली फ्रिज में प्रविष्ट होती है तो उसे फ्रिज के सभी धर्मों का पालन करना पड़ता है। जब वह हीटर में आती है तो उसे हीटर के धर्मों का अनुसरण करना पड़ता है। किन्तु शक्ति स्वयं निर्गुण है। वह न आग है न ही पानी है, बिल्कुल तटस्थ है दोनों से। वह विशुद्ध ऊर्जा है। जब वह बल्ब, फ्रिज या हीटर के सम्पर्क में आती है तो उसके समस्त गुणों को धारण कर लेती है।

इसी तरह जब भगवान प्रकृति के सम्पर्क में आते हैं तो उनके आचरण को लीला कहा जाता है। बिल्कुल अभिनेता की तरह। कोई मराठी अभिनेता

बंगाली नाटक में भूमिका करता है तो वह बंगाली व्यक्ति जैसा आचरण करता है, पर वह बंगाली नहीं है। जब वह बंगाली की भूमिका में आता है तो वह बंगाली धर्मों का पालन करता है, बंगाली की बोली, वेश-भूषा, व्यवहार-शैली, सब कुछ। यही दशा भगवान की है। उस परम सत्ता को तुम पिता कहो, कोई बात नहीं, माता कहो, कोई परवाह नहीं, भाई कहो, कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारे लिए वह पिता है, मेरे लिए वह माँ है। वह तुम्हारे धर्म के अधीन होकर तुम्हारा बाप बन जाता है, मेरे धर्म के अधीन होकर वह मेरी माँ बन जाता है, लेकिन भगवान सबके परे है। अब ऐसे भगवान के बारे में चर्चा करने का क्या फायदा जिसके विषय में हम जान ही नहीं सकते?

हमलोग उस भगवान के विषय में चर्चा करते हैं जो हमारे बहुत समीप है। तुम्हारे जैसे लोग, जो भगवान के भक्त हैं, उन्हें बड़ी कठिनाई होती है निर्गुण ईश्वर का चिंतन करने में। वे प्रार्थना करते हैं, 'हे भगवान, तुम कौन हो? मैं तुम्हें कैसे अनुभव करूँ, मैं कैसे तुम्हारा गुणगान करूँ, तुम हो कहाँ?' तब भगवान के मन में संकल्प आता है, 'मुझे जन्म लेना चाहिए।' वह सिर्फ हमारे लिए जन्म लेता है। जो भगवान अज्ञेय है, उसके बारे में क्या बोलोगे? इसलिए तुम्हारी प्रार्थना पर, मेरी प्रार्थना पर, सबकी प्रार्थना पर भगवान ने कहा, 'मुझे जन्म लेना है।' इस प्रकार वे कभी इज़रायल में पैदा हुए, तो कभी भारत में। भारत में वे कई बार पैदा हुए क्योंकि यहाँ के लोग बड़े अच्छे हैं। कभी वे क्षत्रिय योद्धा के रूप में पैदा हुए, कभी बांसुरी बजानेवाले, नृत्य करने वाले गोपाल के रूप में पैदा हुए, कभी बुद्ध जैसे उपदेशक के रूप में पैदा हुए। जब वे मानव-स्वरूप में अवतरित हुए तुमने उन्हें पसन्द किया, उनके लिए प्रार्थनाएँ-कविताएँ लिखीं, गीत गाये, उनकी तस्वीरें बनाईं, उनकी दया, करुणा, सौन्दर्य और शौर्य का गुणगान किया। वे हमारे लिए ही पैदा हुए थे, ताकि हम उनके समीप आ सकें, उनकी भक्ति पा सकें।

मेरी बात समझ में आ रही है न? भगवान किसी को मारने के लिए पैदा नहीं होते, बल्कि अपने भक्तों के हित के लिए उत्पन्न होते हैं। हर भक्त अपने भगवान को देखना चाहता है, उनको अनुभव करना चाहता है, पर उसे कठिनाई होती है। इसलिए उसे थोड़ी सहायता प्रदान करनी पड़ती है। कोई बच्चा नदी में डूबने लगे तो तुम क्या करोगे? नदी में कूदकर उसे बचाओगे न? इसी तरह ईश्वर में कोई भावना नहीं है, लेकिन जब वह भक्तों की

सहायता के लिए ईसा मसीह या राम या कृष्ण या बुद्ध के रूप में अवतरित होता है, तो उसके भीतर भावना पैदा होती है।

आपने एक बार बताया था कि अखाड़ों का निर्माण मुगलों के समय हुआ था, विरोध के लिए। उस समय तो वह काम था उनका, लेकिन अभी जो अखाड़े हैं उनका क्या कार्यक्रम है?

अखाड़े संन्यासियों के पुराने गढ़ रहे हैं। प्राचीन काल से देखा गया कि कुछ लोग ऐसे होते हैं जो वैवाहिक बन्धन में नहीं पड़ना चाहते। यदि कभी समाज के दबाव में आकर शादी कर भी लेते हैं, तो उससे बाहर भी निकल आते हैं। हर व्यक्ति विवाह के योग्य नहीं होता या विवाह करना नहीं चाहता। वास्तव में विवाह कोई लोकतान्त्रिक पद्धति है भी नहीं। यह व्यक्ति की पसन्द-नापसन्द पर आधारित नहीं है। यह समाज की पसन्द है। समाज ने एक परम्परा कायम कर दी है जिसमें तुम्हें मजबूरन शादी करनी ही है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। यदि लोगों को छूट दी जाए तो शायद दुनिया की आधी आबादी शादी करे ही नहीं।

हमारे पूर्वजों ने इस बात को समझा और एक ऐसी व्यवस्था बनाई कि पचीस वर्ष के पूर्व विवाह नहीं होना चाहिए। तब तक व्यक्ति परिपक्व नहीं होता, निर्णय लेने में सक्षम नहीं होता। जैसे चुनाव में हर कोई मतदान नहीं कर सकता, वैसे विवाह भी एक तरह का मताधिकार है। पचीस वर्ष के बाद व्यक्ति विवाह करने या न करने का मत बना सकता है। वह अपनी भावनात्मक वृत्तियों को समझ सकता है, अपनी यौन आवश्यकताओं को समझ सकता है, अपनी असुरक्षा की गहराई का अनुमान लगा सकता है और तब वह निर्णय ले सकता है कि उसे विवाह करना चाहिए या नहीं।

जो निर्णय करता है कि शादी करनी है, वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है और जो यह निर्णय करता है कि उसे विवाह-बन्धन में नहीं फंसना है, वह अखाड़े में चला जाता है। अखाड़ा एक संस्था होती है, वहाँ आचार्य होते हैं। भिन्न-भिन्न लोगों के लिए हमारे यहाँ विविध प्रकार के अखाड़े हैं। बुद्धिजीवियों और शिक्षित लोगों के लिए निरंजनी अखाड़ा है। वकील, प्रोफेसर, लेक्चरर जैसे लोग इस अखाड़ा में चले जाते हैं। जो मजबूत किस्म के हैं, चिलम चढ़ाने और लड़ने-भिड़नेवाले है, वे जूना अखाड़ा जाते हैं और नागा बाबा बन जाते हैं। फिर निर्मली अखाड़ा है जहाँ अन्य परम्पराओं,

जैसे सिख आदि से लोग आते हैं। इस प्रकार कई अखाड़े हैं और वे पुराने जमाने से चले आ रहे हैं। उनमें समय-समय पर बदलाव भी होता रहा है।

अयोध्या के राम मन्दिर की देखभाल के लिए उन दिनों अखाड़े बने थे। आज जिस राम जन्मभूमि पर विवाद चल रहा है, उसका नियन्त्रण भी अखाड़े के अधीन था। अकबर के शासन-काल में वहाँ अखाड़े थे। उस समय उनकी कोई राजनैतिक भूमिका नहीं थी। मुगलों के आने से बहुत पहले, सम्राट् अशोक के बाद से ही भारत पर निरन्तर आक्रमण हुआ करते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन काल बड़ा शक्तिशाली था। उसने सभी यूनानियों को भारत से खदेड़ दिया था। लेकिन सम्राट् अशोक के बाद देश बड़ा कमजोर हो गया, क्योंकि अशोक ने एकतरफा निरस्त्रीकरण घोषित कर दिया। उसने सैन्यबल कम कर दिया, अस्त्र-शस्त्र का निर्माण बन्द कर दिया। बाजार में जहर की बिक्री बन्द कर दी गयी। अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण में जो भी साम्रगी उपयोग में लायी जाती है उसका कारोबार बन्द कर दिया गया। इस प्रकार देश कमजोर हो गया और विदेशियों के आक्रमण निरन्तर होते रहे। बाढ़ की तरह आक्रमणों का दौर शुरू हो गया। बहुत-से लोग देश से बाहर भागने लगे। उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब और सीमान्त प्रदेश से लोग भागने लगे। यूरोप में जितने जिप्सी हैं सभी भारतीय हैं, जो आठ-नौ सौ साल पहले भारत से पलायन कर गये। ये हजारों में नहीं, लाखों की संख्या में गये। रास्ते में अफगानिस्तान के उत्तरी हिस्से में उनका कत्ले-आम हुआ तो उस जगह का नाम ही पड़ गया हिन्दूकुश। कुश का ममतलब होता है कत्ल, खुदकुशी शब्द तो जानते हो न। वहाँ हिन्दुओं की सामूहिक हत्या हुई, इसलिए उस पर्वत का नाम हो गया हिन्दूकुश।

इस तरह लाखों लोग देश छोड़कर भागे। पंजाब के लोग पश्चिम की ओर भागे। उत्तर प्रदेश के लोग नेपाल की ओर भागे। नेपाल भारत से पूरी तरह अलग हो गया अपनी रक्षा के लिए। नेपाल तक पहुँचना बड़ा दुर्गम है। ब्राह्मण लोग थोक-के-थोक दक्षिण भारत चले गये। वहाँ के सभी अय्यर, आयंगार वगैरह उत्तर भारत से आए हैं, जो अपने साथ संस्कृत और वेद ले गये। यह घटना सात-आठ सौ साल पहले तक होती रही और अकबर के काल तक चली। अकबर ने इस पर रोक लगायी। वह उदारमना शासक था। उसकी हिन्दू रानी थी, वह सभी हिन्दू उत्सव और पर्व मनाता था। उसके शासन काल में भारत शान्त हो गया था।

जहाँगीर के समय भी शान्ति रही। शाहजहाँ के समय भी सब ठीक-ठाक चला। शाहजहाँ के आते-आते अंग्रेज और पुर्तगाली भारत में इधर-उधर दिखाई पड़ने लगे थे, लेकिन उन्हें व्यापार की अनुमति या सुविधा नहीं दी गयी थी। अकबर ने साफ इंकार कर दिया, जहाँगीर ने बिल्कुल मना कर दिया, पर शाहजहाँ ने थोड़ी ढील दी। उन्हें यहाँ-वहाँ थोड़ा व्यापार करने की छूट मिल गयी। आगे की कहानी तुम जानते हो।

मुगल काल में जब लोग लाखों की संख्या में भाग रहे थे तो अखाड़े सक्रिय हो गये। समस्त संन्यासी समुदाय एकजुट हो गया। सामान्यत: हमलोग ऐसे किसी आंदोलन में भाग नहीं लेते जिसमें हिंसा हो। संन्यासी तो देश के धर्म शास्त्रों के, आध्यात्मिक परम्परा के रखवाले होते हैं। वे राजनीति और लड़ाई-झगड़े में नहीं पड़ते। लेकिन कभी-कभी ऐसा समय भी आता है जब धर्म की खातिर उन्हें संघर्ष करना पड़ता है। उस समय दो विशाल आंदोलनों का लगभग एक साथ उदय हुआ। पहला था अखाड़ों का विरोध और संघर्ष। लेकिन उनका विरोध मंदिरों और अन्य धार्मिक तथा आध्यात्मिक स्थानों की रक्षा तक सीमित था। और कहीं नहीं विरोध हुआ, राजा-महाराजाओं की रक्षा के लिए भी नहीं।

इसके साथ जो दूसरा विशाल आंदोलन शुरू हुआ वह था भक्ति आंदोलन। तुलसीदास, मीराबाई, सहजो बाई, चरणदास, कबीरदास, सूरदास और केशवदास जैसे साधुओं का भक्ति आंदोलन। हुमायूँ के शासन काल से लेकर शाहजहाँ के समय तक यह भक्ति-आन्दोलन बड़े जोर पर था। उस समय वैष्णव और शैव परम्परा के अनेक महान् संत और भक्त कवि हुए। दक्षिण में अलवार और नयनार संत हुए जो मधुर स्वर में भक्ति-गीत गाते थे। भक्ति-संतों की वाणी में ऐसी मिठास, ऐसा जादू था कि हिन्दू और मुस्लिम दोनों सम्प्रदाय प्रभावित हुए।

अव्वल अल्लाह नूर उपाया, कुदरत के सब बन्दे।
एक नूर से सब जग उपजा, कौन भले कौन मन्दे॥

इस तरह अखाड़ा आन्दोलन और भक्ति आन्दोलन की शुरुआत लगभग एक साथ हुई और दोनों अच्छे से चल रहे थे। फिर औरंगजेब का शासन काल आया। वह एक कट्टर, धर्मान्ध शासक था, जिसके समय फिर से हिन्दुओं का पलायन प्रारम्भ हो गया। उस समय फिर शिवाजी जैसे नायकों

का अभ्युदय हुआ। वह इतिहास तुम लोग जानते हो। अखाड़ों का प्रयोजन लड़ना नहीं है। नहीं, संन्यासियों की भूमिका स्पष्ट है। उनका काम धर्म और सनातन परम्परा की रक्षा करना है।

आजकल अखाड़ों के क्रियाकलाप किस प्रकार के हैं?

अखाड़े सम्पूर्ण भारत में फैले हुए हैं। उनके साधु-संन्यासी सारे देश में मौजूद हैं। आज संन्यासियों के तीन मुख्य वैदिक सम्प्रदाय हैं—दशनामी, उदासी और वैरागी। दशनामी संन्यासियों का वर्तमान संगठन आदि शंकराचार्य के सुधार के आधार पर खड़ा है। उन्होंने ही संन्यास परम्परा को पुनर्व्यवस्थित करके दशनामी सम्प्रदाय खड़ा किया। गुरुनानक जी के पुत्र, श्रीचन्द जी ने उदासी सम्प्रदाय की स्थापना की और वैरागी सम्प्रदाय की स्थापना स्वामी रामानन्द जी द्वारा अयोध्या में की गयी। वही रामानन्द जी जो संत कबीर के गुरु थे।



स्वामी दत्तात्रेय ने भी तो कोई संन्यास परम्परा चलाई थी न?

उन्होंने एक अखाड़े का निर्माण किया था जो बाद में जूना अखाड़ा के नाम से विख्यात हुआ। दत्तात्रेय शंकराचार्य से भी पहले हुए थे। अखाड़ा शुरू करने के बाद वे धर्म, सम्प्रदाय या जाति का ख्याल किये बिना सभी को संन्यास की दीक्षा दिया करते थे। जो भी भगवान के रास्ते पर जाना चाहता, उसे दीक्षा देते थे। यह नहीं देखते थे कि वह सदाचारी है या दुराचारी, व्यभिचारी, चोर, डाकू है। कुछ नहीं देखते थे, सबको दीक्षा देते थे। उनका अखाड़ा जूना कहलाता है, जूना माने पुराना।

ब्रिटिश काल में ये अखाड़े सक्रिय थे या निष्क्रिय?

ब्रिटिश लोगों का इस देश के प्रति, इस देश की अर्थ-व्यवस्था या राजनीति के प्रति जो भी दृष्टिकोण रहा हो, लेकिन धर्म के प्रति उनका रवैया बुरा नहीं था। अंग्रेजों की दृष्टि धर्म-निरपेक्ष थी। वे संन्यासियों, अखाड़ों और मन्दिरों के मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करते थे। ब्रिटिश लोग इस मामले में सतर्क और सावधान रहे। आपको मालूम है न, अंग्रेज लोग बड़े व्यवहार-कुशल होते हैं। उन्हें सिर्फ रुपये-पैसे से मतलब है, तुम्हारे धर्म-कर्म की वे चिन्ता नहीं करते।

स्वामीजी, लोगों का कहना है कि ब्रिटिश लोग बड़े-बड़े मन्दिरों से स्वर्णाभूषण, हीरे, जवाहरात सब उठा कर ले गये। क्या यह सही है?

नहीं, ऐसी बात नहीं है। अगर कुछ लिया भी होगा तो उसे सरकारी खजाने में डाल दिया होगा। ऐसी चीजें उन्होंने राजा-महाराजाओं, सेठ-नवाबों से ली हैं।

जिनको तुम ब्रिटिश कहते हो वे वास्तव में ऐंग्लो-सैक्सन जाति के लोग हैं। वे इंग्लैण्ड के मूल निवासी नहीं हैं। वे बाहर से इंग्लैण्ड आये और विजयी होकर वहीं बस गये। आज के समय इन्हीं लोगों को पढ़ने, लिखने, अध्ययन करने का सबसे शौक है। अंग्रेजी भाषा को इन्होंने बहुत समृद्ध बनाया है। ऐसा कोई विषय नहीं है जिस पर अंग्रेजी भाषा में कुछ लिखा न गया हो। धर्म-शास्त्र और मोक्ष-शास्त्र से लेकर काम-शास्त्र तक पर अंग्रेजी में पुस्तकें उपलब्ध हैं। मुझे एक बार यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कनफटा योगियों पर भी अंग्रेजी में किताब है। यह गोरखनाथ जी का पंथ है। उनपर भी शोध हुआ था और एक बहुत अच्छी ऐतिहासिक पुस्तक तैयार की गई।

लगभग पचास साल पहले मुझे 15 पौंड वजन की एक मोटी किताब देखने को मिली। यह उस समय प्रकाशित हुई थी जिस समय वॉरेन हेस्टिंग्स भारत का वायसराय था। किताब का नाम था 'Hindu Pantheon' जिसे हिन्दी में 'हिन्दू देव सभा' कहा जा सकता है। उस ग्रन्थ में सभी देवी-देवताओं का उल्लेख है। गणपति से शुरू करके ब्रह्मा, विष्णु, शिव, रुद्र, लक्ष्मी, हनुमान, चण्डी आदि सब पर शोधपरक लेख हैं। यह ग्रन्थ 18वीं सदी में लकड़ी के टाइप में इंग्लैण्ड में छपा था। किसी ने वह ग्रन्थ स्वामी शिवानन्द जी को भेंट किया था। मैं आश्रम का लाइब्रेरियन था, इसलिए मुझे वह भारी पुस्तक ढोनी पड़ी। उस पुस्तक में सभी सम्प्रदायों द्वारा धारण किये जानेवाले तिलकों की भी चर्चा है। इतिहास के किस काल में किस सम्प्रदाय द्वारा कौन-सा तिलक लगाया जाता था, ऐसी बातों तक का उल्लेख है।

मेरे कहने का अभिप्राय यही है कि ये एंग्लो-सेक्सन लोग विद्याविनोदी होती हैं। वे विद्याध्ययन, शोध और लेखन, सब में रुचि रखते हैं, साथ ही वे पैसे कमाना चाहते हैं। वे बनिया हैं, शुद्ध बनिया। पैसे के लिए कुछ भी कर सकते हैं। लेकिन जहाँ तक धर्म का प्रश्न है, वे इस मामले में खुले विचार रखते हैं। इसलिए तुम देखोगे कि चाहे स्वामी शिवानंद जी का आश्रम हो या विवेकानन्द जी का या नित्यानंद जी का या महेश योगी का, उनमें अधिकांश संन्यासी ऐंग्लो-सेक्सन समुदाय के लोग ही हैं। वे आराम से कपड़ा बदल लेते हैं, चुटिया भी रख लेते हैं, जनेऊ भी रख लेते हैं, राम-नाम भी बोलने लगते हैं, उन्हें कोई परेशानी नहीं होती। इसलिए अंग्रेजों के समय एक-आध अफसर ने धर्म के मामले में कोई गलती की होगी तो की होगी, पर वह सरकार की नीति नहीं थी।

सच तो यह है कि महारानी विक्टोरिया ने योग सीखने के लिए भारत से योग शिक्षक बुलाया था। वह योगाभ्यास करती थी। अब तुम ही बताओ कि दुनिया में किस जाति ने योग को अधिकतम सहयोग और संरक्षण प्रदान किया है? वह कौन-सी जगह है जहाँ संन्यासियों को अपने काम में बिल्कुल कठिनाई नहीं हुई है, जहाँ बच्चे संन्यास ग्रहण करना चाहें तो घर में किसी को आपत्ति नहीं होती, जहाँ पासपोर्ट में लोग अपना नया आध्यात्मिक नाम डालना चाहें तो उसे तुरंत स्वीकार कर लिया जाता है? है कोई ऐसा देश?

ऐंग्लो-सेक्सन देशों में तुम यह सब कर सकते हो। अमेरिका में कर सकते हो, ऑस्ट्रेलिया में कर सकते हो, इंग्लैण्ड में कर सकते हो। लेकिन

ग्रीस, स्पेन या फ्रांस में नहीं कर सकते। इंग्लैण्ड में अगर मैं किसी को स्वामी प्रज्ञामूर्ति नाम देता हूँ तो वह सीधे न्यायालय में जाकर इस आशय का शपथ-पत्र देगी, नाम में परिवर्तन करेगी और पासपोर्ट कार्यालय में जाकर अपने पुराने नाम की जगह स्वामी प्रज्ञामूर्ति नाम चढ़वा लेगी। यह दूसरे देशों में संभव नहीं होगा। इसलिए यह विश्वास करना मुश्किल है कि ब्रिटिश शासन में ऐसी धांधली हुई है। हाँ, किसी ने कुछ किया होगा, आखिर अफसरों में बदमाश सभी जगह रहते हैं।

ब्रिटिश भारतीयों को होली-दीवाली जैसे त्यौहार खुलकर मनाने देते थे क्या?

देखो, स्पेन में कोई हिन्दू मन्दिर नहीं है, ग्रीस में हिन्दू मन्दिर नहीं है, इटली में हिन्दू मन्दिर नहीं है, फ्रांस में भी हिन्दू मन्दिर नहीं है, लेकिन इंग्लैण्ड में हैं, अमेरिका में हैं और ऑस्ट्रेलिया में भी हिन्दू मन्दिर हैं। ऐसी बात नहीं कि आज के दौर में ही बन पाए। इन देशों में लोग जब चाहते मन्दिर बना सकते थे। पहले लोग आर्थिक कारणों की वजह से नहीं बना पाते थे। गरीब लोग नौकरी करने इंग्लैण्ड गये थे, बेचारे मन्दिर क्या बनवाते। अब वे मालदार हो गये हैं तो धड़ल्ले से बनवा रहे हैं। इंग्लैण्ड में स्वामीनारायण मन्दिर बना है। उस मन्दिर का क्या कहना, शायद सबसे भव्य और सुंदर मंदिर है वह! पूरा संगमरमर का बना है, किसी दूसरी चीज का इस्तेमाल नहीं किया गया है। अमेरिका के होनोलूलू शहर में शिवजी और नंदी की विशाल पाषाण मूर्तियाँ हैं। भारत में बनवाकर विशेष हवाई जहाज में ले गए और वहाँ स्थापित किया। मैंने देखा है, नंदी की इतनी बड़ी मूर्ति जो मदुरै जैसी जगहों में ही देखने को मिलती है। अमेरिका के वृंदावन में हरे राम हरे कृष्ण वालों का बहुत बड़ा कृष्ण मंदिर है। वहाँ अमेरिकन लड़कियाँ साड़ी पहनकर, लंबी वाली चुटिया बनाकर दिनभर फर्श साफ करती हैं। मेरा मतलब यह है कि किसी भी राष्ट्र में उसके नागरिकों को किसी भी धर्म का अनुसरण करने की आजादी होनी चाहिए।

स्पेन में इस तरह के मंदिर नहीं हैं, क्योंकि स्पेन के संविधान में किसी दूसरे धर्म को अपना धार्मिक स्थान बनाने की अनुमति नहीं थी। अभी पाँच साल पहले उन्होंने इस कानून में संशोधन किया है। पर वहाँ कोई मालदार हिन्दू तो है नहीं जो बना सके। आखिर मंदिर बनवाने के लिए तो बहुत मालदार आदमी चाहिए न, करोड़ों रुपये देने हैं उसको।

पर स्पेन, ग्रीस और फ्रांस जैसे देशों में भी तो आपके आश्रम काफी समय से चल रहे हैं?

मंदिर और आश्रम में अंतर होता है। मंदिर एक धार्मिक स्थान है जबकि आश्रम नहीं है। आश्रम भले ही धार्मिक लोगों का, हिन्दुओं का हो सकता है, पर वह धार्मिक स्थान की श्रेणी में नहीं आता। आज दुनिया में कहीं पर भी आश्रम धार्मिक स्थान के रूप में नहीं गिना जाता। मंदिर को धार्मिक स्थान के रूप में गिनते हैं।

उन देशों में भी लोग पूजा-पाठ करते हैं, पर अपने घर में निजी ढंग से करते हैं। मंदिर का मतलब एक ऐसा सार्वजनिक स्थान जहाँ सब लोग आ-जा सकते हैं, किसी पार्क, लाइब्रेरी, रेलवे स्टेशन या एयरपोर्ट की तरह। मंदिर निजी नहीं होता। निजी मंदिर को ठाकुरबाड़ी कहते हैं। वह तो अपने घर-आँगन में बना सकते हो। मंदिर उसे कहते हैं जहाँ आम जनता नियम के मुताबिक दो-चार-छः घण्टे जा सकती है।

कई देशों की पूर्व में आपसी दुश्मनी रही है, जैसे ग्रीस और तुर्की, या भारत और पाकिस्तान। क्या आपको लगता है कि अगर इन देशों की सरकारें, राजनेता और मीडिया अड़चन न पैदा करें तो दोनों देशों के लोग आपसी भाईचारे और अमन-चैन के साथ रह सकते हैं? अन्यथा फिर दूसरा क्या उपाय है?

यह बड़ी मुश्किल चीज है। प्रकृति की एक स्वाभाविक प्रक्रिया के अनुसार सब होता है। इस स्वाभाविक प्रक्रिया के अंतर्गत कुछ पीढ़ियों के बाद दोनों देश आपस में दोस्त भी हो सकते हैं। एक छोटा-सा उदाहरण देता हूँ। दो हजार वर्षों तक चीन और जापान के बीच कोई राजनैतिक सम्बन्ध नहीं था। फिर बौद्ध-धर्म चीन पहुँचा। आचार्य दीपंकर के माध्यम से बौद्ध-धर्म तिब्बत पहुँचा और आचार्य पद्मसंभव के द्वारा वह चीन पहुँचा। वहाँ पहुँचकर बौद्ध-धर्म दावानल की भाँति फैलने लगा।

चीन से बुद्ध की शिक्षाएँ जापान भी पहुँची। जापानी लोग शिन्तो नामक एक जनजातीय धर्म को मानते थे। जब उन्हें बौद्ध धर्म की जानकारी मिली और उन्होंने बौद्ध साहित्य का अध्ययन किया तो वे इससे बड़े प्रभावित हुए। तब वे कुछ लोगों को अधिक जानकारी लाने के लिए सीधे भारत भेजना चाहते थे। पहले एक सौदागर भारत आने को तैयार हुआ। किसी कारणवश वह नहीं जा

सका। फिर उन्होंने शिन्तो समुदाय के किसी संन्यासी को भेजना चाहा। वह भी नहीं जा सका। जापानियों ने कई प्रयास किये, पर वे भारत पहुँच नहीं पाये। जब सीधे भारत से सम्पर्क नहीं हो सका तो जापानियों ने चीन के साथ सम्बन्धों में सुधार किया। चीन से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किया गया। तब जापानी विद्वान् चीन गये, संस्कृत का अध्ययन किया, फिर त्रिपिटक और अन्य बौद्ध साहित्य जापान ले आये। इस प्रकार कालान्तर में दुश्मन भी दोस्त बन जाते हैं।

आज भारत और पाकिस्तान के आपसी सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं। संभव है कि अगली पीढ़ी यह सोचे कि लड़ाई-झगड़े से क्या फायदा, भारत का बाजार तो बहुत बड़ा है, सौ करोड़ की आबादी जो है। क्यों न हम आपसी व्यापार बढ़ाएँ? इस तरह की सोच से सब कुछ सरल हो जाएगा।

यह जीवन का व्यावहारिक दर्शन है और ऐन मौके पर यही दो देशों के आपसी सम्बन्धों का निणार्यक कारक बनता है। आखिर अंग्रेजों के साथ हमलोगों ने कितनी लड़ाई, कितना संघर्ष किया। गाँधीजी का संघर्ष असहयोग और अहिंसा पर आधारित था तो दूसरी ओर सुभाषचन्द्र बोस ने उनके खिलाफ आज़ाद हिन्द फौज ही खड़ी कर दी। गोली-बन्दूक से लड़ाई की। लेकिन आज हम दोनों अच्छे दोस्त बन गये है, क्योंकि हम जानते हैं कि उनके पास बहुत अच्छी टेकनोलॉजी है और वे लोग जानते हैं कि भारत में बहुत बड़ा बाजार उपलब्ध है। आज की पीढ़ी इसी तरह सोचती है। एक बार नयी पीढ़ी की आर्थिक और धार्मिक विचारधारा बदल जाए तो देशों के सम्बन्ध बिल्कुल बदल जाएँगे।

तुर्की और ग्रीस के बीच साइप्रस को लेकर समस्या है। वहाँ के आर्चबिशप मेरे अच्छे मित्र थे, हमलोगों का पत्र-व्यवहार चलता था। जब उन्हें वह जगह छोड़कर इंग्लैण्ड जाना पड़ा तो उन्होंने मुझे पत्र लिखकर सूचित किया कि यहाँ से पलायन करना पड़ रहा है। ये राजनैतिक और धार्मिक समस्याएँ इसलिए हैं कि लोगों की सोच सही नहीं है, उनका दृष्टिकोण गलत है। वे मात्र भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टि से सोचते हैं। लेकिन कुछ चीजें भूगोल और इतिहास से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। जीवन की अपनी यथार्थताएँ हैं। रुपया-पैसा, व्यवसाय-व्यापार, बच्चे, उनका स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा, इन सब चीजों के बारे में लोग नहीं सोचते। 'मैं मारा जाऊँगा तो भी कोई परवाह नहीं,' ऐसा सोचकर वे युद्ध में जाते हैं, घर में पत्नी विधवा हो जाती है, बच्चे अनाथ हो जाते हैं।

नहीं, हमें इस प्रकार नहीं सोचना चाहिए। 'मैं व्यर्थ में क्यों मारा जाऊँ, नहीं तो मेरे बच्चे भूखे मर सकते हैं,' जीवन के प्रति हमें एक व्यावहारिक दृष्टिकोण रखना चाहिए। ऐसे में परस्पर मित्रता का भाव अपने आप विकसित होगा। हाल में भारत और चीन के सम्बन्ध भी अच्छे नहीं रहे। लेकिन अब दोनों देशों के बीच मित्रता बढ़ रही है, क्योंकि दोनों अपनी-अपनी मुश्किलों के प्रति सजग हो रहे हैं। चीन को अपनी सीमाओं की रक्षा पर करोड़ों डॉलर खर्च करने पड़ रहे हैं। और भारत को भी उस नो-मैन्स-लैण्ड की रक्षा पर करोड़ों-अरबों रुपये व्यय करने पड़ रहे हैं जिससे कुछ भी प्राप्त नहीं होता। न कोई राजस्व प्राप्त होता है, न कोई फसल या अनाज ही वहाँ से मिलता है। तो फिर राष्ट्रीय धन का अपव्यय क्यों? भारत ने इसको महसूस किया। चीन को भी कुछ ऐसा ही लगा। फिर दोनों के आपसी सम्बन्ध थोड़े से सुधरे। आखिर हमें तो व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना होगा न?

राजनीति राजनेताओं या मीडिया पर निर्भर नहीं है। वह जनता के व्यावहारिक दृष्टिकोण के अनुसार चलती है। हमलोग निर्णय करते हैं कि क्या होना चाहिए, मीडिया नहीं। यदि इस देश के लोग, यदि ग्रीस के लोग, यदि तुर्की के लोग सोचने लग जाएँ कि हम कैसी बेवकूफी कर रहे हैं, अपने देश की सेना और सीमाओं की सुरक्षा पर कितना अनावश्यक खर्चा कर रहे हैं, तो इतिहास की धारा बदलेगी। यदि वे सोचने लग जायें कि हथियारों पर पैसे खर्च कर हम गरीब हो रहे हैं और हथियार बेचने वाले देश अमीर हो रहे हैं तो बात दूसरी हो जायेगी। हथियार बेचनेवाले देश समझते हैं कि ग्रीस और तुर्की के लोग मूर्ख-गँवार हैं जो हमारे हथियार खरीद कर आपस में लड़-मर रहे हैं। हमारा क्या जाता है, वे लड़ते रहें, हम उन्हें और हथियार बेचते रहेंगे।

इराक में वे यही तो कर रहे हैं। फ्रांस, इंग्लैण्ड और अमेरिका ने पहले इराक को अस्त्र-शस्त्रों से लैस किया और बाद में उसे ध्वस्त कर दिया। इस महाविनाश के दस-पन्द्रह साल बाद वे फिर से इराक को शस्त्रों से लैस कर देंगे। पन्द्रह साल में डबल सेल हो जाएगा। हम यह खेल जानते हैं, इसलिए वे हमें धोखा नहीं दे सकते। लेकिन बाकी दुनिया में तो उनका यह खेल चलता रहेगा।

वैसे दुनिया में लड़ाई कभी बन्द नहीं होगी। संघर्षों से ही दुनिया में नयी सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ आयी हैं। यदि सब संघर्ष बन्द हो जाए

और सर्वत्र शान्ति व्याप्त हो जाए तो मानवता की गति, उसका विकास रुक जायेगा। घर्षण से ही गति उत्पन्न होती है। इंजिन का चक्का तभी चालू होता है जब घर्षण होता है। इसलिए संघर्ष होना चाहिए। तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण से बनी प्रकृति संघर्ष के लिए बाध्य करेगी।

सर्वत्र शांति स्थापित हो जाए तो जीवन नीरस और बेलौस नहीं हो जायेगा?

इसीलिए ऐसा कभी नहीं होगा। अगर बारह महीने गर्मी ही गर्मी हो या बसन्त ऋतु ही बनी रहे तो अच्छा नहीं है। बसन्त ऋतु भी हो, ग्रीष्म ऋतु भी हो, वर्षा ऋतु भी हो, काफी गर्मी पड़े, काफी वर्षा हो, सर्दी आये और अच्छी ठण्ढ पड़े तो बढ़िया है। परिवर्तन आवश्यक है। कभी तुम स्वेटर डाल लेते हो, कभी कमीज ही काफी होती है। जीवन में विविधता होनी चाहिए।

यह संसार संघर्ष से ही ऊँचा उठा है। जीवन में संघर्ष नहीं होगा तो उन्नति नहीं होगी। जिन जातियों में संघर्ष हुआ है वे जातियाँ ऊपर उठी हैं और जिनमें संघर्ष नहीं हुआ वे ऊपर नहीं उठ पाईं। उनको दो रोटी सुबह मिल जाए, दो रोटी शाम को मिल जाय, इसके आगे उनकी उन्नति पर पूर्ण विराम लग जाएगा। संघर्ष से ही समाज और व्यक्ति की उन्नति होती है । लड़ाइयाँ तो होंगी ही, दुनिया एक तत्त्व से तो बनी नहीं है, तीन तत्त्वों से बनी है। जब दुनिया तीन तत्त्वों से बनी हुई है तो यहाँ कभी तमोगुण का राज होगा, तो कभी रजोगुण का राज होगा। सतोगुणी लोग भी अपने यहाँ हैं और रजोगुणी लोग भी हैं। लोगों की बात छोड़ो, तुम्हारे अंदर भी तो तीनों गुण है। तुम देखो अपने अंदर, तीनों गुणों के मेल से मन बना है। पाँच तत्त्वों के योग से शरीर बना है।

आज पाकिस्तान-हिन्दुस्तान में झगड़ा होता है, पर एक दिन सब निपट जायेगा। पहले वैष्णव लोगों और शैव लोगों में बहुत झगड़ा होता था। लड़ाइयाँ होती थीं, सिर कटते थे, साम्राज्य बिखर जाते थे। शैवों और वैष्णवों में इतना झगड़ा था। उसकी झलक तुम पुराणों में पाओगे। मगर अभी एक ही मंदिर में शिवजी और रामजी दोनों बैठे हैं, कोई झगड़ा नहीं है। पहले था कि वैष्णव मंदिरों में शैव को जाने ही नहीं देते थे, कहते थे, 'अरे हट! अछूत आदमी है।' पर अब सब ठीक है। अब वैष्णव लोग प्याज-लहसून भी खा लेते हैं, कुछ फर्क नहीं पड़ता। मेरे कहने का मतलब यही है

कि लड़ाई-झगड़ा प्रकृति का एक नियम है और जब तक यह लड़ाई-झगड़ा है तब तक मनुष्य उन्नति करता है। जिस दिन लड़ाई-झगड़े दुनिया में समाप्त हो जायेंगे, सारी दुनिया खत्म हो जायेगी।

जहाँ तक जातियों, सम्प्रदायों और देशों का सवाल है, बहुत-सी पुरानी बातें अब सच नहीं हैं। पिछले दो हजार वर्षों में लोगों के बीच इतना मिश्रण हुआ है कि कौन किस जाति या देश का है, यह कहना कठिन है। तुमको बिहार में यूनानी लहू मिलेगा और यूनान में बिहारी लहू। लगभग दो हजार साल पहले सिकन्दर भारत आया और लड़ाई जीतने के बाद यूनान लौट गया, पर उसके लोग यहाँ रह गये। उसके सेनापति पटना तक आये और वे पराजित हो गये। हिन्दू राजाओं ने यूनानी लड़कियों से शादी कर ली। स्वाभाविक है कि बच्चों में यूनानी खून आयेगा। चन्द्रगुप्त मौर्य ने यूनानी सेनापति सेल्यूकस की बेटी, हेलेना से शादी कर ली। अशोक, अजातशत्रु और संघमित्रा जैसे उनके वंशजों में यूनानी खून का मिश्रण हो गया।

उसके बाद ब्रिटिश लोग आये। कई ब्रिटिश लड़कियों ने भारतीयों से और कई भारतीय लड़कियों ने ब्रिटिश लोगों से वैवाहिक सम्बन्ध कर लिया। वे ऐंग्लो-इण्डियन कहलाये। इसलिए अब कौन द्रविड़ है और कौन ऐंग्लो-सेक्सन है और कौन स्लाव है, यह कहना मुश्किल है। भारत से लाखों की संख्या में जिप्सी लोग रूस, रोमेनिया, बलगेरिया, फ्रांस और चेकोस्लोवाकिया चले गए। उनसे कितने ही बच्चे पैदा हुए, अब कौन कह सकता है कि जिप्सियों के बच्चे सभी जिप्सी ही हैं। कई बच्चे जिप्सी बाप और बुलगेरियन या रोमेनियन माँ से पैदा हुए हैं। ऐसी बातें हमेशा होती रहती हैं। तुम इसको रोक नहीं सकते। जातियों के बीच इतना मिश्रण हुआ है कि हम सभी लोग वर्णसंकर हो गये हैं।

इसलिए अब यह कहने का कोई फायदा नहीं है कि हमलोग आर्य हैं और तुमलोग सेमेटिक हो या इण्डो-यूरोपियन हो। वही बात राष्ट्रों के साथ है। आखिर राष्ट्र क्या है? राष्ट्र वह भू-भाग है जिसपर तुमने कब्जा कर लिया है क्योंकि तुम शक्तिशाली हो। अगर हम भारत का पुराना मानचित्र देखें तो बिल्कुल अलग दिखेगा। मेरे बचपन में बर्मा भारत का हिस्सा हुआ करता था। मैंने स्कूल के दिनों में बर्मा का भूगोल और इतिहास पढ़ा था। वह भारत का अंग था। बहुत दिन पहले इण्डोनेशिया, थाइलैण्ड, बाली, सुमात्रा, कम्बोडिया, ये सब भारत के उपनिवेश थे। कम्बोडिया जाकर देखो, वहाँ

अंगोरवाट नाम का एक विशाल हिन्दू मन्दिर है। उसमें ब्रह्मा, विष्णु और अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। छोटी-मोटी नहीं, विशालकाय। अभी भारत सरकार उस मंदिर की मरम्मत के लिए वहाँ खर्चा कर रही है।

पश्चिम में भारत का साम्राज्य अफ़गानिस्तान तक था। आज भी तुम अगर वहाँ के ग्रामीण क्षेत्रों में जाओ तो बौद्ध विहारों और स्तूपों के खण्डहर मिलते हैं। वहाँ बौद्ध लोग बहुत थे, गाँव-गाँव में इतना कुछ देखा कि पहले मैंने सोचा अपनी डायरी में लिखूँ। फिर लगा कि कितना लिखूँ, सब जगह तो वही है।

स्वामीजी, हमलोगों ने इटली के एक संग्रहालय में कुण्डलिनी और सर्पों की प्रस्तर मूर्तियाँ देखी थीं।

रोमन काल के पूर्व और रोमन साम्राज्य-काल में भी रोम के उत्तर और पूर्व में कुछ अन्य जनजातियाँ थीं, जिन्हें रोमन लोग बारबेरियन कहा करते थे। वे लोग शिव की पूजा करते थे। इसलिए वहाँ शिवलिंग मिले हैं। वैटिकन के संग्रहालय में ऐसा ही एक शिवलिंग रखा हुआ है।

खैर यह तो धर्म का विस्तार हुआ, पर मेरे कहने का यह मतलब है कि जिस भी भू-भाग पर तुम्हारा कब्जा है, वही तुम्हारे राष्ट्र की परिभाषा है। यह परिभाषा तब तक मान्य है जब तक तुम शक्तिशाली हो। किसी समय तुम्हारे राष्ट्र की सीमाएँ अफ़गानिस्तान, बर्मा और थाइलैण्ड तक थी। जब तुम्हारे हाथों से ये निकल गये तो तुम्हारा राष्ट्र सिकुड़कर छोटा हो गया। बाद में तुम्हारी शक्ति और कम हुई तो पाकिस्तान और बंगलादेश कट कर अलग हो गये। अब पाकिस्तान और बंगलादेश पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। तुम नहीं कह सकते कि ये तुम्हारे राष्ट्र के अंश हैं। हाँ, यह दावा जरूर कर सकते हो कि इन देशों का धर्म भले ही अलग-अलग हो, पर इनका लहू, इनकी भाषा और संस्कृति एक ही है। दिल्ली या पंजाब के पंजाबी और पाकिस्तान के पंजाबी में क्या फर्क है? वे भी पराठे खाते हैं और दही की लस्सी पीते हैं। वही पंजाबी सेहरा यहाँ और वहाँ पहनते हैं। काश्मीर के पश्तूनों और बलूचिस्तान के पश्तूनों में क्या फर्क है? पश्तो भाषा ही तो बोलते हैं दोनों। संस्कृति में अंतर नहीं है, संगीत भी वही है, नाच भी वही है। मर्दों के बोलने का लहज़ा और औरतों के बोलने का लहज़ा बिल्कुल वही है। यहाँ तक कि अंध-विश्वास भी वही हैं।

भारत और पाकिस्तान के लोगों में आखिर क्या अन्तर है? भौगोलिक अन्तर के सिवा और कोई अंतर है क्या? दोनों देशों का संगीत वही है। तीन ताल, कहरवा, चौताल, सभी लय-ताल एक ही हैं। गाने की शैली, आलाप और गमक सब एक जैसे हैं। खाना बनाने का तरीका एक जैसा है। मसाला वही, नाम वही, खाने के तौर-तरीके वही। ऐसा नहीं है क्या? भाषा भी वही है, शारीरिक बनावट वही है, सनक और नखरा भी वही है, फिर अन्तर कहाँ है? जायदाद के बटवारे में। दो भाइयों ने अपनी जायदाद का बटवारा कर लिया है।

छोटका भाई और बड़का भाई, दोनों आपस में नहीं लड़ते क्या? हमलोग न्यारे हो गए हैं। जबरदस्ती न्यारा होना पड़ा तो आपस में झगड़ा करते हैं, पर कुछ दिन में खोपड़ी ठीक हो जाएगी। मजहब तो केवल एक मुद्दा है, झगड़े का असली कारण नहीं है। हम आपस में इसलिए नहीं लड़ रहे कि वे मुसलमान हैं और हम हिन्दू, बल्कि इसलिए लड़ रहे हैं कि हम भाई थे, कुछ मुद्दों की वजह से जमीन-जायदाद का बटवारा हो गया और हम अलग हो गए। दो भाइयों का जमीन-जायदाद को लेकर झगड़ा होता है न, कि यह खेत बंजर है, मुझे वह खेत मिलना चाहिए था। वही झगड़ा चल रहा है। धर्म का झगड़ा कुछ नहीं है और असल में देखा जाए तो इस्लाम और वेदान्त में कोई अंतर है ही नहीं। न वेदान्त मूर्ति-पूजा में विश्वास रखता है, न इस्लाम। इस्लाम का पहला मंत्र है– *ला इलाहा इल्लल्लाह*, एक अल्लाह के सिवा दूसरा और कोई नहीं। यहाँ संस्कृत में हम वही चीज कहते हैं– *एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।* इस्लाम में हाथ-पैर धोये बिना इबादत नहीं होती और हमलोग भी हाथ-पैर धोकर ही मंदिर में जाते हैं। दार्शनिक दृष्टि से वेदान्त और इस्लाम समान हैं।

हर धर्म के दो पक्ष होते हैं, एक है कर्मकाण्ड और दूसरा है दर्शन। इस्लाम का दर्शन सूफी कहलाता है। सूफी शब्द यूनानी शब्द सोफिया से आया है जिसका अर्थ होता है विद्या। सूफी का मतलब हुआ ब्रह्मविद्या। सूफी संत क्या कहते हैं? ईश्वर मेरा प्रियतम है और मैं उसका प्रेमी। ईश्वर और मेरे बीच प्रेम का सम्बन्ध है, जबकि मेरे और तुम्हारे बीच वासना का सम्बन्ध है। प्रेम को सूफी लोग इश्क कहते हैं। असली चीज से प्रेम करने को इश्क-हकीकी कहते हैं, और अस्थायी, असत् चीजों से प्रेम इश्क-मजाजी कहलाता है। तुम अपने बच्चों से, अपने परिवार से, अपने धन से, अपनी जमीन-जायदाद से या अपने शरीर से जो प्रेम करते हो वह इश्क-मजाजी है।

सूफी लोग कहते हैं कि इश्क-हकीकी ही सच्चा मार्ग है। इश्क-हकीकी और भक्ति एक ही चीज है। इसी तरह इश्क-मजाजी और वासना भी एक ही चीज है। सूफियों की यह जो शिक्षा है, यही वेदान्त की भी शिक्षा है। वेदान्त की अभिव्यक्ति भक्ति के रूप में होती है और सूफियों में भी भक्ति होती है। सूफियों की संगीत में रुचि रहती है, हम कीर्तन में विश्वास करते हैं। सूफियों की अपनी एक अलग सूफी नृत्य शैली होती है, और हमारे यहाँ भरत-नाट्यम् और कथकली जैसे नृत्य हैं। नृत्य एक दिव्य कर्म है। राधा, कृष्ण, चैतन्य महाप्रभु, मीरा—सभी नृत्य किया करते थे।

अद्वैत दर्शन अपनी जगह ठीक है, लेकिन फिर कुछ प्रश्न उठते हैं। माना कि मैं ईश्वर से प्रेम करता हूँ, पर मेरा और ईश्वर का क्या सम्बन्ध है? यह सारी सृष्टि किसने बनाई? तब अद्वैत के अलावा एक अन्य दर्शन की आवश्यकता पड़ती है जो तीन चीजों में विश्वास रखता है—ईश्वर, जीव और सृष्टि। इसी दर्शन को संस्कृत में त्रैत कहा जाता है, और इसी को ईसाई धर्म का दर्शन कह सकते हो। ईसाई धर्म में मुख्य चीज है प्रार्थना और यही चीज मीराबाई, तुलसी या चैतन्य महाप्रभु की भक्ति में भी दिखलाई देती है।

एक और बात ध्यान देने योग्य है। किसी भी धर्म का विकास समाज की राजनैतिक परिस्थिति और भौगोलिक वातावरण से प्रभावित होता है। जहाँ एक ओर वेदान्त का उद्गम हिमालय के वनाच्छादित पर्वतों से उतरती नदियों के किनारे हुआ, ईसाई धर्म का जन्म गर्म, जलविहीन रेगिस्तान में हुआ। स्वाभाविक है कि कुछ फर्क तो पड़ेगा। सब चीज एक समान नहीं हो सकती। तुम कुल्लु-मनाली चले जाओ, वहाँ के पर्वतों में अलग तरह की प्रेरणा मिलेगी। यमुनोत्री-गंगोत्री चले जाओ, वहाँ नदी किनारे बैठ जाओ, अलग अनुभव होगा। किसी रेगिस्तान में जाओ जहाँ एक पेड़ तक नहीं दिखता, वहाँ का अनुभव अलग होगा। लोग भी अलग होंगे। ईसा मसीह के समय राजनैतिक परिस्थिति भी ठीक नहीं थी। यहूदी लोग रोमन साम्राज्य के गुलाम थे, बहुत गरीब थे। ईसा मसीह खुद रोमन सरकार के निशाने में आ गए।

दूसरी ओर वेदों और वेदान्त का जन्म ऐसे देश में हुआ जहाँ के ऋषि-मनीषी स्वतंत्र चिंतन कर सकते थे। उन्हें किसी चीज की चिंता नहीं थी। स्वाभाविक है कि ऐसे स्वतंत्र चिंतकों का दर्शन और शिक्षण अलग होगा।

जब ईसा मसीह शिक्षा देते तो करुणा, प्रेम, मैत्री, सहनशीलता और क्षमा जैसे विषयों के बारे में बोलते। क्यों? इसलिए कि उस समय के समाज में इन सद्‌गुणों का अभाव था। लोग क्रूर थे, इसलिए उन्हें करुणा की शिक्षा देना जरूरी था। एक संत उसी चीज की शिक्षा देता है जो समाज में नहीं होती। ऐसा था वह समाज जिसमें ईसा मसीह ने अपना जीवन बिताया।

लेकिन वे इस समाज में बहुत समय नहीं रहे। जब उन्होंने इस्रायल छोड़ा तो पहले रोम पहुँचे, फिर वहाँ से इराक गए और क्रूसारोहण के तेरह-चौदह साल बाद अपनी माँ के साथ काश्मीर आए। उनकी मृत्यु सूली पर नहीं हुई थी। चर्च भले ही इस बात को न माने, लेकिन अनेक विद्वानों ने इस बारे में किताबें लिखी हैं। जब मैं इटली में था तो कई लोग मुझे ये किताबें दिया करते थे।

ईसाई लोग तो क्रूसारोहण के पश्चात् ईसा मसीह के पुनरुज्जीवन में विश्वास करते हैं। तो क्या वह सत्य नहीं?

इसके लिए तुम्हें पुनरुज्जीवन की सही परिभाषा देनी होगी। आखिर यह एक शब्द ही तो है। जब मेरी मृत्यु होगी तो भारत में लोग यह नहीं कहेंगे कि स्वामीजी मर गए, बल्कि कहेंगे कि महासमाधि में लीन हो गए। इसी तरह उस समय के लोगों ने यह नहीं कहा कि सूली पर लटकाए जाने के बाद भी ईसा मसीह स्वस्थ हो गए, भले-चंगे हो गए, बल्कि कहा कि पुनर्जीवित हो गए। अभिप्राय इतना ही है कि सूली पर उनकी मृत्यु नहीं हुई, उन्हें वहाँ से ले जाया गया और उनका इलाज हुआ। कुछ समय वे इटली के रोम नगर में रहे, फिर इराक के कुर नामक स्थान में रहे और फिर तेरह-चौदह साल बाद अपमी माँ मरियम के साथ काश्मीर पहुँचे। श्रीनगर में उनकी मज़ार है, मैंने उसे देखा है। उनकी माँ की मृत्यु भी काश्मीर में हुई और वहाँ मरियम की मज़ार है। भारत के लोग इन्हीं तथ्यों को मानते हैं। जब तक मजहब मजहब है, चाहे वह यहूदी हो या ईसाई या इस्लाम, वह हमारा है, पर जब वह मजहब मजहब के अलावा कुछ और हो जाता है तो फिर हम उसे स्वीकार नहीं करते। मजहब को मजहब की तरह रहना चाहिये, उसे नेताओं के साथ साँठ-गाँठ नहीं करनी चाहिये। मजहब एक पवित्र चीज है, दूध की तरह, थोड़ी-सी खटाई पड़ने से फट जाता है।

– 18 नवम्बर 1997



अध्याय 15

घर में संन्यास का भाव लेकर रहना बहुत कठिन है। मेरे से पूछो तो संन्यास में भी संन्यास का भाव लेकर जीना बहुत कठिन है, क्योंकि संन्यस्त होने पर भी, घर-परिवार छोड़ने पर भी, संन्यास की अनासक्ति और संन्यासी की मस्ती वाला जीवन, उसका बेफिक्री वाला जो स्वभाव होता है, वह संन्यासियों से भी नहीं हो पा रहा है। सांस्कृतिक दबाव, सामाजिक दबाव और अपने मन के दबाव से सब दबे हुए हैं। इसलिए कहता हूँ कि संन्यास आश्रम बहुत कठिन है।

फिर गृहस्थ आश्रम तो और भी मुश्किल है। आर्थिक दबाव है, सामाजिक दबाव है, सांस्कृतिक दबाव है। इनकी हालत है अर्जुन के जैसी। लड़ाई करने के लिए आ गए मैदान में, पर अब कहते हैं नहीं लड़ेंगे। लड़ाई के मैदान में मामा को देखा, काका को देखा, भतीजे को देखा, भाँजे को देखा तो बोले कि नहीं लड़ेंगे।

स्वयं भगवान ने कहा, तो भी सीधे स्वीकार नहीं किया न?

देखो जी, कुत्ते की पूँछ कभी सीधी नहीं होती। उसे सीधा करने का एक ही उपाय है कि उसे काट डाला जाए। आपको एक चीज समझ में नहीं आ रही है। यह सारा संसार तो भगवान ने पैदा किया है। आप ही लोग कहते हैं, उनकी खोपड़ी में क्या घुसा कि उन्होंने एक अपूर्ण आदमी पैदा कर दिया। जब यह माना जाता है कि भगवान ने यह संसार पैदा किया, हर जीव-जन्तु को पैदा किया तो उसमें शिवजी के गणों की तरह सबको पैदा करके रखा है। किसी के पेट में मुँह है, किसी के नाक की जगह आँख है, किसी के आँख की जगह पर नाक है, समझ में आया न? माँ ने बच्चे को पैदा किया, मगर

माँ जब बच्चे को समझाती है वह समझता नहीं है। हालाँकि बच्चा माँ से बहुत प्यार करता है, पर माँ की बात नहीं मानता, क्योंकि जब माँ ने बच्चे को पैदा किया तो उसमें एक अलग व्यक्तित्व आ गया। शरीर तो माँ ने दिया, बीज बाप ने दिया, मगर व्यक्तित्व तो दूसरा है, उसमें दूसरी आत्मा घुसी हुई है। वह तो अपने को अभिव्यक्त करेगी ही।

उसी तरह से भगवान ने जब सृष्टि पैदा की तो हर चीज में कोई गुण भर दिया। हर व्यक्ति उस गुण के अनुसार व्यवहार करता है। अर्जुन में उन्होंने क्षात्र-धर्म के गुण भरे, और कर्ण में उन्होंने एक नाजायज औलाद की ग्लानि भरी। उसके मन में वह ग्लानि हमेशा ही बनी रही, आत्महीनता के रूप में। दुर्योधन में महत्त्वाकांक्षाएँ भरी कि कब मैं युवराज बनूँगा, कब मैं राजा बनूँगा। साँप में जहर भर दिया, तुलसी में अमृत भर दिया और गंगा जल में पवित्रता भर दी। जो भी चीज जिस वक्त भी सृष्टि में पैदा हुई, उसमें तीन गुणों का विभाजन हुआ–तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण के समझाने पर भी अर्जुन को समझ में नहीं आया।

अर्जुन विषादग्रस्त हो गया था। विषाद क्यों होता है? तनाव की वजह से। तनाव क्यों होता है? जब कुछ समझ में नहीं आता तो तनाव होता है। अब अर्जुन को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। धनुष-तलवार लेकर खड़ा है, एकदम स्वर्ग में जाने के लिए तैयार है। बस आक्रमण की आज्ञा की देर है, और यहाँ भीष्म पितामह को देखता है, द्रोणाचार्य को देखता है, दुर्योधन और दु:शासन को देखता है, भाई-भतीजे को देखता है। बाप रे! अपने घरवालों को मारना पड़ेगा क्या? उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि मारूँ या न मारूँ। तनाव हो गया और तनाव होने के बाद उसको नर्वस ब्रेकडाउन हो गया। गीता में लिखा है–

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक्चैव परिदह्यते॥2.47॥

वह बोलता है, 'मेरा शरीर काँप रहा है, मेरे बाल खड़े हो रहे हैं, मेरे हाथ से धनुष सरक रहा है, मेरी चमड़ी जल रही है, मुझसे खड़ा हुआ नहीं जा रहा है।' चिकित्सा शास्त्र में ये सब नर्वस ब्रेकडाउन के लक्षण हैं न! तो ऐसी अवस्था में अर्जुन को श्रीकृष्ण की बात कैसे समझ में आती? बिजली तो है पर बल्ब फ्यूज़ है तो जलेगा कैसे?

एक बात और समझ लो। निर्गुण, निराकार परमेश्वर, जो अकर्ता और अभोक्ता हैं, जब किसी वजह से वे शरीर धारण करते हैं तो प्रकृति के आश्रित हो जाते हैं, स्वतंत्र नहीं रहते। प्रकृति के सारे गुण उनमें आ जाते हैं। आप बहुत भले घर के वृद्ध सज्जन हैं, पर कल हम एक फिल्म में आपको काम दे देते हैं एक जोकर का, तो जिस वक्त आप जोकर का रोल स्वीकार करोगे, उसके सारे धर्म आप पर लागू हो जायेंगे। आपको जोकर की तरह ही अभिनय करना होगा, आप यह नहीं बोल सकते कि मैं तो बहुत बड़ा आदमी हूँ, मैं मज़ाक नहीं करूँगा। परमात्मा सत्-चित्-आनंद हैं, आपने किताबों में जो पढ़ा है, वह सब सही है, मगर जिस वक्त भगवान प्रकृति के आश्रित होते हैं, उन पर जन्म-मरण, यश-अपयश, दुःख-सुख, हर्ष-विषाद, सीमा-मर्यादा जैसे प्रकृति के सारे धर्म लागू हो जाते हैं। यह नियम है। *प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया*—अपनी प्रकृति को अधिष्ठान बनाकर मैं पैदा होता हूँ।

यह बात हमेशा याद रखो कि परमेश्वर अकर्ता हैं, न दुःख के कर्ता हैं, न सुख के। कर्ता है प्रकृति। प्रकृति कौन है? भगवान की माया को प्रकृति कहते हैं। उसे आद्या और जननी जैसे अनेक नामों से पुकारते हैं। यह प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। जैसे पानी में हाइड्रोजन और ऑक्सीजन, ये दो तत्त्व होते हैं, वैसे प्रकृति में तीन तत्त्व होते हैं—सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। मजे की बात यह है कि जो प्रकृति सृष्टि का निर्माण करती है, जन्म-मरण का निर्धारण करती है, तुम्हें सुख-दुःख देती है, तुम्हें हँसाती है, रुलाती है, वह स्वयं जड़ है। जैसे बिजली का बल्ब जड़ है, चेतन नहीं है, पर प्रकाश वही देता है। बल्ब निकाल दो, प्रकाश खत्म।

प्रकृति पुरुष के संयोग से चेतना ग्रहण करती है। प्रकृति स्वयं कुछ नहीं कर सकती, उसे ईश्वर को अधिष्ठान बनाना पड़ता है। इस तरह पुरुष-प्रकृति के योग से यह सृष्टि पैदा होती है। अब इसमें भगवान कृष्ण के कहने पर भी यदि अर्जुन को समझ में नहीं आया तो बकायदा ठीक था, क्योंकि श्रीकृष्ण भी स्वयं सीमित थे, माया में बँधे हुए थे। असल में देखा जाए तो वे फिल्म की स्क्रिप्ट के मुताबिक चल रहे थे। प्रकृति ने उनके लिए एक स्क्रिप्ट लिखा था कि तुम ऐसा करोगे, वैसा करोगे, और वही वे कर रहे थे। इसको कहते हैं लीला। लीला का मतलब होता है अभिनय।

भगवद् भजन

भगवान का नाम लेने में मन नहीं भी लगे तो भी भजन करना चाहिए। रामायण पढ़ने में मन न भी लगे तो भी पढ़ना चाहिए। भूख न होने पर भी लोग रसगुल्ला नहीं खाते हैं क्या? *भाव-कुभाव अनख आलसहुँ, नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ*—भाव से बोलो या कुभाव से बोलो, आलस्य से बोलो या लापरवाही से बोलो, गलती से भी बोलो, पर भगवान का नाम मंगल ही करता है, जैसे गेहूँ का बीज उल्टा-सीधा कैसे भी गिरे, वह सीधा ही पैदा होता है।

वैसे भगवान का नाम लेने में कौन जबरदस्ती करता है, चाहो तो मत लो, लेकिन भगवान का नाम लेने में लोग जितना आलस्य करते हैं, नाम न लेने के जितने बहाने ढूँढते हैं, उतने बहाने और किसी चीज में नहीं ढूँढते हैं। हमें तो भाई साकार जमता ही नहीं—यह एक बहाना हुआ। राम तो ऐतिहासिक व्यक्ति थे, भगवान नहीं थे—दूसरा बहाना। कृष्ण जी का चरित्र ठीक नहीं था—तीसरा बहाना। शिवजी तो अनाड़ियों के भगवान थे—एक और बहाना। ऐसे बहुत-से बहाने लोगों को मिल जाते हैं, पर वे यह नहीं देखते कि जिन फिल्मी सितारों के पीछे वे दीवाने हैं, उनका चरित्र कैसा है। यह सब कोई नहीं देखता, केवल भगवान के नाम में सब तरह के प्रश्न उठने लगते हैं। इसलिए तुलसीदास जी कहते हैं कि निराकार बड़ा सुलभ है, जबकि साकार बहुत दुर्लभ है, समझ में ही नहीं आता।

संगीत संस्कृति

हर शताब्दी की एक सभ्यता, एक संस्कृति होती है। अगली शताब्दी की संस्कृति संगीत है। मैं माँ-बाप से कहता हूँ बच्चों को लिखना-पढ़ना बाद में सिखाओ, गाना पहले सिखाओ। जैसे ही किसी महिला को पता चले कि मेरे पेट में बच्चा उतर गया है तो उसे सीधा संगीत सीखना चाहिए। एकदम शुरू कर देना चाहिए। जैसे प्रह्लाद के पेट में आते ही उसकी माँ ने भजन करना शुरू कर दिया था। जैसे ही खट्टा-मीठा आम खाने का मन करे, पहले भगवान का भजन होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब उसे बचपन से प्रशिक्षण मिला हो।

दूसरी बात जो अब पता चल रही है विज्ञान में कि संगीत के द्वारा, संगीत से उत्पन्न स्पन्दनों द्वारा मस्तिष्क को प्रभावित किया जा सकता है। याने संगीत

को तुम एक उपचार पद्धति मानो तो कोई गलती नहीं होगी। जब तुम संगीत गाते हो तो ध्वनि को, नाद को उत्पन्न करते हो। यह ध्वनि, जिसे नाद-ब्रह्म कहते हैं, धीरे-धीरे कुण्डलिनी को जगा सकती है। संगीत की साधना तो एकदम अलग साधना है। उसे साधना के रूप में न भी लो, केवल मनोरंजन के रूप में लो तो संगीत से बेहतर मनोरंजन कोई नहीं। और अगर शृंगार के मार्ग पर चलना चाहो, याने रोमांस का पक्ष भी लेना चाहो तो संगीत से बढ़कर कोई दूसरी चीज नहीं। शृंगार की अभिव्यक्ति, भक्ति की अभिव्यक्ति, मनोरंजन की अभिव्यक्ति संगीत में ही अच्छी तरह हो सकती है।

इस वर्ष सीता-कल्याणम् में जो भजन होंगे वे शिव-पार्वती पर ही होंगे, क्योंकि हमलोगों के यहाँ माना जाता है कि सीताजी भी अपने विवाह के पहले गौरी जी का ही पूजन करने गई थीं। कोई भी भजन नहीं चलेगा, जो भजन-कीर्तन हम निश्चित करेंगे उतना ही चलेगा। शिव-गौरी के कितने ही भजन और स्तुतियाँ संस्कृत में हैं। मैथिली में शिव-गौरी के बहुत-से भजन हैं। सीताजी के विवाह में इस साल मुख्य अतिथि के रूप में देवघर के शिवजी महाराज को बुलाया है। कैलास वाले शिवजी को नहीं बुलाया है, वहाँ से वीज़ा की समस्या हो जायेगी उनको, और खर्चा बहुत पड़ेगा हमको, क्योंकि वे पैदल तो आयेंगे नहीं, हवाई जहाज से आयेंगे। यहाँ वाले शिवजी को तो रिक्शॉ में ले आयेंगे! अब की बार शिव-गौरी को मुख्य अतिथि के रूप में रखेंगे।

आज दुनिया में योग की उन्नति, संगीत की उन्नति और उपासना की उन्नति पश्चिम से आ रही है। अजीब नहीं है क्या? पश्चिम में आपको शायद ही कोई व्यक्ति मिलेगा जो संगीत नहीं जानता हो। वहाँ सभी बच्चों की छोटी उम्र से ही संगीत की शिक्षा शुरू हो जाती है।

सामाजिक उत्तरदायित्व

महाराज अग्रसेन बड़े प्रतापी राजा थे। वे क्या करते थे कि जब उनके पास कोई भीख के लिए आता था तो अपनी जनता में सबसे एक रुपया और एक ईंटा लेकर दे देते थे। पचास हजार लोगों से 50,000 रुपये और 50,000 ईंटें आ जाती थीं। उस आदमी का घर भी बन जाता और कारोबार भी शुरू हो जाता। यह उनका नियम था।

आज के दौर में अगर हमारा भाई गरीब हो जाए तो हम लोगों को मालूम ही नहीं कि उसे कैसे उठाना, उसे लाख रुपये कैसे दें। यह नहीं कि समाज

के लोग सब एक-दो रुपये देकर, उसके लिए लाख रुपयों की व्यवस्था कर दें और बोलें, चल अपना व्यापार कर। आज का आदमी अपने बारे में और अपनों के बारे में ही सोचता है। आज अपनों की परिभाषा है—मैं, मेरी बीवी और मेरा बच्चा। जब तुम्हारी अपनों की यह परिभाषा है तो आज समाज की परिभाषा भी बदल गई है। पर ऐसा होना नहीं चाहिए। मनुष्य पर अपनी और अपने बीवी-बच्चों की जिम्मेदारी तो है, लेकिन साथ ही उसके ऊपर समाज का उत्तरदायित्व भी है। बगल के घर में आग लगी हो तो मेरा घर कब तक बचा रहेगा? वह भी एक-न-एक दिन जलेगा। लोग यह मानकर नहीं चल रहे हैं। यह तो समाज का ऋण है, और यही मुख्य कारण है कि हमारे समाज में दरिद्रता, निरक्षरता और कंगाली है।

क्या आत्मा अपने व्यक्तित्व और स्मृतियों को बनाए रखती है या मृत्यु के बाद इन्हें खो देती है? यदि खो देती है तो क्या फिर स्मृतियाँ मानवता की सामूहिक चेतना से आती हैं?

जब गेहूँ या कोई और बीज अपने पेड़ या पौधे से अलग होता है तो उसकी गुणवत्ता को क्या होता है? क्या गेहूँ या धान का पौधा उस बीज में मर जाता है? नहीं, वह उस बीज में प्रसुप्त अवस्था में है। यह तुम्हारे प्रश्न का सरल-सा उत्तर है। सांख्य, वेदान्त, बौद्ध और जैन दर्शनों में इस विषय को बड़े विस्तार से समझाया गया है कि आत्मा एक शरीर को कैसे छोड़ती है और दूसरा शरीर कैसे प्राप्त करती है। उनकी व्याख्याओं में अंतर जरूर हैं, लेकिन इतनी बात तो निश्चित है कि जब मैं मरता हूँ तो मेरा यह स्थूल शरीर यहीं छूट जाता है। वह शरीर या तो जला दिया जाता है या फिर दफना दिया जाता है, और वह पंचतत्त्वों से एकाकार हो जाता है। लेकिन मनुष्य केवल यह स्थूल शरीर नहीं, इतना तो सब मानते हैं। तुम मानते हो कि शरीर में एक आत्मा भी होती है, एक व्यक्तित्व भी होता है, एक जीव भी होता है। जब शरीर मरता है, तो वह जीव शरीर छोड़ देता है।

अब वेदान्त और सांख्य के अनुसर इस आत्मा का स्वरूप कैसा है? इन दर्शनों में कहा गया है कि मनुष्य के वास्तव में तीन शरीर होते हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण। स्थूल शरीर तो मर जाता है, तुमने देखा है, पर बाकी दो शरीरों का क्या होता है? इन्हीं की गति होती है। एक वाहन बनता है, तो दूसरा पैसेंजर। फिर वे प्रसुप्त अवस्था में, शून्यता की स्थिति में चले जाते

हैं, जैसे गेहूँ का बीज प्रसुप्त अवस्था में चला जाता है। बीज में गेहूँ का पौधा है, एक दिन वह उससे पैदा होकर बड़ा भी होगा, लेकिन तुम उसे अभी देख नहीं सकते। उस बीज को पीस दोगे तो अपनी रोटी के लिए आटा जरूर मिल जाएगा, लेकिन पौधा दिखलाई नहीं देगा, क्योंकि पौधा अभी प्रसुप्त रूप में केवल एक सम्भावना के रूप में विद्यमान है।

जब उचित समय आता है तो प्रसुप्त अवस्था में विद्यमान सूक्ष्म और कारण शरीर किसी माँ के गर्भ में प्रवेश करते हैं। वहाँ प्रकृति से संयोग होता है और एक नए मनुष्य का निर्माण शुरू होता है। आत्मा की मृत्यु नहीं होती। अगर तुम गीता के दूसरे अध्याय को ध्यान से पढ़ोगे तो वहाँ यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है। तुम्हें पुनर्जन्म के बौद्ध और जैन सिद्धान्तों का भी अध्ययन करना चाहिए। वास्तव में पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्राचीन यूरोप के ईसाई धर्म में भी प्रचलित था, लेकिन कुछ सदियों बाद इस्तामबुल में ईसाई धर्म की एक महासभा हुई, जिसमें बड़े-बड़े ईसाई पादरी और विद्वान् शामिल हुए। लम्बी-चौड़ी चर्चा हुई जिसमें यह पाया गया कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त चर्च के असूलों के प्रतिकूल था। एक प्रस्ताव पारित करके इस सिद्धान्त को अवैध घोषित कर दिया गया और ईसाई धर्म से हटा दिया गया।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मात्र प्रस्ताव पारित करके खारिज नहीं किया जा सकता। कोई भी धर्म ऐसा नहीं कर सकता। मान लो, आज हिन्दू धर्म के सभी आचार्य, स्वामी और गुरु जन बैठकर ऐसा कोई प्रस्ताव पारित कर भी दें तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लोग इसे एक मूर्खता भरी बात समझेंगे, क्योंकि वे जानते हैं कि पुनर्जन्म होता है। एक बार मैं फ्रांस में एक बहुत बड़ी सभा को सम्बोधित कर रहा था। करीब पाँच हजार लोग रहे होंगे वहाँ। प्रश्नोत्तर के समय किसी ने पूछा, 'क्या आप पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं?' मैंने उस व्यक्ति से ही पूछा, 'पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो, क्या तुम पुनर्जन्म में विश्वास करते हो?' वह बोला, 'नहीं, पहले आप जवाब दीजिये।' मैंने कहा, 'ठीक है। मान लो, मैं कहूँ कि विश्वास नहीं करता।' इतना कहते ही पूरी सभा 'हो! हो!' करके चिल्लाने लगी!

लोग पुनर्जन्म के खिलाफ बात सुनने के लिए तैयार नहीं हैं। केवल बुद्धिजीवी वर्ग को छोड़कर, जो हर देश में वैसे भी अल्पसंख्यक है, बाकी सारी जनता–मजदूर, सिपाही, अफसर, नेता–सभी कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते हैं। यूरोप में कर्म शब्द आम बोलचाल की भाषा में आ

गया है। किसी आदमी को दु:ख-तकलीफ झेलते देखेंगे तो कहेंगे, 'ओह! यह तो उसका कर्म है।' क्या यह पुनर्जन्म में विश्वास को नहीं दर्शाता? हमें तो पुनर्जन्म के सिद्धांत पर कोई संदेह नहीं, और हमें इसे सिद्ध करने की जरूरत भी नहीं।

एक और उदाहरण देता हूँ। मैं इंग्लैण्ड में आश्रम बनाने के लिए किसी अच्छी जगह की तलाश कर रहा था। स्कॉटलैण्ड में मुझे एक बहुत बढ़िया घर दिखाया गया। दाम भी ज्यादा नहीं था। मैंने लंदन लौटकर अपने परिचितों से कहा, पचीस हजार पाउण्ड में तो बहुत सस्ता मिल रहा है। लेकिन उन्होंने कहा, 'वह भूत-बंगला है!' मैंने पूछा, 'किसका भूत?' उन्होंने कहा, 'घर के मालिक ने वहाँ अपनी पत्नी का खून कर दिया था। उसी की आत्मा वहाँ भटकती है।' मैंने कहा, 'पर आपलोग तो आत्मा और पुनर्जन्म जैसी बातों पर विश्वास नहीं करते। कम-से-कम ईसाई धर्म में तो ऐसी बातों के लिए कोई स्थान नहीं है।' फिर भी उन्होंने कहा, 'नहीं, नहीं। सच में वहाँ भूत है।' जब तुम भूत-प्रेत में विश्वास करते हो, किसी घर को भूत-बंगला मानते हो, तो इसका यही मतलब हुआ कि तुम पुनर्जन्म को भी मानते हो, इस बात को मानते हो कि मृत्यु के बाद भी कोई चीज शेष रह जाती है।

एक सच्ची घटना सुनाता हूँ जो तीस-पैंतीस साल पहले 'रीडर्स डाइजेस्ट' पत्रिका में छपी थी। रूस के किसी शहर में एक आदमी मर गया। उसको दफनाने की तैयारी चल ही रही थी कि वह फिर से जिन्दा हो गया। वह उठकर बैठ गया और स्पेनिश में बात करने लगा। लोगों को लगा कि उसका दिमाग फिर गया है और उसे पागलखाने में भर्ती करा दिया। लेकिन आदमी को मालूम था कि वह पागल नहीं है, उसे कोई मनोरोग नहीं है। वह बार-बार यही कहता कि मैं यहाँ का रहने वाला नहीं हूँ, किसी दूसरे देश का हूँ। लेकिन कोई उसकी बात सुनने को तैयार नहीं था, आखिर वह दूसरी बोली जो बोल रहा था।

एक दिन पागलखाने में वह आदमी अखबार पढ़ रहा था। अखबार में छपी एक खबर के अनुसार अर्जेन्टिना में किसी दिन एक आदमी मरा और थोड़ी देर बाद वह फिर से जिन्दा होकर रूसी भाषा में बात करने लगा। अर्जेन्टिना तो भारत जैसा देश है, रूस की तरह सम्पन्न नहीं है। वहाँ वह आदमी पागलों की तरह इधर-उधर भटक रहा था। खैर आगे तो काफी लम्बी कहानी है, कैसे रूसी आदमी को अर्जेन्टिना के उस शहर ले जाया गया,

कैसे उसने वहाँ की सड़कों को, डाकखाने को, सब चीजों को पहचान लिया। जब वह अपने घर पहुँचा तो दूसरे आदमी को देखते ही बोला, 'अरे! वह तो मैं हूँ!' तुरन्त आत्माओं की अदला-बदली हो गई। स्पेनिश वापस स्पेनिश हो गया और रूसी दुबारा रूसी। अब ऐसी घटनाओं को आप कैसे समझा सकते हैं? एक ही सिद्धान्त इन चीजों को समझा सकता है और वह है पुनर्जन्म का सिद्धान्त–आत्मा शरीर के साथ नहीं मरती।

योग आंदोलन में मुंगेर का योगदान

मुंगेर के लोग बहुत अच्छे हैं। दक्षिण से लेकर उत्तर तक पूरे भारतवर्ष में कितने लोगों ने योग आश्रम बनाने की, उनसे लोगों को लाभ पहुँचाने की कोशिश की, मगर मुंगेर में जैसा योग आश्रम जम पाया वह कहीं और जम नहीं पाया। इस आश्रम ने अपने प्रशिक्षण को केवल योग तक ही सीमित नहीं रखा, उसको बहुत आगे तक बढ़ाया। यह केवल मुंगेर के लोगों के सहयोग से हो पाया। जिस नगर में तुम रहते हो अगर वहाँ के लोगों का भावनात्मक सहयोग न रहे तो वहाँ कोई संस्था चल नहीं सकती। वैसे तो मुंगेर काफी प्रसिद्ध जगह है अनेक दृष्टियों से, परन्तु वहाँ के लोगों में एक विशेषता है–हम जैसे हैं, उन्होंने हमको वैसे ही स्वीकार किया। हमारी जो अच्छाइयाँ हैं या हमारी जो सीमाएँ हैं–सब को उन्होंने जस-का-तस स्वीकार किया और हमें हर दृष्टि से भरपूर सहयोग दिया।

जिस स्थान पर आज गंगा दर्शन बना है, उस स्थान का मिलना प्राय: असंभव था। वह किसी की निजी जमीन थी, साथ में बहुत-से झंझट थे। लेकिन सरकार ने कह दिया कि इसे योग आश्रम के लिए इस्तेमाल करेंगे और रास्ता साफ कर दिया। यहाँ के लोग इतनी मदद करते थे कि फैक्ट्री से सस्ता सीमेंट तक लाकर देते थे। हर तरह से मदद करते थे। गाँव के लोग गेट पर आकर कहते थे, 'स्वामीजी से कह दो, हमारे खेत में परवल बहुत है, स्वामी लोगों को भेजकर तुड़वा लो।' हम एक-एक ट्रक परवल तुड़वाते थे। हम कभी दूध मोल लेते ही नहीं थे। नदी पार से जो दूधवाले आते थे, वे दो घड़ा दूध रोज डाल जाते थे। और हमारा उनके प्रति वैसा ही सम्मान रहा। हमने कभी भी मुंगेर के लोगों को अपराधी के रूप में नहीं देखा।

लक्ष्मीपुर दियारा में एक बार बहुत बड़ा काण्ड हुआ था। मार-पीट और हत्या हुई थी। प्रशासन के वहाँ पहुँचने से पहले हमने स्टीमर से कपड़ा,

अनाज वगैरह वहाँ भेजा। हमने तो वह जगह देखी नहीं थी, पर हमने अपने चेलों से कहा, 'जाओ, वहाँ मार-पीट हो रही है। मार-पीट अपनी जगह पर है, हवालात-हथकड़ी अपनी जगह पर है, पर पेट तो सबका है न?' खाने-पीने का सामान भेजा, उनके रहने के लिए मकान बनाए, और आज वे सब हमारे पक्के चेले हैं।

सन् 1993 में जब मुंगेर में बहुत बड़ा योग सम्मेलन हुआ, तो कलेक्टर साहब ने उनको बुलाया और कहा कि बहुत बड़ा सम्मेलन होने वाला है, थोड़ी गुण्डागर्दी कम करना। उन लोगों ने कहा, 'सर, हम आश्रम से गुण्डागर्दी नहीं करेंगे। हमको आप सुरक्षा व्यवस्था में लगा दीजिए, फिर कौन क्या कर सकता है?' जब चोर-डाकू आपके मित्र हो जाते हैं तो आप पूरी तरह सुरक्षित हैं। और उस मित्रता का एक ही उपाय है—प्रेम। प्रेम के सामने कोई शर्त नहीं होती। केवल सज्जन से प्रेम करना, साधु, सदाचारी या संत से प्रेम करना—ये तो प्रेम की सीमाएँ हैं। दुराचारी से भी प्रेम करना, व्यभिचारी से भी प्रेम करना—प्रेम की फिर सीमा नहीं रहती।

हम मुंगेर में बहुत अच्छी तरह से रहे। कभी दिक्कत नहीं होती थी। इसलिए हम कहते हैं कि मुंगेर का जो आश्रम है, वह मुंगेर और बिहार के लोगों के सहयोग की वजह से है। बिहार ने केवल इस योग आश्रम को सहयोग नहीं दिया, इतिहास में भगवान बुद्ध को, भगवान महावीर को, गाँधीजी को, जय प्रकाश नारायण को, सबको सहयोग दिया है। देखा जाए तो हिन्दू दर्शन और बौद्ध दर्शन के अधिकांश विद्वान् बिहार के लोग ही रहे हैं।

मानवता की सेवा

अब हमने मुंगेर छोड़ दिया है और यहाँ देवघर में बस गए हैं। हम अब वहाँ के बारे में नहीं सोचते, आगे की सोच रहे हैं। कहते हैं न, उठ बाँध रख सफर अपना, दुनिया की सराय को समझ रखा है घर अपना। तूने गलत समझा बाबा। यह तो हमारा रेलवे प्लेटफार्म है जहाँ हम गाड़ी का इंतजार कर रहे हैं। भगवान से हमने बोला कि हमें जाना है, पर वे बोलते हैं सब सीट रिज़र्व हो गए, थोड़ा रुको। मैं वेटिंग लिस्ट में हूँ। मैं तो यहाँ से जाने के लिए आया हूँ, लौटने के लिए थोड़े ही आया हूँ। वहाँ मुंगेर में जो भी काम किया, अपने मन के अनुसार नहीं किया। मैं तो न योग में रुचि रखता हूँ और न ही मेरी वेदान्त में रुचि है। न ही मेरी अध्ययन में रुचि है और न ही मेरी विद्या

में रुचि है। स्पष्ट बात बोल रहा हूँ। मेरी केवल एक ही रुचि है—मैं दूसरे के लिए किस तरह मददगार बन सकता हूँ।

दुनिया की आज जो समस्या है वह मुख्यत: भौतिक समस्या है। यह कहना कि संसार की समस्या आध्यात्मिक है, बहुत बड़ी बात हो जाएगी। मैं यह नहीं कहता कि आध्यात्मिक, भावनात्मक या मनोवैज्ञानिक समस्याएँ नहीं हैं, मगर आज आदमी की मूल समस्या भौतिक है। इसमें कम-से-कम हिन्दुस्तान में 50 प्रतिशत से ज्यादा लोगों को सहायता की आवश्यकता है। घर के घर ऐसे हैं जहाँ शाम का खाना नहीं बनता। लाखों-करोड़ों घर ऐसे हैं जहाँ बरसात में पानी चूता है। मनुष्य साधु हो अथवा गृहस्थ, भक्त हो अथवा उपासक, ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी, चाहे जो कुछ भी हो, उसका सबसे पहला कर्तव्य अभागों की सेवा है। जब हम ऋषिकेश में रहते थे, तो वहाँ जितने कोढ़ी रास्ते में बैठते थे उन सबको इकट्ठा करके कॉलोनी बना दी थी। थोड़ा इधर से लिया, थोड़ा उधर से लिया। मुझे लोग दे भी देते हैं बहुत, मुझे दिक्कत नहीं होती।

चूँकि हमारे गुरुजी ने हमसे कहा, 'योग सिखाओ' तो हमने सोचा, गुरु ऋण तो चुकाना ही पड़ता है। इसलिए मुंगेर में योग विद्यालय खोला। यह भी आपको बतला देता हूँ साफ-साफ कि मैंने योग पर कोई मौलिक ग्रंथ भी नहीं पढ़ा है। न गोरख संहिता, न हठयोग प्रदीपिका। मेरा अध्ययन रहा है वेदान्त का जो मैंने कैलाश आश्रम में सीखा। शंकर-भाष्य वगैरह सब पढ़ा पर कभी वेदान्त सिखाया नहीं किसी को। मुझे लगता है कि सिखाकर क्या करूँ। जिस घर में रोटी नहीं है वहाँ तो 'भूखे पेट भजन न होय गोपाला, ले लो अपनी कंठी माला' वाला हिसाब है। हिन्दुस्तान के 70 प्रतिशत लोगों का जीवन कृषि पर आधारित है, और यह पूरे का पूरा उपेक्षित वर्ग है।

क्या कीर्तन और सतत् सुमिरन के द्वारा एक भक्त भगवान के साथ निरंतर सम्पर्क में रह सकता है?

भगवान का कहना है कि न तो मैं वैकुण्ठ में रहता हूँ, न ही योगियों के हृदय में। जहाँ भी मेरे भक्त मेरे नामों को गाते हैं, मैं वहीं रहता हूँ।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता: यत्र गायन्ते तत्र तिष्ठामि नारद॥

तो जब तुम भगवान का नाम गाते हो अवश्य ही वे तुम्हारे साथ होते हैं और तुम उनके साथ। न वे अकेले हैं, न तुम। वरना भगवान तो अकेले हैं बेचारे, कोई उनके साथ है नहीं, कोई उनको जानता नहीं, उन्हें अज्ञेय बोलते हैं। इसलिए भगवान ने कहा– *एकोऽहं बहुस्याम:*। प्रकृति और उनका संपर्क हुआ, एक से बहुत बन गए, बस लीला शुरू हो गई।

देखा जाए तो भगवान कृष्ण भी अकेले थे। जब वे वृन्दावन-मथुरा को छोड़कर द्वारिका चले गए तो वहाँ एक बहुत बड़े नायक बन गए। लेकिन फिर भी वे बेहद अकेलापन महसूस करते थे क्योंकि वे राधा से नहीं मिल पाते थे। वे राधा से बहुत प्रेम करते थे। जब वृन्दावन में थे तो दोनों बराबर मिला करते थे। वे बांसुरी बजाते और नृत्य करते। पर द्वारिका पहुँचने के बाद वे एकदम अकेले पड़ गए, और अन्त तक अकेले ही रहे।

माता, पिता, पति, पत्नी या बच्चे अंतरंग साथी नहीं हो सकते। सच्चा साथ वही दे सकता है जो तुमसे प्रेम करे और जिसे तुम प्रेम करो। इसलिए कहता हूँ कि भगवान कृष्ण तो अकेले ही रहे। रुक्मिणी और सत्यभामा तो उनकी स्त्रियाँ थी, जो उनकी अंतरंग मित्र और सखी थी वह तो राधा थी। राधा कृष्ण से और कृष्ण राधा से अनन्य प्रेम करते थे। पर राधा तो छूट गई वहाँ और ये बस गए यहाँ। वह वहाँ अकेलापन महसूस करती और ये यहाँ।

स्वामीजी, लोग कहते हैं कि ईसाई धर्म सिन याने पाप की अवधारणा पर आधारित है। वे कहते हैं कि जो बात भगवान को पसंद नहीं है, वही पाप है। तो उनको कैसे पता कि भगवान को कौन-सी चीज पसंद है और कौन-सी चीज नहीं?

मुझे ऐसे प्रश्नों का जवाब नहीं देना चाहिए क्योंकि किसी भी धर्म पर लांछन लगाना या उसकी आलोचना करना साधु के लिए अच्छा नहीं है। हम साधु लोगों को चाहिए कि हर एक धर्म को उसकी सीमाओं के साथ स्वीकार करें। यह हम सबका फर्ज होता है। ईसाई धर्म में पाप का जो सिद्धान्त है उस पर तो सौ आलोचनाएँ की जा सकती हैं, पर क्यों? जो मेरा धर्म नहीं है, उस धर्म की आलोचना करने का मुझे अधिकार नहीं है। मैं अपने धर्म की आलोचना कर सकता हूँ, अगर मुझमें हिम्मत है तो। मगर अपने धर्म की कोई आलोचना करता ही नहीं। हर एक को दूसरे की बहू ही कुलटा लगती है। अपनी बहू-बेटी तो किसी को कुलटा नहीं लगती।

हमारे धर्म में भी हजारों गलतियाँ हैं। छुआछूत क्या हमारे धर्म की कमजोरी नहीं है? विधवाओं के साथ जो परिपाटी बनी है क्या यह हमारे धर्म की कमजोरी नहीं है? कितनी कमजोरियाँ बतलाएँगे तुमको? न उनको हमारे धर्म की आलोचना करने का हक है, न हमें उनके धर्म की आलोचना करने का अधिकार है। क्यों? धर्म के दो रूप होते हैं—एक होता है सनातन, दूसरा होता है युग के मुताबिक। समाज को देखते हुए, राजनैतिक परिस्थितियों को देखते हुए, लोगों की आर्थिक स्थिति को देखते हुए, उनके शिक्षा के स्तर को देखते हुए जो धर्म प्रवर्तित होता है उसका स्वरूप अलग होता है। उस वक्त हम धर्म के ऊपर एक आवरण, एक जामा पहना देते हैं, और लोग उसी को पकड़ लेते हैं। अब किसी ने लम्बी दाढ़ी रखी तो मुसलमान हो गया, चुटिया रख दी तो हिन्दू हो गया, वाह भाई वाह! कोई मुसलमान सिनेमा में हिन्दू का रोल करता है तो जनेऊ तक पहन लेता है। जनेऊ-चुटिया रख ली, राम नारायण नाम रख दिया तो हिन्दू हो गया, और मुहम्मद रहमान नाम रख दिया तो मुसलमान हो गया! नाम से हिन्दू या मुसलमान कैसे हो सकता है आदमी? नाम तो संस्कृति की देन है, धर्म की नहीं। वस्त्र समाज की देन है, धर्म की नहीं।

अगर सचमुच देखो तो धर्म का संबंध केवल एक चीज से है। जीवात्मा का परमात्मा के साथ जो संबंध है, उसे ही धर्म का आधार मानते हैं। अंग्रेजी में धर्म को religion कहते हैं। Re माने दुबारा, ligion माने मिलना, याने religion का मतलब हुआ पुनः संबंध। संबंध किसका, और किसके साथ? परमात्मा तो एक था। उसके मन में भावना हुई, उसने संसार को पैदा किया, जीवात्मा को पैदा किया। अब जीवात्मा चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद सोचती है, अरे मैं तो भटक गई हूँ अपने घर से, और फिर से वह वापस आती है, प्रतिप्रसव होता है। उसको कहते हैं religion। जीवात्मा-परमात्मा के मिलन के पथ का नाम religion है, धर्म है।

मगर हमारे यहाँ यही धर्म की अंतिम परिभाषा नहीं मानी जाती। यह धर्म की मूल परिभाषा जरूर है, पर अंतिम परिभाषा नहीं है। हमारे यहाँ धर्म की एक मूल परिभाषा है जिसे सनातन कहते हैं—जीवात्मा और परमात्मा के मिलन का रास्ता—और एक है युगीन परिभाषा, जिसमें आचार से धर्म की परिभाषा होती है। आचार माने चाल-चलन। झूठ मत बोलो, यह मत करो, वह मत करो, अच्छे से रहो, स्त्री का धर्म यह है, पुरुष का धर्म यह है, पति का धर्म यह है, राजा का धर्म यह है, प्रजा का धर्म यह है तो साधु का धर्म यह

है। अब यहाँ पर दायित्वों और कर्तव्यों की बात आ गई। ये धर्म की बदलती परिभाषाएँ हैं। जीवात्मा और परमात्मा का मिलन एक ऐसी परिभाषा है जो कभी नहीं बदलती, पर ये परिभाषाएँ युग-युग में बदलती हैं। लड़कियाँ पहले लंबे बाल रखती थीं, फिर काट करके छोटा हो गया, क्या इससे धर्म खत्म हो गया? नहीं, उस वक्त का धर्म बदल गया। पहले घूँघट रखती थीं, अब सिर पर कपड़ा नहीं रखतीं, क्या धर्म खत्म हो गया? नहीं, धर्म खत्म नहीं हुआ, बदल गया। जैसे मौसम के अनुसार कपड़े बदलते हैं, भूख के मुताबिक भोजन बनता है और जेब के मुताबिक खर्चा होता है, वैसे ही समय के साथ युगीन धर्म बदलता है। इसलिए हम किसी भी धर्म पर आक्षेप करने के पक्ष में नहीं हैं। वैसे पूछो तो ईसाई धर्म के बारे में हम अच्छी तरह से जानते हैं।

हम तो पाप की परिभाषा जानना चाहते हैं?

पाप तो केवल एक ही चीज को कहते हैं। जिस वक्त जीवात्मा परमात्मा से बिछड़ गया वह पाप है, और जब मिल गया तो मोक्ष।

तो पुण्य क्या है?

गरीब को थोड़े पैसे दे दो, भूखे को रोटी दे दो, प्यासे को पानी दे दो, ठण्ढ के मौसम में किसी को कम्बल दे दो, गरीब लड़की को साड़ी दे दो,



बीमार को दवाई दे दो, होनहार लड़के को पढ़ाई के लिए वजीफा दे दो—यह पुण्य है। दूसरों के लिए जो अच्छा काम किया जाता है उसे पुण्य कहते हैं। तुलसीदास जी ने कहा है और पुराणों में भी लिखा है कि इस कलियुग में दो ही चीजें काम करेंगी—भगवान का नाम जपो और पुण्य का काम करो। इसके अलावा कुछ नहीं काम करने वाला।

आपने कहा कि परमात्मा एक है, वह हम मानते हैं। पर हिन्दू धर्म में इतने देवी-देवता हैं कि लोग किस तरफ ध्यान करें? कभी राम, कभी कृष्ण, कभी शिव, कभी काली तो कभी कोई और देवता ...

आपने जो प्रश्न पूछा है यह मुझसे बहुत बार पूछा जा चुका है। इसे समझाना भी मुश्किल है और समझना भी। तुलसीदास जी ने कहा है कि निर्गुण मार्ग बहुत सरल है, जबकि सगुण मार्ग बहुत कठिन है। वह आसानी से समझ में नहीं आएगा। हमारे यहाँ वैदिक धर्म में अनेक देवी-देवताओं की उपासना की स्वीकृति मिली है। ऋग्वेद में लिखा है, *एकं सत् विप्रा: बहुधा वदन्ति*। सत् का मतलब जो है, जिसका अस्तित्व है। वह सत् एक है, लेकिन ज्ञानी लोग उसे अनेक ढंग से बोलते हैं। अनेक ढंग से बोलने का मतलब क्या हुआ? मान लो, आपके पास अंग्रेजी में लिखी ढेर सारी किताबें हैं। कोई योग पर है, तो कोई विज्ञान पर तो कोई भूगोल पर। अब योग की किताब को अंग्रेजी बोलें या विज्ञान की किताब को अंग्रेजी बोलें या भूगोल की किताब को अंग्रेजी बोलें? हैं तो सब अंग्रेजी, पर अंग्रेजी बोलने पर भी सब अलग-अलग हैं, एक नहीं हैं।

उसी तरह से एक चेतन आत्मा अनेक रूपों में प्रकट होती है। कठोपनिषद् में कहा है कि अग्नि जैसे एक है, पर जब प्रकट होती है तो अनेक रूपों में प्रकट होती है, वैसे ही अन्तरात्मा एक है, मगर जब प्रकट होती है तो राम या कृष्ण या देवी के रूप में प्रकट होती है, लाखों-करोड़ों रूपों में प्रकट होती है। कुछ लोगों ने उनको राम के रूप में पाया, पहचाना, बहुत-से लोग तो देखकर भी पहचान नहीं पाते हैं। ईश्वर को पहचानना बहुत मुश्किल है। तुम्हारे घर में नया नौकर आता है, क्या तुम पहचान पाते हो कि कहीं चोर या डाकू तो नहीं है? चोर-डाकू को नहीं पहचान पाते हो, जो सामान्य विद्या है, तो ईश्वर को क्या पहचानोगे? तुम्हारे घर में कोई आता है, बोलता है भूखा हूँ, तुम सोचते हो क्या सच में भूखा है या नहीं? जब इतना तक नहीं पहचान पाते हो तो भगवान को पहचान पाओगे? भगवान को जानना इतना सरल नहीं है।

दूसरी बात, भगवान ने राम या कृष्ण के रूप में अवतार लिया, और बहुत-से ऐसे भी रूपों में अवतार लिया जिनको आज हम भूल भी चुके हैं। राम और कृष्ण सम्प्रदायों के कारण जीवित हैं, अनेकों सम्प्रदाय तो खत्म भी हो गये हैं। भगवान ने जब कोई विशेष स्वरूप धारण किया तो केवल तुम्हीं सरीखों के लिये किया जो भगवान को जानना चाहते हैं, जो भगवान में मन लगाना चाहते हैं, जो भगवान में अपनी आत्मा को डुबाना चाहते हैं, जो भगवान में अपने अस्तित्व को समाप्त कर लेना चाहते हैं। मगर करें कैसे? निर्गुण का तो कुछ अता-पता ही नहीं है, उसका कोई रूप नहीं है, गुण नहीं है। मगर सगुण का रूप है, वह सुन्दर है, सलोना है, आँखें उसकी लाल हैं, उसके शरीर का रंग काला है, उसके कंधे बहुत चौड़े हैं, उसके हाथ घुटनों तक पहुँचते हैं, बोलने में बड़े अच्छे हैं, जब किसी की तरफ देखते हैं तो लगता है हजारों-हजार फूल गिर गये। किसी मनोहर पुरुष, स्त्री या बच्चे को देखते हो या किसी सुन्दर फूल, साड़ी या आभूषण को देखते हो तो अच्छा नहीं लगता है क्या? मन उसमें डूबता है न? अब ये सब निर्गुण हो जायेंगे तो क्या होगा?

ईश्वर का सबसे पहले साकार रूप यह सारी सृष्टि है। किन्तु यह इतना बड़ा साकार रूप है कि उसका तुम ध्यान नहीं कर सकते हो। इसलिये भगवान ने मनुष्य को उसके मन के अनुरूप ध्यान का आधार दिया। और वह आधार था अवतार। वैसे तो कहते हैं कि दुष्टों का संहार करने के लिये, साधु लोगों का उद्धार करने के लिये और धर्म की स्थापना के लिये भगवान का अवतार हुआ, मगर मैं मानता हूँ कि भक्तों को सहारा देने के लिये भगवान का अवतार हुआ। रामचरितमानस में प्रसंग आता है कि जब भगवान शंकर और पार्वती जी का विवाह हो गया तो एक दिन पार्वती जी ने उनसे पूछा, 'भगवन्! पूर्वजन्म में तो मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, मैं श्रीराम को नहीं पहचान पाई। मेरे मन में संदेह उत्पन्न हुआ कि औरत के विरह में रोने वाला यह व्यक्ति भगवान कैसे हो सकता है। भगवान तो निराकार-निर्गुण हैं, सुख-दुःख के परे हैं, जन्म-मृत्यु के परे हैं, हमने तो यही सुना था, मगर यह रोने वाला भगवान कहाँ से आ गया? उस समय मेरे मन में संदेह हुआ और मैंने परीक्षा भी ली, मगर अब मेरे मन में कोई संदेह नहीं है। अब केवल उनकी कथा सुनना चाहती हूँ।'

तब शिवजी ने गिरिजा से कहा, 'पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा, सकल लोक जग पावनि गंगा।' भगवान राम की जो कथा है उसके जो अलग-अलग प्रसंग हैं वे सारे संसार को पावन करने वाले हैं। कथा का आधार भगवान की लीला

होती है। अगर रामजी पैदा ही नहीं होते तो उनकी कथा कहाँ से मिलती? अब उनकी कथा सुन-सुन कर लोग पवित्र हो रहे हैं। इसलिए भगवान शिव कहते हैं, 'हे गिरिजा! तुम श्रीराम की कथा का प्रसंग पूछ रही हो, वह सारे संसार को पवित्र करने वाली गंगा के समान है। चलो मैं तुम्हें सुनाता हूँ।' कितनी सुन्दर है साकार की उपासना! हजारों वर्षों तक कथा कर सकते हो। अगर भगवान के चरणों में मन न लगे तो उनकी नाभि का ध्यान करो या विशाल कंधों का ध्यान करो। वहाँ मन नहीं लगता है तो उनके ललाट का ध्यान करो। भगवान के किसी-न-किसी रूप में तुम्हारा मन लग ही जायेगा। भगवान को भगवान न मानो, अपना यार मान लो, क्या फर्क पड़ता है जी? आखिर भगवान को याद ही तो करना है न? यार मान कर याद करो, प्यार से याद करो, नहीं तो डंडा मार कर भी याद कर सकते हो। बैद्यनाथ आदिवासी था, वह मारता था डंडा उनको। देवघर का यह वैद्यनाथ जी का मंदिर आदिवासियों का बहुत पुराना मंदिर है।

अंतिम बात, भगवान के बारे में चर्चा करनी चाहिये, पर शंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि तुम जो शंका कर रहे हो उस शंका का कोई समाधान है ही नहीं। अब तुम ही बताओ, तुम्हारा बाप वाकई तुम्हारा बाप है, इसका प्रमाण दे सकते हो क्या? जब बाप के होने का प्रमाण नहीं दे सकते हैं, एक छोटी-सी बात का हम प्रमाण नही दे सकते हैं तो भगवान का प्रमाण हम क्या दे पाएँगे? नहीं, वे बुद्धि के परे हैं। बहुत-सी चीजें श्रद्धा और विश्वास पर आधारित होती हैं। जिन्होंने रामचरितमानस पढ़ी है उन्होंने ध्यान दिया होगा कि भगवान की भक्ति का आधार श्रद्धा और विश्वास है। श्रद्धा-विश्वास ही भगवान की साधना का पहला क-ख-ग है।

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥

अपने अन्दर जो भगवान है, वह श्रद्धा-विश्वास के बिना नहीं दिखता। जिस भगवान को, जो तुम्हारी जेब में है, जब तुम श्रद्धा-विश्वास के बिना देख नहीं सकते हो, सिद्ध लोग भी नहीं देख सकते हैं, तब ऊपर वाले को कैसे देखोगे? वह तो बहुत दूर है। इसलिये शुरू में ही तुलसीदास जी ने कह दिया– *वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्*। वहाँ पर गुरु की आवश्यकता है। गुरु वह है जो भक्त और भगवान के बीच बिचौलिया का काम करता है।

– 19 नवम्बर 1997



अध्याय 16

जो स्वयं को सभ्य कहते हैं उन्हें स्त्री जाति के प्रति इतना अन्याय नहीं करना चाहिये, इतने नियम नहीं बनाने चाहिये, उनकी भूमिका सीमित नहीं करनी चाहिये। सभ्य समाज में स्त्री की भूमिका 'यह है, यह नहीं है', कहना गलत है। अब तो आँखों के सामने प्रमाणित हो चुका है। क्या पहले कोई आशा कर सकता था कि कोई लड़की अन्तरिक्ष विज्ञान में इतनी माहिर हो सकती है? खासकर के कल्पना चावला का अन्तरिक्ष में जाना कोई छोटी-मोटी घटना नहीं है। यह स्त्री जाति के लिये एक बहुत बड़ी उपलब्धि है, और हमारी पुरुष प्रधान सभ्यता के लिए बहुत बड़ी चुनौती।

हमारी सभ्यता मध्य एशिया की सभ्यता नहीं है, लेकिन लम्बे अर्से से उस सभ्यता का अनुकरण किया है और कर रही है। रूखी सभ्यता है वह। वहाँ तो घूँघट लगाना पड़ता है। मध्य एशिया में जब रेत उड़कर आती है, वह इतनी गर्म रहती है जैसे अंगार की चिंगारी। बदन काला पड़ जाता है। रेत उड़कर आती है, इसलिये वहाँ घूँघट लगाते हैं। हिन्दुस्तान में इसकी क्या जरूरत है?

वहाँ हमारे जैसे गाँव थोड़े ही होते हैं। एक घर यहाँ है तो दूसरा घर रिखिया हाट पर और तीसरा घर रिखिया मोड़ पर, वहाँ ऐसे गाँव होते हैं। एक मकान से दूसरे मकान के बीच तीन-चार मील का फासला रहता था। पानी लाने के लिये पाँच-छ: मील जाना पड़ता था। जब हम गये थे तब की बात कह रहा हूँ, अब तो खैर कुछ बदलाव आ गया होगा। कई गाँवों को मिलाकर एक कुआँ होता है, वहाँ से लोग पानी लाते हैं, इतनी मुश्किल है। वह सभ्यता हम लोगों को मिल गई और हम उसी सभ्यता को अपने कंधे पर

लादे हुए हैं। हमारी सभ्यता मूलत: मध्य एशिया जैसी नहीं, बल्कि पाश्चात्य सभ्यता के अगल-बगल में चलती है। हम लोगों को सोचने का तरीका और बाकी सब चीजों का तरीका बदलना होगा। स्त्री जाति की भूमिका भी बदलनी होगी। उसके बिना घर अच्छा नहीं चल सकता।

जिसे तुम हिन्दू धर्म कहते हो, मूलत: वह वैदिक धर्म है। हमारे जितने भी सामाजिक आचार-विचार, कर्म-संस्कार हैं, वे वेदों पर आधारित हैं। जैसे बाइबिल या कुरान में केवल एक बात कही गयी है, वैसे वेदों में केवल एक बात नहीं है। विवाह के बारे में ही हमारे यहाँ कितने मत हैं। पत्नी की क्या परिभाषा है? पुत्र किसको कहते हैं? स्त्री-पुरुष के संयोग से कहीं कुछ पैदा हो गया तो क्या वह पुत्र है? वेदों में चौबीस प्रकार के पुत्रों की व्याख्या है और फिर उनकी कानूनी व्याख्या होती है। औरस पुत्र से लेकर जायज पुत्र तक चौबीस प्रकार की संतानों के अपने कानूनी अधिकार हैं, अलग-अलग सामाजिक पहचान है।

वेदों ने बड़ा स्वतंत्र चिन्तन किया है। वहाँ समझाया है कि विवाह किसे कहते हैं। विवाह की कोई तर्कशील परिभाषा तो होनी चाहिये। स्त्री-पुरुष साथ में रहें तो क्या विवाह हो गया? विवाह की क्या परिभाषा है और उसमें निर्णय करने का अधिकार किसको है? स्त्री-पुरुष करेंगे या माता-पिता करेंगे या समाज करेगा।



माता-पिता कहते हैं, 'हम निर्णय करेंगे, तुम कौन होते हो?' हमारे जैसा आदमी कहेगा, 'हम निर्णय करेंगे। शादी तो हमें करनी है, तुम्हें थोड़े ही करनी है।' माता-पिता कहते हैं, 'हम अनुभवी हैं।' हम कहते हैं, 'हमारी जरूरत है।' बात दोनों की ठीक है, अब कहीं पर दोनों का समझौता होना चाहिये। समाज कहता है, 'नहीं, शादी व्यक्तिगत चीज नहीं है कि तुमने किसी से कर ली क्योंकि तुम्हारी पसंद की है। समाज कहाँ पर आया इसमें?' वेदों में यह सब कथा-कहानियों, दृष्टांतों और इतिहासों के माध्यम से कहा गया है। समाज कहता है कि शादी व्यक्तिगत और माता-पिता के निर्णय की चीज नहीं है, यह समाज की चीज है। इसलिये समाज भी इसमें आयेगा। समाज, व्यक्ति और अभिभावक, तीनों के निर्णय से जो विवाह होता है, उसे वैदिक विवाह कहते हैं। ब्राह्म, गांधर्व, आसुर, पैशाच—सभी विवाह के रूप हैं न! जैसे भगवान कृष्ण रुक्मिणी को भगाकर लाए, उसे क्या बोलोगे? राक्षस विवाह न?

अब सीता-राम के विवाह का प्रसंग देखो, कितना सुन्दर है! रामजी को सीताजी पसंद आ गईं, सीताजी को भी रामजी पसंद आ गये, जनक और सुनैना को भी रामजी पसंद आ गये, और सब से बड़ी चीज, मिथिला के समाज को रामजी पसंद आ गये। तीन चीजें आईं न—अभिभावक, लड़का-लड़की और समाज? वेदों में स्वयंवर को भी स्वीकार किया है और अपहरण को भी। ऐसा नहीं कि अपहरण की हुई लड़की को बाहर निकाल दोगे। अब ले ही आये हो तो रखो, लड़की की जिन्दगी का सवाल है।

हमारे वैदिक धर्म में स्त्री और पुरुष धर्म के साक्षी माने जाते हैं अर्थात् कोई भी धार्मिक कृत्य या यज्ञ हो, पति-पत्नी के साथ रहे बिना नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि पति-पत्नी समान हैं, किन्तु तुम लोगों ने कुछ ऐतिहासिक कारणों की वजह से स्त्री की भूमिका को सीमित कर दिया। वे ऐतिहासिक कारण कौन से थे, बतलाने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन वे ऐतिहासिक कारण अब हमारे समाज में विद्यमान नहीं हैं। ऐसी हालत में स्त्री जाति को घर में बन्द करके रखना और उसकी भूमिका सीमित करना गलत है।

मुझे कुछ दिन पहले ही पता चल गया था कि कल्पना चावला अन्तरिक्ष में जा रही है। मैंने कहा कि आज के युग में यह बहुत जरूरी है। स्त्री जाति की उपलब्धियाँ आज सम्भव हैं। समाज को मजबूत बनाने, परिवार को सबल बनाने के लिये स्त्री का सबल होना जरूरी है, जिसके लिए शिक्षा का मार्ग

हो। शारीरिक रूप से भी औरत कमजोर नहीं है। चीन और रूस की महिला खिलाड़ियों को देखा है कभी आपने! वे ओलिम्पिक खेलों में क्या कमाल दिखाती हैं। खाड़ी-युद्ध में भी तो लड़कियाँ थी। हमारे यहाँ की लड़कियाँ हवाई जहाजों में हैं, कमाण्डो प्रशिक्षण में भी लड़कियाँ आ रही हैं। अमेरिका जैसे देशों में लड़कियाँ पुलिस में, सेना में, सब जगह हैं। ऐसी तो कोई बात नहीं कि उनसे काम नहीं हो सकता है। औरत को केवल भोजन बनाने के लिये, केवल बच्चे पालने के लिए घर में रखना गलत है।

बच्चों का लालन-पालन किसी ऐसे पेशेवर से करवाया जाए, जो उस विद्या को, बच्चे की बीमारी को, उसके मनोविज्ञान को, उसके खान-पान को जानती हो, तो अच्छा है। इंग्लैण्ड जैसे देशों में बेबी-सिटर होते हैं। बेबी-सिटर का लाइसेन्स लेना पड़ता है। वहाँ जो शिशु निकेतन हैं, जहाँ बच्चों को सबेरे माँ-बाप छोड़ जाते हैं, उनका लाइसेन्स होता है। वहाँ सबेरे बच्चे आते हैं, वहाँ की लड़कियों का काम है उनको नहलाना-धुलाना, उनके दाँत देखना कि कहीं दाँत की बीमारी तो नहीं है, उन बच्चों को खिलौनों से खिलाना, ए-बी-सी-डी सिखाना। ऐसी बहुत-सी चीजें सिखाती हैं, फिर शाम को बच्चे वापस चले जाते हैं। इस व्यवस्था का यह अर्थ हुआ कि एक स्त्री के बहुमूल्य जीवन को बरबाद नहीं करना है।

हमारे देश में नब्बे करोड़ आबादी में से पैंतालीस करोड़ का समाज को क्या योगदान मिल रहा है? परिवार के लिये वह कितना कमा पा रही है? अगर स्त्री पढ़ी-लिखी है, नौकरी करे, तीन हजार रुपये कमाए, तो एक हजार में नौकरानी रख ले जो बच्चों को, घर को देख ले। तो भी दो हजार की आमदनी हो जाती है। विदेशों में यही तो करते हैं। यह भी यहाँ गाँववालों को सोचना होगा। शहरों में तो हो ही रहा है, क्योंकि उनके ऊपर दबाव है, गाँवों में अभी दबाव नहीं है।

अंतरिक्ष जीवन का चेतना पर असर

अंतरिक्ष का जीवन एक विचित्र जीवन है। वहाँ कोई भार ही नहीं है। जो व्यक्ति भार-रहित स्थान में रहता है, उसके मस्तिष्क और हृदय पर असर पड़ता है। जो लोग ऐसे स्थानों में जाते हैं, उन लोगों की चेतना सामान्य व्यक्ति की चेतना से भिन्न रहती है। एक तो वे शून्य-गुरुत्वाकर्षण में रहते हैं, दूसरी चीज यह कि कई महीने या साल अकेले रहते हैं। न गाड़ी की

आवाज सुनाई देती है, न बीवी है, न बच्चे हैं, न बैंक है, न टैक्स है, न दुकान है, न मकान है, कुछ नहीं। उनको टेबलेट वाला भोजन खाना पड़ता है। यह तो नहीं कह सकते कि चलो आज पोहा बनाओ या पुलाव बनाओ या हलवा बनाओ। रोज वही नियमित भोजन लेना होता है। नियम के मुताबिक चलना पड़ता है।

पृथ्वी पर चलने का अनुभव और आकाश में उड़ने का अनुभव एकदम अलग होता है। जब हम हवाई जहाज में बाईस हजार फुट की ऊँचाई पर जाते हैं तो दूसरा ही अनुभव होता है न? उसके बाद जब हम उतरते हैं तो कितने दिन हमको जेटलैग रहता है! एक-दो दिन तक सोना पड़ता है। इसलिये चेतना पर तो असर पड़ता ही है। जितने लोग भी ऊपर अंतरिक्ष में गये हैं, उन लोगों का एक ही कहना है, अजब-तमाशा! जिसने यह बनाया वह राम मुझमें, मैं राम में हूँ!

सूर्य सोम में, अनिल व्योम में,
घरन घटा धरणी में।
तुम सबमें और सभी दिशा में,
छाए नट नागर हो तुम।

वहाँ पर ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव अधिक स्पष्ट होता है। हमने बहुत-से अंतरिक्ष यात्रियों की पुस्तकें पढ़ी हैं, सब का यही अनुभव है। अब भगवान ऊपर ही रहते हैं, ऐसी तो कोई बात नहीं है। भगवान तो यहाँ भी रहते हैं, मगर यहाँ हमें भगवान का अनुभव आसानी से नहीं होता। क्यों? अब जैसे हम बोल रहे हैं, तुम सब सुन रहे हो। अगर यहाँ बैण्ड-बाजा बजने लग जाए तो क्या होगा? हम तो बोल रहे हैं, लेकिन तुम नहीं सुन सकते क्योंकि तुम्हें बैण्ड-बाजा ज्यादा सुनाई देगा। यहाँ दुनिया में इतना बैण्ड-बाजा बजता है कि आदमी को भगवान का ख्याल ही नहीं आता। अन्दर में जो भगवान की आवाज है, जो उनकी मूक ध्वनि है, जो उनका संगीत है, वह हमें नहीं सुनाई देता, क्योंकि ये इन्द्रियाँ बहुत बैण्ड-बाजा बजाती हैं। इच्छा, प्रेम, राग, द्वेष, कामना, क्रोध, चिन्ता, भय—हमारे दिमाग में कितनी चीजें हैं। चिन्ता होती है,डर लगता है, प्रेम होता है, आसक्ति होती है, दिल किसी से लगता है, किसी से झगड़ा होता है, गुस्सा आता है, नहीं होता है क्या? यही तो बैण्ड-बाजा

है। जब तक यह नहीं रुकेगा, तब तक परमात्मा की आवाज को तुम सुन नहीं सकते, हालाँकि परमात्मा यहाँ भी हैं।

ऊपर अन्तरिक्ष में जाने से सामने परमात्मा दिखेंगे? नहीं, परमात्मा तो यहाँ भी हैं, वहाँ भी हैं। जो शटल कल रात अंतरिक्ष में गया, जानतो हो वह कितनी दूरी पर गया है? एकदम अन्तरिक्ष में गया है, जहाँ शून्यता है, भारहीनता है। जैसे हमारा भार यहाँ सत्तर किलोग्राम है, लेकिन वहाँ हमारा भार शून्य हो जायेगा। जब तुम इतने ऊपर चले गये कि तुम्हारा वजन समाप्त हो गया तो पहला अनुभव होता है शरीर के हल्केपन का। जब तुम मेहनत करके आराम करते हो, बिस्तर में अलग अनुभव नहीं होता है क्या? वहाँ हल्कापन महसूस होता है। उसी तरह से वहाँ जाते हो, हल्कापन महसूस होता है, शरीर के वजन का तुम्हें आभास नहीं होता। यह पहला परिवर्तन हो गया वहाँ।

दूसरी चीज, इन लोगों को वहाँ हर एक काम, हर एक चीज बड़े ढंग से करनी पड़ती है। खाना समय पर, सोना समय पर, व्यायाम समय पर, जिसको जो काम मिला है वह समय पर करना पड़ता है। उसमें लापरवाही का कोई सवाल नहीं उठता। सिगरेट-बीड़ी, शराब, स्कॉच, औरत, सब छूट जाती है। वहाँ ब्रह्मचर्य पालन करना पड़ता है। जुआ-ताश नहीं खेल सकते। क्या यह योगी का जीवन नहीं हुआ? अब जब ऐसा जीवन यापन करते हैं तो निश्चित रूप से उनकी मानसिक चेतना ऊँची होगी और यह तो मानने की बात है कि जो लड़की वहाँ अन्तरिक्ष में कल रात गई है, कल्पना चावला, वह साधारण लड़की तो नहीं होगी! जैसे गाँव की लड़कियाँ होती हैं वैसे ही वह गाँव की लड़की है, फर्क इतना है कि वह स्कूल में पढ़ी है। पर उसकी तकदीर कुछ ऐसी रही कि अठारह साल में वह देश छोड़कर चली गई, अमेरिका पहुँच गई। उसके दिमाग में हमेशा यही रहा कि अन्तरिक्ष में



जाएँ। उसने विज्ञान पढ़ा। अंतरिक्ष जाने के लिये पाँच हजार उम्मीदवार थे, उनमें से इसका चयन किया गया है।

घर-गृहस्थी, सांसारिक संबंधों, प्रेम और घृणा से अलग रहना जिन लोगों के लिये स्वाभाविक हो, वे सामान्य नहीं होते हैं। सामान्य आदमी तो घर-गृहस्थी में, प्रेम में रहना चाहता है, सुरक्षित रहना चाहता है। संतान, पैसा, स्त्री-पुरुष की संगति चाहता है। मगर कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो कहते हैं कि यह भी ठीक है, पर हमें कुछ और बनना है। अब उसके लिये उन्हें कुछ तो त्याग करना पड़ता है। अगर वे त्याग नहीं करेंगे तो कुछ नहीं बन सकते। आखिर कल्पना ने किसी चीज को त्यागा होगा न? वह पैंतीस साल की है। उसने अपने विवाहित जीवन को त्यागा होगा। एक निर्णय तो लेना पड़ा होगा कि शादी करूँ या यह करूँ। उसने प्राथमिकता दी कि यह करूँगी। किसी चीज को पाने के लिये किसी चीज को खोना पड़ता है, यह प्रकृति का अटल नियम है।

वैज्ञानिकों ने बहुत-से आश्चर्यजनक काम किये हैं और बहुत सारे आश्चर्यजनक सिद्धान्तों का पता लगाया है। वे सिद्धान्त हमारे सामने प्रत्यक्ष कर भी दिये हैं। अब दिल्ली में कोई नाच-गा रहा है और तुम देवघर में अपने घर में देख रहे हो। उन्होंने यह सिद्धान्त निकाला, किसी भी रूप की छवि तरंगों में बदलकर, उसको अन्तरिक्ष के माध्यम से भेजकर फिर उसको यहाँ स्थानान्तरित किया जा सकता है, दर्शाया जा सकता है। यानि केवल आवाज ही नहीं बल्कि रूप भी सम्प्रेषित कर सकते हो।

आजकल उपग्रह से तस्वीर निकाली जाती है, जमीन के अन्दर कहाँ पानी है, कहाँ तेल है, वे लोग यह सब वहाँ से पता लगाते हैं। अभी तो पता लगाया है कि हमारे यहाँ राजस्थान में एक नदी बहती थी। ऋग्वेद में सरस्वती शब्द आता है। सरस्वती के किनारे सामगान किया गया, मगर कोई सरस्वती नदी तो मिली नहीं! अब उपग्रह की तस्वीरों से पता चला है कि राजस्थान में नदी बहती थी। उन्हें उसका पुराना मार्ग मिला है। वह सरस्वती नदी थी, बाद में उसका रास्ता बदल गया, वह पंजाब, सिंध, ब्यास की तरफ चली गई।

आदिकाल में लोग जो मानसिक वार्तालाप करते थे, वह कैसे होता था?

पूर्व काल से हम जो विज्ञान आज प्राप्त कर रहे हैं, उसे पहले चेतना से किया करते थे, जिसको योग कहते हैं। मगर कलियुग में यह निषिद्ध है।

कलियुग में कोई भी मनुष्य अपने मन से यह सब संचालन कर सकेगा, यह अब निषिद्ध है क्योंकि कलियुग में मनुष्य का हृदय बहुत कलुषित हो गया है। अगर कलियुग में मनुष्य का मन इतना सक्षम हो जाए जितनी सक्षम आज तुम्हारे यंत्र और मशीनें हैं तो जिन्दा रहने का समय नहीं मिलेगा क्योंकि हर एक मनुष्य का मन कलुषित है। कोई यह नहीं कह सकता कि मेरा मन पवित्र है। सबके मन में हिंसा, क्रोध, वासना और चिन्ता है, गुस्सा आता है, आसक्ति बढ़ी हुई है।

अब ऐसे आदमी को यदि मन की शक्ति दे दी जाए तो क्या करेगा? दूसरों का विनाश ही करेगा न! इसलिये कलियुग में प्रकृति ने मनुष्य से यह शक्ति छीन ली है। पहले के समय में लोग श्राप दे देते थे, अब वह नहीं हो सकता है। किसी भी व्यक्ति को उसके अधिकार के अनुसार अस्त्र-शस्त्र दिये जाते हैं। अब कहीं भी, कोई भी मनुष्य इतना लायक नहीं रहा।

मनुष्य भौतिकवादी, पदार्थवादी और स्वार्थी हो गया है। आज मनुष्य का परिवार मियाँ-बीवी और बच्चों तक सीमित है, उसके अलावा किसी की वह चिन्ता ही नहीं करता। हम अपने परिवार के लिये कुछ भी बुरा कर सकते हैं, यह आज के मनुष्य की विशेषता हो गई है। अगर तुम्हारा परिवार बढ़कर सारा गाँव, सारी पंचायत, सारा समाज हो जाए, तुम्हारा अपना उत्तरदायित्व बन जाए, तो वह शक्ति वापस आ सकती है। नि:स्वार्थ व्यक्ति को यह शक्ति प्राप्त हो सकती है। अन्यथा कलियुग में यज्ञ, तप, आदि सब मना किया गया है, यह नहीं हो सकता है। आदमी तप करेगा तो खून सूख जाएगा, जिगर खराब हो जायेगा, पेचिश हो जायेगी, मर जायेगा। पहले के जमाने में सुनते हैं न कि ऋषि-तपस्वी क्या-क्या करते थे? आज करके देखो, पन्द्रह दिन भी नहीं कर सकोगे।

प्रकृति ने ऐसा नियम बनाया है कि जब आदमी सच्चा होता है तब उसकी शक्ति का आधार कुछ अलग होता है और जब आदमी बहुत बदमाश होता है, तब उसकी शक्ति का आधार दूसरा होता है। आजकल इतने कानून बने हैं, पहले इतने कानून थे क्या? क्यों नहीं थे? कभी जरूरत ही नहीं थी। जिस समाज में कानून की जरूरत नहीं होती, वहाँ कानून नहीं बनते। लेकिन आजकल हर चीज के लिये कानून बन जाता है, ताकि अपराधी को, बदमाश को फँसाया जा सके। यह ऐसा युग है।

हाँ, कोई-कोई महात्मा पैदा होते हैं, जिनको भगवान थोड़ी-बहुत विभूति दे देते हैं, लेकिन जैसा तुम लोग नारद जी के बारे में सुनते हो, वैसा किसी

को देखते हो क्या? वे तो बिना हवाई-जहाज के सभी जगह जाते थे। हनुमान जी के बारे में भी तो सुनते ही हो। यह जिस युग की बात है, उस युग में मनुष्य आज की तरह नहीं था। आज का आदमी बहुत निम्न स्वार्थ वाला हो गया है और उसकी शक्ति एवं आयु भी बहुत कम हो गई है। आज के जमाने में बहुत लोगों को तो पच्चीस-तीस के बाद ही मधुमेह हो जाता है। यह कलियुग है। पहले के जमाने में लोग मन से बातें जान लेते थे, अब तो टेलीफोन से पता लगाना पड़ता है। जो चीज पहले मन से की जाती थी, आज वह मशीन से की जाती है।

जिस तरह बैक्टीरिया को देखने के लिये माइक्रोस्कोप की, दूर की चीज देखने के लिए दूरबीन की और तरंगों एवं किरणों को देखने के लिये अलग-अलग उपकरणों की जरूरत पड़ती है, उसी तरह से भगवान की महानता को जानने के लिये दिव्य-दृष्टि की जरूरत पड़ती है। अर्जुन ने भगवान से कहा, 'भगवन्! आप तो बड़ी-बड़ी बातें कह गये कि नदियों में मैं गंगा हूँ, पर्वतों में मैं हिमालय हूँ, वृक्षों में मैं पीपल हूँ, महीनों में मैं मार्गशीष हूँ, वेदों में सामवेद हूँ, यह हूँ, वह हूँ, इत्यादि। आपने तो अपनी विभूतियों का वर्णन कर दिया, अब मुझे अपनी विभूति दिखाइये।' भगवान कृष्ण ने कहा, 'इन आँखों से तू नहीं देख सकता। ठीक है, *दिव्यं ददामि चक्षुः*—मैं तुझे दिव्य चक्षु प्रदान करता हूँ। अब तू मेरे योग और ऐश्वर्य को देख।' तब श्री कृष्ण ने उसे विराट-रूप दिखाया। जो विराट रूप दिखाया, वह इन आँखों ने नहीं, बल्कि उसकी आध्यात्मिक चेतना, अन्तर्दृष्टि, दिव्य-दृष्टि ने देखा। अर्जुन के अन्दर चेतना का उद्भव हुआ। संजय ने भी देखा क्योंकि उसको वेदव्यास जी ने दिव्यदृष्टि दी थी।

देखा जाए तो गीता अन्धों की पाठ्य-पुस्तिका है क्योंकि उसमें दो अंधे थे। एक तो धृतराष्ट्र, जो जन्म से अंधा था और दूसरा अर्जुन, जो मोह में अंधा हो गया था। धृतराष्ट्र आँख से अन्धा था, इसलिये संजय ने उसे बताया। अर्जुन मोह के कारण अंधा हो गया था, उसे अपना कर्तव्य नहीं सूझ रहा था, तब उसे भगवान कृष्ण ने बताया।

क्या यह दिव्य-दृष्टि सामान्य व्यक्तियों को भी प्राप्त होती थी?

नहीं, दिव्य-दृष्टि भगवत्-कृपा, ईश्वर के संकल्प से प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं। दिव्यदृष्टि गुरु के माध्यम से प्राप्त होती है, मगर उसके प्रदाता स्वयं

भगवान हैं। इसलिये यदि किसी की दिव्य-दृष्टि हो, तो उसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश का, राम का, देवी का, कृष्ण का, सबका अनुभव होगा, और जिसकी दिव्य-दृष्टि नहीं है, वह फिर इनको भावना की दृष्टि से देखता है।

हम लोग जो भगवान को, राम को, देवी को, हनुमान को मानते हैं, उसे दिव्य-दृष्टि के कारण नहीं मानते। वह हमारी भावनात्मक दृष्टि है, और उस भावनात्मक दृष्टि को भक्ति कहा जाता है। अपनी भावना से हमें दिखाई दे रहा है, हम भावना से उनको देख रहे हैं, इसका अर्थ हुआ कि भक्ति इसका आधार है। भक्ति की वजह से वे दिखते हैं। इसलिये इस युग में भक्ति आधार है। दिव्य-दृष्टि भगवान कभी नहीं देंगे क्योंकि तुम लोगों को दिव्य-दृष्टि के लिए फुर्सत कहाँ है, जिज्ञासा कहाँ है? इसलिये इस युग में भावनात्मक दृष्टि का ही अवसर है।

इस पर एक और प्रश्न उठता है कि जब मेघनाद को ब्रह्माजी का दर्शन हुआ, उनसे बात हुई, रावण ने भी इतनी तपस्या की, फिर भी वे राम को क्यों नहीं पहचान पाए? उन्हें ब्रह्मा जी का दर्शन हुआ क्योंकि उनके पास दिव्य-दृष्टि थी, तो उस दिव्य-दृष्टि से राम को क्यों नहीं पहचाना?

नहीं, उन लोगों के पास दिव्य-दृष्टि नहीं थी। रावण के बारे में जो भी कहा जाता है, वह थोड़ा-सा धिक्कार की भाषा में कहा जाता है। रावण को इस रूप में नहीं देखा जाता कि वह एक विद्वान् था, उच्च कुल में पैदा हुआ था, एक महान् साम्राज्य का अधिनायक था, समस्त वेदों का ज्ञाता था, महान् तपस्वी था या शिव का परम भक्त था। आखिर उसमें दुर्गुण ही क्या थे? केवल एक ही दुर्गुण था, जो भी औरत उसको मिलती, उसे वह फँसा देता था। उसके समाज के लोग इसे दुर्गुण नहीं मानते थे। सीताजी को हरकर लाया, जिस समाज का वह अधिनायक था, उस समाज के लोग इसे खराब नहीं मानते थे। परन्तु उसकी राक्षस-जाति में यह नियम था कि अपहृता स्त्री इस अपहरण को स्वीकार करे तो ठीक है, अगर स्वीकार न करे तो यह गलत है। बस इस बात पर वह अपने समाज के आगे भी हार गया। विभीषण ने इसी पर आपत्ति की। यही माल्यवन्त और कुम्भकरण ने भी कहा। और भी बहुतों ने उसे समझाया होगा, पर वह नहीं माना।

सवाल है कि इतना विद्वान् होते हुए भी, लोगों के इतना समझाने पर भी उसने राम को क्यों नहीं पहचाना?

नहीं, तुम यह नहीं कह सकते कि उसने राम को नहीं पहचाना। उसे तो मालूम था। इस बात को समझाने के लिए थोड़ा विस्तार से बोलेंगे। भगवान का अनुभव करने के लिये भावनाओं में तीव्रता का होना आवश्यक है। दूरबीन जितनी अच्छी होगी, उसका फोकस उतना ही अच्छा होगा। उसी प्रकार भावनाएँ बहुत तीव्र होनी चाहिये। अब तीव्र भावनाएँ कितनी होती हैं?

माँ की बच्चे के लिये तीव्र भावना होती है। सामान्यत: यदि किसी स्त्री का पति बदमाश, शराबी या जुआरी है, तो उसे वह छोड़ भी सकती है। उसे ज्यादा झंझट नहीं है, मगर यदि उसका लड़का जुआरी और शराबी है, तो भी छोड़ नहीं सकेगी। यह तीव्र भावना है। इसी तरह कामी व्यक्ति में स्त्री के प्रति भावनात्मक तीव्रता होती है। रामचरितमानस में लिखा भी है–

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम॥

तीसरी तीव्र भावना क्या है? वैर, भयंकर दुश्मनी। लोग गुस्से में आकर कहते हैं न, उसे मार डालेंगे, उसके सारे खानदान को नष्ट कर देंगे–यह मनुष्य का वैर भाव है। रावण ने सोचा कि भई, भक्ति-भाव तो अपने में है नहीं। क्यों नहीं है? हम राम को भगवान मानने को तैयार नहीं हैं। हमारी खोपड़ी में उतरता ही नहीं कि भगवान माँ के पेट में कैसे उतरा! तो राम के प्रति भक्ति-भाव नहीं हो सकता। फिर कौन-सा भाव हो?

किसी भी तीव्र भाव के बिना भगवान के निकट पहुँच नहीं है। बिना टिकट के सिनेमा या हवाई जहाज में भी नहीं घुस सकते। उसी तरह भगवान के पास जाने का टिकट है तीव्र भाव। तीव्र भाव में भक्ति भाव है या फिर वैर भाव। रावण ने चयन किया कि उसके लिये वैर भाव सरल है। जितने भी काण्ड हुए, खर, दूषण, ताड़का, सुबाहु जैसे इतने राक्षस मारे गए, तो उसके पास यह एक मुद्दा था। उसने कहा, 'हम बदला लेंगे।' इस तरह उसे वैर भाव हो गया।

अब वैर भाव के जितने भी नियम होते हैं, उनका पालन करना पड़ेगा। उस वक्त यह नहीं सोचना है कि राम भगवान विष्णु के अवतार हैं, परमपुरुष हैं, शुद्ध परात्पर ब्रह्म हैं। नहीं, राम एक वनवासी है, उसके पास एक सुन्दर औरत है, अब हम उसको लूटकर ले आयेंगे।

रावण ने जो कुछ किया उस भाव के अनुरूप किया। यह नहीं कि एक तरफ तुम्हें वैर की भावना हो, दूसरी तरफ 'श्री राम जय राम जय जय राम' कहो। वैर भाव माने वैर भाव, वह हमारा दुश्मन है। उसका कोई भी गुण, कोई भी अच्छाई हमें पसंद नहीं है। बाप ने घर से निकाल दिया, दर-दर भटकता है, श्रीराम के बारे में रावण यही तो बोलता था। जब वैर भाव है तो उसका पूरा नाटक तुम्हें करना पड़ेगा। तभी भावना में तीव्रता आएगी।

इसलिये उसने किसी की बात नहीं सुनी?

जब अन्दर भावना तीव्र होती है तब कोई किसी की बात नहीं सुनता। चाहे वात्सल्य भाव हो या माधुर्य भाव हो या कोई भी भाव, उस वक्त किसी की बात सुननी भी नहीं चाहिये। समझ गये न?

मगर मरते समय तो उसे कोई दिव्य अनुभव हुआ होगा?

यह तो हमारे कथाकार बोल देते हैं कि मरते समय उसने राम कहा। अब बोला कि नहीं बोला, कैसे कहें? एक उदाहरण से समझाते हैं। यह जो भँवरा होता है न, इस जाति में स्त्री-पुरुष नहीं होता। ये केवल एक लिंग के ही होते हैं। ये बच्चे कैसे पैदा करते हैं, तुम्हें मालूम है? यह मिट्टी लेकर घोंसला बना लेता है, फिर इसके बाद घास में जाता है। घास में से किसी भी छोटे, हरे कीड़े को अपने दाँत से पकड़कर उसमें डाल देता है। वह उसका बच्चा नहीं है, कोई भी कीड़ा है। तीन-चार कीड़े उसमें डाल देता है, फिर मिट्टी से दरवाजा बन्द कर देता है। मैं अगस्त-सितम्बर में यहाँ बैठकर देखता हूँ। वह बराबर आता है, दरवाजा खोलता है और अन्दर चला जाता है। अन्दर करीब पन्द्रह मिनट तक ऊँ-ऊँ-ऊँ करता रहता है, फिर दरवाजा बन्द कर चला जाता है। कुछ दिन के बाद उस घोंसले से ततैया तैयार होकर निकलता है।

जीव जिस चीज का बार-बार स्मरण करेगा, हर बार जो उसके दिमाग में डाला जायेगा, वह वैसा ही हो जाता है। इसे हम लोग वेदांत में कीट-भ्रमर न्याय कहते हैं—जीवात्मा किस तरह परमात्मा का स्मरण करते-करते परमात्मा-स्वरूप हो जाता है। और इसका उदाहरण देते हैं जैसे भँवरे कीट के साथ करते हैं।

अब आते हैं तुम्हारे प्रश्न पर। जिस दिन से रावण सीता को हरकर लाया, उसकी सीता पर परम आसक्ति थी। मगर सीता ने स्वीकार नहीं किया, सारा

जगत् जानता है। फिर जब रामजी समुद्र लाँघकर उस पार पहुँच गये, तब रावण का मन सीता से हटकर स्वत: राम पर आ गया। जब तक मन सीता पर केन्द्रित था तब तक वासना मूलक था, जब राम पर आया तो वह वासनामूलक नहीं रहा, वह हो गया भयमूलक। दिन-प्रतिदिन भय बढ़ता गया, रावण को चौबीस घण्टे राम के अलावा कुछ सूझता ही नहीं था। अब ऐसा आदमी जिसे राम के सिवा कुछ सूझे ही नहीं, वह तो राम ही हो जायेगा न?

जीवात्मा जब नित्य-निरन्तर परमात्मा के किसी स्वरूप का स्मरण करता है और परमात्मा के अलावा और किसी चीज का स्मरण नहीं करता, अपना भी जब विस्मरण हो जाता है, तब वह तद्रूप हो जाता है। तुम पत्थर को पानी में डालोगे तो पत्थर पत्थर ही रहेगा, मगर नमक को पानी में डालोगे तो वह पानी में घुल-मिल जायेगा। जैसे भौंरे के ऊँ-ऊँ-ऊँ से कीड़ा भौंरा बन जाता है, वैसे ही डर के मारे ईश्वर का निरंतर स्मरण करते-करते रावण जैसा व्यक्ति भी ईश्वर बन जाता है।

अब तुम भगवान को कैसे स्मरण करते हो, यह तुम पर निर्भर करता है। भगवान को तुम प्रेमी समझ कर, बेटा समझ कर, पति समझ कर, प्रभु समझ कर या दुश्मन समझ कर स्मरण करो। मीराबाई तो वही करती थी, कहानी तो तुम लोगों को मालूम है। मीराबाई को छोटी उम्र में जो मूर्ति मिली, उसने उसी को अपना पति मान लिया। अब उसका ही स्मरण करती रही। वह श्याम जी की मूर्ति थी, तो गिरिधर गोपाल ही उसके पति हो गये। मीरा के लिये उस मूर्ति का वही महत्त्व था, उसके प्रति वही भाव था जो हर स्त्री का अपने पति के लिये होता है। उसको कहते हैं तद्रूपता। यह तद्रूपता बहुत श्रेष्ठ वस्तु है। बनिया लोगों की दृष्टि चौबीस घण्टा पैसे पर रहती है। मोची हर एक के जूते को ही देखता रहता है। हर एक व्यक्ति की वासना कहीं पर टिकी रहती है। किसी की स्त्री में, किसी की धन में, किसी की कुत्ते में, किसी की माया में तो किसी की भगवान में तद्रूप रहती है।

दूसरी बात, तुम लोग भूल रहे हो कि राम और रावण दोनों फिल्म एक्टर थे। भगवान ने राम और रावण के लिए एक बहुत बड़ी स्क्रिप्ट बनायी। क्यों? भक्तों ने अपने मन में सोचा कि हम भगवान को पाना चाहते हैं, पर भगवान को कहाँ पाएँ? उनका कोई पता, नाम, रूप, लम्बाई-चौड़ाई, ऊँचाई-नीचाई, काला-गोरा कोई वर्ण तो है नहीं। सुना है वे जन्म भी नहीं लेते, मरते भी नहीं हैं और इन आँखों से दिखाई भी नहीं देते। अरे भई,

तो पाएँ किसको, खोजें किसको? न हमें तुम्हारा नाम मालूम, न तुम्हें कभी देखा, अब क्या करेंगे? तब भक्तों ने कहा कि भगवान, कुछ तो कृपा करो ताकि हम तुम्हें प्राप्त कर सकें। तब भगवान ने अवतार लिया।

भगवान ने रावण को मारने के लिये नहीं, बल्कि भक्तों का आधार बनने के लिये अवतार लिया है। अगर भगवान का जन्म राम या कृष्ण के रूप में नहीं होता तो तुम आधा घण्टा आँख बन्द करके किसकी पूजा करते? उस निराकार ब्रह्म की? भगवान ने रावण को मारने के लिये साकार रूप में जन्म नहीं लिया। धर्म का उद्धार और अधर्म का नाश, यह तो उनके लिये एक बहाना था। असली प्रयोजन भक्त हैं, जिनके लिये भगवान साकार रूप में जन्म लेते हैं।

इस बात को अच्छी तरह से याद रख लो, अगर भगवान साकार रूप में जन्म नहीं लेते तो सब भक्त कम्बख्त रहते। *अहं ब्रह्मास्मि* बोलते-बोलते अपने को ही ब्रह्म समझते। दाल-रोटी खाने वाला, टट्टी-पेशाब करने वाला, दूसरों को मारने वाला, चोरी-डकैती करने वाला आदमी अपने को ब्रह्म कहता है! तुम ब्रह्म कैसे बन गये? ब्रह्म तो उस महान् शक्ति का नाम है जिसने सूर्य, चंद्र, तारे, यह सारा अजब-तमाशा बनाया। तुम अजब-तमाशा बनाओ, हम तुम्हें भी ब्रह्म मानेंगे।

भगवान ने जानबूझ कर जन्म लिया, लीला की है। राम ने रावण को मारा, यह उनकी लीला है। जैसे तुम लोग फिल्म बनाते हो तो क्यों बनाते हो? लोगों को बतलाने के लिये कि सच-झूठ, पाप-पुण्य क्या होता है। फिल्म में एक उदाहरण, एक आदर्श, एक संदेश होता है कि नहीं? जिस तरह से हर फिल्म के पीछे एक उद्देश्य रहता है, उसी तरह से पूरी रामायण में एक उद्देश्य है। राम और रावण का युद्ध तो एक किस्सा है, जिसे लीला कहते हैं। रामलीला एक कथा है, जिसमें रामजी थे, सीताजी थीं। रावण ने उन्हें हर लिया तो राम ने मार दिया। यह तो किस्सा-कहानी है, मगर असली चीज है कि रामजी ने पूरा जीवन कैसे बिताया, कैसे कपड़े पहने, उनके कैसे बाल थे, कैसी नाक थी, कैसी आँखें थीं, कितने लम्बे थे, कैसा वर्ण था, कैसे बोलते थे, जब धनुष में बाण का संधान होता था तो उस समय उनकी आँखों का रंग क्या होता था। भक्त लोग इसे देख-देख कर ध्यान करते हैं और योग को प्राप्त करते हैं।

सूरदासजी अंधे थे। पहले उनकी दृष्टि बहुत बुरी थी, औरतों पर लगी रहती है। तंग आकर उन्होंने अपनी आँखें फोड़ दीं। उन्होंने कहा, 'न रहेगी आँख, न औरतों की आयेगी याद।' अंधा होने पर भी सूरदासजी को भगवान

श्रीकृष्ण की सारी लीलाएँ फिल्म की तरह दिखाई देती थीं। जैसे टी.वी. में तुम लोग देखते हो, यशोदा श्रीकृष्ण को पालने में झुला रही है या वे जंगल में गाय चराने जा रहे हैं या पूतना को मार रहे हैं, वैसा उन्हें सब दिखाई देता था। अगर भगवान श्रीकृष्ण यह लीला नहीं करते तो सूरदास को यह दिखाई कैसे देता? और यह सूरदास को ही नहीं, आज हमलोगों को भी दिखाई देता है। जब भी तुम उन गीतों को पढ़ते या गाते हो तो तुम्हारे सामने वह तस्वीर आ जाती है न? साफ न आए, मगर आती तो है।

अगर भगवान कृष्ण पैदा नहीं होते और यह लीला नहीं करते तो सूरदास क्या गाते? तू अजर है, अमर है, अविनाशी है, अनन्त है, अछेद्य है, अभेद्य है? सबमें 'अ' लगा दो, भगवान का नाम हो गया। ईश्वर निराकार है, यह पक्की बात है, उसमें खण्डन नहीं करते, मगर वह निराकार ईश्वर हमारी पहुँच के बाहर है। वह निराकार ईश्वर हमें देखना चाहे तो देख सकता है, मगर हम उसे कभी देख सकेंगे, यह हम मानने के लिये तैयार नहीं। असंभव है। तर्क के अनुसार असंभव और वास्तविक रूप से भी असंभव है। सोचो, एक चींटी चन्द्रमा को चूमने चली है, असंभव है न?

इसलिये भगवान के बारे में जो तुम कह रहे हो, 'यह राम-रावण की लड़ाई है, उसमें ऐसा हुआ, वैसा हुआ', यह सब अच्छा है, सुनना चाहिये, सुनाना चाहिये, मगर साथ ही यह बात ध्यान में रखो कि भगवान का जन्म हमलोगों के लिये हुआ, ताकि हमें जो लीला पसंद आए उस पर ध्यान कर सकें। तुम्हें रामजी धनुष चढ़ाए अच्छे लगते हैं उस पर ध्यान करो। तुम्हें रामजी सीताजी को बायें तरफ रखकर खड़े अच्छे लगते हैं तो उस पर ध्यान करो। तुम्हें रामजी हनुमानजी की पीठ पर बैठे अच्छे लगते हैं तो उस पर ध्यान करो। तुम्हें रामजी पूरे दरबार में बैठे अच्छे लगते हैं तो उसका ध्यान करो। तुम्हें रामजी राजवेश में अच्छे लगते हैं, तो ठीक है, उसका ध्यान करो। यदि तुम्हें रामजी तपस्वी वेश में अच्छे लगते हैं, जो वन-वन भटक रहे हैं, तो उसका ध्यान करो। रामजी केवट से पैर धुला रहे हैं, यह छवि अच्छी लगती है तो उस पर ध्यान करो। भगवान ने भक्तों को अपना स्वरूप दिखलाकर उनकी माया को हरने के लिये अवतार लिया, ताकि उनकी लीला का चिन्तन करते-करते तुम्हारा मनवा ठिकाने आ जाए। असली चीज तो मनवा को ठिकाने लाने की है। यह मनवा निराकार से ठिकाने लगने वाला नहीं, यह पक्की बात है।

—20 नवम्बर 1997



अध्याय 17

काश्मीर सूफी लोगों की भूमि है। वहाँ लोग बहुत शताब्दियों तक शान्ति से रहे हैं। अब तो राजनैतिक मुद्दा हो गया है, नहीं तो काश्मीर के मुसलमान अन्य मुसलमानों की तरह नहीं हैं, न वहाँ के हिन्दू दूसरे हिन्दुओं की तरह हैं। सूफी विचारधारा, शैव-धर्म और तंत्र—ये तीनों काश्मीर की संस्कृति में घुले-मिले हैं। यहाँ जो पाठा वगैरह कटता है, यह असली तंत्र नहीं है, यह तो गंवार लोगों का तंत्र है। शराब पी ली, पाठा काट दिया, मुर्दे की खोपड़ी रख ली और बोल दिया कि हम तांत्रिक हैं, यह तो लोगों को बेवकूफ बनाने का तरीका है। मगर काश्मीर का तंत्र और शैव दर्शन बहुत उच्च कोटि का है।

शिव जी का सम्प्रदाय दो जगह बहुत अच्छे से पनपा, एक तो काश्मीर में, दूसरा दक्षिण भारत में। दक्षिण भारत में शैव सम्प्रदाय बहुत प्रभावशाली रहा है। वहाँ शैव मत में बहुत संत पैदा हुए हैं। हमलोगों के यहाँ सम्प्रदाय को एक दर्शन के रूप में देखते हैं। यह कोई आवश्यक नहीं है कि शैव होने पर ही तुम शैव सिद्धान्त का अध्ययन करो। तुम चाहे ईसाई हो या मुसलमान, तुम शैव सिद्धान्त का अध्ययन कर सकते हो, क्योंकि शैव सिद्धान्त एक दर्शन है। दर्शन का क्या आधार होता है? जो नहीं दिखाई देता है, जो अव्यक्त तत्त्व है, वह कौन है? परमात्मा का जो व्यक्त स्वरूप है वह तो दिखता है—सृष्टि दिखती है, जीव-जन्तु सब दिखते हैं, मगर पंचभूतों के परे जो परमात्मा का स्वरूप है, जो उनका मूल आर्य रूप है, वह कैसा है? वह एक है या अनेक है? दर्शन-शास्त्र इस तरह के प्रश्नों पर चिंतन करता है।

जो परम तत्त्व है, वह अजन्मा है, कभी पैदा नहीं हुआ, इसलिये अविनाशी है। वह अकर्ता भी है। अकर्ता का मतलब कुछ नहीं करना। यह

दर्शन का मूल सिद्धान्त है। अब प्रश्न उठता है कि अगर परमात्मा अकर्ता है तो फिर यह सब करता कौन है? सृष्टि किस का कार्य है? प्रारब्ध-पुरुषार्थ किसका कार्य है? सुख और दु:ख का बन्धन उत्पन्न करने वाला कौन है? बस विवाद इसमें है। अगर यह मानो कि परमात्मा ही करता है तो फिर प्रश्न उठता है कि क्यों करता है। इस विषय पर दर्शन-शास्त्र ने बहुत चिन्तन किया है।

शैव-सिद्धान्त में तीन चीजें देखने को मिलती हैं—ईश्वर, जीव और जगत्। ईश्वर याने शिव जी, जीव याने तुम या हम, और जगत् अर्थात् यह सारी सृष्टि। परन्तु ये जो तीन चीजे हैं, इनका मूल कहाँ है? तुम्हें वृक्ष दिखाई देता है, उसकी दो-चार सौ डालियाँ हैं, पर उसका मूल कहाँ है? मूल तो नीचे है जिससे कई शाखाएँ निकलीं। बस इसी पर लोग चिन्तन करते गये, फिर भी अन्त में पार नहीं पाया। किसी ने कहा यह पुरुष-प्रकृति का खेल है तो किसी ने कहा ब्रह्म-माया है। उसमें भी प्रश्न आ गये। अगर परमात्मा संसार की सृष्टि प्रकृति को आधार बनाकर करता है तो प्रकृति को किसने पैदा किया? इसके जवाब में दार्शनिक कहते हैं, 'नहीं, प्रकृति तो परमात्मा का एक स्वरूप ही है।'

जब दर्शन-शास्त्र में ऐसा चिन्तन करते गये और प्रश्नों के उत्तर देते गये तो हर उत्तर पर एक प्रश्न उठता गया। दार्शनिकों ने, विद्वानों ने, ऋषि-मुनियों ने जो भी उत्तर दिया, उस पर एक नया प्रश्न उठता गया। अन्त में थककर उन्होंने कहा, 'ठीक है, इसका कोई अन्त नहीं है। ईश्वर अज्ञेय है।' जिस चीज को जान नहीं सकते उसके बारे में फिर वाद-विवाद क्यों करना? जब कह ही दिया कि ईश्वर ज्ञान का विषय नहीं है तो फिर ज्ञान की चर्चा ही क्यों करना? तब उन्होंने उपासना मार्ग अपनाया। उपासना मार्ग याने भक्ति। दक्षिण भारत में भक्ति पंथ चला, सूफियों ने भी भक्ति पंथ को अपनाया। भक्ति का मतलब यह हुआ कि भगवान क्या हैं, कौन हैं, कैसे हैं, कहाँ हैं, क्यों हैं, यह सब पूछना बन्द करो। तुम भगवान को जैसा समझते हो वैसे ही उसकी उपासना करो। भगवान को अगर साकार समझो तो साकार की उपासना करो, अगर तुम भगवान को गुरु के रूप में देखना चाहो तो गुरु की उपासना करो। अर्थात् तुम्हारी खोपड़ी में भगवान जितना अटे हैं, उसी की उपासना करो। जो खोपड़ी में अटा नहीं उसको छोड़ दो। भक्ति में बस यही है।

काश्मीर के मुसलमानों में बहुत सूफी लोग हैं। उनमें एक बहुत बड़े ऋषि थे, जिनका नाम था नन्द ऋषि। वे मुसलमान थे, उनके जन्म की विचित्र-

विचित्र कहानियाँ हैं। वे बहुत गरीब घर में पैदा हुए थे, पर वहाँ के लोग उन्हें बहुत मानते हैं। सूफी संतों को वहाँ काफी पूजा जाता है। वहाँ हिन्दू भी जाते हैं, मुसलमान भी। धर्म का जो यह झगड़ा है, वह तो राजनीतिज्ञों का बनाया हुआ है। असल में झगड़ा कुछ नहीं है। अगर ये सब राजनीतिज्ञ न रहें तो झगड़ा आज खत्म हो जाए, जैसे शैवों और वैष्णवों का या वैष्णवों और शाक्तों का झगड़ा खत्म हो गया है।

अब देखो, वैष्णव और शाक्त सम्प्रदायों में कितनी दूरी है। वैष्णव लहसुन-प्याज तक नहीं खाते और शाक्तों की मांस-मदिरा के बिना पूजा नहीं होती। फिर भी देखो, एक ही मन्दिर में दोनों देवी-देवता हैं, एक साथ ही पूजे जा रहे हैं। नहीं है क्या? इतनी दूरी होने पर भी दोनों सम्प्रदायों के देवता एक ही मन्दिर में विराजते हैं और दोनों की पूजा हम एक साथ करते हैं।

इसी तरह अगर हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म में तुलना की जाए तो कोई खास फर्क नहीं है, न आचार में, न विचार में। वे कहते हैं–'ला इल्लाहा इल अल्लाह', मतलब भगवान के अलावा कुछ नहीं, और हम लोग कहते हैं–'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति'। वे भक्ति और प्रार्थना पर जोर देते हैं, हम भी उसी पर जोर देते हैं। वे लोग इबादत कहते हैं, हम लोग आराधना कहते हैं। धार्मिक या सैद्धान्तिक मतभेद तो कुछ भी नहीं है। जो भी मतभेद है उसका कारण राजनीति है और कुछ नहीं।

यह मतभेद क्यों और कैसे आया?

देखो जी, हर राजनीतिज्ञ को अनुयायियों की जरूरत पड़ती है। उस समय लड़ने के लिये जरूरत पड़ती थी, आज निर्वाचन में जरूरत पड़ती है। उस समय जितने ज्यादा लोग उनकी पलटन में रहते थे, उतनी उनकी जीत होती थी। अब तुम्हारी लड़ाई में तुम्हारे साथ कौन आयेंगे? जिनको तुम फँसा सकोगे। मुसलमान ने मुसलमानों को, हिन्दू ने हिन्दुओं को, ब्राह्मण ने ब्राह्मणों को और क्षत्रिय ने क्षत्रियों को फँसाया। जाति, भाषा और धर्म के बल पर उन लोगों ने अपना-अपना संगठन बनाया। उसी संगठन के आधार पर उस वक्त युद्ध होते थे जो आज बैलट-बॉक्स में होते हैं। राजनीति के कारण जो झगड़ा होता है वह तो सदा से चला आ रहा है। अभी तो हिन्दू-मुसलमान के बीच में हो रहा है, पहले शैवों और वैष्णवों के बीच में, हिन्दुओं और जैनों के बीच में, हिन्दुओं और बौद्धों के बीच हुआ। अगर पुराणों को ठीक तरह

से पढ़ो तो मालूम पड़ेगा कि भयंकर युद्ध हुए हैं, मार-काट हुई है, मन्दिर नष्ट हुए हैं। जनसंख्या का बड़े पैमाने पर स्थानांतरण हुआ है। लोग एक जगह से दूसरी जगह भाग जाते थे। शैव लोग राज करने लगे तो वैष्णव लोगों को हटा दिया। वैष्णव लोग राज करने लगे तो शिव जी को हटा दिया। बौद्ध आए तो नारायण को हटा दिया, जैन आए तो राम को हटा दिया। यह तो हमेशा चला है। अब हम लोग नहीं कहते हैं क्योंकि पहले ही झगड़ा काफी है, और झगड़ा क्यों बढ़ाएँ? लेकिन इतिहास इसका साक्षी है। बहुत पुराने इतिहास की बात छोड़ो, आज से करीब तीन-चार सौ साल पहले की बात है, अप्पय दीक्षित दक्षिण भारत के बहुत बड़े शैव विद्वान् रहे हैं। वे तिरुपति में भगवान का दर्शन करने गये तो उन्हें अनुमति नहीं मिली। वे शैव थे, इसलिये उन्हें अन्दर जाने ही नहीं दिया। यह राजनीति ही तो है।

हमें राजनीति से कोई मतलब नहीं, हम दार्शनिक चर्चा करते हैं। हम विवाद की बातें नहीं कर रहे हैं, हम विभिन्न दर्शनों और मतों में समानता बताने की कोशिश कर रहे हैं। वैदिक दर्शन हो या इस्लाम, दोनों का आपस में कोई विशेष भेद नहीं है। हाँ, इतना जरूर है कि वैदिक दर्शन में विद्वानों ने ईश्वर के बारे में जितनी गहराई से चिन्तन किया, ईश्वर के बारे में जो तर्क-वितर्क और चर्चा हुई है, वह इस्लाम या ईसाई धर्म में नहीं हुई। उन लोगों ने किताब में जो लिखा है, उसे चुपचाप मान लिया। हम लोगों ने चुपचाप नहीं माना, बल्कि कहा, 'भगवान है कि नहीं, पहले इसका निर्णय करो।'

आदर्शवाद और यथार्थवाद

आदर्शवाद और यथार्थवाद में अन्तर होता है। जीवन में दोनों के बीच संतुलन आवश्यक है। अगर तुम संस्था या आंदोलन चला रहे हो तो कभी काम करवाने के लिए गुस्सा भी दिखाना पड़ता है। क्रोध नहीं करना चाहिए, यह एक आदर्श है, लेकिन व्यावहारिक जीवन में कभी-कभी क्रोध जरूरी हो जाता है। यह वही समस्या है जिसका अर्जुन ने महाभारत में सामना किया था। युद्धभूमि में उसने अपने सगे-सम्बन्धियों और गुरुजनों को देखा, जिनके साथ उसे युद्ध करना था, मारना था। आदर्श तो यही है कि हिंसा नहीं करनी चाहिए, गुरुजनों का आदर करना चाहिए, युद्ध की बजाय शांति होनी चाहिए। लेकिन उस परिस्थिति पर थोड़ा-सा भी चिंतन करो तो देखोगे कि युद्ध अवश्यंभावी था। मगर अर्जुन नहीं समझ पाया, उसका संदेह बना रहा

और उसका संदेह दूर करने के लिए श्रीकृष्ण को उसे निष्काम कर्म योग की शिक्षा देनी पड़ी।

निष्काम कर्म योग का क्या मतलब है? कर्म करना तुम्हारा दायित्व है, तुम्हारा अधिकार है, लेकिन कर्म का जो फल है, जो परिणाम है, उसके बारे में तुम्हें चिंता नहीं करनी है। तुम किसी पेड़ का बीज जरूर बो सकते हो, लेकिन उस बीज से पेड़ निकलना और उस पर फल आना तुम पर निर्भर नहीं है। इसलिए फल के बारे में सोचे बिना अपने कर्त्तव्यों को करते जाना चाहिए।

जब मैं संस्था से जुड़ा था तो कई प्रकार के निर्णय लेने पड़ते थे। संस्था बड़ी थी और काम करने वाले लोग भी कई तरह के थे। मुझे अनुशासन लागू करना पड़ता था और अगर लोग अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाते थे तो उन्हें निकालना भी पड़ता था। आखिर मेरा संस्था के प्रति उत्तरदायित्व था, आयकर जैसे अनेक सरकारी विभागों के प्रति मेरी जवाबदेही थी। इसलिए मुझे आश्रम के लोगों के साथ एक संन्यासी के रूप में नहीं, बल्कि संस्था के अध्यक्ष के रूप में पेश आना पड़ता था।

जब गंगा दर्शन बन रहा था, वहाँ एक आदमी रहता था जो उस जमीन पर कई सालों से कब्जा किए हुए था। वहाँ से जाने का उसका कोई इरादा नहीं था। उस समय क्या मैं यह कहता, 'मैं एक संन्यासी हूँ, मैं उसे बेदखल



क्यों करूँ?' नहीं, मैं संस्था का अध्यक्ष था और उसे बाहर करना मेरा दायित्व था। फिर भी उसे किसी जोर-जबरदस्ती से नहीं निकाला। हमने अदालत में मुकदमा दर्ज किया और अंत में उसे निकलना पड़ा।

कई बार जीवन में धर्म और कर्त्तव्य के बारे में संदेह और सवाल उठते हैं। संस्था का अध्यक्ष होने के नाते मुझे संस्था के हित के लिए जो भी उचित और न्याससंगत था, करना ही था। उस समय मैं संन्यासी की भूमिका नहीं निभा रहा था, क्योंकि संन्यासी का धर्म दूसरा होता है। आखिर संन्यासी का धर्म यही न होता है कि अगर कोई तुम्हारी कमीज ले तो उसे अपनी पतलून भी दे दो। अगर कोई तुम्हें थप्पड़ मारे तो दूसरा गाल भी आगे कर दो। अगर कोई तुम्हारी चीज चुरा ले तो चुपचाप लेने दो। त्याग और वैराग्य–संन्यासी का यही धर्म होता है। लेकिन जब तुम किसी संस्था के मुखिया की भूमिका अदा करते हो तो तुम्हें अपना व्यक्तित्व भुला देना पड़ता है।

गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यही कहा था, 'तुम दार्शनिक पण्डित की तरह बातें कर रहे हो, लेकिन यथार्थ कुछ और है। इस समय तुम न तो दार्शनिक हो, न भीष्म के पोते हो, न द्रोण के शिष्य हो, न दुर्योधन के भाई हो। तुम इस सेना के सबसे वीर महारथी हो, और सामने शत्रु की सेना खड़ी है। तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है? यह मत सोचो कि तुम्हारे बन्धु-बान्धव मारे जाएँगे, उनकी पत्नियाँ विधवा हो जाएँगी। नहीं, सेनापति को यह सब नहीं सोचना चाहिए। अगर तुम युद्ध नहीं करना चाहते तो पहले सोचना चाहिए था और पहले मना कर देना चाहिए था। धृष्टद्युम्न ने युद्ध के लिए लाखों योद्धाओं को एकत्र किया है। अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे कर लिए गए हैं, सब तैयारियाँ हो गई हैं, और अब तुम कह रहे हो कि मैं नहीं लड़ूँगा। कैसी मूर्खता है यह! यह तुम्हारा धर्म नहीं बल्कि तुम्हारी कमजोरी है, तुम्हारा मोह है जो तुम्हें ऐसा करने के लिए प्रेरित कर रहा है।' श्रीकृष्ण को कई तरीकों से समझाना पड़ा, तब जाकर अंत में अर्जुन को बात समझ आई और वह लड़ने के लिए तैयार हुआ।

यही समस्या किसी होटल के मालिक और वहाँ के कर्मचारियों के बीच या किसी आश्रम के अध्यक्ष और वहाँ के अन्तेवासियों के बीच होती है। अगर मेरे संन्यासी गड़बड़ी करते थे तो मैं उनकी अच्छी खबर लेता था। जरूरत पड़ने पर आश्रम से निकाल भी देता था। मैं साफ-साफ कहता था, 'देखो, व्यक्तिगत रूप से भले ही तुम मेरे शिष्य हो, लेकिन इस संस्था में

तुम एक कार्यकर्त्ता हो और मैं अध्यक्ष हूँ। तुम ठीक ढंग से काम नहीं कर सकते तो बेहतर है कि चले जाओ। मैं बेशक तुम्हारा गुरु हूँ, पर तुम्हें इस बात का नाजायज़ फायदा नहीं उठाना चाहिए।'

धर्म का प्रश्न इस बात पर निर्भर करता है कि इस समय तुम्हारा कर्त्तव्य, तुम्हारा दायित्व, तुम्हारी ड्यूटी क्या है। मान लो अदालत में न्यायाधीश के सामने किसी के खून का मामला आता है और वह खून उसी न्यायाधीश के बेटे ने किया है। क्या वह मुकदमे पर फैसला न्यायाधीश के रूप में देगा या पिता के रूप में? उसे न्यायाधीश बनकर ही निर्णय देना चाहिए क्योंकि उस समय वही उसका धर्म है। लेकिन अगर वह पिता बनकर निर्णय देता है, तो यह उसका मोह है, उसकी आसक्ति है, उसका व्यक्तिगत संबंध है। व्यक्तिगत संबंध के आधार पर कोई न्याय नहीं होना चाहिए, वह संबंध चाहे पति से हो या पत्नी से या संतान से। लेकिन सब जगह व्यक्तिगत संबंध, मोह और आसक्ति ही हमारे कर्मों के आधार बनते हैं। राजनीति में देख लो, यही हो रहा है। देश-विदेश में कितनी ही ऐसी चीजें हो रही हैं जिनका आधार धर्म नहीं, स्वार्थ और मोह है।

धर्म क्या है और अधर्म क्या है, इस बारे में लोग भ्रमित ही रहते हैं। एक और उदाहरण देता हूँ। एक स्त्री ने अपने पति को छोड़ा क्योंकि वह शराब पीता था और लड़कियों के पीछे भागता था। बहुत अच्छा किया। पति से तलाक ले लिया और अपने इकलौते बेटे की खुद से परवरिश की। बड़ा होने पर लड़का भी यही करता है, उसको मारता भी है, पर लड़के को छोड़ नहीं पाती है। यह नहीं कि जिस तरह से उसने अपने पति को छोड़ दिया था, वैसे ही लड़के को छोड़ दे। उसका लड़का चोर या गुण्डा क्यों न बन जाए, लेकिन उसे छोड़ नहीं सकेगी। कारण है मोह। उचित और अनुचित की बात नहीं है, बस यहाँ पर मोह टकराता है।

सामाजिक दृष्टि से देखो तो एक अलग निर्णय होता है, व्यक्तिगत दृष्टि से देखो तो निर्णय बदल जाता है। एक होती है व्यक्तिगत दृष्टि, जिसमें व्यक्ति को केन्द्र बनाकर चलते हैं, और दूसरी होती है सामाजिक दृष्टि जिसमें समाज केन्द्र होता है। अगर समाज को केन्द्र बनाकर चलो तो समाज यही कहेगा कि तुम्हें पति को नहीं छोड़ना चाहिये। लेकिन व्यक्ति के रूप में तुम हमेशा अपने सुख को, अपनी सुविधा को, अपने आराम को ज्यादा प्राथमिकता दोगे। पश्चिम में आज यही तो हो रहा है। जब पति

को पत्नी से या पत्नी को पति से कष्ट होता है तो एक-दूसरे को छोड़ देते हैं। एक छोटी-सी घटना है। एक लड़का था, उसने एक लड़की से शादी की। लड़का पढ़ता था, कहीं नौकरी-चाकरी भी करता था। लड़की हवाई जहाज में काम करती थी, उसे बाहर भी जाना पड़ता था। फिर बच्चा पैदा हुआ जो अपाहिज निकला। अब वह लड़का कहने लगा, 'तू तो चली जाती है अपने काम पर। मैं बच्चे को देखूँ या अपनी पढ़ाई को। अच्छा है कि अलग हो जाएँ।' यहाँ पर उसने न तो स्त्री का ख्याल किया, न बच्चे का, केवल अपना ख्याल किया।

अपने को केन्द्र बिन्दु बनाकर जो निर्णय लिये जाते हैं वे व्यक्तिगत माने जाते हैं। आधुनिक सभ्यता इसी पर जोर देती है। आधुनिक सभ्यता का मूल बिन्दु है कि व्यक्ति अपने में एक अलग दुनिया है। पाश्चात्य देशों में इस विचारधारा का प्रचार करने वाले बहुत-से दार्शनिक हुए हैं। इस पर बहुत बड़ी चर्चाएँ की हैं कि समाज और व्यक्ति, दोनों में श्रेष्ठ कौन है? किसको प्रधानता देनी चाहिये, किसकी पसंद को मानना चाहिये? क्या समाज के कारण व्यक्ति दु:खी हो? क्या व्यक्ति को इतना अधिकार नहीं कि वह अपने सुख के लिये ही सब कुछ करे? इस पर बहुत चर्चा हुई और आखिर में पाश्चात्य समाज ने व्यक्तिवाद को महत्त्व दिया। पहले पाश्चात्य जगत् भी समाज प्रधान था, जैसे हमलोगों के यहाँ है, किन्तु चर्चा करते-करते पिछले डेढ-दो सौ सालों के बीच उन लोगों ने यह निर्णय लिया कि नहीं, व्यक्ति जन्म से स्वतंत्र है, उसे अपने निर्णय लेने का जन्मजात अधिकार है। उसे सुख भोगने का, मनपसंद व्यक्ति से विवाह करने का, शिक्षा प्राप्त करने का, अपना व्यवसाय चुनने का, अपना धर्म चुनने का, अपना नाम चुनने का, सब चीजों का अधिकार है। वह चाहे तो हिन्दू-पद्धति से पूजा कर सकता है या ईसाई-पद्धति से। वह चाहे धोती पहन सकता है, पैंट पहन सकता है या हॉफ-पैंट भी पहन सकता है। बस एक चीज पर प्रतिबन्ध लगाया। तुम कुछ भी करो, केवल देश के कानून और व्यवस्था पर चोट नहीं आनी चाहिये। तुम्हारे किसी काम से समाज के कानून और व्यवस्था में गड़बड़ी होती है तो तुम दोषी हो, तुम्हें दण्ड मिलेगा।

पाश्चात्य जगत् में समाज और परिवार किसी के भी व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। बाप बेटे से यह नहीं कह सकता कि मैंने तुझे पढ़ाया-लिखाया तो तू मेरे लिये यह कर। स्त्री पति से नहीं कह सकती कि

तुमने मुझसे शादी की, तुमने वायदा किया तो ऐसा करो। वहाँ के लोग साफ-साफ कहते हैं, 'मैं तुम्हारे साथ रहना नहीं चाहता, पटरी नहीं बैठेगी। जिन्दगी भर लड़ाई के बदले अच्छा है हम-तुम अलग हो जाएँ और यार-दोस्त की तरह कभी-कभी टेलीफोन पर बात कर लें, दोस्ती भर बनी रहे।'

अब इस समाज ने व्यक्तिगत जीवन को प्रधानता देकर अनेक प्रतिभाशाली लोगों को पैदा कर दिया। दूसरी ओर हमारे समाज ने व्यक्ति की प्रतिभा को दबाया है। यह सच्ची बात बोल रहा हूँ, निन्दा नहीं कर रहा हूँ। हम संन्यासी हैं, राष्ट्रीयता और वैदिक धर्म तो हमारे खून में है, मगर हम एक चीज जानते हैं कि जब तक मनुष्य को व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं दी जायेगी, वह अपनी प्रतिभा का विकास नहीं कर पायेगा।

माता-पिता लड़के को वकील बनाना चाहते हैं, मगर वह तो इंजीनियर बनने लायक है। माता-पिता लड़के को डॉक्टर बनाना चाहते हैं जबकि वह पत्रकार बनने के लायक है। माता-पिता लड़के को प्रोफेसर बनाना चाहते हैं, मगर वह तो साधु बनने लायक है। यह निर्णय माता-पिता कर ही नहीं सकते क्योंकि माता-पिता और बच्चों में भेद होता है। मेरा दिमाग मेरे बाप के दिमाग से अलग है, मेरा मन मेरी माँ के मन से भिन्न है। अब चूँकि मेरी माँ को गाँधी जी पसंद थे, मेरे पिताजी स्वामी दयानन्द जी को मानते थे, इसीलिये मैं भी दयानन्द जी और गाँधी जी से प्यार करूँ, यह मुझसे नहीं हो सकता।

व्यक्ति की स्वतंत्रता से, व्यक्ति को प्रधानता देने से क्या दुर्घटना हो सकती है, वह तो आगे चर्चा का विषय होगा, मगर व्यक्ति को प्रधानता देने से राष्ट्र किस हद तक उन्नति कर सकता है, उसको जानना चाहो तो पश्चिम का उदाहरण देखो। अनेकों प्रतिभाशाली लोग हैं वहाँ, विज्ञान के क्षेत्र में, कला में, संगीत में, सभी क्षेत्रों में। इसका मुख्य कारण है स्वतंत्रता।

हर एक लड़के-लड़की के स्वप्न रहते हैं। जब तुम 8 साल के थे तो गुड़ियों के साथ उड़ना चाहते थे। 12 साल की उम्र में तुम्हें भूत-प्रेत का ख्याल रहता था जो कार्टून वगैरह में दिखाते हैं। जब 18 साल के हुए तब पढ़-लिखकर कुछ बनना चाहा। 25 साल में अपने पेशे में नाम कमाना चाहा। हर मनुष्य स्वप्न-द्रष्टा है, उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ होती हैं, इच्छाएँ और वासनाएँ होती हैं। हर मनुष्य को उपलब्धियों की गरज होती है, सफलता की प्यास रहती है। लेकिन हमारे माता-पिता ने उसके लिये रास्ते अवरुद्ध करके रखे हैं। सामने एक बड़ा रोड-ब्लॉक लगा दिया है—शादी।

मानो या न मानो, मगर शादी जीवन की उन्नति में सबसे बड़ा रोड़ा है। विवाह मनुष्य के जीवन की एक आवश्यकता है, इस बात को तो नकार नहीं सकते। शादी सामाजिक जीवन की भी आवश्यकता है, इसे भी नकार नहीं सकते, मगर साथ ही व्यक्ति के विकास-मार्ग में यह सबसे बड़ा रोड़ा भी है। स्वामी विवेकानन्द जी शादी करते तो क्या होता, सोच लो तुम। हाँ, गाँधी जी ने शादी की, मगर शादी को शादी की तरह नहीं रखा। रामकृष्ण परमहंस ने शादी की, पर शादी को शादी की तरह नहीं रखा। कबीरदास ने भी शादी की, मगर यहाँ कबीरदास, रामकृष्ण परमहंस या गाँधी जी की शादी की बात नहीं कही जा रही है। यहाँ तो आम आदमी की बात हो रही है।

हम जो कह रहे हैं, बच्चों और युवाओं से कह रहे हैं। तुम अपने साथ एक विभूति को लेकर जन्मे हो, एक महान् प्रतिभा और क्षमता को लेकर आए हो। गरीबी तुम्हारे मार्ग में विघ्न नहीं बन सकती। गरीबी विघ्न तब बनती है जब तुम्हारे सामने तुम्हारी औरत भूखी मर रही हो, तुम्हारा बच्चा भूखा मर रहा हो। मगर तुम अकेले भूखे मर रहे हो तो तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा। यह मेरा अपना अनुभव है। जब मैं भिक्षाटन करता था, कई-कई दिन मुझे भिक्षा नहीं मिलती थी। न दिन में कुछ मिला, न शाम को, न अगले दिन सवेरे। एक दिन तो मेरे सर में भयंकर दर्द हो गया, आखिर में एक आदमी से बीड़ी लेकर पीनी पड़ी! क्या करता, सरदर्द जो कम करना था। मगर मैं अकेला था, इसलिए कोई कष्ट नहीं हुआ। इसे हम कष्ट नहीं, अनुभव मानते हैं। अगर मेरी बीवी या बच्चे साथ रहते तो कितना कष्ट होता मुझे!

स्वतंत्रता पर आधारित व्यक्तिप्रधान जीवन—यह 21वीं शताब्दी के भारतीय समाज की एक झलक रख रहा हूँ आपके सामने। 21वीं शताब्दी में भारत के बच्चे समाज द्वारा नहीं, अपने व्यक्तित्व द्वारा निर्दिष्ट होंगे। अगर नहीं हुए तो भारत आगे नहीं बढ़ सकता। आज का युग ऐसा है कि जितना समय हमें यहाँ से भागलपुर जाने में लगता है उतने समय में हम कलकत्ता से लंदन पहुँच सकते हैं। ऐसे समय में हमारे समाज का मार्गदर्शन करने वाले जो सिद्धांत हैं उन्हें बदलना होगा। चाहे जाति प्रथा को ले लो, चाहे वर्णाश्रम धर्म को ले लो, चाहे पति-पत्नी के धर्म को ले लो, सब जगह बदलाव लाना पड़ेगा। नहीं करोगे तो बेईमानी होगी। तुम ढोंगी बन जाओगे, अपने साथ छल करोगे। सीधी बात यही है।

आप लोगों को ऐसे सिद्धान्त बनाने चाहिए जिनका आज का समाज और व्यक्ति पालन कर सकता हो। केवल उन्हीं धर्मों, उन्हीं विचारों और उन्हीं सिद्धान्तों को बच्चों के सामने रखना चाहिए जो बच्चों की उन्नति के हित में हों। आज के मनुष्य की सबसे बड़ी ख्वाहिश क्या है? जीवन का स्तर? नहीं, जीवन में उपलब्धि। आज लोगों के लिए जीवन के स्तर या क्वालिटी की प्रधानता नहीं है, बल्कि जीवन में उपलब्धि की प्रधानता है। तुम्हारी अपनी जिन्दगी कैसी है, हमें इससे कोई मतलब नहीं, मगर तुम क्या बन पाए हो, यह हम जानना चाहते हैं। वैज्ञानिक, वकील, डॉक्टर, लेखक, चित्रकार, पत्रकार, नर्तक, संगीतकार, शिक्षक या जनसेवक, क्या हो तुम?

इन गाँव के लोगों से पूछो कि क्या चाहते हैं तो कहेंगे कि गाँव के खेत अच्छे हों, बिल्कुल समतल हों, खेत में स्प्रिंकलर आ जाए और उससे सिंचाई कर लें, टिशू-कल्चर वाले बीज बोएँ, एक एकड़ में ढाई सौ मन धान निकले। यह सब चाहते हैं, मगर कुछ नहीं कर पाते। क्यों? अपने बेटे को वही बैलगाड़ी वाली संस्कृति सिखाते हैं ये लोग। बेटे से कहते हैं, 'ए, काहे मेरी बात नहीं सुनता? ऐसा काहे नहीं करता।' जबकि बोलना चाहिये, 'बेटा, जो तुम करना चाहते हो करो, मगर जिन्दगी में कुछ बन कर दिखाओ। चौदह साल के बाद वापस घर मत आओ, अपनी दाल-रोटी खुद कमाओ। यह खेती-पाती तुमको देने वाला नहीं हूँ, मरने के पहले बेचने वाला हूँ।'

हिन्दुस्तान के बच्चे हमेशा घर की तरफ नजर इसलिये रखते हैं कि बाप से विरासत मिलेगी। इसलिये कमजोर हैं। विदेश में बच्चे मजबूत हैं क्योंकि उन्हें मालूम है कि बाप से तो कुछ नहीं मिलने वाला। बाप तो मरने से पहले वकील से कहकर जाता है कि मेरा सारा पैसा चर्च को दे दो, किसी दातव्य संस्था को दे दो, मगर बेटा-बेटी को मत दो। वहाँ बेटा-बेटी को विरासत में कुछ नहीं मिलता। बाप अपनी सारी कमाई संस्थाओं को दान में दे जाता है, चाहे लंगड़ों की संस्था हो, अन्धों की संस्था हो, अनाथालय हो या स्कूल हो। इसलिये वहाँ संस्थाएँ बहुत मालदार हैं।

जब आदमी यह सोच ले कि मुझे कोई मदद करने वाला नहीं है, मुझे सारा रास्ता खुद पार करना होगा, तब उसके अन्दर शक्ति का आविर्भाव होता है, उसके अन्दर तृतीय नेत्र खुलता है और उस प्रतिभा की आँख से वह जीवन-पथ को देखने लगता है। उसे संघर्ष करना पड़ता है। संघर्ष

के बिना जीवन उन्नत नहीं होता। अगर संघर्ष समाप्त हो जाए तो जीवन भी समाप्त। तुम्हारे पिताजी ने तीस-चालीस हजार रुपये छोड़े हों, दो-चार एकड़ भूमि छोड़ी हो, एक-आध घर छोड़ा हो तो तुम्हारे अन्दर वह असुरक्षा की भावना होगी ही नहीं, तुम्हारे अन्दर वह भय पैदा ही नहीं होगा। सिर के ऊपर छप्पर तो है, दो-चार महीने खाने को पैसा तो है, फटा कपड़ा पहनेंगे, मगर रह तो जाएँगे न। लेकिन जिसके पास कुछ नहीं है, वह तुम्हारी तरह थोड़े ही सोचेगा। वह तो सोचेगा, 'बाप रे! क्या खाएँगे? कुछ-न-कुछ तो करना पड़ेगा।' ऐसा आदमी, जिसके सामने अभाव है, जिसका कोई अवलम्बन नहीं है, जिसके सामने सारे रास्ते बंद हो गये हैं, उसके अन्दर तब एक अजीब प्रतिभा का जन्म होता है। फिर वह आदमी मिट्टी बेचकर भी सोना कमाता है, घास बेचकर भी पैसा कमाता है। कुछ भी कर लेता है, यहाँ तक कि आज पेशाब बेचकर पैसा कमा रहे हैं। मालूम है तुमको? पेशाब से विशेष हॉर्मोन निकालते हैं और वह चिकित्सा में काम आता है। जिसने सबसे पहले पेशाब बेचा होगा वह अभाव और असुरक्षा की इसी स्थिति में आया होगा न?

आजकल के लड़के बाप को सीधे-सीधे बोल देते हैं। लड़कियाँ भी बोलने लग गई हैं। क्यों? इसलिए कि हम बड़े लोग छोटे लोगों के व्यक्तिगत अधिकारों में बहुत ज्यादा हस्तक्षेप करते हैं। हम उन्हें अपनी मूरत बनाना चाहते हैं, अपनी कार्बन-कॉपी बनाना चाहते हैं। लेकिन हमारी सूरत खराब है, तो फिर कार्बन-कॉपी की सूरत भी ऐसी ही होगी।

पश्चिम की प्रगति का यही रहस्य है कि उन्होंने व्यक्ति को आगे बढ़ने की स्वतंत्रता दी है। विज्ञान या वित्त के क्षेत्र में ही नहीं, अध्यात्म में भी पश्चिम ने प्रतिभाशाली व्यक्तियों को जन्म दिया है। योग पर, अध्यात्म पर, उपनिषदों पर, महाभारत पर, पुराणों पर जितना काम उन्होंने किया है, उतना काम यहाँ नहीं हो पा रहा है। हमलोगों के जितने भी बड़े-बड़े आध्यात्मिक आंदोलन हैं, चाहे विवेकानन्द जी का हो, भक्ति वेदान्त जी का हो, महर्षि महेश योगी का हो, स्वामी शिवानन्द जी का हो या आनन्दमयी माँ का हो, उसका संरक्षण, उसकी सहायता बहुत हद तक वही लोग कर रहे हैं।

–21 नवम्बर 1997

ॐ

अध्याय 18

किसी भूखे को भोजन देना, किसी लंगड़े के लिए तिपहिया साईकिल देना, इसको मदद नहीं कहते। कौन किसकी मदद करता है? मनुष्य को तो बस अपना कर्म सुधारना चाहिए। हम अपना कर्म पिछले जन्म में सुधार कर आए, इसलिए आज अच्छी तरह से जी रहे हैं। मनुष्य जो कुछ भी करता है, अपने लिए करता है, अपना कर्म सुधारने के लिए करता है। जब तुम दूसरे की निन्दा करते हो, गाली देते हो, झगड़ा करते हो, हत्या करते हो तब अपना कर्म बिगाड़ते हो। जब दूसरे को भोजन देते हो, तब अपना कर्म सुधारते हो। हर कर्म अपने ऊपर लौटकर आता है। इसलिए कर्म सुधारना हर एक मनुष्य के लिए जरूरी है।



परोपकार

आदमी अपने कर्म कैसे सुधारेगा? कर्म सुधारने के लिए सबसे सरल तरीका है अपने बारे में सोचने के साथ-साथ दूसरे के बारे में भी सोचना। उसको कहते हैं परहित-चिन्तन या परोपकार या परमार्थ। पर का मतलब दूसरा, पर उपकार माने दूसरे का उपकार। लेकिन हम लोग किसका उपकार करते हैं? अपनी स्त्री का उपकार करते हैं या अपने बेटा-बेटी का उपकार करते हैं। आज हमारा जीवन मियाँ-बीबी और बच्चों तक सीमित है, बस। दूसरों और दूसरों में भी जो व्यक्ति अभागे हैं, जिनका भाग्य उनका साथ नहीं दे रहा है, जिनको किसी तरह की तकलीफ है, उनके बारे में सोचना चाहिए।

जो व्यक्ति दूसरे के बारे में अपनी तरह सोचता है, उसको ज्ञानी या वेदान्ती कहते हैं और उस भाव को कहते हैं, आत्मभाव। मेरे शरीर में दर्द होता है, तो मुझे महसूस होता है, पर तुम्हारे शरीर में दर्द होता है तो मुझे महसूस नहीं होता। तब फिर आत्मभाव कैसा? आत्मभाव होने पर दो आदमियों के बीच एक सम्बन्ध जुड़ता है। महाराष्ट्र में एक बहुत बड़े संत हुए, एकनाथ। एक बार वे गंगोत्री से जल लेकर भगवान शंकर को चढ़ाने के लिए रामेश्वरम् जा रहे थे। जब वे रामेश्वरम् मंदिर के परिसर में पहुँचे तो उन्होंने वहाँ एक प्यासे गधे को लेटे देखा, उसकी जीभ बाहर निकली हुई थी। उनके मन में आया कि क्या करूँ, यह जल इस गधे भगवान को चढाऊँ या पत्थर भगवान को चढाऊँ? उस जमाने में गंगोत्री से रामेश्वरम् तक पैदल जल लाना कितना मुश्किल था। आखिर में उन्होंने गधे भगवान को पानी पिला दिया और उनको भगवान के दर्शन हो गए! इसको कहते हैं आत्मभाव।

आत्मभाव का सिद्धान्त

आत्मभाव वेदान्त का आधार है। जब दो एक हो जाते हैं, उसको अद्वैत कहते हैं। इसी प्रकार आत्मभाव से दो एक हो जाते हैं। इसलिए न दान, न धर्म, न दया, कुछ नहीं, बस आत्मभाव होना चाहिए। भगवान से निरन्तर यही प्रार्थना करनी चाहिए कि भगवान मुझे दूसरों के दुःख और सुख में भागीदार बनाओ। उससे क्या होगा? भगवान तुम्हारी प्रार्थना सुन लेंगे तो तुम्हें भागीदार बनायेंगे और तुम्हें दो-चार लाख रुपये दे देंगे कहीं से। तब जो प्रार्थना तुमने भगवान से की, उसे भूलना नहीं। तुमने कहा था भागीदार बनाओ, तो भगवान ने तुम्हें दो-चार लाख रुपये दे दिये। लेकिन तुमने तो अपने बेटे और बीबी को ही

भागीदार बनाया, दूसरों को तो तुम भूल गए। तुम सिर्फ अपनी लड़की को अपनी लड़की क्यों मानते हो, मेरी लड़की भी तो है। उसको भी तो थोड़ा सोने का जेवर दे दो! हमारे सार्वजनिक जीवन में यही सबसे बड़ी कमी है। हम लोगों की साधना आधी-अधूरी है। मन्दिर में जाते हैं, अच्छा है, आरती करते हैं, बहुत अच्छा है, मगर वह पूरी साधना नहीं है। पूरी साधना तब होती है, जब मनुष्य की जीव मात्र के प्रति संवेदना हो। तुम महापुरुषों का जीवन देखो, सबकी यही कहानी रही है।

एक सच्ची घटना बताते हैं अपने जीवन की। आज से करीब पचास साल पहले की बात है, हम गुरुजी के आश्रम में रहते थे। कुम्भ मेला हुआ हरिद्वार में। जब हरिद्वार में कुम्भ मेला होता है तो कई लोग ऋषिकेश और बद्रीनाथ भी चले जाते हैं। अनेक यात्री ऋषिकेश आए। एक दिन हम शाम को बाल्टी लेकर जंगल जा रहे थे तो कुछ दूर जाने पर देखा, सड़क के किनारे एक गठरी जैसे पड़ी हुई थी, उस पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। हमने कुछ ख्याल नहीं किया, आगे बढ़ गए। दूसरे दिन पता चला कि हमारे गुरुभाई, स्वामी चिदानन्द जी एक कोढ़ी को बोरे में उठाकर लाए हैं। वह एक बहुत बूढ़ा आदमी, एकदम दुबला-पतला, कहीं उत्तरप्रदेश का था। उसको कुष्ठरोग हो गया था और वह मरने के लिए तीर्थ में आया, यह सोचकर कि मुक्ति होगी। लक्ष्मणझूला शेषधारा के ऊपर जो सड़क है, वह वहीं तक जा सका, उसके आगे नहीं बढ़ सका, कमजोर रहा होगा। वह सड़क के किनारे बोरा बिछाकर पड़ गया था। उसी को मैंने पिछली शाम देखा था, पर मेरी दृष्टि उतनी ही थी।

स्वामी चिदानन्द जी ने उसके लिए एक छोटी-सी झोपड़ी बनाई, उसका इलाज भी करना शुरू कर दिया। उसके शरीर में सब जगह फोड़े निकले हुए थे। कुष्ठ दो प्रकार का होता है, एक तो सब जगह सूख जाता है और दूसरा होता है गलित कुष्ठ, जिसमें सारे अंग गलने लगते हैं। उसे गलितकुष्ठ था। अब उसकी सेवा के लिए आश्रम में सबकी ड्यूटी लगी, मेरी भी ड्यूटी लग गई कि तुम्हारा काम है उसकी हजामत बनाओ। उसकी हर दूसरे-तीसरे दिन हजामत बनानी पड़ती थी। और वह ऐसा आदमी था कि सड़कछाप गाली ही बोलता था। एक दिन मैं हजामत कर रहा था, थोड़ा झटका लगा तो थोड़ा-सा ब्लेड लग गया और खून निकला। उसने मुझे बहुत गालियाँ दीं। मुझे भी गुस्सा आया, मैंने कहा, 'एक तो हम तुम्हें यहाँ लाए हैं, दूसरा

तुम्हारी सेवा कर रहे हैं और तुम इतना भी अहसान नहीं मानते हो।' तो उसने कहा, 'कौन-सा अहसान किया तुमने? मैं तो यहाँ मरने के लिए आया था। तुम नहीं लाते तो अब तक मेरा मोक्ष हो गया होता। क्या अहसान कर रहे हो? दु:खी दुनिया में मुझे फिर से ढकेल रहे हो तुम। तुम सब नालायक हो, तुम खाली ज्ञान की बात करते हो, तुम्हारे दिल में सच्चाई की जानकारी नहीं है। मैं चाहता हूँ कि मुझे उठाओ अभी और गंगाजी में डाल दो।' पर सेवा होती रही और दो महीने की नियमित सेवा से वह स्वस्थ होकर एक दिन अचानक कहीं गायब हो गया।

सेवा

स्वामी शिवानन्द जी हमसे कहते थे, जब बच्चा स्कूल में जाता है तो पहले प्राईमरी में जाता है, फिर मिडिल में जाता है, तब मैट्रिक में जाता है, उसके बाद कॉलेज में जाता है और अन्त में यूनिवर्सिटी में जाता है। उसे सीधे कॉलेज में भर्ती कर दोगे तो क्या होगा? उसकी समझ में कुछ नहीं आएगा, वह बैठा रहेगा बुद्धू की तरह। तो उपाय क्या है? पहले उसे प्राथमिक विद्यालय में भर्ती करो। अब जीवन की प्राथमिक कक्षा कौन-सी है? सेवा। सेवा जीवन की अक्षर-प्रबोधिनी है, जहाँ अक्षरों का ज्ञान होता है। सेवा करोगे तो जीवन की 'ए बी सी डी' सीखोगे। और सेवा किसकी होती है? अपने घरवालों की नहीं, बल्कि सेवा उसकी होती है जिससे तुम्हें किसी फल की आशा न हो। यह नहीं कहना कि पति या पत्नी या माता-पिता की सेवा। इनमें अपेक्षाएँ होती हैं। पत्नी की सेवा करते हो तो अपेक्षा होती है, पति की सेवा करते हो तो अपेक्षा होती है। नहीं होती है क्या? कुछ तो होती है। पूर्ण अपेक्षारहित तो हो नहीं सकते। जब तुम फल की आशा या इच्छा से रहित होकर जो कर्म करते हो, उसे कहते हैं सेवा। यही गीता का बीज मंत्र है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥2.47॥

फल की इच्छा से रहित जो कर्म किया जाता है उसका नाम सेवा है। इसके लिए उन लोगों की सेवा करनी चाहिए, उन लोगों की मदद करनी चाहिए, जिनसे हम कुछ अपेक्षा नहीं रखते। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम उनकी सेवा करते हैं और वे अनपेक्षित ढंग से हमें चोट भी पहुँचा

देते हैं। ऐसे लोगों की भी सेवा करनी चाहिए। यह सेवा है, जीवन की 'ए बी सी डी' है।

प्रेम

इसके बाद आता है प्रेम। अपनी पत्नी, पुत्र या भाई-बहन को कौन प्रेम नहीं करता? कोई सिखाता है प्रेम करना? नहीं, स्वाभाविक है, स्वत: हो जाता है। लेकिन दूसरों से प्रेम करना सीखना पड़ता है। प्रेम उस व्यक्ति से किया जाता है जो अपना न हो। इसके लिए बाइबिल में बहुत सुन्दर बात कही है, अपने पड़ोसी से प्रेम करो। यह बहुत ही उत्तम वाक्य है। अब पड़ोसी किसको कहते हैं? बगल में रहने वाला पड़ोसी है, उसके आगे रहने वाला भी पड़ोसी है, फिर उसके आगे रहने वाला भी पड़ोसी है। कभी-कभी तो लगता है कि यह पड़ोसी पूरा देवघर हो सकता है, पूरा हिन्दुस्तान हो सकता है, पूरा एशिया हो सकता है! हमारे यहाँ लिखा है–*उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।* जिनका दिल बड़ा रहता है, उनके लिए सारी दुनिया उनका पड़ोस है। *अयं निज: परो वेति गणना लघुचेतसाम्*–जिनका दिल छोटा होता है, वही कहते हैं कि यह मेरा है, यह तेरा है। बड़े दिल वाले के लिए दुनिया उसका पड़ोस है।

अभी के लिए तो अमरवा, देवीचक, ताराबाद और लकड़ीगंज जैसे आस-पास के गाँव ही अपना पड़ोस हैं। अभी अपनी शक्ति वहीं तक है। अभी हम लोग उतना पढ़ नहीं पाए हैं। जिस दिन कॉलेज में चले जाएँगे, उस दिन बोलेंगे कि सारी दुनिया अपना पड़ोस है। अभी हिम्मत नहीं होती बोलने की। तो यह दूसरी कक्षा है प्रेम की।

दान

तीसरी कक्षा है दान। उपनिषदों में एक बहुत सुन्दर कहानी है। कुछ व्यक्ति बैठे थे, आसमान में बादल जा रहे थे, वहाँ से आवाज आई, 'द! द! द!' तो उन लोगों ने सोचा, 'क्या आवाज आई है?' उनमें से एक राक्षस था, उसने कहा कि यह बादल कहता है, 'दयध्वम्'। दूसरा एक अमीर आदमी बैठा था, करोड़पति, वह बोला, 'दमध्वम्'। तीसरा आप जैसा कोई भला आदमी बैठा होगा, वह बोला, 'ददध्वम्'। तीनों ने 'द' के तीन मतलब लगाए। राक्षस आदमी ने कहा 'दयध्वम्', अमीर आदमी ने कहा 'दमध्वम्' और मनुष्य ने

कहा 'ददध्वम्'। दयध्वम् माने दया करनी चाहिए, दमध्वम् माने अपने को नियंत्रित करना चाहिए और ददध्वम् माने देना चाहिए। अर्थात् राक्षस लोगों को दया करनी चाहिए, भोग भोगने वालों को अपने को नियंत्रित करना चाहिए, संयम से रहना चाहिए और अगर तुम मनुष्य हो तो तुम्हारा मुख्य धर्म होता है, दान। तुम जैसे लोगों से कहा दद्ध्वम्, याने 'दो'। यह तीसरा पाठ है। देने से जेब भी हल्की हो जाती है, इससे आयकर वालों का डर भी नहीं रहता। अगर आएँगे भी तो कुछ मिलने वाला है नहीं!

आध्यात्मिक जीवन के सोपान

सेवा, प्रेम और दान–ये तीन प्राथमिक कक्षाएँ हैं। अब इन तीनों को किए बिना ही अगर बैठ गए ध्यान के लिए या नाक पकड़कर प्राणायाम करने के लिए या कुण्डलिनी को जगाने के लिए या भगवान को पकड़ने के लिए तो उससे कुछ नहीं होगा। बिना प्राथमिक कक्षा में गए अगर कॉलेज में बैठोगे तो कुछ समझ में नहीं आएगा। सबका वही हाल है। सेवा, प्रेम और दान, यह जीवन की बुनियाद है। फिर इस जीवन रूपी मकान का ढाँचा बनता है आत्मशुद्धि, ध्यान और आत्म-साक्षात्कार से। आप मकान की छत, दीवार, फर्श और खम्भे देखते हैं, मगर इनके नीचे बुनियाद कैसी है? अगर बुनियाद नहीं होगी तो मकान उठेगा क्या? जीवन की बुनियाद होती है सेवा। सेवा तो सबकी की जाती है, माता-पिता की सेवा करो, पति की सेवा करो, भाई-बहन की सेवा करो, आखिर वे भी तो जीवन के अंग हैं, मगर उस सेवा को आप इति और अथ मत मानो।

हर आदमी को अपना कर्म सुधारना चाहिए। हम तो हमेशा कहते हैं, हमने कुछ अच्छे कर्म किए होंगे, तब भगवान ने हमें अच्छा गुरु, अच्छा शरीर और अच्छी बुद्धि दी। अब तो जीवन कट चुका है, संध्या हो गई है, रात आने वाली है। इसलिए हम देवघर में आए हैं, यहीं से जाएँगे सीधे। जब हम 'हे भगवान' पुकारते हैं, तब वे कहते हैं, 'सुनो सत्यानन्द, सब सीटें भर गई हैं, आरक्षण नहीं मिल रहा है। हाँ, तुम्हारा नाम हमने नोट कर लिया है।' भगवान कहते हैं कि अभी सीट नहीं है। ठीक है, वेटिंग लिस्ट में रखा है अपने को। और मजे की बात यह है कि मुझे वापसी का टिकट भी चाहिए। हमने कहा, 'हमें वापस आना है, हमें वापसी का टिकट भी चाहिए।' उन्होंने कहा, 'अभी नहीं, थोड़ा रुक जाओ।' ठीक है, रुकेंगे!

क्या हम लोगों को भी जाना चाहिये?

जाना कोई नहीं चाहता, मुझे मालूम है। पाण्डव जब वनवास में थे तो एक बार युधिष्ठिर ने पानी के लिये भाइयों को तालाब पर भेजा। सब-के-सब वहाँ का पानी पीते ही बेहोश हो गये। वहाँ एक यक्ष था जो कहता था कि मेरे प्रश्नों का उत्तर दो तो पानी लो। युधिष्ठिर ने पूछा, क्या प्रश्न है? पहला प्रश्न– *किमाश्चर्यम्*, संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषा: स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमत: परम्॥

युधिष्ठिर ने कहा कि संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि संसार में रोज सबेरे और शाम लोग यमराज जी के घर जा रहे हैं। बाकी जो बचे हुए हैं, वे यहीं टिके रह जाना चाहते हैं, इससे बढ़कर और आश्चर्य क्या हो सकता है?

अगर आप लोग कहते हैं कि जाना चाहते हैं तो आप लोगों ने टिकट के लिये आवेदन कहाँ किया है? भगवान से कहते हैं कि अभी गाड़ी न आए तो अच्छा है। जिस दिन मनुष्य को वहाँ जाने की इच्छा हो, तैयारी हो, उस दिन से उसका मन संसार में कहीं रहेगा ही नहीं। उसका मन चौबीसों घण्टे भगवान में लगा रहेगा, क्योंकि यदि आदमी को आगे की मुसाफिरी करनी है तो उसे सफर का सामान अपने साथ रखना पड़ता है। वहाँ के सफर का सामान सिवाय भगवद् भजन और निष्काम जीवन के और कुछ है ही नहीं। जीयो दूसरों के लिये, मरो दूसरों के लिये, खाओ दूसरों के लिये, कमाओ दूसरों के लिये, केवल दूसरों के लिये। जो आदमी दूसरे के लिये जीता है, वह फिर अपनी चिन्ता नहीं करता, असली बात इतनी है।

मुझसे एक महात्मा ने एक बार कहा, 'देखो, लक्ष्मी उन लोगों के पास रहती है जो उसका दुरुपयोग नहीं करते, जो उसका उपयोग अपने लिये नहीं, दूसरों के लिए करते हैं।' मैंने कहा, बहुत अच्छा विचार है। मैंने अपने मन में यही सोचा कि भगवान, एक रुपया दोगे तो 99.99 पैसा दूसरों का होगा, एक पैसा अपनी लंगोटी के लिये रख लेंगे। एक पैसा नहीं बल्कि 0.01 पैसा अपने लिये रख लेंगे। मैंने मजाक में सोचा और ऐसा ही हो गया। दूसरी बात उन महात्मा ने मुझसे यह कही कि लक्ष्मी जब चली जाए तो रोना नहीं। सोचना, छुट्टी मिल गई। मैंने सोचा, 'हाँ! यह भी बहुत अच्छा है।'

मगर है बहुत मुश्किल। जब पैसा आता है तो बड़ी खुशी होती है। लोग उस दिन होटल-बोतल-टोटल में जाते हैं और जब पैसा जाता है तो चेहरा एकदम छोटा हो जाता है, रक्तचाप बढ़ जाता है, दिल की धड़कन बढ़ जाती है, कइयों का तो पेट खराब हो जाता है। वे महात्मा बोले कि नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए। लक्ष्मी तो पानी की तरह है। जैसे तरंग उठती है, भागती है, वैसे ही लक्ष्मी का स्वरूप है।

सत्कर्म की परिभाषा

शिवजी को पाँच किलो दूध चढ़ाना भी सत्कर्म ही है, मगर वह काफी नहीं है। दूसरों के लिये जब अच्छा काम करते हो तो उसे सत्कर्म कहते हैं और सत्कर्म ही धर्म की परिभाषा है। बहुत-से लोग रोज मन्दिर जाते हैं, तीर्थों में जाते हैं, कहते हैं कि वे बड़े धार्मिक हैं, परन्तु यह धर्म की पूर्ण परिभाषा नहीं है। हालाँकि वह भी करना चाहिये, मगर केवल ईश्वर के पीछे भागना धर्म की पूर्ण परिभाषा नहीं है। मनुष्य के प्रति, हर प्राणी के प्रति कोई भी अच्छा काम करना धर्म की परिभाषा है। वह प्राणी जानवर, मनुष्य, अपराधी, दुराचारी, सदाचारी या संत-महात्मा, कोई भी हो सकता है। जिस कर्म को करने से दूसरे को मदद मिलती है, दूसरे व्यक्ति की भूख शांत होती है, दूसरे व्यक्ति का शरीर निरोग होता है, उसे सत्कर्म कहते हैं। ऐसा सब संत-महात्माओं, ऋषि-मुनियों ने कहा और किया है।

संसार में दुःख तो सबको है। कोई मनुष्य ऐसा नहीं जो दुःखी न हो। लेकिन सुख भी संसार में सबके पास है। ऐसा कोई प्राणी नहीं जिसे सुख न मिला हो। सुख-दुःख सबको दिन-रात की तरह मिलते हैं। किन्तु जो आदमी सत्कर्म करता है, वह दुःख में दुःखी नहीं रहता, उसके लिये दुःख का अर्थ बदल जाता है। हर एक आदमी को यही सोचना है कि भगवान! हमें सत्कर्म करने, दूसरों की मदद करने की सद्बुद्धि और सामर्थ्य दो।

रामचरितमानस–ग्रामीण साक्षरता की कुंजी

हम गाँव के लोगों के बीच साक्षर शब्द का उपयोग नहीं करते, यह हमारा मनोविज्ञान है। हम इनसे कहते हैं रामचरितमानस सीखो। अब अगर इन गाँव के लोगों को कहो कि पढ़ो, साक्षर बनो, तो कहते हैं कि पढ़कर क्या करेंगे, गोबर ही तो उठाना है। पहले तो इन लोगों को समझाया-बुझाया, फिर सोचा

कि छोड़ो, कौन माथा खपाये इन पर। अब रामचरितमानस दे देते हैं, बोलते हैं पढ़ो रोज, सुख-शान्ति मिलेगी। उनको यह तो पढ़ना पड़ेगा ही। और ये लोग वाकई रोज रामचरितमानस पढ़ते हैं। नवरात्रि के समय नवाह्नपरायण में बैठने की जगह नहीं रहती यहाँ, यही सब लोग आते हैं। हमने साक्षर शब्द की परिभाषा को बदल दिया है।

यहाँ गाँव की एक स्त्री थी, उसका हमने ऑपरेशन करवाया। एक दिन हमने उससे पूछा कि तुम पढ़ी-लिखी हो क्या तो उसने कहा, 'नहीं, हम तो गँवार हैं।' हमने पूछा, 'तुम पढ़ना-लिखना क्यों नहीं सीखती हो?' उसने कहा, 'क्या करें स्वामीजी, अभी तो घर-गृहस्थी देखनी पड़ती है।' हमने सोचा कि ठीक तो है, उसको बैंक में कोई एकाउंट तो खोलना नहीं है, न कोई बिल पास करना है। उसकी सीमित आवश्यकताएँ हैं। हम तब चुप रह गए। वह यहाँ बराबर आती थी। कुछ दिनों के बाद हम दूसरे लोगों को रामायण दे रहे थे तो उसने कहा, 'हमको भी दीजिए न?' हमने कहा, 'पढ़ोगी?' तो बोली, 'हाँ पढ़ेंगे।' सच में दुबारा जब आई तो रामायण पढ़ने लग गई थी!

यह मनोविज्ञान की बात है। अर्थात् पढ़ने का जो उद्देश्य आप उसे बता रहे हैं, वह उसकी खोपड़ी में घुसेगा नहीं। आखिर गोबर ही तो उठाना है उसको। लेकिन अगर इन गाँव की लड़कियों को, जो मजदूर वर्ग की हैं, जो अति साधारण वर्ग की हैं, पढ़ाई का उद्देश्य ठीक से समझाओगे, तो ये रामचरितमानस पढ़ लेंगी, हनुमान चालीसा पढ़ लेंगी। यदि आप यह उद्देश्य बोलेंगे–*विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्,* तो यह उनकी खोपड़ी में नहीं घुसने वाला। इस मनोविज्ञान को हमने पकड़ा है।

रामचरितमानस भारतीय जनमानस के लिए साक्षरता का सर्वोत्तम माध्यम है। मैं आप सबको संकेत दे रहा हूँ। मुझे तो उस स्त्री के माध्यम से अचानक अनुभूति हुई। यह भारतीय मनोविज्ञान है क्योंकि हिन्दुस्तान का आदमी कहता है, मैं पढ़ूँ क्यों? खासकर जो मजदूर या श्रमिक वर्ग के हैं, आखिर उनके आगे भविष्य क्या है, चुनौती क्या है? हमलोगों की जो वर्तमान सोच, माहौल और शासन व्यवस्था है, उसमें इन लोगों की सहभागिता क्या है? सवेरे उठते हैं, गोबर उठाते हैं, दिनभर बकरी चराते हैं और जहाँ-जहाँ लकड़ी मिलती है, उसको इकट्ठा करते हैं। हमारे अखाड़े के सामने अगर हम चार ईंट डाल दें, तो पाँच मिनट में गायब हो जाएँगी। साफ कर देते हैं ये

लोग। हम यहाँ से पेड़ काटते हैं, छँटाई करते हैं, एक घण्टे के बाद आओ तो यहाँ कटी शाखाएँ नहीं पाओगे। हम तो कहते हैं उठाओ, हमें खुशी होती है। उनके जीवन का यही काम है। अब पढ़ाई का उनके जीवन में क्या स्थान है? साक्षरता और पढ़ाई कहाँ तक जीवन-संगत हैं, उनकी समझ में नहीं आता। इसीलिए तो बहुतों का स्कूल भी छूट जाता है।

इसलिए साक्षरता के लिए केवल रामचरितमानस लो। हर एक लड़के और लड़की को 'वर्णानाम् अर्थसंघानाम्' से अंत तक रामचरितमानस पढ़ना आना चाहिए। भारतीय साक्षरता यही है। जिस तरह से हमारा देश और हमारा शासन चल रहा है, उसे देखते हुए ही मैं यह बात कहता हूँ। मैंने तो सारे विश्व का भ्रमण किया है। अगले पचास-सौ साल तक तो मुझे ऐसी कोई झलक नहीं मिलती कि यहाँ के गाँव जापानी गाँव या स्विट्ज़रलैण्ड के गाँव या अँग्रेजी गाँव या फ्रेंच गाँव जैसे हो जायेंगे। नहीं, यह हो ही नहीं सकेगा क्योंकि यहाँ की जो मूल समस्याएँ हैं, वे केवल आज से सम्बन्धित हैं, कल से नहीं। मैं आप लोगों के आँकड़े नहीं मानता, मेरे अपने आँकड़े हैं। भारत की सत्तर प्रतिशत जनता के सामने 'आज' समस्या है, 'कल' नहीं, क्योंकि यह देश कृषिप्रधान देश है। कृषिप्रधान देश को तकनीकी के आधार



पर आगे नहीं किया जा सकता। यहाँ की तकनीकी का आधार खेती और पशुपालन होना चाहिए, सुपर-सॉनिक विमान नहीं। किन्तु हम लोग इसके बारे में कुछ कर नहीं सकते, हम सामान्य जनता हैं।

गाँव के लोगों को पढ़ना तो चाहिए, मगर पढ़कर क्या करेंगे, बाबू बनना है क्या? गाँव की ये लड़कियाँ पढ़कर क्या करेंगी? उनके जीवन में इसका कहाँ उपयोग आएगा? रामचरितमानस पढ़ने में। सवेरे-शाम बैठ जाएगी, रामचरितमानस पढ़ेगी। एक घण्टा सुबह, एक घण्टा शाम को। मन पर असर होगा, राम का आदर्श आएगा, सीता का आदर्श आएगा, रावण के बारे में पता चलेगा और वह असर उसके बच्चों में जाएगा। बच्चों की अनुवांशिक संरचना सुधरेगी, उनके संस्कार सुधरेंगे। और जहाँ रामचरितमानस आएगा, वहाँ समृद्धि आएगी। सम्पत्ति की बात नहीं कहता हूँ, समृद्धि की बात करता हूँ। समृद्धि का मतलब होता है विवर्द्धन, बढ़ना। आज एक झोपड़ी बन गई, कल एक मकान और जोड़ दिया, परसों एक शौचालय जोड़ दिया। लोग कहेंगे, वह समृद्ध हो रहा है।

समृद्धि व्यक्ति को नियंत्रण में रखती है, उसे भटकने नहीं देती। लेकिन सम्पत्ति आदमी को भटका देती है, क्योंकि सम्पत्ति के साथ कुछ अवगुण आते हैं। जहाँ गुलाब जाएगा, वहाँ सुगंध जाएगी, जहाँ टट्टी जाएगी वहाँ दुर्गंध जाएगी और जहाँ सम्पत्ति जाएगी वहाँ दुर्गुण जाएँगे। जहाँ प्रभुता आएगी, वहाँ घमण्ड आएगा, जहाँ सम्पत्ति आएगी वहाँ व्यसन आएगा। मगर समृद्धि में न व्यसन होता है, और न ही घमण्ड।

समृद्धि मनुष्य को सदा नम्र रखती है। आज तुमने एक कमरा बना दिया, अगले साल एक बेडरूम जोड़ दो। इस साल तुमने फूस लगाया, अगले साल टिन लगा देना, इसके बाद एक टॉयलेट बना दो। इस साल फ्रेंच लैट्रिन बना रहे हो, अगले साल सुलभ बना देना, इसको समृद्धि कहते हैं। जो लोग रातों-रात अमीर बनना चाहते हैं, वे गलत रास्ते पर जा रहे हैं, क्योंकि सम्पत्ति आने पर दुर्गुण आएँगे, व्यसन आएँगे, बुराइयाँ आएँगी, फिजूलखर्ची आएगी। मनुष्य के अन्दर जो उत्साह है, प्रेरणा है, योजनाओं को क्रियान्वित करने की शक्ति है, वह खत्म हो जाएगी। पैसे वाले आदमी के संघर्ष विपरीत मार्ग से चलते हैं।

जब तक हमारे लोग यह बात समझकर स्वीकार न कर लें कि हम पढ़ें क्यों, तब तक साक्षरता अभियान विफल रहेगा। हिन्दुस्तान में केवल एक

प्रांत केरल को छोड़कर बाकी सब जगह प्रौढ़ शिक्षा और साक्षरता विफल रही है। उसका कारण क्या है? देखो, जो भी काम हम तुम्हें करने को कहते हैं, तुम्हारे मन में एक ही बात आती है, इससे क्या होगा? हम तुमसे कहते हैं, भागलपुर जाओ। तुम पूछते हो, क्यों? हर एक मनुष्य के मन में यही है। हमारे यहाँ गाँव से एक छोटी बच्ची, सुनीता आती है। उसे यहाँ की एक संन्यासी रोज 'ए बी सी डी' पढ़ाती है। वह कहती है, 'नहीं पढ़ूँगी।' जब पूछा कि क्यों नहीं पढ़ोगी तो बोली कि क्या करेंगे पढ़कर, मकसद क्या है? उसके सामने तो एक ही चित्र है, उसकी शादी होगी, ससुराल जाएगी, सवेरे उठकर उसे गोबर उठाना पड़ेगा, कंडा बनाना पड़ेगा, बर्तन मांजने पड़ेंगे, कपड़े धोने पड़ेंगे। यही एक चित्र तो उसके मन में है। उस चित्र का साक्षरता के साथ क्या सम्बन्ध है जी? और पढ़-लिखकर आदमी को कौन-सी तीसरी आँख मिल जाती है? शिक्षित मूर्ख भी तो बहुत हैं न दुनिया में।

मगर रामचरितमानस एक ऐसी चीज है जो हमारे समाज को अवश्य दी जानी चाहिए। उसमें साक्षरता भी है और सद्विचार भी। और सबसे बड़ी बात यह है कि रामचरितमानस घर में एक शकुन है, मंगल का एक प्रतीक है। जैसे जलता हुआ दिया घर में मंगल का प्रतीक है, वैसे ही रामचरितमानस घर में मंगल का प्रतीक है। जिस घर में सवेरे लड़का-लड़की, माँ-बाप बैठकर रामचरितमानस पढ़ें, उस घर से बुराइयाँ दूर होंगी, रामजी पर चर्चा होगी। राम तो मर्यादा पुरुषोत्तम थे। जब वाल्मीकि जी ने नारद से पूछा, 'भगवान! बताइये दुनिया में कौन-सा ऐसा व्यक्ति है जो गुणों में सर्वश्रेष्ठ हो, वार्ता में सर्वश्रेष्ठ हो, सौंदर्य में सर्वश्रेष्ठ हो, वचन पालन में सर्वश्रेष्ठ हो, आज्ञाकारिता में सर्वश्रेष्ठ हो, संकल्प शक्ति में सर्वश्रेष्ठ हो और विनम्रता में सबसे श्रेष्ठ हो', तब नारद जी ने कहा कि ऐसा तो एक ही व्यक्ति है, राम!



अब ऐसे व्यक्ति की कथा अगर हम घर में करें तो हम अपनी सुनीता को बता सकते हैं कि देख बेटा, यह

राम की कथा है। इसे तू पढ़ेगी तो तुझे बहुत अच्छा लगेगा। अच्छा न भी लगे तो भी जब गाएगी कम-से-कम थोड़ा झूमेगी, उतना थोड़ा-सा आनन्द तो आएगा। हमारे यहाँ जितने भी गोरी जात के लोग हैं, सब सुबह चार बजे रामचरितमानस पढ़ते हैं। सुबह चार बजे डमरू बजता है, फिर रामचरितमानस का पाठ शुरू होता है, ढोलक-मंजीरा लेकर गाते हैं चालीस मिनट तक। पहले पूरी चौपाई, दोहा पढ़ लेते हैं, फिर उसका अर्थ बताया जाता है। और जो संन्यासी उसका अर्थ बताता है, वह जर्मनी का है। वे इसे क्यों पढ़ते हैं? आखिर वह तो जर्मन है, फिर उसने हिन्दी क्यों सीखी? इसलिए सीखी कि वह रामचरितमानस पढ़ सके। भारत में साक्षरता का आधार यही है।

स्वामीजी, आपने गंगादर्शन छोड़कर यहाँ राजधानी क्यों बनाई?

देखिये, यह बहुत लम्बी कहानी है। आश्रम चलाने का स्वप्न मेरे जीवन में कभी नहीं रहा। मेरा स्वभाव सदा एकान्तवासी रहा है। योग मेरा सम्प्रदाय नहीं है और मैंने योग का कोई व्यवस्थित अध्ययन भी नहीं किया है। मेरा अध्ययन, जैसा हमलोगों की परम्परा में होता है, वेदांत का अध्ययन है। मगर हमारे गुरुजी ने हमें आदेश दिया था कि तुम योग को प्रतिष्ठित करो, उसे ऊँचा पद दो। हमने करना चाहा, परन्तु हमसे हो नहीं सका। यह सन् 1956-60 की बात कह रहा हूँ।

फिर मैं सन् 1963 में त्र्यम्बकेश्वर गया और अपने इष्टदेव, भगवान शिव से एक प्रार्थना की, 'मुझे गुरु ऋण चुकाना है। आप मेरी बीस साल मदद कीजिये।' उस प्रार्थना के साथ उन्हें एक वचन भी दिया कि यदि काम हो जायेगा तो सब छोड़कर आ जायेंगे। सन् 1964 में काम चालू किया और सन् 1983 में छोड़ दिया। बीस साल काम किया। हमारा वायदा था कि उसके बाद हम सब छोड़कर आयेंगे, तो हमें छोड़ना पड़ा। भगवान के साथ हमारा एग्रीमेंट था। उसके हिसाब से हमें मुंगेर छोड़ना ही था और यह भी एग्रीमेंट है कि मुंगेर वापस नहीं जाना है। मुख्यत: तो यह बात है।

दूसरी चीज यह कि हम जीवन की संध्या में हैं। हर मनुष्य को जाना ही पड़ता है। कोई घर से, कोई अस्पताल से तो कोई दुर्घटना में जाता है। हमने सोचा, 'सबसे अच्छा है देवघर।' इसी को हमने अपनी अगली यात्रा का हवाई अड्डा मान लिया, यहीं से हमारा जहाज जायेगा और हमने आवेदन भी कर दिया है। मगर वहाँ से कहते हैं कि अभी सीट खाली नहीं है, इसलिये

हम यहाँ आए हैं। हृदय में यही प्रार्थना है कि भगवान जिस दिन मेरा शरीर छूटे, उस दिन मेरे पास न तो कोई संस्था हो और न ही मेरी जेब में कोई पैसा हो, न तो मेरी कोई बीवी हो और न ही मेरा कोई बच्चा, न ही कोई मेरे आगे हो, न ही कोई मेरे पीछे, न डॉक्टर साहब मेरे सामने हो, न ट्यूब मेरी नाक में चढ़ी हो, न बेड-पैन मेरे बगल में रखा हो, मैं नर्स का मुँह नहीं देखना चाहता। 'इतना तो करना स्वामी, जब प्राण तन से निकले, तेरा ही नाम लेते यह प्राण तन से निकले।' और यह देवघर में ही सम्भव है। मुंगेर में तो बगल में टाइपराईटर-कम्प्यूटर रखा हुआ है। वहाँ मरना ठीक नहीं है, साधु के लिये वह आदर्श मृत्यु नहीं है।

अस्पताल में मरना, बीवी-बच्चों के बीच मरना, चेला-चाँटी के बीच मरना, इधर आयकर की फाइल है, उधर कचहरी की फाइल है, यह सब नहीं चाहिये। अपने को उससे कोई मतलब नहीं। बस इतना है कि जब मैं मरूँ तब मुझे ख्याल आवे कि हे भगवान! मैंने तो उस आदमी से कहा था कि एक साईकिल दूँगा, नहीं दे सका। दूसरों के हित का चिन्तन करते हुए, दूसरों की भलाई का विचार करते हुए, निष्काम सेवा भाव के साथ प्राण निकले। मनुष्य की सेवा का विचार मन में आवे, किसी दीन-दु:खी का चित्र मन में आवे, किसी टी.बी. के मरीज का ध्यान मन में आवे, किसी गरीब विधवा का ख्याल मन में आवे, यह उत्तम मृत्यु है। इसीलिये हम देवघर आए हैं। यहाँ अच्छा लगता है। पानी भी अच्छा है, हवा भी अच्छी है, लोग भी अच्छे हैं। बस यही है कि आगे जाने के लिए सीट अभी नहीं मिल रही।

स्त्री जाति का उद्धार

स्त्री जाति को धर्म ने, समाज ने, यहाँ तक कि साधु-महात्माओं ने डर के मारे उपेक्षित किया है। लेकिन स्वामी सत्यानन्द किसी से डरता-वरता नहीं है। हम लड़कियों की फिक्र करते हैं, आपको बुरा लगे तो घर में बैठे रहना। मेरी माँ भी स्त्री थी, सब स्त्री से पैदा हुए हैं और जिस स्त्री से पैदा हुए हैं, उसी स्त्री के प्रति ऋण चुकाना चाहिये। हम औरतों को दहेज में अच्छी साड़ी, गहना, रुपया-पैसा सब देंगे। क्यों नहीं देंगे? आखिर कन्यादान हमारे वैदिक धर्म में सबसे बड़ा सामाजिक दायित्व है। अगर इस दायित्व से हम पीछे हटते हैं तो हम एक सामाजिक अराजकता के युग में प्रवेश करेंगे। कितना ही कष्ट क्यों न हो, हमें यह दायित्व पूरा करना चाहिये। हाँ, आगे चलकर हमारी

लड़कियाँ यूरोप-अमेरिका की तरह सुशिक्षित और स्वावलम्बी हो जाएँ तब की बात छोड़ दीजिये। वह भी एक दिन होना चाहिये।

हम नहीं चाहते कि लड़की परावलम्बी रहे। वह अपने पैर पर खड़ी हो, पढ़े-लिखे, रसोई घर से बाहर निकले। सिर्फ रसोई-घर स्त्रियों की जगह नहीं है। उनका क्षेत्र सारा घर है, घरवाली तो वही होती है। वह समय आ सकता है, आना भी चाहिये कि जिस दिन हमारी लड़कियाँ लड़कों के साथ कंधे से कंधा मिलाएँ। मगर अभी ऐसा हाल नहीं है। आज समाज की साईकिल का एक पहिया पंचर है, अशक्त और असहाय है। एक पहिये पर कोई गाड़ी चलती है क्या?

मजे की बात यह कि जब वह तुम्हारे घर में आई, खाली हाथ नहीं आई, सूटकेस भरकर लाई। वह लक्ष्मी का रूप लेकर आई और तुमने उसे अपनी नौकरानी बना दिया। उसका बेटा थाली फेंक कर कहता है, साफ करो। वह कपड़े धोती है, बर्तन मांजती है, सब कुछ वही करती है। तुम क्यों नहीं करते हो? तुम्हारे घर में वह साईकिल-मोटर साईकिल लाई, सोना-चाँदी लाई और तुमने उसके साथ क्या व्यवहार किया है? कम-से-कम आत्मचिन्तन तो करो और पश्चात्ताप करो। हमारे समाज ने स्त्री जाति की जो उपेक्षा की है, उसके बारे में अब उसको आत्मचिन्तन करना होगा।

आज अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी और फ्रांस जैसे देश जो इतने ऊँचे उठे हैं, इसलिये नहीं कि वहाँ के लोग विद्वान् हैं, बल्कि स्त्री जाति के कारण। गोरी जाति की जितनी लड़कियाँ हैं, उनकी शिक्षा जबरदस्त होती है। जिन देशों के पीछे तुम भाग रहे हो, नकल कर रहे हो, वे देश केवल स्त्रियों की वजह से ऊपर उठे हैं। वहाँ भी दो सौ साल पहले वही हाल था, जो तुम्हारे यहाँ है। दो सौ सालों में उन्होंने अपनी लड़कियों को घर से बाहर निकाला, उनको निकालना पड़ा। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध में उनके लाखों-करोड़ों आदमी मरे। तब परिस्थितियों ने उनकी स्त्रियों को घर से बाहर निकलने के लिये मजबूर किया। तब जाकर आज वे इस स्थिति में हैं।

स्त्री जाति का उद्धार किये बिना किसी भी घर-परिवार या समाज का उद्धार नहीं हो सकता। हमलोगों का स्त्री जाति के प्रति जो विचार है कि स्त्री केवल भोग्या है, वह विचार गलत है। स्त्री केवल भोग्या नहीं, पूज्या है। भोग्या केवल उसका एक स्वरूप है और वह भी उसका एक मर्यादित स्वरूप है। स्त्री हमेशा पूज्या होती है, अब उसे प्रेम से पूजो, बहन के रूप में पूजो, शिष्या

के रूप में पूजो, हमें उससे कोई मतलब नहीं। मगर स्त्रियों को जिस तरह से हमने रखा है, वह गलत है। समाज ने, धर्म ने, स्त्रियों के लिए एक मर्यादा निश्चित की है, हम उसे स्वीकार करते हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं हो जाता कि हम अपनी लड़कियों को अबला बनाकर घर में रखे रहें।

स्त्री के ऊपर इतने सारे प्रतिबन्ध और नियम वैदिक संस्कृति के नहीं, बल्कि बाहर से आइ संस्कृतियों के अवशेष हैं। वैदिक संस्कृति में तो गार्गी और मदालसा जैसी स्त्रियाँ राजा जनक की सभा में बैठकर शास्त्रार्थ करती थीं। यह बात आप लोगों को समझनी होगी। आज नहीं तो कल, स्त्री को योग्य बनाना होगा। बिना लायक बनाए अगर वह मार्केट में जायेगी तो क्या होगा? ठगी जायेगी। उनको योग्य बनाना पड़ेगा, जिसके लिये शिक्षा आवश्यक है।

इसलिये हम शिक्षा पर ज्यादा जोर देते हैं। तुम्हारा चाहे लड़का हो या लड़की, उन्हें पढ़ना चाहिये। वैसे हम आज की शिक्षा से भी संतुष्ट नहीं हैं। यह ख्याल में रखना कि हमारा हिन्दुस्तान आज एक साथ कई शताब्दियों में जी रहा है। यहाँ तुम्हें सोलहवीं शताब्दी का हिन्दुस्तान भी देखने को मिलेगा और इक्कीसवीं शताब्दी वाला भी। तब शिक्षा भी वैसी देनी चाहिये। भारत में सोलहवीं शताब्दी में रहने वाले को इक्कीसवीं शताब्दी की शिक्षा देना गलत है।

गाँव के बच्चों को स्कूलों में क्या पढ़ाते हैं? औरंगजेब की बेटी का नाम क्या था। अरे! हम क्या करेंगे औरंगजेब की लड़की का नाम जानकर? नहीं भी पढ़ाओगे तो चलेगा। हमें तो यह चाहिये कि अगर हम साबुन बनाना चाहें तो कैसे बनाएँ। अगर हम यहाँ मशरूम उगाना चाहें तो कैसे करें, कैसे उसकी मार्केटिंग करें? सब से पहली चीज है आर्थिक जीवन। घर में चार पैसा न हो तो आदमी कैसे जीवन बितायेगा? हमें गाँव में ऐसी शिक्षा देनी चाहिये जो गाँव के लोगों के लिये भौतिक दृष्टि से अर्थकरी हो। गाँव में धार्मिक शिक्षा देना जरूरी नहीं है, यहाँ की औरतें पूर्ण हैं इस मार्ग में। पण्डित पंचांग पढ़ेगा तो गलती कर सकता है, मगर ये लोग गलती नहीं करते हैं। मुहूर्त-नक्षत्र सब ठीक जानते हैं। ये गंवार और निरक्षर हो सकते हैं लेकिन इनके पर्व एकदम नक्षत्रों पर चलते हैं। इनका दिशाओं का, नक्षत्रों का ज्ञान बहुत अच्छा है। किन्तु व्यावहारिक जीवन में सबसे बड़ी चीज है, अर्थकरी विद्या, जो आज इन लोगों के लिये परम आवश्यक है। वह इनके पास नहीं है।

–22 नवम्बर 1997



अध्याय 19

इस पंचायत की ससुराल जाने वाली लगभग तीन सौ नववधुओं को इस साल सुहाग पेटियाँ प्रदान की जायेंगी। हर वर्ष यहाँ सुहाग पेटियाँ दी जाती हैं, लेकिन इस बार मेरे आस-पड़ोस में रहने वाली सभी नववधुओं का एक साथ चयन किया गया है। भारत में लड़कियाँ प्राय: पंद्रह बरस की होते-होते ब्याह दी जाती हैं और एक-दो दिन ससुराल में रहकर अपने मायके लौट आती हैं। फिर सत्रह-अठारह वर्ष की अवस्था में वे अपने ससुराल वापस जाती हैं, जिसे द्विरागमन कहा जाता है। वह मायके से उनकी अंतिम विदाई होती है। इसी द्विरागमन के अवसर पर मैं उन नववधुओं को मंगल उपहार के रूप में सुहाग पेटियाँ देता हूँ। पेटी में पति के लिये भी सामान रहता है, जैसे, पैंट, शर्ट, कोट या घड़ी, और सुहागनों के लिये कीमती साड़ी, जेवर और सोलह श्रृंगार के साधन। वधू को सोलह श्रृंगार का सामान देना भारत की प्राचीन परंपरा है और इसे एक बहुत पुण्य कर्म माना जाता है। बिना सोना-चाँदी के सुहाग पेटी पूरी नहीं मानी जाती। अमीर हों या गरीब, सुहाग में हीरा-मोती या सोना-चाँदी के रूप में कुछ-न-कुछ जरूर देते हैं।

यह सब सीता जी के दहेज का सामान है, जो उन्हें 4 दिसम्बर को संध्या के समय अर्पित किया जाएगा। उसके बाद सीता जी का प्रसाद सब नववधुओं को दिया जाएगा। हमें लोगों से जो भी वस्त्र-आभूषण आदि का सामान मिलता है उसे सीता जी के दहेज के रूप में ही स्वीकार करते हैं। तुम देखोगे कि उस दिन नन्हीं गुड़िया जैसी दिखने वाली सुन्दर-सलोनी नववधुओं को किस प्रकार यह उपहार प्रदान किया जाता है। वे सभी यहाँ आ



चुकी हैं, मैंने उनसे बातचीत कर ली है। स्वामी सत्संगी, स्वामी निरंजन, स्वामी आत्मानंद, सभी तैयारी में लगे हुये हैं। भारत में शादी-ब्याह के समय ऐसी तैयारी आम बात है। शादी-ब्याह के अवसर पर जो भी मेहमान जाते हैं अपने साथ कोई-न-कोई उपहार जरूर लेकर जाते हैं, पर संन्यासियों को इन रस्मों में भाग लेने की अनुमित नहीं थी। शायद इसके पीछे यही भावना रही हो कि संन्यासी अगर शादी-ब्याह में जाएगा तो कहीं खुद इस चक्कर में न फंस जाए। इसलिए उन्हें वैवाहिक समारोहों से अलग रखा गया था, लेकिन मैंने उन्हें इस समारोह में भाग लेने की छूट दे दी है। मुझे इस बात की कोई चिंता नहीं कि लोग क्या कहेंगे। जिसे यह पसंद न हो, वह यहाँ मत आए। इन सीता स्वरूपा बच्चियों के साथ किसी-न-किसी प्रकार का रिश्ता होना अच्छी बात है। यह भी एक रिश्ता है।

सीता-राम विवाह के प्रति यहाँ के लोगों में बड़ा उत्साह है। पिछले साल इस पंचायत के अधिकांश लोग पहुँचे थे, विशेषकर औरतें और बच्चे। पूरी दुनिया में और खासकर भारत में विवाह जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। लोग कहते हैं जन्म एक बार होता है, मृत्यु भी एक बार होती है और विवाह भी एक ही बार होता है। विवाह सौंदर्य और आनंद का प्रतीक है। बस भगवान शिव ही एक ऐसे हैं जिन्हें किसी भी वेष में विवाह में जाने की छूट है—नंग-धड़ंग या व्याघ्र-चर्म पहने या भस्मविभूषित, गले में

सर्पमाला और हाथ में हुक्का लिए, उन्हें सब छूट है, पर दूसरे किसी को यह छूट नहीं है। जब विवाह सौंदर्य और आनन्द का उत्सव है तो इस अवसर पर सुन्दर-से-सुन्दर चीजों को प्रस्तुत करना चाहिये न!

भारत की देवभूमि–गढ़वाल

हमारे भारतीय वाङ्मय में गढ़वाल को देवभूमि कहते हैं। गढ़वाल का मतलब जहाँ यमुनोत्री, गंगोत्री, बद्रीनाथ, केदारनाथ और तपोवन जैसे तीर्थस्थान हैं। यह आदिकाल से भारतवर्ष की देवभूमि मानी गयी है। मन्दिर तो सब जगह हैं, बिहार में भी हैं, उत्तर प्रदेश, बंगाल, पंजाब और गुजरात में भी हैं। गोदावरी भी पवित्र है और नर्मदा भी, लेकिन हमारा भारतीय वाङ्मय, वेद, पुराण, रामायण या महाभारत पढ़ो तो देवभूमि का अर्थ एक ही होता है, गढ़वाल। गढ़वाल शुरू होता है हरिद्वार से। वह हरि का द्वार है। जैसे गेटवे टू इण्डिया होता है, वैसे हरिद्वार गेटवे टू हरि है। वैसे हरि और हर, दोनों का द्वार है। वैष्णव उसको हरिद्वार कहते हैं, शैव उसको हरद्वार कहते हैं, बोलते हैं शंकर जी का द्वार है क्योंकि केदारनाथ में शिवजी का महालिंग है। दूसरी ओर बद्रीनाथ में श्री नारायण जी स्वयं विराजते हैं। गंगोत्री में गंगाजी निकलती हैं और उधर यमुनोत्री में यमुनाजी निकलती हैं। तो इसे देवभूमि कहते हैं, और मजे की बात यह कि हिन्दुस्तान में जब लोग तीर्थ करना चाहते हैं पहले वहीं जाते हैं। देवघर नहीं आते, न ही कलकत्ते या उड़िसा जाते हैं। तीर्थ का मतलब हुआ उत्तराखण्ड। दक्षिण भारत में किसी को भी संन्यास लेना होगा, वह वहीं जायेगा। संन्यास की व्यवस्था और देव-दर्शन की व्यवस्था उत्तर भारत में है, इसलिये हरिद्वार से जो भूमि चालू होती है वह पवित्र मानी जाती है। गरीब-से-गरीब लोग, मजदूर वर्ग के लोग, सब तीर्थयात्रा के लिए वहीं जाते हैं, लाखों की संख्या में जाते हैं।

सन् 1988 में मुंगेर छोड़ने के बाद मैं वाराणसी चला गया था। वहाँ एक महीना रहा, फिर पशुपतिनाथ और अन्य तीर्थस्थलों की यात्रा करके दिल्ली चला गया। दिल्ली से एक टैक्सी लेकर हरिद्वार के लिए निकल गया। हरिद्वार से पहले यमुनोत्री गया। शाम होते-होते यमुनोत्री पहुँच गया। दूसरे दिन वहाँ से प्रस्थान किया और तीसरे दिन मैं गंगोत्री पहुँच गया। मुझे गंगोत्री बहुत पसंद है क्योंकि वहाँ पूरे जाड़े के समय रह चुका हूँ। चारों ओर बर्फ-ही-बर्फ थी। मेरा कमरा, कमरे की खिड़की-दरवाजा, सब बर्फ से ढका

था। कमरे से बाहर निकलना भी मुश्किल था। कागज पर टट्टी करता और उसे खिड़की से बाहर फेंक देता। कमरे के अंदर मैं रोटी सेंक लेता था और दिनभर चिलम पीता था। बस गांजे का दम लगाना और प्राणायाम की कठोर साधना, दिनभर यही सिलसिला चलता था। मैं अपनी कुण्डलिनी जगाना चाहता था। लेकिन चिलम की इस आदत की मुझे कीमत चुकानी पड़ी। मुझे गंगोत्री छोड़ना पड़ा। नवम्बर, दिसंबर, जनवरी, फरवरी—पूरे चार महीने मैं वहाँ रहा था। वहाँ और कोई नहीं था।

इस बार मैं वहाँ तीन दिन ठहर गया। सातवें दिन मैं केदारनाथ में था। आठवें दिन बद्रीनाथ में और नौवें दिन ऋषिकेश में था। दस दिन में मैंने देवभूमि की तीर्थयात्रा पूरी कर ली। सात दिन में भी यह यात्रा पूरी हो सकती थी, लेकिन गंगोत्री प्रवास के कारण विलंब हुआ। बद्रीनाथ मंदिर तक तुम सीधे टैक्सी से जा सकते हो, गंगोत्री मंदिर तक भी टैक्सी से जा सकते हो। यमुनोत्री में टैक्सी 10 मील पहले छोड़कर तुम्हें ऊपर चढ़ना पड़ता है। केदारनाथ में भी ऐसा ही है, आखिरी चढ़ाई बड़ी कठिन है, बिलकुल सीधी चढ़ाई है। वहाँ जाने का सबसे अच्छा समय अप्रैल और मई का महीना है। इस समय तो वहाँ सभी मंदिर बंद रहते हैं। फिर अप्रैल में जाकर खुलेंगे।

केदारनाथ जी छोटे-मोटे शिवलिंग नहीं हैं, वहाँ तो भैंस की तरह चट्टान है, जो न जाने कितनी दूर जाती है अन्दर-ही-अन्दर। उसका अभिषेक घी से होता है। घी से ही शिवजी का मर्दन और मालिश होती है। बहुत ही सुन्दर स्थान है। हमलोगों के यहाँ दो प्रकार की मूर्तियाँ होती हैं। एक तो पूजा की स्थायी मूर्ति होती है, दूसरी वह मूर्ति होती है जिसे हटाया जा सकता है, कभी इधर-उधर यात्रा वगैरह में ले जाते हैं। दिवाली के बाद जब बद्रीनाथ बंद होता है तो भगवान नारायण की मूर्ति नीचे उतर आती है पाण्डुकेश्वर में जहाँ पण्डे और पुजारी लोग रहते हैं। इसके लिये दूसरी मूर्ति होती है जो यात्रा में नीचे आती है, और जिसकी फिर स्थानिक पूजा नीचे में होती है। बद्रीनाथ में मन्दिर पट बन्द रहता है, अन्दर में मूर्ति के सामने बहुत बड़ा दीया होता है, उसको जला देते हैं वे लोग और पट बिल्कुल बन्द कर देते हैं। जिस दिन वे पट खोलते हैं उस दिन तक वह दीया जलता ही रहता है। छः महीने बन्द रहता है मन्दिर। दीवाली पर बन्द होता है और अक्षय तृतीया पर खुलता है। इसी तरह से नियम बना हुआ है चारों मन्दिरों में, क्योंकि ऊँचे पहाड़ों में बहुत जबरदस्त बर्फ पड़ती है।

नीचे जोशीमठ में एक मन्दिर है जहाँ कहते हैं कि शंकराचार्य ने तपस्या की थी। मठ में भी एक जगह है जो शंकराचार्य का स्थान कहा जाता है।

देखो, शंकराचार्य दो हुए हैं। जिनके बारे में तुम बोल रहे हो, उनका नाम था शंकर। उन्हें हम आदि शंकर कहते हैं, पहले शंकर जो केरल में पैदा हुए थे, नम्बूदरी ब्राह्मण थे, छः साल की उम्र में उन्होंने घर छोड़ा और संन्यास लिया। आपद् संन्यास लिया था माँ से। पिताजी मर गये थे, माँ से अनुमति ली थी और यह वायदा किया था कि वे उनकी अन्त्येष्टि करेंगे। संन्यासी किसी की अन्त्येष्टि नहीं करता, उसका यह एक नियम है, किन्तु उन्होंने कहा कि तुम्हारी अन्त्येष्टि हम करेंगे। केरल से फिर वे आये नर्मदा के समीप मान्धाता पर्वत पर, जहाँ पर अभी ओंकारेश्वर मन्दिर है। इन्दौर के पास नर्मदा नदी जहाँ से बहकर जाती है, वहाँ एक ज्योतिर्लिंग है जिसे ओंकारेश्वर महादेव कहते हैं। वहाँ गोविन्दपाद नाम के एक महात्मा रहते थे। शंकर ने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया और वहाँ कुछ समय रहे। छः साल की उम्र में उन्होंने वेदाध्ययन शुरू किया और दस साल की उम्र तक सारा अध्ययन पूरा कर लिया। उसके बाद ओंकारेश्वर छोड़ा और हिमालय में गंगाजी के किनारे आ गए। वहाँ पर बैठकर उन्होंने गीता, ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों पर टीकाएँ लिखीं। सोलह साल की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते उन्होंने लिखना पूरा कर दिया। इसे शांकर-भाष्य कहते हैं जिसे आज दुनिया भर के लोग पढ़ते हैं, जिसपर विश्वविद्यालयों के बड़े-बड़े विद्वान् शोध करते हैं। इतने बड़े विद्वान् थे आदिशंकर।

सोलह साल की उम्र में उन्होंने दिग्विजय शुरू की। पहले काश्मीर गये, जहाँ के राजा ने उन्हें राजकीय सम्मान दिया। उनके साथ सेना की एक छोटी टुकड़ी भेजी, खजाना भेजा। जहाँ-जहाँ शंकराचार्य जाते थे वहाँ बाकायदा काश्मीर की सेना उनके साथ जाती थी। छोटी-सी टुकड़ी थी उनकी मदद करने के लिये, उनका तंबू लगाती थी, सब तरह की व्यवस्था करती थी। उन्होंने सब जगह जाकर वैदिक मत का प्रचार किया, उसका पुनरुत्थान किया, क्योंकि उस वक्त हिन्दुस्तान में बौद्ध और जैन धर्म फैला हुआ था। सारी सनातनी मूर्तियाँ हटाकर उन्होंने अपनी मूर्तियाँ रख दी थीं मन्दिरों में। तब शंकराचार्य ने वैदिक धर्म को पुनर्स्थापित किया। सोलह साल तक तीन बार उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर तक सम्पूर्ण भारत की यात्रा की।

एक बार माँ की अन्त्येष्टि करने के लिये भी दक्षिण गये और बत्तीस साल की आयु में उन्होंने केदारनाथ में अपना शरीर छोड़ दिया।

उन्होंने चार जगहों पर पीठों की स्थापना की। पहला है जोशीमठ जो बद्रीनाथ के रास्ते में है। दूसरा द्वारिका, पश्चिम में है। पुरी पूर्व में है और श्रृंगेरी दक्षिण में। इन चार मठों की स्थापना की और इन मठों से उन्होंने दशनामी परम्परा के संन्यासी तैयार किए। उन्होंने संन्यासियों को उनकी श्रेणी के मुताबिक दस भागों में विभक्त किया, जैसे सरस्वती, पुरी, भारती, गिरि, वनम्, तीर्थम् आदि। हम सरस्वती हैं, सरस्वती माने जो विद्वान् हों। पुरी वे हुए जो शहरों में रहते हैं, आश्रम, अस्पताल, अनाथालय या विद्यालय चलाते हैं। पहाड़ों में रहने वाले गिरि हुए, तीर्थों में रहने वाले तीर्थम्, जंगल में रहने वाले अरण्यम्। जो जहाँ रहता उस मुताबिक उपाधि दी, और जो पढ़े-लिखे थे उनको कह दिया सरस्वती। सरस्वती संन्यासियों को कहा, तुम जाकर विद्या का प्रचार करो। इस तरह उन्होंने दशनामी संन्यासियों को व्यवस्थित किया, अखाड़ों की स्थापना की।

इसके बाद फिर उनके और शिष्य हुए, जिनमें एक और शंकराचार्य आए हैं। उनका नाम आदि शंकराचार्य नहीं, सिर्फ शंकराचार्य है। शंकर और शंकराचार्य दो हुये थे, दानों ऐतिहासिक पुरुष थे। प्रथम आदिशंकर हुये और दूसरे अभिनव शंकराचार्य कहलाये। आम लोग शंकर और शंकराचार्य में भेद नहीं जानते।

क्या दूसरे शंकर भी अल्पायु थे?

नहीं, वे पूरी आयु तक जीवित थे। उन्होंने पूरे भारतवर्ष के अखाड़ों को व्यवस्थित किया। भारत में हमलोग इतिहास की ज्यादा चिंता नहीं करते। हमलोग ठोस कार्यों और उनके पीछे प्रेरणा व भावना को अधिक महत्त्व देते हैं। किसको फिक्र है कि कौन कहाँ रहा? हमलोग तिथियों और तारीखों के पीछे नहीं रहते। कौन कब पैदा हुआ था, यह जानना जरूरी नहीं है। इतिहास और तिथियों का हमारे लिये उतना महत्त्व नहीं जितना कृतियों और उपलब्धियों का है। इसलिए भारतवासी इतिहास की प्राय: उपेक्षा कर देते हैं।

अगर ऐतिहासिक तिथियों का लेखा-जोखा रखना ही हो तो भारत में उसकी एक अलग पद्धति है। अलग-अलग संकेतों के माध्यम से वह जानकारी रखी जाती है। जैसे कहेंगे कि जब श्रीकृष्ण का जन्म हुआ तो

रोहिणी आकाश में नृत्य कर रही थी। पुराने ग्रन्थों में ऐसा ही लिखा रहता है। अब तुम्हें समझना होगा कि यह किस चीज का संकेत है। इसका मतलब यह है कि कृष्ण का जन्म रोहिणी नक्षत्र में हुआ था। कृष्ण जैसे महापुरुषों की जन्म-तिथियाँ प्रतीकों के माध्यम से बतायी जाती हैं, उन्हें सीधे तौर पर नहीं बताया जाता।

यह भारत की प्रथा है। महापुरुषों का जन्म इतनी तारीख को, इतने सन् में हुआ, ऐसा नहीं लिखते हैं। उस वक्त का एक छोटा-सा चित्र बना देते हैं कि आसमान में देवता फूल बरसा रहे थे, फलाने-फलाने देवता थे। उसका मतलब जानने के लिए तुम्हें पढ़ना पड़ेगा कि वह देवता उस वक्त किस नक्षत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। तब मालूम चलेगा कि उस दिन ग्रह-नक्षत्रों की क्या स्थिति थी। यह जो 1997-1998 वाला कैलेंडर है यह तो आज चल रहा है। हो सकता है आगे जाकर दूसरी संस्कृति आ जाए, इस कैलेंडर को खत्म कर दे। पहले विक्रम संवत् चलता था, खत्म हो गया। जो राजा राज चलाता है वह अपना कैलेंडर चलाता है। कल यह सभ्यता चली जायेगी, हो सकता है इसकी जगह चीनी, जापानी या रूसी लोग आ जाएँ, वे अपना कैलेंडर नहीं चलाएँगे क्या? और हो सकता है कल तुम्हारी बात सुनने लगें तो तुम्हारा विक्रम संवत् भी चल जाए, तब तो यह अंग्रेजी कैलेंडर खत्म हो जाएगा। जब कुछ सदियों बाद यह कैलेंडर नहीं रहेगा तो तिथि कैसे जानोगे, कैसे पढ़ोगे कि व्यक्ति किस दिन पैदा हुआ?

अगर यह लिख दिया जाए कि जिस दिन यह आदमी पैदा हुआ उस समय आसमान में नक्षत्रों की स्थिति यह थी तो बात दूसरी है। नक्षत्रों की स्थिति रोज नहीं बदलती। कोई-कोई नक्षत्र तो दौ सौ साल में अपनी स्थिति बदलते हैं, कोई-कोई पन्द्रह सौ साल में उस स्थान पर आते हैं। उसका मतलब वह घटना पन्द्रह सौ साल पहले हुई होगी, उसके पहले नहीं, ऐसा संकेत दिया जाता था। मगर वे लोग नक्षत्रों का नाम न लेकर देवी-देवता कह देते थे, जैसे रोहिणी या कृत्तिका। इस तरह से वे लोग संकेत करते थे। ज्योतिष-शास्त्र में समझाया जाता था यह सब।

ईसा मसीह के जन्म के समय पूर्व दिशा में तेज प्रकाश दिखा था। इसे दैवी घटना के रूप में नहीं, बल्कि भौतिक घटना के रूप में देखो। वह कौन-सा ग्रह या नक्षत्र था? वही ईसा के जन्म की तिथि थी। जब बुद्ध का जन्म हुआ तो सरोवर में कमल खिल गये। इसका मतलब क्या है?

भारत में इतिहास लिखने की यही परम्परा है। हमलोग अंग्रेजी या किसी अन्य कैलेंडर के आधार पर महापुरुषों के जनम-मरण का लेखा नहीं रखते क्योंकि हम जानते हैं कि इन पंचांगों से भ्रान्ति उत्पन्न होगी।

रामायण में कहा गया है कि जब राम और रावण का युद्ध हो रहा था तो देवता फूलों की वर्षा कर रहे थे। क्या इसका मतलब भी ग्रह-नक्षत्रों से है?

हाँ, जब अलग-अलग तिथियों पर राम-रावण युद्ध हो रहा था और इस बीच रावण परिवार के प्रमुख योद्धाओं की मृत्यु होती थी तो उन घटनाओं को महाकाव्य में प्रतीकों के माध्यम से दर्शाया गया है। रामायण में नक्षत्रों और ग्रहों की दशा प्रतीकात्मक रूप से बतायी गयी है। यदि वह जानकारी समझ सको तो हजारों वर्ष पुराने इतिहास में जा सकते हो। एक अमेरिकन इतिहासकार, विल डुरैंट ने ऋग्वेद और अन्य वेदों पर शोध कर वेदों का काल निर्धारित करने का प्रयास किया था। वेदों के काल-निर्धारण पर अनेक इतिहासकार और विद्वान् काम कर चुके हैं, उनके अपने मत हैं, लेकिन विल डुरैंट एक कदम आगे निकल गया। उसने वैदिक मंत्रों में इंगित ग्रह-नक्षत्रों की दशा और ग्रहण कालों का अध्ययन किया। खगोलीय दृष्टिकोण से वैसा ग्रहण लगभग 45,000 वर्ष पूर्व घटित हुआ था। गणित के आधार पर खगोलविद् यह बता सकते हैं कि अतीत में ग्रहण कब हुए थे और भविष्य में कब होंगे। वे यह भी बता सकते हैं कि सूर्यग्रहण होगा या चन्द्रग्रहण। ग्रहण की तिथि ही नहीं, उसका मिनट और सेकण्ड भी बताया जा सकता है। यहाँ तक बताया जा सकता है कि आज से पन्द्रह हजार साल बाद 15 जनवरी को अमुक समय में ऑस्ट्रेलिया में ग्रहण दिखाई पड़ेगा और भारत में नहीं दिखेगा।

इसी गणना के आधार पर विल डुरैंट ने कहा कि वेदों का काल कम-से-कम 45,000 वर्ष पुराना है। उसने पता लगाया कि ऋग्वेद में एक मंत्र ऐसे ग्रहण का उल्लेख करता है जो 45,000 साल पहले लगा था। अब बताओ, जो ग्रंथ 45,000 साल पुराने ग्रहण का उल्लेख करता है उसका रचना काल क्या होगा? इसी प्रकार वेदों-पुराणों में तुम देवी-देवताओं का जो वर्णन पढ़ते हो न, देवी-देवता आए, वे नाच रहे थे, फूल गिरा रहे थे, शंख बजा रहे थे, 'जय हो जय हो' बोल रहे थे, वह सब अन्तरिक्ष में नक्षत्रों की स्थिति की

सूचना है। जो ज्योतिर्विद् होते हैं उसकी तारीख निकाल सकते हैं। यह हम लोगों का भारत का तरीका है, क्योंकि भारतवर्ष के लोग यह जानते हैं कि कोई भी कैलेंडर स्थायी नहीं है। दुनिया सिर्फ चार-पाँच हजार साल पुरानी नहीं है। यह बहुत पुरानी है, न जाने कितनी सभ्यताएँ आई और गई हैं।

स्वामीजी, रामायण में वर्णन आता है कि युद्ध में मेघनाद ने मायावी बाण से अन्धकार कर दिया तो राम जी ने दूसरे बाण से अन्धकार दूर कर दिया। इसका तात्पर्य भी ग्रहण लगने से है क्या?

नहीं, कोई जरूरी नहीं। युद्ध विद्या हर युग में रही है। पहले के जमाने में मंत्र विद्या थी, अब नहीं है, क्योंकि अब आदमी बहुत नीच हो गया है। थोड़ी-थोड़ी बात में उसका पैनिक बटन दब जाता है। तुम्हें उल्लू कहें तो तुम चाँटा मार दोगे। अरे, उल्लू ही तो बोला, कौन-सी बड़ी बात हुई, इतनी जल्दी पैनिक बटन दबाने की क्या जरूरत थी? आज का आदमी इतना कमजोर हो गया है कि छोटी-छोटी बात पर उखड़ जाता है। अब किसी का बूढ़ा बाप जो उठ नहीं सकता, बैठ नहीं सकता, चल नहीं सकता, मर जाए तो बेटा रोता है। अरे, उसकी मुक्ति हो गई, यह क्यों नहीं सोचता?

आदमी इतना कमजोर हो गया है कि हर घटना का उसके मन पर बड़ा तीव्र असर पड़ता है। इसलिये प्रकृति ने कहा कि ऐसे आदमी को मंत्र शक्ति से वंचित करो, इसको लाइसेंस मत दो, वरना मंत्र शक्ति से तो परेशान कर देगा दुनिया को। लोग थोड़ी-थोड़ी बात पर एक-दूसरे को परेशान करेंगे। तुम्हारा अफसर तुम पर नाराज हो गया, मंत्र शक्ति का प्रयोग कर दिया उस पर। यह नहीं सोचा कि यह करने लायक है या नहीं। आखिर उसने क्या किया? थोड़ा तुम भी गलत थे, वह भी गलत था। आज समझदारी और सहनशक्ति की कमी हो गई है। घर में औरत कुछ कहती है, मर्द का हाथ उठता है तेजी के साथ। ऐसी हमारी पीढ़ी है। इसलिए कलयुग में कुछ शक्तियाँ प्रकृति ने हटा ली हैं। श्राप की शक्ति हटा ली है, मंत्र शक्ति हटा ली है।

राम-रावण के समय मंत्र शक्ति हुआ करती थी, और इन मंत्र शक्तियों को पुख्ता करने वाले देवी, देवता और महापुरुष थे। मंत्र शक्ति के माध्यम से उनके पास आग्नेयास्त्र, वरुणास्त्र और वायव्यास्त्र जैसे अस्त्र थे। विश्वामित्र ने श्रीराम को मिथिला जाते समय ये दिव्य अस्त्र दिये थे। दिव्य अस्त्र वे होते हैं जो अपने तरकस में नहीं होते, बल्कि मंत्र शक्ति से उनका संधान होता

है। वे उस समय हुआ करते थे। उस वक्त श्राप भी लगता था। पर जैसे-जैसे कलयुग आया, मनुष्य की मति भ्रष्ट होती गई, उसके अन्दर क्षमा की शक्ति कम हो गई, निर्भयता की कमी हो गई, वैर भाव बढ़ गया, बगावत बढ़ गयी, छोटी-छोटी बातों से प्रभावित होने लगा, तब हमारे ऋषि-मुनियों ने सोचा कि ऐसे आदमी के हाथ में यह राइफल देना ठीक नहीं है। सब हटा लिया।

इसलिये अब तुम कितनी भी साधना करो, कितनी भी कुण्डलिनी जगाओ, कितना पूजा-पाठ करो, कुछ होने वाला नहीं है, क्योंकि तुम्हारे पास वह मानसिक शक्ति नहीं है। अरे! लोग ठण्ढी के दिनों में गर्म पानी के बिना नहा ही नहीं सकते, इतने कमजोर हो गये हैं। उपवास नहीं कर सकते, पैदल नहीं चल सकते। यहाँ से देवघर पैदल नहीं जा सकते, बतलाइये। इन लोगों को कहते हैं यहाँ से 3 किलोमीटर दूर रिक्शा मोड़ पर बाबा आश्रम ठहर जाओ तो बोलते हैं बहुत दूर है। सब नपुंसक हो गए हैं। शंकराचार्य अकेले केरल से केदारनाथ गये, फिर केदारनाथ से काश्मीर गये, काश्मीर से दक्षिण भारत गये, दक्षिण भारत से कितने चक्कर मारे उन्होंने। उन दिनों गाड़ी होती थी क्या? क्या गज़ब की शक्ति होती थी उनकी!

हमलोग बड़े दुर्बल हो गये हैं, इसलिए प्रकृति ने कुछ अलौकिक शक्तियाँ वापस ले ली हैं। मन्त्र-शक्ति अलौकिक शक्ति है। किसी को वरदान देना या श्राप देना अलौकिक शक्ति है। यह मनुष्य की अन्तर्निहित शक्ति थी जिसे प्रकृति ने वापस ले लिया है। अब तुम किसी को न शाप दे सकते हो, न वरदान ही दे सकते हो। मंत्र बहुत शक्तिशाली होते हैं, उन्हें बन्दूक की गोली की तरह प्रयोग में लाया जा सकता है। लेकिन साधारण आदमी अब इसका उपयोग नहीं कर सकता। यदि तुम घृणा, हिंसा और स्वार्थ से ऊपर उठ जाओ, यदि तुम पूर्णत: नि:स्वार्थ हो जाओ और संसार की सभी चीजों से उदासीन हो जाओ तो शायद यह शक्ति तुम्हें प्राप्त हो जाए।

यही कारण है कि भारत में जब हम किसी सन्त-महात्मा के पास आशीर्वाद के लिए जाते हैं तो यह पता कर लेना चाहते हैं कि वे घृणा और स्वार्थ से परे हैं कि नहीं। संसार में आखिर क्या है? जन्म और मृत्यु, दोस्ती और दुश्मनी, आशा और निराशा, घृणा और प्रेम। इन द्वन्द्वों से प्रभावित नहीं होना है। संसार में ये सब हैं, लेकिन मुझे इनसे क्या लेना-देना? मुझे इनसे विरक्त रहना है, इनके प्रति साक्षी भाव रखना है। साक्षी की तरह मैं सब देख रहा हूँ, उनमें लिप्त नहीं हो रहा हूँ, जैसे कमल जल में रहकर भी प्रभावित नहीं होता।

इस भाव से यदि कोई संत रहता है तो वह तुम्हें वरदान या शाप दे सकता है, वह मंत्र-शक्ति का प्रयोग कर सकता है। उसी प्रकार के योग्य व्यक्ति को मंत्र-शक्ति प्रदान की जाती है। मन्त्र-शक्ति पाने का अधिकारी वही है जो असीम संकल्प-शक्ति रखता हो, जिसे किसी बात की कोई चिन्ता न हो, जो अपनी फिक्र नहीं करता हो, जो बिल्कुल फक्कड़-मस्त हो और साथ ही वह इतना महान् हो कि उसे दु:ख और सुख, विपदा और सम्पदा कुछ भी प्रभावित न कर सके। इतना ही नहीं उसमें करुणा, दया, क्षमा, प्रेम और भक्ति का भण्डार हो। किसी को दु:खी देखकर उसका दिल पिघलता हो, बीमार को देखकर वह द्रवित होता हो और यदि कोई दुर्वचन कह दे तो उसे क्रोध न आये। कोई तुम से घृणा करे तो भी तुम विचलित न हो, यदि कोई प्यार का इजहार करे तो भी तुम इस कान से सुनकर उस कान से निकल जाने दो। लेकिन कोई आकर बोले कि भूखा हूँ तो वह भूख तुम्हें अनुभव होने लगे। ऐसे सद्गुणों से युक्त व्यक्ति मन्त्र-शक्ति का परम अधिकारी हो सकता है। वह दूसरों को आशीष दे सकता है, वरदान दे सकता है।

आखिर ईसा मसीह को मन्त्र-शक्ति कैसे प्राप्त हुई थी? उन्हें इस बात की कोई चिंता नहीं थी कि लोग उनके बारे में क्या सोचते हैं। उन्हें सिर्फ उन लोगों का ख्याल था, जो दु:खी थे, जो गरीबी की जिन्दगी बसर कर रहे थे, जो वंचित और असहाय थे। उन्हें कभी अपने बारे में कोई ख्याल नहीं था। जब उन्हें सूली पर चढ़ा दिया गया तब भी उन्हें अपना नहीं, बल्कि उन लोगों का ख्याल था जिन्होंने उनपर ज़ुल्म ढाए थे। उन्होंने ईश्वर से उन्हें क्षमा कर देने की प्रार्थना की। ऐसे महान् व्यक्ति को पूर्ण मन्त्र-शक्ति प्राप्त थी। यह मन्त्र-शक्ति हमारे पूर्वजों को विरासत के रूप में प्राप्त हुई थी जब समाज आज के जैसा पतित और दुर्बल नहीं था।

यही कारण है कि रामचरितमानस में कहा गया है कि कलयुग में केवल भगवन्नाम और दान ही सहारा हैं?

जिस युग में हम रह रहे हैं, वह कलयुग है। कुछ लोग इसे लौहयुग भी कहते हैं, यंत्र युग भी इसका एक अर्थ है, लेकिन हमारे लिये कलयुग वह युग है जिसमें मनुष्य का मन प्रदूषित हो जाता है, वह अपने ऊपर नियंत्रण नहीं रख पाता। यह जानते हुए भी कि कोई चीज बुरी है, तुम्हारे लिये विपत्तिजनक है, फिर भी तुम उससे परहेज नहीं कर पाते हो, यही कलयुग है। सारा

संसार कलयुग से ग्रस्त है। रात-दिन लोग एक-दूसरे की बुराई करने में लगे हैं। तुम स्टार टीवी देखो, बी.बी.सी. देखो, सी.एन.एन. देखो, दूरदर्शन देखो, सब जगह लोग एक-दूसरे की निंदा में लगे हैं। लोग जरूरत से ज्यादा संवेदनशील हो गये हैं, छोटी-छोटी बातों को भी सह नहीं पाते।

इसलिये सभी संत, चाहे वे ईसाई हों या हिंदू या मुसलमान, एक ही बात कहते हैं—सभी के प्रति करुणा का भाव रखो, इसी से तुम्हारा उद्धार होगा। स्वामी शिवानन्द जी कहा करते थे कि आध्यात्मिक जीवन की आधारशिला किसी भवन की नींव या शिक्षा की बुनियाद की तरह मजबूत होनी चाहिये। कॉलेज जाने पर हम भले ही रसायन शास्त्र जैसे विषय पढ़ते हैं, लेकिन उससे पहले प्राथमिक विद्यालय में क-ख-ग ही पढ़ते हैं न? उसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन की प्राथमिक कक्षाओं में ध्यान या आत्मशुद्धि या ईश्वर-साक्षात्कार या विवेक-वैराग्य की बात मत करो। स्वामी शिवानन्द जी के अनुसार आध्यात्मिक जीवन का प्रारंभिक पाठ सेवा, प्रेम और दान है।

तुम अपनी पत्नी और बच्चों की सेवा कर रहे हो। इसमें कौन-सी बड़ी बात है, यह तो हर कोई कर रहा है। दूसरों की सेवा करना सीखो। तुम अपने बीवी-बच्चों से प्रेम करते हो, उन्हें सबकुछ देते हो, पर यह प्रेम और दान नहीं है। दूसरों को दो, दूसरों से प्रेम करो। यह प्राथमिक कक्षा पूरी करने के बाद आत्मशुद्धि, ध्यान और ईश्वर-साक्षात्कार जैसी उच्च आध्यात्मिक कक्षाओं में प्रवेश करो। यदि प्राइमरी क्लास की उपेक्षा कर सीधे आत्मशुद्धि की क्लास में छलांग लगाओगे तो यह स्वयं का दमन होगा, जिससे तुम्हारा व्यक्तित्व असामान्य हो जायेगा। ईश्वर प्राप्त करने के लिये इस युग में सबसे सरल साधन है सेवा, प्रेम और दान। सबको यह करना चाहिये, लेकिन इसे वास्तव में कर पाना इतना आसान नहीं है। मैं कहूँगा तो भी तुम नहीं करोगे।

जब मैं ऋषिकेश में था तो जो बात तुमसे कह रहा हूँ, उसे जानता तो था लेकिन करता नहीं था। मैं सेवा, प्रेम और दान पर व्याख्यान दे सकता था। थोड़ा बहुत करता भी था, लेकिन सिर्फ इसलिए कि स्वामी शिवानन्द जी का आदेश था। मैंने कुष्ठ रोगियों के लिये कॉलोनी बनवाई, उनके लिए काफी काम किया, लेकिन उस काम में मेरी व्यक्तिगत रुचि नहीं थी। गुरुजी ने आदेश दिया और मैंने आदेश का पालन किया। मुंगेर में भी मैं इस बात को जानता था, मगर अमल में नहीं ला पाता था। यहाँ रिखिया आने पर मुझे इसकी यथार्थ अनुभूति हुई, बात बिल्कुल साफ हो गयी। आध्यात्मिक जीवन



में सबसे जरूरी चीज है दूसरों के लिये जीना, दूसरों के लिये पैसे खर्च करना, दूसरों के लिये सोचना और दूसरों को खुशी देना। समझ गये न?

सेवा, प्रेम और दान, इनमें से सेवा तो सबके लिए सम्भव है। कोई बीमार हो तो उसकी सेवा की जा सकती है, मगर दान तो सबके लिए सम्भव नहीं है। यदि कोई बहुत गरीब है, उसके पास कुछ भी नहीं है, खाने के लिये भी नहीं है, तो वह दान कैसे करेगा?

हर आदमी दान दे सकता है, गरीब-से-गरीब आदमी भी दे सकता है। अगर तुम्हारे पास दो रोटियाँ हैं तो एक मुझे दे दो। बेहतर तो यह होगा कि उस दिन खुद भूखे रह जाओ और दोनों रोटियाँ दे दो। खैर तब तो यह दान नहीं, त्याग कहलाएगा। कहने का मतलब यह कि गरीब व्यक्ति भी अपनी रोटी

बांट सकता है, और जो अमीर है वह तो बहुत कुछ दे सकता है। एक महीना साबुन मत इस्तेमाल करो, एक महीना सिगरेट पीना बंद कर दो, एक महीना शराब पीना छोड़ दो, इस तरह पैसे बचा कर दान की रकम जुटा सकते हो। यह तो मैंने कुछ उदाहरण दिये, तुम खुद बहुत-से तरीके सोच सकते हो। हर महीने पाँच-छः सौ रुपये बचाओ और किसी ऐसे व्यक्ति या संस्था के पास भेज दो जो परोपकार में संलग्न हो। किसी भी अनाथालय या अस्पताल में यह रकम दे सकते हो।

इस साल हमलोग विकलांग बच्चों के लिये एक हजार ट्राइसाईकल ले रहे हैं। अगले साल हमलोग नया कार्यक्रम प्रारंभ करेंगे। यहाँ जो नया तपोवन भवन बना है वह विधवाओं के लिये है। यहाँ हमारी पंचायत की जो विधवाएँ हैं, जिनका कोई रहने का ठिकाना नहीं होता, आदमी के मर जाने पर औरत को निकाल देते हैं, वह कहीं नौकरी करती है, कहीं बर्त्तन धोती है, निरक्षर है, ऐसी महिलाओं को यहाँ आठ घण्टे रोज काम देंगे। क्या काम? माला जपना या मंत्र लिखना या रामचरितमानस पढ़ना—ये तीन काम। साक्षर महिलायें आठ घंटे रामचरितमानस पढ़ेंगी, निरक्षर महिलायें माला फेरेंगी और ॐ या श्री राम या ॐ नमः शिवाय का जप करेंगी। जो लिखना जानती हैं, उन्हें कागज पर ॐ ॐ लिखने के लिये कहा जायेगा। शाम को यहाँ की मजदूरी के हिसाब से उनके हाथ में पैसा पकड़ाया जायेगा। खेत में काम करने पर मजदूर की तीस-चालीस रुपये मजदूरी हो जाती है, जो हम यहाँ माला जपने और राम-राम कहने के लिये देंगें। अगर वे आठ घण्टे नहीं आ सकती हैं, चार घण्टे आयेंगी तो उनको आधा दिन का मजदूरी पकड़ाया जायेगा। अगर कहेंगी कि हम एक घण्टा ही आयेंगी तो घण्टे का मजदूरी उनको दे दिया जायेगा।

हमारे समाज में स्त्री जाति बहुत उपेक्षित है, और स्त्रियों में विधवा वर्ग तो बहुत ही ज्यादा। उनके बारे में सब गलत चीजें कही गई हैं। मर्द विधुर होता है तो वही कपड़े पहनता है, लेकिन औरत विधवा होती है तो सफेद कपड़ा पहनना पड़ता है। क्या यह गलत नहीं है? क्या वही कानून मर्द पर भी लागू नहीं होना चाहिये? जब सबके लिए समान नियम न हों तो उसे अन्याय कहा जाता है। इसलिये हमें लगता है कि इस वर्ग के प्रति भी शायद हमारा कुछ कर्तव्य होता है। यह काम अगले साल मकर संक्रान्ति से बड़े पैमाने पर शुरू कर रहे हैं। शुरू में सौ विधवाओं को रखेंगे। हमारे पास बहुत-से आवेदन आये हैं, लेकिन प्रयोग के तौर पर हमलोग सौ लेंगे। कैसे उनसे काम लेंगे,

उनका पहनावा क्या होगा, कितनी मालाओं की आवश्यकता होगी, कितने मंत्रों का जाप उनसे करायेंगे, यह सब तय करना होगा। इस कार्यक्रम से स्वामी निरंजन बहुत खुश है और मैं भी। युवतियों को तो हर कोई चाहता है, पर विधवाओं का ख्याल कौन रखना चाहता है? यह काम हम करेंगे, बाद में दूसरे लोग भी इससे प्रेरणा लेकर करें।

अब जैसे हम ट्राइसाईकल दे रहे हैं तो शहरों में कितनी मारवाड़ी संस्थाएँ हैं, मन्दिर हैं, उन्हें भी चाहिये कि विकलांग लोगों को ऐसी साईकल दें। ऐसा तो नहीं कि केवल हम दे सकते हैं, सब दे सकते हैं। अखिर डेढ़-दो हजार रुपया तो दाम है। क्या एक आदमी इतनी रकम अपनी जेब से नहीं निकाल सकता? हर घर में माँ सोच ले, हर घर में बच्चा सोच ले, कम-से-कम घर में छोटे बच्चे के मन में ख्याल आ जाए कि पुण्य का काम करो, किसी विकलांग व्यक्ति को एक साईकल दिला दो। कुछ दिन सिनेमा मत जाओ, कोका-कोला मत लो, रकम अपने आप हो जाएगी।

बच्चों और बड़ों, स्त्रियों और पुरुषों के मन में दूसरों के प्रति सद्भावना जागृत करना बहुत आवश्यक हो गया है, नहीं तो एक दिन हम सब लोग मारे जायेंगे, सामाजिक अराजकता हो जाएगी। सब लुटेरे निकलेंगे। देख लेना, दिन-दहाड़े तुम्हारा घर लूटा जायेगा। आखिर जब समाज थक जाता है तो क्रान्ति पर उतर आता है न? इसलिये डेढ़-दो हजार की साईकल लेने में क्या फर्क पड़ता है? हम तो हजार देंगे, हमने सोच लिया है और अभी तो शुरू हो गया है उनका आना।

इसी तरह से सबके मन में यह भाव होना चाहिये कि दूसरों का थोड़ा भला करें, किसी भी तरह से। दूसरें का भला करना आज मनुष्य का पहला कर्तव्य है। चाहे पढ़ा-लिखाकर हो या दवाई देकर हो या लंगड़े की मदद करके हो, किसी भी रूप में मदद करना मनुष्य का धर्म है। जो सम्पन्न और समर्थ हैं उनका तो यह प्राथमिक धर्म बन जाता है। जितने भी व्यापारी हैं, जितने भी दुकानदार हैं, जितने भी मारवाड़ी हैं, जितने भी और अमीर लोग हैं, उनको यह सब सोचना चाहिये। मन्दिर के पण्डों को भी सोचना चाहिये। आखिर मन्दिर के पास काफी पैसा नहीं होता है क्या? वह तो सारे देवघर के लंगड़ों को साईकल दे सकता है। आखिर भगवान शिव केवल मंदिर में ही हैं या सर्वव्यापी हैं?

–23 नवम्बर 1997



अध्याय 20

चार दिसम्बर की शाम को यहाँ पौने पाँच बजे, गोधूली की बेला में सीताजी का विवाह है, और इस विवाह के अवसर पर हमने शिवजी को निमन्त्रण दिया है। शिवजी ने वायदा किया है रामजी से कि प्रभु जब भी तुम्हारी शादी होगी, हम अवश्य आयेंगे। हमने सोचा कि वायदा तो वे पहले कर चुके हैं, अब सिर्फ उन्हें वायदे की याद दिलानी है, निमन्त्रण देना है। इसलिए यहाँ होने वाले सभी कीर्तन-भजन भगवान शिव को समर्पित होंगे। 'जय जय शिव भोले भण्डारी' इस सीता-कल्याणम् उत्सव का मुख्य भजन रहेगा। जैसे पिछले साल नाम-संकीर्तन था, इस साल यह है। इस भजन की रचना मैंने सन् 1944 में की थी, आज पचास साल से भी ऊपर हो गये हैं। तब से यह भजन बराबर चलता आ रहा है। अब की बार रिखिया में बहुत-से लोगों को बुलाया गया है। महात्माओं का प्रवचन होगा, पुरुषोत्तम जलोटा का कीर्तन होगा और दक्षिण भारत से आई हुई योगिनियाँ यज्ञ करेंगी।

जिस जगह तुमलोग अभी बैठे हो, इस भवन का नाम तपोवन है और इसका निर्माण एक विशेष संकल्प के साथ किया गया है। मुझे बीच-बीच में निर्देश प्राप्त होते रहते हैं, जिसे पुराणों की भाषा में आकाशवाणी कह सकते हो, और वही निर्देश मेरे जीवन का मार्गदर्शन करते हैं। दो साल पहले मैंने इस इलाके की वधुओं को द्विरागमन के समय सुहाग पेटियाँ देनी शुरू कीं और वह काम बहुत अच्छे से चल निकला। ऐसा नहीं कि सिर्फ मुझे ही यह विचार आया, बल्कि बहुत-से लोगों को प्रेरणा हुई। केवल हिन्दुस्तान ही नहीं, दुनियाभर के लोग, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, ईसाई हों या नास्तिक, वे आगे आए और तरह-तरह के उपहार भेजने लगे। अब हर साल

यहाँ की लड़कियाँ अपने पति के घर जाती हैं तो अपने साथ ऐसा सामान ले जाती हैं जो भगवान की ओर से मिला है। इस साल तो सामान की मानो बाढ़ ही आ गई। किसी ने पचास सूटकेस भिजवाए हैं तो कोई हिन्दुस्तान के बेहतरीन कपड़े-साड़ियाँ लाया है तो कोई सोने-चाँदी के जेवर भेज रहा है। ग्रीस और फ्रांस वाले अपने साथ सोलह शृंगार की चीजें लाए हैं। इस साल दान का काम दुहरा होगा। जो बहुएँ यहाँ से अपने ससुराल जा रही हैं, और जो इस पंचायत में ब्याह कर आ रही हैं, दोनों को सुहाग पेटियाँ दी जाएँगी। लगभग छः सौ की संख्या होगी। हम सोचते हैं ज्यादा होतीं तो और अच्छा होता।

सत्कर्म

यह काम सत्कर्म कहलाता है। सत्कर्म क्या है? धर्म। धर्म क्या है? ईश्वर से जुड़ना, मानवता से जुड़ना धर्म है। दूसरों के साथ एकता अनुभव करना धर्म है। ये तुम्हारी बहुएँ, तुम्हारी बेटियाँ हैं, ऐसा भाव दिल में लाना चाहिए। चार तारीख की शाम को तुम्हें यह देखने को मिलेगा। सभी नवविवाहिता लड़कियाँ आएँगी और अपनी सुहाग पेटियाँ लेंगी। औरतें समाज की सबसे कीमती चीजें हैं। मैं औरत से ही पैदा हुआ, तुम भी औरत से पैदा हुए। वह तुम्हारी पहली गुरु थी। उसी ने सबसे पहले तुम्हारी देखभाल की। वही तुम्हारी पहली प्रेमी थी। शायद दूसरी भी हो, कौन जाने! इसलिए औरतों का सम्मान करना, उनका ख्याल करना हम सब का फर्ज है, और इसीलिए सीता कल्याणम् का यह कार्यक्रम रखा गया है।

दूसरी बात, यह हॉल जिसमें तुम लोग बैठे हो, सत्संग के लिए नहीं बना है। आज हम इसका उद्घाटन कर रहे हैं, और अगले साल मकर संक्रांति से यहाँ बहुत अच्छा कार्यक्रम होने जा रहा है। इस इलाके की सौ विधवाएँ, जिनका जीविकोपार्जन का कोई साधन नहीं, वे यहाँ सबेरे आएँगी, दिनभर कमा करेंगी और शाम को चली जाएँगी। एक मजदूर की तरह उन्हें दिन की मजदूरी दे दी जाएगी। दिनभर क्या काम करेंगी? जो अनपढ़ हैं वे महामंत्र का जप करेंगी, जो थोड़ा बहुत लिखना-पढ़ना जानती हैं वे लिखित जप करेंगी, कॉपी पर राम-राम लिखेंगी, लाखों-करोड़ों राम नाम। हम इन कॉपियों को संभालकर रखेंगे। तुम्हें मकान बनाना हो तो मुझसे दस कॉपियाँ माँग लेना और मकान की नींव में डाल देना। भगवान का नाम तुम्हारे घर का आधार

बनेगा। जो विधवाएँ साक्षर हैं वे नीचे वाले कमरे में रामचरितमानस का पाठ करेंगी। जितने घण्टे काम करेंगी, उस हिसाब से मजदूरी दी जाएगी। पहले साल में सौ विधवाओं के लिए व्यवस्था की है। यह तो शुरुआत है, भगवान चाहें तो सबकी व्यवस्था कर सकते हैं।

जान को देत, अजान को देत, जहान को देत, तुम्हें वही दैहें।
काहे को सोच करे मन मूरख, जिन चोंच दिये तिन चून भी दैहें॥

भगवान सभी चराचर प्राणियों को खिलाते हैं, सारे ब्रह्माण्ड का पालन-पोषण करते हैं, तुम्हारी भी देखभाल करेंगे। सौ की संख्या तो एक छोटी-सी शुरुआत है। तुम सबको संकल्प करना चाहिए कि एक दिन ऐसा आए जब इस क्षेत्र की सभी विधवाओं को सहारा मिल जाए। यह नहीं कि वे अमीर हो जाएँ। अमीरी मुझे पसंद भी नहीं। तुम्हें यह संकल्प लेना चाहिए कि यहाँ की हर विधवा को दो वक्त का खाना नसीब हो जाए। यह सत्कर्म है और सत्कर्म ही आध्यात्मिक जीवन की प्राइमरी क्लास है। यही अध्यात्म, वेदान्त, सांख्य, योग, इस्लाम, ईसाई और वैदिक धर्म का क-ख-ग है। कोई भी धर्म तब तक अनुकरणीय नहीं हो सकता जब तक उसका पहला पाठ, उसकी पहली शिक्षा सत्कर्म न हो। कुण्डलिनी योग के बारे में मत सोचो, वेदान्त और अहं ब्रह्मास्मि के बारे में मत सोचो, बल्कि यह सोचो कि तुम दूसरों के लिए क्या सत्कर्म कर सकते हो। अपने बीवी-बच्चों-भाइयों-बहनों या अपने खुद के लिए नहीं, बल्कि किसी ऐसे व्यक्ति के लिए सोचो जिसका तुमसे कोई रिश्ता नहीं है। यही सत्कर्म है, यही सेवा है।

मेरे गुरु हमेशा मुझसे कहा करते थे, 'सत्यानन्द! अगर तुम आध्यात्मिक जीवन में ऊँचा उठना चाहते हो तो पहले प्राइमरी स्कूल में भर्ती होना पड़ेगा।' अध्यात्म के कॉलेज में सीधा दाखिला लेने की मत सोचो। पहले अ-आ-इ-ई सीखो, फिर शब्द और वाक्य लिखना सीखो, उसके बाद व्याकरण सीखो। तब जाकर तुम साहित्य, विज्ञान आदि की कक्षा में जाने के लायक बनोगे। अगर तुम सीधे कॉलेज चले जाओ और स्वामी निरंजन से कहो कि मुझे कुण्डलिनी योग सिखाइये, तो तुम भी मूर्ख और अगर वह तुम्हें सिखाये तो वह भी मूर्ख। खेत तैयार नहीं और तुम बीज बो रहे हो! सेवा आध्यात्मिक जीवन का पहला, प्रेम दूसरा और दान तीसरा पाठ है। इसके बाद ही आत्मशुद्धि, ध्यान और ईश्वर-साक्षात्कार का नम्बर आता है।

साथ ही हमने विकलांग बच्चों के लिए भी बड़ी योजना बनाई है। मैंने स्वामी निरंजन से इस इलाके के सभी विकलांग बच्चों के लिए एक हजार ट्राइसाइकल मँगाने के लिए कहा है। इस पंचायत में कोई भी विकलांग बच्चा बिना ट्राइसाइकल के नहीं रहेगा। वह उसके सहारे पढ़ने जा सकेगा, काम कर सकेगा।

यही मनुष्य का धर्म है, दायित्व है, कर्तव्य है। अपना सामाजिक दायित्व निभाने के अलावा तुम्हारा और कोई धार्मिक दायित्व नहीं है। समाज का मतलब केवल अपने देश का समाज नहीं, बल्कि पूरे विश्व का समाज। आखिर परिवार और समाज की परिभाषा क्या है? सिर्फ पति, पत्नी और दो बच्चे? *अयं निज: परो वेति गणना लधुचेतसाम्, उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।* 'यह मेरा है, वह तुम्हारा है–ऐसी गणना संकीर्ण हृदय वाले करते हैं। जिनका दिल बड़ा है उनके लिए तो सारा संसार ही परिवार समान है।' आध्यात्मिक जीवन का भी यही सिद्धान्त है।

यहाँ के गाँववालों से मुझे बहुत सहयोग मिला है, चाहे वे महिलाएँ हों या बच्चे या गाँव के मुखिया या प्रधान। स्थानीय सहयोग के बिना कोई अच्छा काम नहीं किया जा सकता। केवल पैसे ही सब कुछ नहीं होता। इस तरह के सत्कर्मों के लिए मुंगेर में सहयोग की कमी थी। हाँ, योग के क्षेत्र में बात दूसरी थी। अगर मुंगेर के लोग न होते तो शायद बिहार योग विद्यालय का उद्भव और विकास हो ही नहीं पाता। मुंगेरवालों का सहयोग और पाश्चात्य लोगों का प्रोत्साहन, ये बिहार योग विद्यालय की सफलता के पीछे मुख्य कारण रहे हैं। लेकिन जहाँ तक इस तरह के काम का सवाल है, यह मुंगेर में नहीं हो पाया। वहाँ मैं दस मकान बनवाने के लिए कहता और लोग सारा पैसा अपनी जेब में डाल देते। यहाँ लोग ऐसा नहीं करते। वे ऐसा करना जानते ही नहीं। मुंगेर में एक बार छात्रवृत्ति देने की योजना शुरू की। हम चार सौ विद्यार्थियों को स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई के लिए वजीफा देने लगे। इनमें आधे लड़के थे, आधी लड़कियाँ। लेकिन गाँव के मुखिया, यहाँ तक कि सरकारी अधिकारी भी झूठे प्रमाणपत्र देने लगे। विद्यार्थी का स्कूल में नाम तक नहीं और उसके नाम पर वजीफा लिया जा रहा है! इसलिए मुझे वह बंद करना पड़ा। बाद में हमलोगों ने ट्यूब-वेल्स की मरम्मत करानी शुरू की। वहाँ भी यही हुआ। मुझे लगा कि समाज अभी सत्कर्मों में सहयोग करने के लिए तैयार नहीं, उसे अपने हाल पर छोड़ देना ही बेहतर है।

लेकिन देवघर में, खासकर रिखिया पंचायत के लोगों में उत्साह और सहयोग की भावना बहुत है। हमारे आश्रम में गोशाला है, जहाँ आस-पास के गाँवों से लोग हर सुबह गोसेवा के लिए आते हैं। पंचायत के प्रधान ने तय कर रखा है कि एक दिन इस गाँव से चार लोग आएँगे, अगले दिन दूसरे गाँव से। इस तरह पूरी सूची बना रखी है। हर गाँव से लोग आते हैं और गोशाला में काम करते हैं। जब लोग तुम्हारी मदद के लिए इस तरह तैयार हों तो तुम्हारा भी फर्ज बनता है कि उनकी मदद करो। तुम्हें मालूम है न बिजली की कितनी दिक्कत होती है बिहार में! मुंगेर में बिजली नहीं रहती, देवघर में बिजली नहीं रहती, पर देवघर से बाहर होते हुए भी यहाँ बिजली रहती है, क्योंकि हमें स्थानीय लोगों का सहयोग और सद्भाव प्राप्त है। वे चाहते हैं कि यहाँ बिजली रहे।

महिलाओं का उत्थान

द्विरागमन में जाने वाली लड़कियों की सुहाग पेटियाँ तो बन गईं, पर मैंने पूछा कि जो वधुएँ बाहर से यहाँ आई हैं, उनका क्या होगा? जवाब मिला कि उनकी तो सूची बनी नहीं। कल मुखिया को पकड़ा, कहा सूची तैयार करो। अब सूची आ गई है और सब दौड़-भाग कर रहे हैं। मैंने कह दिया है कि लड़की की शादी में सोना-चाँदी जरूरी है, मिठाई-पकौड़ा से काम नहीं चलेगा। मिठाई-पकौड़ा रामजी के लिए चलता है, पर यह तो सीताजी के शकुन का है, और हम तो इस बात को मानते हैं कि लक्ष्मीजी कहीं भी जाती हैं तो वहाँ सूटकेस भरकर जाती हैं। तुम्हारे घर में लड़की कभी भी खाली हाथ नहीं आई, वह लक्ष्मी बनकर आई और तुमने उसको बना दिया नौकरानी। कैसी विडम्बना है यह! सारे सामाजिक नियम लक्ष्मीजी के लिये, पर अपने लिए कुछ नहीं! वह विधवा हो जाती है तो कपड़ा बदल जाता है। मंगल अवसरों में न जाने का भी सामाजिक नियम बन जाता है। लेकिन जब आदमी विधुर होता है तो वही कोट-पतलून पहनकर चलता है, उस पर कोई रोकटोक नहीं रहती।

जहाँ पर नियमों में भेद होता है उसको कहते हैं अन्याय। यह स्त्री के साथ सरासर अन्याय है। नियम हों तो दोनों के लिए एक समान हों। अगर स्त्री को सफेद वस्त्र पहनने को बोलते हो, आभूषणरहित रहने को बोलते हो, टीका-चंदन लगाने से मना करते हो, मंगल-कार्यों में जाने से रोकते हो, तो पुरुषों पर भी वही बन्धन होना चाहिये। तब जाकर हम इन नियमों को स्वीकार करेंगे। हमारा दिमाग तो यही कहता है।

जो लक्ष्मी तुम्हारे घर खाली हाथ नहीं आई, बल्कि भरपूर मंगल लेकर आई, सोना-चाँदी लाई, स्कूटर-मोटरसाइकल लाई, उसका बेटा उससे अपना जूठा बर्तन मँजवाता है! वह अपनी मरजी से माँजे वह दूसरी बात है, मगर माँ के साथ, पत्नी के साथ, बेटी के साथ और बहन के साथ वह व्यवहार नहीं होना चाहिये जो लड़के के साथ होता है। लड़का तो लोहे की छड़ की तरह है, कहीं पर भी रख दो। पर लड़की सोना होती है, उसे तिजोरी में संभालकर रखना पड़ता है। सामाजिक जीवन में मूल्यवान् वस्तुओं के प्रति मर्यादाएँ होती हैं। मैं उन मर्यादाओं के खिलाफ नहीं बोल रहा हूँ, मैं यहाँ सम्मान की बात बोल रहा हूँ, अपनी विचारधारा की बात बोल रहा हूँ। मैंने हमेशा इस बात पर जोर दिया है और आज भी जोर देता हूँ कि हमारी लड़कियों को समाज का सम्पूर्ण न्याय मिलना चाहिये। हम बड़े-बुजुर्ग लोगों को एक बार बैठकर आत्मचिन्तन करना होगा। अपने लिये ज्यादा अधिकार और उसके लिये कुछ नहीं, यह सही नहीं है। मर्द एक गलती करता है, पर उसको आठ खून माफ। एक गलती लड़की करती है, पर उसकी गलती माफ नहीं, यह कोई न्याय है? तुम लड़के के आठ खून माफ कर सकते हो, पर लड़की का एक खून माफ नहीं कर सकते!

रामचरितमानस–समृद्धि की गारण्टी

जैसे गुलाब सुगन्ध का प्रतीक है, चंद्रमा शीतलता का प्रतीक है, सूर्य ताप का प्रतीक है, जल जीवन का प्रतीक है, वैसे ही रामचरितमानस मंगल का प्रतीक है। वह जहाँ रहेगा उस घर में मंगल रहेगा। लोग इस बात को अगर समझ लेंगे तो जरूर पढ़ेंगे। हमारे इलाके में जो बूढ़ी विधवाएँ हैं, जिनके जाने का टिकट भी कट चुका है, वे भी रामचरितमानस पढ़ने लग गई हैं। यह चीज हमारे देश के सभ्य लोगों को आज सीखनी होगी। साक्षरता का आधार रामचरितमानस है। इससे एक पंथ दो काज हो जाते हैं। साक्षरता आ जाती है और साथ-ही-साथ मनुष्य के जीवन में कर्तव्यों के प्रति संघर्ष का जन्म होता है। जब तक कर्तव्य और अकर्तव्य के बीच संघर्ष का जन्म नहीं होगा, तब तक कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्णय मनुष्य नहीं कर सकता। अच्छे और बुरे, दोनों का ज्ञान जब हमको होगा तब हम सही निर्णय ले सकते हैं।

रामचरितमानस धर्म का काव्य, धर्म का ग्रंथ है, और हमारे भारतीय जीवन का एक बहुत सुन्दर प्रतीक है, नमूना है। इसे हमारे लड़के-लड़कियों को जरूर सिखाना चाहिये और कच्ची उम्र में सिखाना चाहिये। उनके माँ-

बाप को भी सिखाना चाहिये ताकि रोज घर में बैठकर इसका पाठ हो। यह सूत्र जो हमने यहाँ पकड़ा है, इसने दावानल की तरह काम किया है। अब तो हमें मुश्किल हो गयी है। हमें गाँव का सरपंच बोलता है, सब लोग बोलते हैं कि मोटा वाला रामायण लाकर दो, हम अर्थ के साथ पढ़ेंगे। देवघर में गीता प्रेस वाले की दुकान खाली हो गयी है, कहता है कि है ही नहीं। हमने कहा, मँगाओ कहीं से। लोगों की रामचरितमानस में इतनी रुचि हो गई है!

जब सती ने पार्वती के रूप में पुनर्जन्म लिया और उनका विवाह शिवजी से हुआ तो एक दिन उन्होंने शिवजी से कहा कि भगवन्, पिछले जन्म में मेरी खोपड़ी जरा सी उल्टी-पुल्टी हो गई थी और मुझे श्रीराम की दिव्यता पर संदेह हो गया था। मगर आज मेरी मति थोड़ी ठीक है, अब आप मुझे श्रीराम के बारे में बताइये। भगवान राम की कथा के जो प्रसंग हैं, कैसे विश्वामित्र जी लेने के लिये आए, कैसे ताड़का का वध हुआ, कैसे अहल्या का उद्धार हुआ, कैसे धनुष-भंग हुआ, कैसे परुशराम जी का मान-भंग हुआ, किस तरह से वे वनवास में गये, मुझे ये सब अलग-अलग सुनाइये। तब शिवजी उनसे बड़ी सुन्दर चौपाई कहते हैं, *'सकल लोक जग पावनी गंगा, पूछेहूँ रघुपति कथा प्रसंगा।'* शिवजी कहते हैं कि राम कथा के जो प्रसंग हैं ये पावन गंगा के समान हैं। गंगोत्री से निकलकर गंगा ऋषिकेश आती है, हरिद्वार आती है, फिर प्रयाग जाती है, ये उसके अलग-अलग पड़ाव हैं। ठीक वैसे ही ये प्रसंग राम-कथा के अलग-अलग पड़ाव हैं। राम की पूजा करो या न करो, तुम्हारी इच्छा है, लेकिन राम-कथा तो सुननी ही चाहिये, क्योंकि यह एक ऐसे व्यक्ति की कथा है जो ईश्वर होते हुए भी, ईश्वर की सारी शक्ति से सम्पन्न होते हुए भी साधारण मनुष्य की तरह व्यवहार कर रहा था। जो अनन्त शक्तिवाला है, वह जब मनुष्य शरीर में उतरा और मनुष्य के रूप में व्यवहार किया तो उसको मर्यादा कहते हैं। अगर उस वक्त वह सर्वशक्तिमान् के रूप में व्यवहार करता तो मर्यादा नहीं कहलाती। मर्यादा व्यक्तिगत भी होती है, और पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय भी।



शिवजी ने पार्वतीजी से ऐसा कह दिया तो आपको विश्वास होना चाहिये कि जब आप रामचरितमानस का पाठ करते हो तो रोज अपने घर में पवित्र गंगा का प्रवाह लाते हो। साथ ही भारत सरकार का साक्षरता प्रोग्राम भी सफल हो जाता है। एक पंथ दो काज! आखिर पढ़ना ही तो है न! शाहजहाँ की बेटी कौन थी या औरंगजेब का बेटा कौन था, यह सब पढ़ना हमारे तो काम नहीं आया। हमारे काम वही चीज आई जो गुरुजी के आश्रम में बारह साल सीखी। इतिहास को मैं भूल चुका हूँ, भूगोल को मैं फेंक चुका हूँ, केवल गुरुजी ने मुझे जो सिखाया वही एक-एक चीज आज मेरे जीवन में काम आ रही है।

रामचरितमानस तुम्हें दौलत देगा, तुम्हारे घर का छप्पर टूटेगा और वहाँ से सोना बरसेगा, यह तो मैं तुमको गारण्टी नहीं दे सकता, मगर एक गारण्टी देता हूँ—रामचरितमानस तुम्हारे घर-गृहस्थी को समृद्ध बनाएगा। समृद्धि का क्या मतलब होता है? आज गुलाब के पौधे पर एक फूल लगा, कल दो लग गये, परसों तीन लग गये, इसको कहते हैं समृद्धि। तुम्हारा एक छोटा-सा घर बन गया, अगले साल उसमें एक टॉयलेट जोड़ देना, अगले साल सेप्टिक टैंक लगा देना, एक कमरा और बना देना। इस साल लकड़ी का चूल्हा है, अगले साल गैस का कर देना। इसको कहते हैं समृद्धि। समृद्धि मनुष्य को विनम्र बनाती है, उसे उसकी सीमाओं में रखती है। वह अपनी कमजोरियों को, अपनी सीमाओं को पहचानता है, पर जब छप्पर फटकर सोना बरसता है तो आदमी पागल हो जाता है। जहाँ सम्पति आएगी वहाँ दुर्गुण और व्यसन आयेंगे, वहाँ संघर्ष का नाश हो जायेगा, वहाँ आदमी बेवकूफ हो जायेगा। पक्की बात है। विश्वास न हो तो पैसेवालों से पूछ लो। पैसेवालों से ज्यादा बेवकूफ तो दुनिया में कोई होता नहीं। बुरा नहीं मानना भाई, यहाँ बहुत पैसेवाले बैठे हैं, लेकिन हम साफ बोलते हैं, सम्पत्ति से संघर्ष समाप्त हो जाता है। जिसके पास प्रभुता और सम्पत्ति है उसके पास घमंड आयेगा ही। कोई विरला छूट जाए तो दूसरी बात है, मगर सामान्य रूप से तो ऐसा ही देखा है। इसलिए सम्पत्ति नहीं, समृद्धि होनी चाहिए, और समृद्धि को घर में लाने की गारण्टी है रामचरितमानस। मैं यह नहीं कहता कि तुम्हारे घर में सोना-चाँदी बरसेगा, चार-पाँच मंजिले मकान बन जायेंगे, गाड़ियाँ सामने खड़ी रहेंगी, मगर जीवन में खुशहाली निश्चित रूप से आयेगी।

—24 नवम्बर 1997



अध्याय 21

स्वामीजी, आपके मन में कैसे आया कि सीता कल्याणम् करें?

हमको कुछ मन में नहीं आता जी, हम सोचते नहीं हैं। हमारी जो सोचने की मशीन है वह बंद है। नहीं, हमको आवाज सुनाई देती है और हम वैसा करते हैं। कल भगवान हम से कहेंगे यहाँ से चले जाओ, तो छोड़कर चले जाएँगे, उसमें क्या रखा है? सोचने से कुछ नहीं होता है। हमने बहुत सोचा जिन्दगी में। साठ-सत्तर साल तो केवल सोचा ही, योजना बनाई, कार्यक्रम बनाया। पर अब लगता है कि नहीं, मनुष्य चाहे अमीर हो या गरीब, दु:खी सब हैं। पैसे वाला भी दु:खी है और गरीब आदमी भी दु:खी है। बीमार आदमी भी दु:खी है और जो बीमार नहीं है वह भी दु:खी है। जितना कष्ट हमने यहाँ हिन्दुस्तान में देखा है उतना ही कष्ट हमने पश्चिम में भी देखा है। वहाँ कष्ट की कोई कमी नहीं है। फर्क इतना है कि यहाँ लोग झोंपड़ी में रोते हैं और वहाँ लोग मकान में रोते हैं। इसके अलावा कोई फर्क नहीं है। ये लोग पागल होकर सड़कों में भटकते हैं, वे लोग पागलखाने चले जाते हैं। मनुष्य अपने दु:ख का कारण नहीं जानता है। गरीब आदमी सोचता है अमीर हो जाऊँगा तो सुखी हो जाऊँगा। मगर अमीर होने के बाद देखता है दु:ख तो चल ही रहा है। तो असली चीज है दु:ख का निदान कैसे हो, मनुष्य सुखी कैसे महसूस करे?

अब इसमें संत-महात्माओं ने अपना-अपना रास्ता बताया है। जैन संत अपना रास्ता बता गये, भगवान बुद्ध अपना रास्ता बता गये, शंकराचार्य वेद-पुराण का रास्ता बता गये, मगर आदमी के पल्ले कुछ लग नहीं रहा है। आखिर भगवान बुद्ध ने तो रास्ता बताया, करोड़ों लोग बौद्ध बन गये, मगर बनने पर भी सुखी नहीं रहे। ईसा मसीह ने भी रास्ता बताया, लोग

ईसाई बन गये, मगर सुखी तो कोई नहीं बना। बात समझ गये न। सुख की आखिरी कुंजी किसी के पल्ले नहीं पड़ रही है। तो रास्ता क्या है?

भगवान जगन्नाथ की जो पण्डा दिन-रात सेवा करता है वह भी रोता है। उसके घर में शोक है, चिन्ता है, व्यथा है, रुदन है, नहीं है क्या? गंगोत्री में जहाँ लोग मोक्ष के लिये जाते हैं, बद्रीनाथ में जहाँ दर्शन के लिये जाते हैं, वहाँ के पण्डे रोते नहीं हैं क्या? उन्हें शोक नहीं होता, व्यथा नहीं होती क्या? उनमें माया और ममता नहीं है क्या? उनमें मिथ्यादम्भ नहीं है क्या? न तो स्थान से सुख की प्राप्ति होती है, न ही उपदेश सुनने से। पर सुख के पीछे सब व्याकुल हैं। कुत्ते को भी बाहर बरामदे में रख दो, जब उसको ठण्ढ लगती है तो तुम्हारी चारपाई के नीचे आ जाता है। उसे भी सुख-प्राप्ति की आशा है। वेदान्त कहता है दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति और परम सुख की प्राप्ति, यह सब जीवों का उद्देश्य है।

संत-महात्माओं में भी सबको सुख की प्राप्ति नहीं होती है। जब तक मनुष्य आशा से कर्म करेगा उसको दु:ख होगा ही। शत-प्रतिशत आशाओं की पूर्ति किसी की भी नहीं होती है। भगवान राम और कृष्ण ने अवतार लेकर बताया कि ईश्वर भी जब प्रकृति का आधार लेकर अवतार लेता है तो वह भी प्रकृति के धर्मों पर आश्रित हो जाता है। उसे भी प्रकृति के नियमों का पालन करना पड़ता है। प्रकृति तो विकारी है, और परमात्मा है निर्विकार। लेकिन निर्विकार परमात्मा जब विकारी प्रकृति पर आश्रित हो जाता है तो तमोगुणमय हो जाता है, रोता भी है। श्रीराम के जीवन में, कृष्ण जी के जीवन में त्रासदी रही, आदि से अन्त तक। सीता जी ने क्या सुख भोगा, राम जी ने क्या सुख भोगा? जब मनुष्य इस बात को स्वीकार कर ले कि दु:ख जीवन का एक अनिवार्य अंग है, जैसे प्रकाश के पीछे छाया, तब जाकर सुख मिलता है। दु:ख होगा ही, अवश्यम्भावी है, अपरिहार्य है, अनिवार्य है, फिर भी लोग दु:ख नहीं चाहते। यही सबसे बड़ी गलती है। कोई आदमी मृत्यु नहीं चाहता, कोई आदमी हानि नहीं चाहता, सबको लाभ चाहिये, सबको प्रशंसा चाहिये। बस, यही कारण है दु:ख का और कुछ नहीं। दु:ख नहीं चाहते हो, इसलिये दु:खी हो। संत-महात्मा को सुख-दु:ख से कोई मतलब नहीं, जो है सो ठीक है, चलेगा।

अभी पाश्चात्य जगत् पूर्व की तरफ बहुत तेजी से सरक रहा है। बीस साल में वहाँ के अच्छे चिकित्सक-डॉक्टर सब यहाँ आकर काम करेंगे। अपनी सारे आधुनिक उपकरण और तकनीकी लेकर यहाँ आयेंगे। यह दुनिया का आगे

का रुख है। अब केवल सरकारी बैंक ही नहीं चलेंगे, बल्कि अंतरराष्ट्रीय बैंक भी आ रहे हैं भारत में। इतनी जोर से आ रहे हैं कि आप सब अपना पैसा वहीं रखेंगे। सरकार इसको रोक नहीं सकती है। वह जमाना गया कि हमारे देश में यह नहीं आयेगा तो वह नहीं आयेगा। अब लोगों की मानसिकता बदल गई है। लोग कहते हैं, कहीं से भी चीज खरीदेंगे। राष्ट्रवाद एक राजनीतिक विचार है अर्थशास्त्र में, पर वास्तव में राष्ट्रीयता नाम की कोई चीज नहीं है। ज्ञान राजनीतिक सीमाओं के परे है, राष्ट्र की सीमाओं के परे है। बायॅलोजी पश्चिमी नहीं है। उसी तरह योग पूर्वी नहीं है। विज्ञान हमेशा सार्वभौमिक होता है। विद्या हमेशा सार्वभौमिक होती है। उसी तरह से सार्वजनिक उपयोग की जितनी चीजें हैं, जैसे बैंक, विश्वविद्यालय, शैक्षणिक संस्थान, ये सभी सार्वभौमिक हैं। कोई यह नहीं कह सकता कि हमारे यहाँ नहीं आएगा या वहाँ नहीं जाएगा। तुम्हारे यहाँ क्यों नहीं आएगा? या तो अपनी बैंक व्यवस्था बेहतर करो या बाहर निकलो। जो सरकार अपने देश में अपने लोगों को अच्छी सुविधाएँ मुहैया नहीं कर सकती उस सरकार को राजनीतिक दर्शन पर बोलने का कोई हक नहीं है, चाहे वह समाजवाद हो या साम्यवाद या पूंजीवाद। यदि सरकार लोगों तक नहीं पहुँच पाती तो उसे कोई हक नहीं है दर्शन के बारे में बोलने का। बगल के गाँव में जाकर देखिये, लोगों के घर में एक टार्च नहीं है, लालटेन नहीं है, कैसी सरकार है? तीस रुपये मजदूर को तनख्वाह देते हैं, तीस रुपये में किसका पेट भरता है?

सौ रुपया भी कुछ नहीं है। मजदूरों को कम-से-कम तीन-चार सौ रोज मजदूरी मिलनी चाहिये। आखिर वे भी इन्सान हैं, उनके भी अरमान हैं, उनकी भी वही जरूरतें हैं। डॉक्टर साहब के पास जाते हैं तो क्या वे मजदूर से दूसरी फीस लेते हैं? मरीजों से एक ही फीस होती है कि नहीं? बीमारी सबकी समान होती है। स्कूल में जाते हैं, फीस एक ही होती है। दुकान में जाओगे, आपको जिस कीमत पर साड़ी मिलेगी, मजदूर को भी उसी कीमत पर मिलेगी। अरे भाई, गरीब है, कीमत कम कर दो, ऐसा तो कोई नियम नहीं है। फिर उसकी मजदूरी कम किसलिए?

हमें अच्छा, समृद्ध देश चाहिए, राजनैतिक देश नहीं। इससे सहमत नहीं हो क्या? तुम्हारा जो ड्राईवर है, तुम्हें उससे भी हाथ मिलाना चाहिए। आखिर हमारा ड्राईवर हमसे हाथ काहे नहीं मिला सकता? हमारा नौकर हमारे सामने बैठकर हमारे साथ चाय क्यों नही पी सकता है? हमारे यहाँ यह जो सामाजिक

ऊँच-नीच का भाव है वह सब तभी जाएगा जब हर आदमी को उसकी औकात दी जायेगी। नहीं तो ये राजनैतिक बातें सब फालतू चीजें हैं।

पश्चिमी संस्कृति मुख्य रूप से बनिया संस्कृति है। जहाँ उसको फायदा होगा वहाँ वह दौड़कर जायेगा। हिन्दुस्तान का बाजार अभी तक अछूता रहा है। अगर हिन्दुस्तान के नब्बे करोड़ लोगों को दस करोड़ परिवारों में बाँटा जाए तो उनमें से थोड़े परिवारों की ही खरीदने की क्षमता है। बाकी के पास नहीं है। व्यापारी समुदाय का यह धर्म होता है कि वह उपभोक्ता की खरीदने की क्षमता को बढ़ाए। जब तक उपभोक्ता की खरीदने की क्षमता नहीं होगी तब तक व्यापार अच्छा नहीं चल सकता है। जब तुम अपने मजदूर को तीन सौ रुपया रोज दोगे तो तीन सौ रुपये का सामान खरीदेगा। अगर तीस दोगे तो तीस रुपये का सामान खरीदेगा। उसकी खरीदने की क्षमता पर बाजार निर्भर करता है। यहाँ इन लोगों के पास तो कुछ है नहीं। गाँवों में किसी के पास पैसा नहीं। उड़ीसा, बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश, सब जगह दरिद्र गाँव नहीं हैं क्या? इन लोगों के घर में कोई चीज नहीं है। फटे कपड़ों को जोड़-जोड़ करके गुदड़ी बनाकर औरतें सोती हैं। हम तो उनके घरों में गये हैं, हम तो गरीबों के साथ बहुत रहे हैं। संन्यासियों को गरीबों के साथ रहना चाहिये और सेठों से पैसा लेना चाहिये। सीधी बात बोलता हूँ।

पैसा कमाने का तरीका तो यही है कि दुनिया एक होनी चाहिये, एक बाजार होना चाहिये केवल। हिन्दुस्तान में तुम चाहो तो मद्रास से भी सामान खरीद सकते हो, देवघर से भी और भुवनेश्वर से भी। एक बाजार है, तुम कहीं से भी सामान ला सकते हो। कोई कानून है क्या तुम्हें रोकने के लिए? नहीं। तो फिर इंग्लैण्ड से नहीं खरीद सकते, चीन से नहीं खरीद सकते, जापान से नहीं खरीद सकते, ये कानून क्यों हैं? यह टूटना होगा। जब यह कानून सब जगह से टूटेगा तब तुम देखोगे बाजार की व्यवस्था इतनी जबर्दस्त होगी कि ये सम्भाल नहीं पायेंगे। गरीबी का मुख्य कारण है बाजार का बाँधा जाना और जब बाजार बँधता है तो बाजार चढ़ता है। बाजार को खोलोगे, दाम घटेंगे।

मगर मैं समझती हूँ हम लोग काफी आलसी हैं। अगर इस वक्त हमारे पास खाने के लिये है तो हम सो जाते हैं। इसीलिये हम गरीब हैं।

आपकी बात कुछ हद तक सही है, लेकिन हम मानते हैं कि आलस्य सामाजिक संरचना का परिणाम है। अभी सामाजिक संरचना में हम लोगों

ने संघर्ष को स्थान नहीं दिया है। जिस जाति ने संघर्ष किया, वह आराम से बैठ नहीं सकती। हम आपसे लड़ना नहीं चाहते, आप हमसे लड़ना नहीं चाहते, जबकि युद्ध अवश्यम्भावी है। अगर अगले तीस-चालीस साल में लड़ाई नहीं होगी तो सारी अर्थव्यवस्था हिल जाएगी। युद्ध सभ्यता को बदलता है, शक्ति के संतुलन को बदलता है, अर्थव्यवस्था को बदलता है। आखिर पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र पिछले दो विश्व युद्धों में ही तो बढ़ा है। लड़ाई, जिसके बारे में हम कहते हैं कि नहीं होनी चाहिये, समाज के लिये, राष्ट्र के लिये, विश्व के लिये आवश्यक है। इंग्लैण्ड जैसे देशों में लड़कियाँ इतनी आगे कैसे बढ़ी हैं? यूरोप में पहला और दूसरा विश्व युद्ध हुआ। दूसरा विश्व युद्ध तो बहुत भीषण हुआ था, आपको याद हो या न हो। जर्मनी, फ्रांस, इटली, इंग्लैण्ड में लाखों जवान लोग मारे गये, घर में केवल बड़े-बूढ़े और बच्चे रह गये। औरतों को बाहर निकलना पड़ा। आज देख लीजिये, वहाँ औरतों की हालत जबरदस्त है। उनके यहाँ औरत-मर्द में काई फर्क नहीं है। यह सब युद्ध की वजह से हुआ।

युद्ध कुछ चीजों का सर्वनाश करता है और उनकी जगह नई चीजें लाता है। अगर विश्व युद्ध नहीं होता तो संयुक्त राष्ट्र संघ की उत्पत्ति नहीं होती। युद्ध समाज की कमियों को पूरा करने के लिए आता है। जब तक दूसरा विश्व युद्ध नहीं हुआ, अंग्रेज राज करते थे दुनिया पर। युद्ध ने पलड़ा बदला, शक्ति का केन्द्र अमेरिका बन गया। अब की बार लड़ाई हुई तो हो सकता है यहाँ चला आए खिसक कर।

हमारा देश इतना समृद्ध था, अब कितना नीचे गिर गया है।

जिस देश को पहले सोने की चिड़ियाँ बोलते थे, आज इसे जो कुछ हो गया है उसका मुख्य कारण स्त्रियों को सामाजिक भागीदारी से अलग करना है। हमारे यहाँ औरत की पारिवारिक भागीदारी है, मगर सामाजिक भागीदारी नहीं है। यह एक चीज हुई। दूसरी चीज है महिला शिक्षा। स्त्री के लिए जो सामाजिक नियम हैं उन्हें व्यावहारिक और यथार्थ पर आधारित करना होगा। जो नैतिक नियम हमने औरतों के लिये बनाये हैं, वही पुरुषों के लिये भी बनाने चाहिये। औरत विधवा होती है तो कपड़ा बदल देती है, चूड़ी तोड़ देती है जबकि आदमी विधुर होता है तो एक महीने के बाद दूसरी शादी कर लेता है! स्त्री और पुरुष के लिए सामाजिक नियम इतने अलग क्यों?

जब तक स्त्री की 100 प्रतिशत सामाजिक भागीदारी नहीं होगी तब तक यह समाज कभी अमीर नहीं हो सकता। अगर तुम पढ़ी-लिखी लड़की हो, तो जाकर डॉक्टर या लेक्चरर बनो, खुद पैसे कमाओ। घर में देखरेख करने के लिए किसी मैट्रिक पास लड़की को रख लो। वह तुम्हारा रसोईघर देखेगी, तुम्हारा टेलिफोन देखेगी, तुम्हारे बच्चों का स्कूल में आना-जाना देखेगी। तुम जाकर लेक्चरर का काम करो, दस-बारह हजार रुपये कमाओ और दो-तीन हजार रुपया उसको दे दो। अब औरतें दिनभर बच्चे को गोद में रखकर किनकिन करती रहती हैं। अरे, बेबी-सिटर याने बच्चे संभालने वाली दाई को बिठाओ, उस मैट्रिक पास लड़की को भी नौकरी मिलेगी। गरीबी को अगर दूर करना है तो यही रास्ता है।

लेकिन उस परिस्थिति में बच्चों और माता-पिता के बीच प्रेम कम रहता है।

देखो जी, दो चीजें हैं। या तो आप सम्पत्ति को देखो या बच्चों को।

हम लोगों को तो बच्चों का प्रेम चाहिये। बेबी-सिटर संस्कृति वाले विदेश में मानसिक शांति नहीं है।

तब तो गरीबी ही ठीक है। पर मानसिक शांति भारत में भी कहाँ है? हम लोगों के पास तो कितने सरफिरे आते हैं। मानसिक शांति यहाँ भी नहीं है, फर्क केवल इतना है कि वहाँ के मानसिक रोगी आंकड़ों में आ जाते हैं जबकि हमलोगों का पता नहीं चलता कि कौन पागल है। मानसिक समस्या तो सारी दुनिया में है। हमारे यहाँ कहते हैं कि सभी आधि-व्याधि का मूल है मोह। मोह एक हद तक सामाजिक आवश्यकता है, जो आपको और हमको बाँधकर रखती है माला की तरह। मगर एक हद के बाद मोह बहुत नकारात्मक हो जाता है, दु:ख का कारण बन जाता है। अगर आप मेरी माँ हैं या बहन हैं या बेटी हैं तो कोई जरूरी तो नहीं कि आप-हम साथ में रहें या एक-दूसरे को हमेशा देखते रहें। अगर हम भाई-बहन हैं, हम इस रिश्ते को मान लें, वही बहुत है। मुझे नहीं लगता कि उसके आगे जाने की जरूरत है। बच्चे को एक उम्र तक माँ की जरूरत पड़ती है, पुत्र को एक उम्र तक पिता की जरूरत पड़ती है। भाई-बहन का स्नेह कुछ दिन तक रहता है, उसके बाद दोनों को अलग होना ही पड़ता है। पति और पत्नी का सम्बन्ध वर्षों तक एक प्रकार

का होता है, फिर उसके बाद रिश्ते का रूप बदल जाता है। एक उम्र तक वह भार्या रहती है, कभी वह माता की भूमिका अदा करती है और कभी-कभी मार्गदर्शक की भूमिका अदा करती है।

सम्बन्ध के बिना माला के 108 मनके सब गिर जायेंगे, यह तो मानने के लिये हम तैयार हैं, मगर सम्बन्धों को हमारे यहाँ इतना जटिल बना दिया है कि लगता है अब सम्बन्ध ही सब कुछ है, बाकी कुछ है ही नहीं। रही पाश्चात्य देशों की बात, मैं यह नहीं कहता कि उनका आदर्श समाज है, मगर जहाँ तक सम्बन्धों का सवाल है वे उन्हें कायम रखते हैं। पति ने अपनी पत्नी को भले ही तलाक दे दिया हो, मगर सालगिरह पर उसको शुभकामनाएँ भेजेगा। और वह भी भेजती है उसकी सालगिरह पर।

मगर बच्चों का क्या हाल होता है?

बच्चों का हाल तो एक है सब जगह पर। कितने बच्चे यहाँ सड़कों में घूमते हैं, कितने बच्चे सियालदा स्टेशन पर बैठे रहते हैं, उनका कोई घर नहीं है। लाखों की संख्या में हैं ऐसे बच्चे। पूरी दुनिया में अनाथ और लावारिस बच्चे बहुत ज्यादा हैं। उनके यहाँ कम इसलिये लगते हैं क्योंकि उनकी सरकारी संस्था उनका खाना-पीना दे देती है। यहाँ तो चोरी करते हैं। अनेकों लड़के रेलवे स्टेशन पर सोते हैं और चाय वगैरह की दुकान में काम कर लेते हैं। चाहे वह एशिया हो, अफ्रीका हो या लैटिन अमेरिका, यहाँ तक कि चीन में भी हालत ऐसी ही है। हाँ, जापान ऐसा नहीं है, मगर वहाँ ड्रग्स लेने वाले बहुत हैं, अपराधी मानसिकता वाले बहुत हैं। पर इतना है कि उनको वहाँ दो वक्त की रोटी मिल जाती है जो यहाँ नहीं मिल पाती है।

कोई भी समाज, चाहे वह पाश्चात्य समाज हो या भारतीय, पूरी तरह दोषहीन नहीं होता। अब यह आप पर निर्भर करता है कि आप किस समाज को बेहतर मानते हो—ऐसा समाज जो समृद्ध है या जो संबंधों को ज्यादा महत्त्व देता है, जो यह मानता है कि बेटी की शादी ही जीवन का उद्देश्य है। संतुलन आवश्यक है। यह संतुलन अभी कहीं नहीं बन पा रहा है, चाहे पूर्व हो या पश्चिम। उन लोगों की हमसे तो बहुत बातें होती थीं। वे लोग भी नहीं चाहते कि शादी टूटे, कोई नहीं चाहता, पर कहते हैं, रहें कैसे भाई, रह नहीं पा रहे हैं। कहते हैं, 'हाँ स्वामीजी, इस बात से हम पूरी तरह सहमत हैं कि हमें एक-दूसरे को नहीं छोड़ना चाहिए, लेकिन क्या करें? जीवन नरक

बन चुका है।' रह ही नहीं सकते हैं, घर में एक-दूसरे का मुँह नहीं देख सकते हैं। वह कुछ बोलता है तो तड़ाक से बोल देती है, वह कुछ बोलती है तो तड़ाक से बोल देता है। जब ऐसी चीजें आ जाएँ तो क्या करेंगे? हिन्दुस्तान में भी होता है।

मगर यहाँ पत्नी मान लेती है।

मानना पड़ता है, नहीं तो घर से कहाँ जाएगी? मायके तो बुढ़ापे में नहीं जा सकती। वे लोग भी मानते हैं कि संबंध में स्थिरता होनी चाहिये, मगर माता-पिता लड़की के लिये लड़का तय करेंगे, यह उनकी समझ में नहीं आता है, और वह हमारी समझ में भी नहीं आता है। हमलोगों के देश में अनादि काल से स्वयंवर की प्रथा रही है। बीच में सीमा पार से हमारे विदेशी भाइयों के आने से दो-चार सौ साल में वह प्रथा खत्म हो गई, मगर सच्चाई यह है कि हमारे यहाँ स्वयंवर की प्रथा आदिकाल से रही है। यह हर तरह से स्वीकृत और सम्मानित प्रथा थी कि लड़की अपना वर खुद चुने। यहाँ तक तो ठीक है, मगर अब यह सवाल उठता है कि लड़की अगर अपना वर चुने तो लड़की में अक्ल कितनी है? अगर लड़की पढ़ी-लिखी हो, एम.ए. या बी.एस.सी. या कुछ और हो, कॉलेज में प्रोफेसरी करती हो, वह समझदार है, उसने दुनिया देखी है, वह स्वयंवर करने के योग्य है। मगर जो लड़की घर से कभी बाहर निकली नहीं, वह क्या स्वयंवर कर सकती है? उसको तो लोगों की मानसिकता मालूम नहीं, उसको मालूम ही नहीं कि आदमी बदमाश भी हो सकता है। इसलिए पहले तो लड़कियों को शिक्षा देनी होगी, फिर स्वयंवर को आना चाहिए। मुझे नहीं लगता कि माता-पिता को अपने बच्चों की शादी की ज्यादा चिंता करनी चाहिए।

शिक्षा से तो अपने आप बदलाव आ जाएगा न स्वामीजी?

नहीं, यहाँ आप लोगों को एक और बात बताना जरूरी है कि हमलोगों की जो सामाजिक व्यवस्था है, उसे युग के मुताबिक व्यावहारिक बनाना होगा। और हमारी वैदिक संस्कृति में इसके लिए प्रावधान रहे हैं। देखो, विश्वामित्र तो ऋषि थे न? पर उन्होंने भी एक लड़की पैदा कर दी, और समाज ने उसको स्वीकार किया। कण्व ऋषि ने उस लड़की, शकुन्तला का पालन-पोषण किया, और वहाँ वह फँस गई दुष्यन्त के प्रेमजाल में। केवल फँसी ही नहीं,

गर्भवती भी हो गई, मगर जब कण्व आए और उनको पता चला तो उन्होंने कहा, कोई बात नहीं, तुम्हारा गंधर्व विवाह तो हो चुका है। बाद में दुष्यन्त के पास भेज दिया।

जो समाज अपने को समय के मुताबिक, ऋतु के मुताबिक, आबोहवा के मुताबिक बदल नहीं सकता वह समाज समाप्त हो जाता है। जब गर्मी आएगी तो आपके स्वेटर सब उतर जायेंगे, और जाड़ा आने पर स्वेटर आ जाते हैं। वैसे ही समाज को स्वेटर पहनने और उतारने की जरूरत पड़ती है। विदेशी हमलावरों के समय ठीक था कि आपने अपनी लड़कियों को संभालकर रखा। यह हम मानने के लिये तैयार हैं। लेकिन आज हम नहीं करेंगे यह सब, लड़कियो को बाहर लाना पड़ेगा। उसे अपने आपको संभालना होगा, खुद अपना गार्जियन, अपना संरक्षक बनना होगा। जब तक लड़की अपनी संरक्षक नहीं बन सकती तब तक वह गलती करती रहेगी। अगर चाहो कि लड़की गलती न करे तो उसे अपना संरक्षक बनना पड़ेगा। अठारह साल के बाद लड़की अपनी संरक्षक खुद बन सकती है। हर एक की आनुवांशिक बनावट यह कहती है कि दिमाग में जो स्विच होता है संरक्षक बनने का, वह अठारह साल के बाद आ जाता है।

हमारे देश की अवनति का एक ही कारण है, समाज का पचास प्रतिशत हिस्सा एकदम नाकाम कर दिया गया, माने गाड़ी का एक पहिया पंक्चर है। बस और कुछ नहीं है। स्त्री जाति को शिक्षा के क्षेत्र में और सामाजिक परिवेश के क्षेत्र में उठाओ, तुम्हारा देश उठ जायेगा। लड़कियों को बचपन से मालूम होना चाहिये कि लड़के लोग कितने बदमाश होते हैं। उनको गाँव से शहर जाना चाहिये, शहर से वहाँ जाना चाहिये, वहाँ से वहाँ जाना चाहिये, होस्टल में रहना चाहिये, तब उन्हें पता चलेगा कि समाज में सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी, बदमाश, माफिया, अपहरणकर्ता, सब तरह के लोग रहते हैं। जब खुद व्यावहारिक रूप से समझ आ जाएगा तब जाकर वे संभलेंगीं, नहीं तो कोई भगाकर ले जाए, उसमें क्या रखा है।

दूसरी चीज, लड़कियों की सम्पत्ति को कानूनन अलग करना पड़ेगा। उनके पास अपनी सम्पत्ति होनी ही चाहिए। यह कानून होना चाहिये कि ससुराल जाते समय सम्पत्ति उनके अपने नाम पर हो। पीहर वालों का तो दहेज ले जाएगी वह, और पीहर को दहेज देना होगा। ये सब दहेज विरोधी बातें हमें जमती नहीं। यह अव्यावहारिक चीज है, गलत और झूठा विचार है

जो केवल राजनैतिक उद्देश्य के लिये किया गया है। सबसे अच्छा तो यही है कि लड़की का हक उसकी शादी के दिन उसके हाथ में देना चाहिये ताकि भाइयों के साथ झंझट ही न रहे। जैसे दो बीघा जमीन उसके नाम कर दी। हमारे यहाँ नारद संहिता और गर्ग संहिता जैसी जितनी पुरानी संहिताएँ हैं, उनमें लड़की के उत्तराधिकार के बारे में सब लिखा हुआ है। लड़की अपने सिर पर खेत को थोड़े ही ले जाएगी, वह सोना-चाँदी ले जायेगी। लड़की को दहेज में सोना और चाँदी, बहुमूल्य वस्त्र, बहुमूल्य अलंकार, यह सब देने का नियम है। यह उसका हक है माता-पिता के घर से। अभी तो तुमने कानून में दहेज को मना कर दिया, इसलिये लड़कियाँ अपने बाप की सम्पत्ति पर हक माँगेंगी। अगर तुम अपनी लड़की को उसका हिस्सा नहीं दोगे तो बाद में हक तो वह माँगेगी ही।

यह दहेज और डाउरी सब गलत शब्द हैं। संस्कृत में शब्द आता है दाय, जिसका मतलब होता है उत्तराधिकार, जो एक से दूसरे को मिलता है। यही दाय शब्द 'सम्प्रदाय' में आता है, जैसे संन्यास-सम्प्रदाय। संन्यास सम्प्रदाय में हम एक अधिकारी हैं, फिर हमारा शिष्य उत्तराधिकारी होगा। दाय का मतलब वह जो पिछली पीढ़ी से उत्तराधिकार में मिलना हो। हम लोगों के दायभाग को इन्होंने दहेज कह दिया और दहेज को अंग्रेजी में कह दिया डाउरी। वास्तव में लड़की का यह अधिकार है।

मगर ससुराल वाले माँग लेते हैं न ज्यादातर?

नहीं माँग सकते वे। इस पर कानून है। स्त्री-धन नाम से एक कानून होता है। स्त्री-धन का स्त्री के लिये ही खर्चा किया जाता है। शास्त्र का वचन है यह। हमारी लड़की जब शादी करके ससुराल गई और बीस-पचीस तोला सोना ले गई, वह उसका धन है। वह धन पुरुष को नहीं दिया जाएगा, केवल लड़की को ही हस्तांतरित होगा। या तो उसकी पुत्री को मिलेगा या उसकी बहू को, बेटे को नहीं। वैदिक संहिताओं के अनुसार, वैदिक धर्म के अनुसार, जिसे आज आप हिन्दू धर्म बोल देते हो, स्त्री-धन अस्पृश्य है। स्त्री-धन केवल स्त्री को ही उत्तराधिकार में जायेगा, चाहे बेटी को जाए, चाहे बहू के पास जाए, चाहे नातिन को जाए या पोती को जाए। यह नियम पहले से था, अब इसको तोड़ा गया है। अब इसको कैसे व्यावहारिक बनाएँ, इस सवाल पर सोचना पड़ेगा। कानून भी बनाना पड़ेगा और विश्वास भी।

बात हो रही थी गरीबी की। गरीबी कोई जादू की छड़ी से दूर नहीं होती है, गरीबी को दूर करने वाली होती है स्त्री। स्त्री हमारे धर्म-शास्त्र में लक्ष्मी का रूप मानी जाती है। पुत्र-वधू को भी लक्ष्मी का रूप मानते हैं, पर अब इस लड़की के साथ हमारा क्या व्यवहार होता है? जब पहली बार वह हमारे घर में आती है तो सूटकेस भर-भरकर लाती है, बैंक ड्राफ्ट लाती है, जेवर लाती है। बड़ा घर हुआ तो गाड़ी, स्कूटर, टीवी, वीडियो भी लाती है। व्यवहार हमारा? सारे बर्त्तन उससे साफ करवाते हैं, कपड़े उससे धुलवाते हैं, पैर उससे दबवाते हैं, उसकी पिटाई करते हैं, यह लक्ष्मी के साथ व्यवहार है!

तुम उसके घर गये खाली हाथ कंगाल की तरह, वह तुम्हारे घर लक्ष्मी की तरह आई, और तुम्हारा उसके साथ यह सलूक है! उसके कपड़े में एक दाग लग जाता है तो वह अपवित्र हो जाती है, और तुम पवित्रता का स्थायी ठप्पा लगा कर आए हो! वाह! ऐसा समाज चलेगा क्या? यह समाज कभी भी अमीर नहीं बन सकता। अमीर बनने के लिए समाज को सबसे पहले स्त्री और पुरुष को समान दर्जा देना पड़ेगा। वही कानून आपके लिए और वही कानून उसके लिए। सामाजिक विधान और कानूनी विधान समान होने चाहिये। और यह होगा। आप को कुछ करना नहीं, यह युग की हवा है। अगली शताब्दी के पहले तीस-चालीस सालों में यह होगा ही। यह तो युग का विधान है। कोई भी शक्ति, कोई भी सत्ता, वह बड़ी-से-बड़ी क्यों न हो, हमेशा टिक नहीं सकती। काल सबको अपने में समेट लेता है– *कालो जयति सर्वदा*। ईसाई धर्म कितना शक्तिशाली था, लेकिन पिछली शताब्दी से एक-एक करके बहुत-से साधु-संन्यासी वैदिक मत को सामने लाते गए। सबसे पहले स्वामी विवेकानन्द जी आए, फिर स्वामी शिवानन्द जी आए, स्वामी भक्तिवेदान्त आए। हमने भी बहुत सारे लोगों का सर मुड़वा दिया, नाम बदल दिया, तिलक लगवा दिया। समय ऐसी चीज है जो बड़ी-से-बड़ी शक्तियों के घुटने टिका देता है।

समय आ रहा है कि स्त्रियाँ ऊँची उठेंगी और हमें उनके साथ बराबरी में हाथ मिलाना होगा। यहाँ तो स्त्रियाँ शुरू से स्वतंत्र और योग्य रहीं, लेकिन जब विदेशी आक्रमणकारी आए तो अपने साथ एक रेगिस्तानी संस्कृति, एक पहाड़ी संस्कृति लेकर आए, और यहाँ हम पर थोपनी शुरू कर दी। जो राजा होता है उसकी संस्कृति तो माननी पड़ेगी न? माननी पड़ी हम लोगों को। धीरे-धीरे तीन-चार सौ सालों में बहुत कुछ बदला, फिर अंग्रेज आए तो थोड़ी व्यवस्था बदली। अब आगे तो सारी दुनिया समरूप होने जा रही है।

सर्वधर्म-समन्वय

हमलोगों के तंत्रशास्त्र में स्त्री को देवी मानते हैं। बंगाल में और मिथिला में कौलाचार तंत्र चलता था। उसमें दीक्षा माँ से ही पुत्री को मिलती थी। इसका मतलब माँ ही गुरु है। बंगाल, मिथिला और उड़ीसा में कौलाचार तंत्र बहुत प्रचलित था। असम में भी तंत्रशास्त्र की बहुत महिमा थी। तंत्रशास्त्र में उड़ीसा को ओड्यानपीठ कहते हैं। तंत्र में तीन पीठ होते हैं, जिनमें से ओड्यानपीठ एक है। उड़ीसा, बंगाल और मिथिला की जो संस्कृति है वह तंत्र से प्रभावित है।

इस बार सीता-कल्याणम् में हमलोगों ने यहाँ ईसाई-धर्म का मास भी आयोजित किया था। ऑस्ट्रेलिया से तीन पादरियों को बुलाया था, उन्होंने कम्यूनियन का पूरा अनुष्ठान किया, बड़ा अच्छा लगा लोगों को। हमने भी काला कपड़ा पहनकर, क्रॉस लगाकर भाग लिया, क्या फर्क पड़ता है जी? राजनीति में फर्क पड़ता है, धर्म में क्या फर्क पड़ता है? अरे बाईबिल पढ़ो, क्या फर्क पड़ता है? वह भी तो रामायण की तरह एक अच्छी किताब है, भगवान की किताब है। चोरी करो जैसी कोई बुरी चीज तो नहीं लिखी है न? फिर क्यों नहीं पढ़ोगे? कुरान क्यों नहीं पढ़ोगे? कुरान में कोई बुरी बात लिखी है क्या? यहाँ संस्कृत में लिखा है और वहाँ अरबी में लिखा है, क्या फर्क पड़ता है?

हम यहाँ मौलवी जी को भी बुलायेंगे। लोगों को कुछ मालूम नहीं है कि दूसरे लोग कैसे पूजा करते हैं। सब गंवार लोग हैं। एक-दूसरे के धर्म की



निन्दा करते रहते हैं पर किसको मालूम है कि मुसलमान कैसे नमाज अदा करता है, इबादत कैसे करता है? ईसाई लोग कैसे पूजा करते हैं, मालूम नहीं है। देखा ही नहीं है किसी ने, पर निन्दा करते रहते हैं, दूसरे के धर्म के बारे में मजाक की बातें करते जाते हैं। असलियत तो किसी को पता ही नहीं है।

हाँ, यह बात जरूर है कि कर्मकाण्ड वैदिक धर्म में सबसे अधिक है और इससे थोड़ा कमती है यहूदियों में। यहूदियों में भी बहुत कर्मकाण्ड होता है। इस्लाम में कर्मकाण्ड बिल्कुल नहीं है। ईसाई धर्म में है थोड़ा, मगर बहुत थोड़ा। मोमबत्ती जला देते हैं, अगरबत्ती जला देते हैं, घण्टी बजा देते हैं। मगर यहूदियों में और वैदिक धर्म में बहुत कर्मकाण्ड है।

आप यहाँ किसी मौलवी जी को बुलायेंगे?

हाँ, बुलायेंगे। हमारे बहुत-से मित्र हैं। धर्म में थोड़े ही झगड़ा है। देखो जी, सब धर्म एक ही हैं, यह तो कहना गलत है। अब मुंगेर से देवघर का रास्ता और कलकत्ते से देवघर का रास्ता अलग-अलग तो होगा ही। अगर कलकत्ता वाला आदमी देवघर आयेगा तो मुंगेर होते हुए थोड़े ही आयेगा? लक्ष्य देवघर है, पर रास्ते अलग-अलग हैं। रास्ते तो अलग होने ही चाहिये। कोई बेवकूफ है, कोई गधा है, कोई विद्वान् है, कोई ज्ञानी है, कोई लोभी है, कोई लालची है–सबके लिये रास्ता अलग-अलग तो होना ही चाहिये। मगर हाँ, सभी धर्म एक ही लक्ष्य की बात कहते हैं। अलग-अलग रास्ते हैं, मगर मंजिल एक ही है।

–15 दिसम्बर 1997





अध्याय 22

हमलोगों का वैदिक धर्म कहता है कि सबके रास्ते अलग-अलग हो सकते हैं, पर लक्ष्य एक है। हाँ, कुछ चीजों पर हमलोग अड़े रहते हैं। जैसे अन्त्येष्टि में पक्का नियम है, नवजात शिशु को मिट्टी देनी चाहिये, साधु-संन्यासी को मिट्टी देनी चाहिये, पर गृहस्थ को अग्नि देनी चाहिये, उसको मिट्टी नहीं दी जाती है। शिशु को गाड़ सकते हो क्योंकि उसका शरीर पवित्र है, वह जमीन को खराब नहीं करेगा। साधु-महात्मा अच्छा जीवन यापन करते हैं, उन्हें जमीन में गाड़ दो, काम खत्म। उनका शरीर भी कुछ खराब नहीं करेगा। मगर गृहस्थ को अग्नि में डालना इसलिये जरूरी है कि उसका शरीर अपवित्र रहता है और मरने के बाद भी जमीन को खराब कर सकता है। आखिर मृत शरीर में विषैले जीवाणु रहते हैं न? यह वैज्ञानिक बात है। परन्तु जहाँ ईसाई और इस्लाम धर्म का जन्म हुआ, उन लोगों के देश में तो लकड़ी नहीं होती। ईसाई धर्म यूरोप में नहीं पैदा हुआ है, इज़रायल में पैदा हुआ। वहाँ लकड़ी नहीं होती है, और पानी भी नहीं होता है। इसलिए वहाँ अन्त्येष्टि जमीन में गाड़कर करनी पड़ती है। हमलोगों के यहाँ पानी भी होता है, लकड़ी भी होती है, इसलिए जला लेते हैं।

अब तो वहाँ भी जमीन कम पड़ने लग गई है।

वहाँ अब विद्युत-दाहसंस्कार गृह हो गए हैं, बहुत लोगों का उनमें अंतिम संस्कार होता है। असल में वैज्ञानिक दिमाग के लोग दाह संस्कार को ही उत्तम मानते हैं क्योंकि मरे हुए आदमी को जमीन में गाड़ने से उससे जो रोगाणु पैदा होते हैं, वे मिट्टी को खराब करते हैं। यह उन लोगों की राय

है, परन्तु धर्म के आगे तो उनकी भी नहीं चलती। खैर धीरे-धीरे यह विद्युत-संस्कार गृह आएगा और कुछ सालों में जमीन में गाड़ना बहुत मुश्किल हो जायेगा, उसका कानून बनेगा। अब तो लोग पढ़-लिख रहे हैं न, पढ़ने-लिखने के बाद आदमी की तबियत बदल जाती है।

कहीं-कहीं तो शरीर दस साल तक दफनाया रहता है, उसके बाद निकाल कर बची हुई हड्डियों को समुद्र या नदी में डाल देते हैं। पर जगह बेकार हो जाती है, कोई भी वहाँ रहना नहीं चाहता।

हाँ, वहाँ कोई नहीं रहेगा। लोग कहेंगे भूत है वहाँ! और फिर वह स्थान जहरीला तो होता ही जाता है। मरे हुए आदमी के शरीर से रोगाणु निकलते हैं। क्या मालूम कौन आदमी किस रोग से मरा है? इसलिए जलाना सबसे उत्तम है।

आप इस बात को हमेशा याद रखो कि दुनिया में जितने भी मांसाहारी जानवर होते हैं, जैसे कुत्ता, शेर, चीता आदि, ये केवल शाकाहारी जानवर का ही भोजन करते हैं। मांसाहारी जानवर का भोजन नहीं करते। शेर कभी भी दूसरे शेर या चीते का मांस नहीं खाएगा। मांसाहारी जानवर केवल शाकाहारी जानवर का ही भोजन करते हैं। इसका कारण यही कि मांसाहारी प्राणी के शरीर में विष पैदा होता है और वह विष वे नहीं खाना चाहते। कोई चीता मर जाए तो शेर भूखा रहेगा मगर उसको नहीं खाएगा। खरगोश को खायेगा, पर कुत्ते को नहीं खाएगा। आखिर उसे भी तो पवित्र भोजन चाहिये न।



मनुष्य मूलतः शाकाहारी है। उसका मूल भोजन शाकाहार है। मनुष्य मांस भी खाता है, मगर मांस उसका भोजन नहीं है। इसी तरह बिल्ली शाकाहारी है। उसे मांसाहारी नहीं बोलना चाहिये, वह शाकाहारी खानदान की मानी जाती है। चूँकि उसमें बाघ का कुछ अंश है, इस वजह से उसकी मांसाहार की तरफ कुछ रुचि रहती है। मगर बिल्ली पूरे का पूरा शाकाहारी रह सकती है।

चावल पर रह सकती है, रोटी पर रह सकती है, उसे थोड़ा भी मांस नहीं दोगे तब भी उस पर कोई बुरा असर नहीं होगा। दूसरी ओर कुत्ता मूलत: शाकाहारी नहीं है। अलसेशियन कुत्तों को अगर आप शाकाहार में रखोगे तो दुबले हो जायेंगे, बीमार हो जायेंगे, मर जायेंगे। बिल्ली मछली खाती है, चूहा खाती है, पर यदि नहीं मिलेगा तो भी उसपर कोई बुरा असर नहीं पड़ेगा।

स्वामीजी, जो लोग साधना करते हैं वे मांस खा सकते हैं क्या?

देखिये, यह शरीर पर और वातावरण पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिये, दक्षिण भारत, मध्य भारत, उड़ीसा आदि बहुत गर्म देश हैं। यहाँ मांस खाना शरीर के लिये हानिकारक है। जब शरीर के लिये हानिकारक है तो साधना के लिये भी हानिकारक ही है। पक्की बात है। पर आप यूरोप चले जाओ जहाँ पर तापमान शून्य से 10-20 डिग्री कम है, और न्यूनतम तो शून्य से 30-40 डिग्री कम चला जाता है। वहाँ फिर दूसरा कुछ भी तो पैदा नहीं हो सकता। वहाँ मांस और शराब में कोई दोष नहीं है।

शरीर का जो सामान्य तापमान होता है, 37 डिग्री, यह तो बना रहना चाहिये न? अगर तापमान इससे नीचे चला जाएगा तो? अब भोजन में कैलोरीज़ की जरूरत पड़ती है। हिन्दुस्तान में तापमान ज्यादा होने से कम कैलोरीज़ से भी काम चल जाता है। मगर जहाँ तापमान कम हो, वहाँ तो कैलोरीज़ के अभाव में बूढ़े आदमी के शरीर का तापमान गिरेगा और वह मर जायेगा। ठण्ढे देशों में मांसाहार कैलोरीज़ की पूर्ति के लिए जरूरी हो जाता है।

जहाँ तक साधना का सम्बन्ध है, उसके लिए तो देश और काल के अनुसार ही भोजन होता है। यूँ समझो कि देश-काल के अनुसार भोजन, पेय और सम्बन्ध। साधना में विवाहित जीवन क्या कोई बाधा है? इसका यही उत्तर है कि देश-काल के अनुसार सब देखना पड़ता है। प्राचीन काल में वशिष्ठ, विश्वामित्र, भरद्वाज आदि ऋषि-मुनियों के नाम तो आते ही हैं। ये सब विवाहित थे, सबके तो बाल-बच्चे थे, तो वे कैसे ऊँचे उठे? फिर बाद में शंकराचार्य जी और रामानुजाचार्य जी ने जब ऋषि-मुनियों का संन्यास सम्प्रदाय दुबारा बनाया तो इसमें अविवाहित जीवन को व्यवहार में क्यों लाए? पहले की तरह विश्वामित्र-वशिष्ठ जैसा क्यों नहीं किया? समय बदल चुका था, परिस्थिति अलग हो गई थी।



देखिये, आप को सीधी-सीधी बात बोलता हूँ। हमारा शास्त्र कहता है, मनुस्मृति कहती है कि मांस-मदिरा में, स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में कोई दोष नहीं है, किन्तु ये सब चीजें समाज और देश को देखकर करनी पड़ती हैं। भगवान बुद्ध के दो-तीन सौ साल बाद महाराजा अशोक का राज आया। तब बौद्ध धर्म को यहाँ राष्ट्रीय धर्म माना गया। मांसाहार पर रोक लग गई। जब राजा मांसाहार पर रोक लगाता है तो प्रजा क्या करेगी, मानना पड़ेगा। और उसी समय शंकराचार्य जी का जन्म हुआ। इसलिये संन्यास सम्प्रदाय निरामिष हुआ। सभी संन्यासी निरामिष होते हैं ऐसी बात नहीं है। निरंजनी अखाड़े में निरामिष हैं और जो शाक्त अखाड़े हैं, वहाँ आमिष-भोजी हैं। उदासीनों में निरामिष हैं और जूना अखाड़े में जो नागा लोग होते हैं, जो श्मशान में रहते हैं, सब आमिष-भोजी हैं, मद्यपान करते हैं, सिगरेट पीते हैं, गांजा लेते हैं, कोई रोक-टोक नहीं उन पर। यह सब देश-काल को देखकर होता है। अब कोई आदमी मेहतर है, चाण्डाल है, कल उसने संन्यास ले लिया तो क्या करेगा वह? वह तो अपने संस्कार मुताबिक चलेगा न? ब्राह्मण अपने संस्कार मुताबिक चलेगा, उसके लिये शाकाहार सरल है, लेकिन एक चाण्डाल के लिए कितना मुश्किल हो जाएगा?

हमारे आदि-पुरुष जो लाखों साल पहले जंगलों में रहते थे, वे शाकाहारी थे, फल-मूल-कंद से अपना निर्वाह करते थे। जब जंगलों में आग लगी, जानवर मरने लगे तब वे उनको खाने लगे। उन्हें लगा बड़ा स्वादिष्ट है, चलो इससे भी काम चल जाएगा। फल तो हमेशा मिलते नहीं, मगर जानवर

तो हमेशा मिलते हैं। तब जाकर मांसाहार उनके जीवन में आया। हाँ, मगर मनुष्य मूलत: शाकाहारी है। उसके दाँत यह सिद्ध करते हैं। उसकी आँतों की लम्बाई सिद्ध करती है कि वह शाकाहारी है। शाकाहारी जानवरों की आँतें लम्बी होती हैं जबकि मांसाहारी जानवरों की गोल और छोटी। मांसाहारी जानवरों में मांस फाड़ने वाले दाँत अलग से होते हैं। हमलोगों के फाड़ने वाले दाँत हैं ही नहीं, चबाने वाले दाँत हैं। इसके अलावा पित्त यानि हाइड्रोक्लोरिक एसिड का कॉन्सेन्ट्रेशन शाकाहारी पशुओं में कम रहता है, जबकि शेर या कुत्ते जैसे मांसाहारी जानवरों में यह तेजाब की तरह होता है। अगर यह अम्ल तुम्हारी धोती पर गिर जाए तो तुम्हारी धोती जल जाएगी। कुत्ता हड्डी फेंकता थोड़े ही है, वह हड्डी काटकर सीधे पेट में डालता है और वहाँ के तेजाब से वह गल जाती है। मांसाहारी और शाकाहारी पशुओं के वर्गीकरण के ये तीन मुख्य आधार हैं–दाँत, आँत और हाइड्रोक्लोरिक एसिड का कॉन्सेन्ट्रेशन।

एक बार हम अलास्का और ग्रीनलैंड गये हुऐ थे, वहाँ हम कुछ दिन एस्किमो लोगों के साथ भी रहे। वहाँ वे लोग सील मछली को मारकर छत से लटका देते हैं। आग के धुएँ में पकाकर खा लेते हैं वे लोग। उनके घर पत्थर के नहीं, बर्फ की सिल्ली के रहते हैं। वहाँ बर्फ की सिल्ली इतनी कठोर होती है कि छेनी और आरी से काटते हैं। वहाँ बर्फ बड़ी चट्टान की तरह होती है, जिसे काट-काट कर, ईंटों की तरह जोड़-जोड़ कर रखते हैं, मकान बनाते है। वह बर्फ गलती ही नहीं है।

आग से भी नहीं गलती?

नहीं। गजब की बात है। हमने भी पहले यह सिर्फ सुना था और तब यह समझ में नहीं आता था। पर जब खुद देखा तो यकीन हो गया। आरी से, छेनी से काट कर बर्फ का ईंटा बनाते हैं वे लोग। अन्दर आग जलती रहती है, फिर भी बर्फ कभी गलती नहीं है। वे लोग उन बर्फ के घरों में रहते हैं, ऊन और चमड़े के कपड़े पहनते हैं। छोटे-छोटे कद के होते हैं, उनकी दाढ़ी-मूँछ नहीं होती। उनके बच्चों के गाल एकदम लाल टमाटर की तरह होते हैं। बस ऊपर से मछली पकड़कर लाते हैं, अन्दर में आग जलती है, उसके ऊपर सरिया रहता है, उसपर चढ़ा देते हैं। दिनभर मछली पकती रहती है, शाम को नमक डालकर खा लेते हैं। खैर अब तो बहुत बदल गया है, वहाँ भी बड़े-बड़े शहर हो गये हैं। पहले वहाँ कुत्ते स्लेज गाड़ियाँ चलाते थे, अब तो मशीन से

चलती हैं। वहाँ सड़कों पर तो बर्फ पड़ी रहती है। मोटरगाड़ी फिसल जायेगी, इसलिए वहाँ स्लेज चलती है, बिना पहिये की गाड़ी। वह मोटर से चलती है, पर पहिया नहीं होता है। बहुत ठण्ढा देश है। हम वहाँ जाते थे तो बाकायदा गर्म कपड़े पहनकर जाते थे। वहाँ ऐसे थोड़े ही आने देते हैं। लंगोटी पहनकर जायेंगे तो जेल में डाल देंगे।

वहाँ सब्जी वगैरह मिलती है?

हाँ, सब मिल जाता है। आयात करते हैं और वहाँ ग्रीनहाउस भी होते हैं। काँच के मकान बना देते हैं, उसके अन्दर लोग टमाटर, मटर, गोभी, बैंगन सब लगा देते हैं। अब तो वहाँ विज्ञान पहुँच गया है। ग्रीनहाउस तो आपको नॉर्वे, डेन्मार्क, स्वीडन सब जगह मिलेंगे।

वहाँ सब जगह सेन्ट्रल हीटिंग की व्यवस्था रहती है। सब मकान और घर बन्द रहते हैं, अन्दर एकदम गर्म रहते हैं। आने-जाने का दरवाजा खुला, बन्द हुआ, खुला, बन्द हुआ। वह खुला नहीं रहता और किसी ने अगर खिड़की थोड़ी देर के लिये खुली छोड़ दी तो जुर्माना कर देते हैं वे लोग। डबल खिड़की रहती है जो एकदम इन्सूलेटेड होती है। लकड़ी और मिट्टी के मकान ज्यादा हैं वहाँ। जैसे-जैसे उत्तर की ओर जाते हो, मकान मिट्टी के मिलते हैं, मगर बहुत अच्छे ढंग से बने होते हैं। यहाँ टेक्नॉलजी बहुत पुरानी है लेकिन वहाँ बहुत अच्छी है। वहाँ गाँव में तो मिट्टी के ही मकान होते हैं, पर बहुत अच्छे मकान होते हैं। उसमें लकड़ी से बीम वगैरह बना लेते हैं वे लोग। देखने में बहुत सुन्दर लगते हैं। दूसरी मंजिल में लकड़ी से ढलाई करते हैं। लकड़ी का इस्तेमाल वे लोग इसलिये करते हैं कि वह गर्मी को अपने भीतर ज्यादा देर तक रखती है, गर्मी को जल्दी निष्कासित नहीं करती है। वहाँ तो हमने कहीं सीमेंट का मकान देखा नहीं। बस लकड़ी पर कालीन या दरी बिछा देते हैं। लकड़ी काफी देर में गर्म होती है और काफी देर तक गर्म रहती है, जबकि सीमेंट जल्दी गर्म और जल्दी ठण्ढा होता है।

खैर, अपने नागरिकों के लिये व्यवस्था तो उन्होंने बहुत अच्छी की है। वहाँ के नागरिक भी कानून-व्यवस्था पसंद करते हैं। उन्होंने अपने नागरिकों को कई प्रकार की स्वतंत्रता दी है। जैसे कोई भी व्यक्ति किसी भी धर्म को अपना सकता है, कोई भी नौकरी कर सकता है। यह नहीं कि राजा या राष्ट्रपति का लड़का है तो उसे ऊँची नौकरी ही करनी चाहिये। नहीं, वह

किसी मुर्गीखाने में सफाई कर सकता है, सड़क पर झाड़ू लगा सकता है। औरतें दिन में, रात में कभी भी काम कर सकती हैं। कोई प्रतिबन्ध नहीं है कि औरतें काम नहीं करेंगी या मर्दों से बात नहीं करेंगी। वे लोग सच बोलते हैं, छिपाने की आदत उनमें नहीं है। शराब-सिगरेट रात में एक-दूसरे के सामने पीते हैं। व्यक्तिगत रिश्तों के मामले में भी छिपाने का हिसाब नहीं है। मर्द औरत को साफ-साफ बोल देगा, 'मेरा किसी और के साथ रिश्ता हो गया है, अच्छा है अब हम लोग अलग हो जाएँ।'

दुकान के मामले में, सामान के मामले में भी सच्चाई। हम एक बार दक्षिण अमेरिका से आते समय फ्रैंकफर्ट में उतरे और वहाँ किसी होटल में ठहरे। कमरे में आकर हमने अपना बड़ा रूआना कोट कुर्सी के पीछे लटका दिया। जब कमरा छोड़ा तो उसे वहीं भूल गये। जब हवाईजहाज में बैठे तब ख्याल आया कि हमारा कोट वहाँ छूट गया। हमने सोचा, छोड़ो क्या करना है, कहीं से दूसरा ले लेंगे। छः महीने बाद हम संयोग से उसी होटल में ठहरे तो हमने होटल वाले को वह तारीख बताई, कमरे का नम्बर वगैरह सब बताया। मेरा कोट वहीं था! लॉस्ट एण्ड फाउण्ड में ड्राई-क्लीन करके मेरे पासपोर्ट नम्बर के साथ रखा था, छः महीने बाद भी। उत्तरदायित्व और जिम्मेदारी बहुत होती है उनमें। हम तो प्रायः पांच सितारा होटल में रहते थे। कमरे में हमारा सामान पड़ा रहता था और हम बोल जाते थे कि कमरा साफ करवा दो। हमारे आने तक सारा कमरा साफ हो जाता था, पर एक भी चीज गायब नहीं होती थी।

ईमानदारी नाम की कोई चीज नहीं है, मैं यह मानता हूँ। ईमानदारी परिस्थितियों की देन होती है। आप यहाँ अगर एक फैक्टरी खोलते हैं तो आपके निदेशक या प्रबंधक या अन्य कर्मचारी धोखा क्यों देते हैं? इसलिए कि आपकी व्यवस्था, आपका सिस्टम गलत है। ईमानदारी व्यवस्था से उपजती है। आदमी ईमानदार होता है, हम नहीं मानते हैं। जो आदमी कम अक्ल का होता है, बुद्धू होता है, वह शायद ईमानदार हो, पर तेज आदमी ईमानदार है, यह मैं मानने के लिये तैयार नहीं हूँ। ईमानदारी एक सिस्टम की देन होती है। दुनिया में बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ होती हैं, मुख्यालय अमेरिका में है तो हांगकांग में फैक्टरी है। उनका काम कैसे चल रहा है ठीक से? व्यवस्था की वजह से, सिस्टम के कारण। वे लोग एक व्यवस्था, काम करने का एक ढंग बनाते हैं। उस ढंग से काम होता है, नियम बनते हैं, सब कुछ होता है। तब जाकर काम सही तरीके से होता है। ईमानदारी व्यवस्था की देन है और

यहाँ बेईमानी इसलिये है कि यहाँ कोई व्यवस्था है ही नहीं। वहाँ व्यवस्था है और उस व्यवस्था की वजह से उनको ईमानदार रहना ही पड़ता है। अगर बेईमान होंगे तो व्यवस्था उनको दण्डित करेगी।

पहले हिन्दुस्तान में ईमानदारी बहुत थी, लेकिन हाल में हम देखते हैं व्यवस्था बिगड़ी है।

पहले ईमानदारी इसलिये थी कि आदमी के पास दूसरा रास्ता नहीं था। नहीं तो बेईमान क्यों बनें, आदमी को जरूरत ही नहीं थी। उसको लालच नहीं था, लोभ नहीं था, तो क्यों बेईमान बनेगा? बेईमान तो आदमी तब बनता है जब उसे लोभ-लालच होता है।

असली चीज यह है कि हिन्दुस्तान में नौकरों को, मजदूरों को बहुत कम तनख्वाह देते हैं। पाँच सौ, छः सौ रुपये महीना में किसका पेट भरता है आजकल? जो रिक्शावाला देवघर में रिक्शा चलाता है, उसे दिन में ज्यादा-से-ज्यादा तीस रुपया मिलता है। तीस रुपये में उसे अपने बीवी-बच्चों सबको संभालना है।

सरकार को कुछ करना चाहिये? कानून बना दे तो सब मानेंगे।

नहीं, सरकार क्या करेगी? लोग कहाँ मानते हैं?

अगर सब इसके विरुद्ध आवाज उठाएँ तब तो कुछ होगा न स्वामीजी?

सब जानते हैं। कौन नहीं जानता है हिन्दुस्तान में? मैं कोई नई बात थोड़े ही बोल रहा हूँ। हर कोई जानता है कि लोगों को तनख्वाह कम मिलती है, मगर करेगा क्या? सब लोग जानते हैं, सब कुछ है, मगर सवाल एक ही उठता है कि यहाँ का जो सामान्य कामगार है वह भी तो कुशल नहीं है न! जब हम शुरू-शुरू में यहाँ आए तो दीवारों पर चूना लगवाना शुरू किया। जो चूना लगाता था उसके सारे बदन में चूना लग जाता था। बाद में हमें एक पेशेवर पेंटर मिला जो ढंग से चूना लगाता है, मतलब वह कुशल मजदूर है, उसे मालूम है क्या करना, कैसे करना। अब हम लोग निश्चिन्त हो जाते हैं। तो यह जो प्रोफेशनल तरीका है काम करने का, यह हमारे समाज में आया कहाँ है?

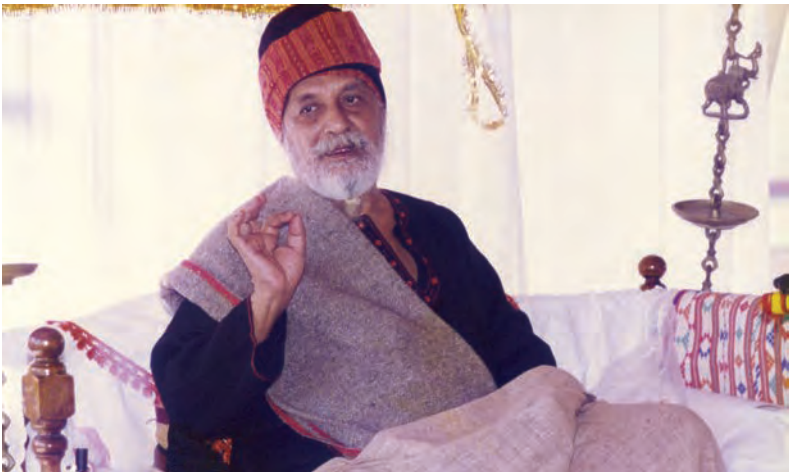
–18 दिसम्बर 1997

ॐ

अध्याय 23

स्वामीजी, हमलोगों के लिये आशीर्वाद दीजिए।

देखो जी, आशीर्वाद तो केवल भगवान देते हैं। मनुष्य तो दूसरे मनुष्य के लिये शुभकामनाएँ ही दे सकता है। वैसे भगवान का आशीर्वाद तो हर आदमी को प्राप्त रहता है। भगवान हर आदमी को आशीर्वाद देते हैं। बहुत समय बीतने पर विचार करोगे तो तुम्हें लगेगा कि मनुष्य के जीवन में जो हुआ है और जो होता है वह पहले से पूर्णत: निश्चित होता है। वैसे संसार में पुरुषार्थ पर बोलने वाले बहुत हैं, किन्तु मनुष्य के जीवन की पूरी कहानी पहले ही लिखी जाती है। कौन लिखता है, किसलिये लिखता है, वह तो बहुत लम्बी-चौड़ी बातें हैं, उसको बतलाने से कोई फायदा भी नहीं है।



हम इतने वर्षों का जब सिंहावलोकन करते हैं तो केवल एक ही चीज समझ में आती है कि मैंने तो कुछ किया नहीं। जो किया वह इसलिये किया कि वह समय-समय पर होना था। अब युवा अवस्था में तो आदमी ऐसा सोचता नहीं है और शायद मानसिक विकास के लिये उसे सोचना भी नहीं चाहिये। उस समय मनुष्य पुरुषार्थवादी रहता है, किन्तु जब वह गहरे चिन्तन में जाता है और अपने विगत जीवन का सिंहावलोकन करता है, उस पर निष्पक्ष रूप से विचार करता है तब उसे पता चलता है। ईश्वर को मानो अथवा न मानो, दोनों चलेगा। पर एक बात पक्की है कि जीवन में मैंने अब तक जो किया वह इसलिये किया क्योंकि वह होना था। जब ऐसा ही है तो आदमी खोपड़ी क्यों मारता है, मुझे समझ में नहीं आता। खोपड़ी इसलिये मारता है क्योंकि उसे इस बात पर यकीन नहीं होता।

आदमी कहाँ से आता है, कहाँ जाता है, कोई प्लानिंग काम नहीं करती। मेरा तो यहाँ आने का इरादा था ही नहीं। मुझे तो सेवानिवृत्त होना था। ऋषिकेश में मेरे गुरुजी का बहुत बड़ा आश्रम है, एक कुटिया मुझे कहीं भी आराम से दे देते। गंगोत्री में मेरी एक गुफा है, अभी भी ताला रहता है उसमें, मैं वहाँ भी रह सकता था। मगर यहाँ आकर जम गया। और यहाँ आने का निर्णय, यहाँ आने से करीब चार दिन पहले लिया, जबकि गंगोत्री का निर्णय महीनों का था, वर्षों का था। ऋषिकेश का निर्णय भी वर्षों का था, वह भी फेल हो गया। यहाँ का चार दिन का निर्णय पास हुआ। यह सब चीजें समझ में नहीं आती हैं।

मनुष्य को हमेशा यह समझकर रखना चाहिये कि उसका स्थान, उसकी औकात क्या है। अखिल अनन्त ब्रह्माण्ड को छोड़ो, अपने सौर-मण्डल को ही ले लो। तुम्हारे अपने सौर-मण्डल में तुम्हारी पृथ्वी का क्या स्थान है? उस पृथ्वी में तुम्हारे हिन्दुस्तान का क्या स्थान है? उस हिन्दुस्तान में तुम्हारे मुंगेर या देवघर का क्या स्थान है? उस देवघर में तुम्हारे रिखिया का कहाँ पर स्थान है? उस रिखिया में मेरे घर का कहाँ पर स्थान है और उस घर में मेरा कहाँ स्थान है? कहीं है ही नहीं, फिर भी मेरा 'मैं' कितना बड़ा है! जैसे अणु के अंदर परमाणु घूमते हैं, मनुष्य का इस संसार में अस्तित्व भी वैसा ही है। अपना-अपना जिसने जो किया, वैसा वह पा रहा है। इस जन्म में पाया, अगले जन्म में पाएगा। कुछ अच्छा किया तो गुरुजी मिल गये, कुछ गलत किया तो हो सकता है अगले जन्म में भी नहीं मिलें, क्या मालूम?

भक्ति

मैं तो योग के बारे में अब बिल्कुल भूल गया हूँ। दूसरे लोगों के विचारों के बारे में अब कोई राय भी नहीं रखता, क्योंकि यही देखा है कि लोग वही करेंगे जो वे करना चाहते हैं, और उनको रोकने की कोशिश में खुद को थकाने से कोई फायदा नहीं। जब से मैं यहाँ आया हूँ मेरा यही प्रयास रहा कि भक्ति को छोड़कर बाकी सब विचारधाराओं, मतों और सिद्धान्तों से अपना नाता किसी तरह तोड़ दूँ। योग अब मुझसे बहुत दूर चला गया है। मैं तो अनेक आसन-प्राणायामों के और इस क्षेत्र में मुझसे जुड़े बहुत-से लोगों के नाम तक भूल गया हूँ। चेहरे धुंधले होते जा रहे हैं। अब मेरा पूरा ध्यान और लगन भक्ति पर है। मैं यही चाहता हूँ कि मेरी सभी भावनाएँ, विचार और कर्म केवल भक्ति की वृद्धि पर केन्द्रित हों। मेरे लिए भक्ति का सीधा-सा मतलब है। मैं नौकर हूँ और वह मालिक। जो वे कहेंगे, मैं करूँगा। अगर वे चाहते हैं कि मैं अपना शरीर छोड़ दूँ तो मैं उसक लिए भी तैयार हूँ। और अगर उनकी मर्जी है कि मैं उनका कोई और आदेश पूरा करूँ तो क्यों नहीं?

अब मेरे सोचने का तरीका बिल्कुल अलग है। कोई मूलाधार या सहस्त्रार चक्र नहीं, कोई इडा, पिंगला, सुषुम्ना नहीं। मेरा रास्ता अब बहुत सरल है। साल में एक बार मैं बाहर आकर गांव वालों से मिलता हूँ और सीता-राम का विवाह मनाता हूँ। बुद्धिजीवियों और विद्वानों के लिए यह समझ के परे की बात होगी कि कैसे दशनामी परम्परा का एक संन्यासी सीता और राम का विवाह मनाता है। लेकिन मेरे लिए यह बहुत आनंद का विषय है। मैं निम्नतर और उच्चतर मन को आपस में जोड़ने में बेशक असमर्थ हूँ, लेकिन मुझे सीता और राम के विवाह में बहुत आनंद आता है, मैं उसे निश्चित रूप से महसूस करता हूँ। जो मैं दर्शनशास्त्र, योग या ध्यान के माध्यम से अनुभव नहीं कर पाया, वह मैं सीता और राम के विवाह में भावनाओं के माध्यम से अनुभव कर पाता हूँ। सीता और राम ऐसे स्त्री-पुरुष हैं जो मेरी आँखों के सामने नहीं हैं, पर मैं उनका अनुभव करता हूँ। जो मेरे सामने न हो, उसे फिर भी अपने मनपसंद रूप में अनुभव करने में जो आनंद आता है उसकी बात ही कुछ और है। वह जादू का काम करता है। सिर्फ मेरे लिए ही नहीं, दूसरों के लिए भी। इस साल सीता कल्याणम् में पूरी पंचायत उमड़ पड़ी। दूर-दूर से लोग सीता के लिए दहेज लेकर आए। मैंने छः सौ से ज्यादा नववधुओं को सुहाग-पेटियाँ बाँटी होंगी। हर पेटी में जो कपड़े-गहने वगैरह थे, उनकी

कीमत तीस-चालीस हजार रुपये से कम नहीं होगी। सोने के गहने तो इन लोगों को बहुत ही पसंद आते हैं।

सच्चाई वह नहीं है जो तुम देखते हो, सच्चाई वह है जो तुम देख नहीं सकते। सच्चाई वह नहीं है जो तुम आँखों से देखते हो या मन से सोचते हो, बल्कि वह है जो तुम भावनाओं से अनुभव करते हो। भावना के कारण कोई औरत तुम्हारी पत्नी बन पाती है। पत्नी के साथ तुम्हारा सम्बन्ध सच है, यथार्थ है, क्योंकि उसका आधार भावना है। भावनाएँ ही सच्चाई को सामने लाती हैं, न कि दर्शनशास्त्र या इन्द्रियजनित अनुभूतियाँ। भावना की वजह से तुम्हारा बेटा तुम्हें बाप बोलता है। भावनाएँ ही वास्तविकता का, यथार्थ का और सच्चाई का निर्माण करती हैं। ऐसी भावनात्मक सच्चाई का जीवन में होना अनिवार्य है।

इसलिए मेरा रास्ता अब बिल्कुल अलग है। मुझे परवाह नहीं कि लोग मेरे बारे में क्या सोचते हैं, क्या बोलते हैं। मुझे अब भक्ति के रास्ते पर आगे बढ़ना है।

मीराबाई

मीरा बहुत महान् भक्त और संत थी। बचपन से वह भगवान के नशे में चूर हो गई थी। बड़ी होने पर उसकी शादी चित्तौड़ के राजकुमार से करा दी गई। चित्तौड़ उस समय पश्चिम भारत का सबसे शक्तिशाली राज्य था। लेकिन वहाँ बात बन नहीं पाई, क्योंकि वह मानती थी कि उसकी शादी तो कृष्ण भगवान से हुई है। उसके लिए यही भावनात्मक सच्चाई थी। दूसरे लोग इस चीज को समझने या मानने के लिए तैयार नहीं थे। उनके लिए तो वही व्यक्ति उसका पति था जिससे उसकी शादी हुई थी। लोगों की सोच-समझ तो बस शरीर और इंद्रियों तक सीमित थी। इस सब के बीच कृष्ण कौन हुए? तब उन लोगों ने मीरा को जान से मारने की कोशिश की। लेकिन मीरा का बाल भी बाँका नहीं हुआ। उसने चित्तोड़ छोड़ दिया और मथुरा-वृन्दावन आ गई। वहाँ काफी देर रहने के बाद द्वारका पहुँची। उसे कितनी दिक्कत हुई होगी। उस वक्त किसी राजघराने की औरत घर से बाहर निकली, मथुरा-वृंदावन गयी और लोग उसको पागल कहते थे। पर क्या वह पागल थी? आज भी सारी दुनिया उसके गीत गाती है। फिर वह पागल कैसे हो सकती है?

—21 दिसम्बर 1997



स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का जन्म उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा ग्राम (उत्तरांचल) में सन् 1923 की मार्गशीर्ष पूर्णिमा को हुआ। उनमें बाल्यावस्था से ही आध्यात्मिक जीवन के प्रति झुकाव था और विलक्षण प्रतिभाएँ परिलक्षित होती थीं। 18 वर्ष की अवस्था में उन्होंने गुरु की खोज में घर छोड़ दिया। 1943 में उन्हें ऋषिकेश में अपने गुरु स्वामी शिवानन्द के दर्शन हुए। 12 सितम्बर 1947 को गुरु ने उन्हें परमहंस संन्यास में दीक्षित किया। वे 12 वर्ष गुरु की सेवा में रहे और आध्यात्मिक जीवन के हर आयाम में दक्षता प्राप्त की। तत्पश्चात् उन्होंने परिव्राजक संन्यासी के रूप में आठ वर्षों तक सम्पूर्ण भारत, अफगानिस्तान, बर्मा, नेपाल एवं श्रीलंका का भ्रमण किया। इस अवधि का उपयोग उन्होंने यौगिक तकनीकों को प्रतिपादित एवं परिष्कृत करने में किया, ताकि मानवता को कष्टों से त्राण मिल सके।

योग की प्राचीन पद्धति को आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की आवश्यकता का अनुभव होने पर उन्होंने 1956 में अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल एवं 1963 में बिहार योग विद्यालय की स्थापना की। अगले 20 वर्षों तक विश्व भ्रमण करते हुए उन्होंने योग की पताका विश्व के कोने-कोने में फहरा दी और बिहार योग विद्यालय को योग की एक अग्रगण्य संस्था के रूप में ख्याति दिलायी। उन्होंने योग, तंत्र एवं आध्यात्मिक जीवन पर अस्सी से अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया।

'सत्यानन्द योग' एक ऐसी परम्परा बन गयी, जिसमें शास्त्रीय और अनुभवात्मक ज्ञान तथा आधुनिक दृष्टिकोण का सुन्दर समन्वय है। ग्राम्य-विकास की भावना से 1984 में उन्होंने दातव्य संस्था 'शिवानन्द मठ' की एवं योग पर वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से 'योग शोध संस्थान' की स्थापना की। सन् 1988 में उपलब्धियों के शिखर पर पहुँचकर उन्होंने सबकुछ त्याग दिया और क्षेत्र संन्यास लेकर परमहंस संन्यासी की जीवन पद्धति अपना ली। सन् 1989 में उन्हें रिखिया आने का दैवी आदेश हुआ, यहाँ उन्होंने एकान्तवास करते हुए उच्च वैदिक साधनाएँ कीं। सन् 1991 में अपने पड़ोसियों को सुविधाएँ उपलब्ध कराने का आदेश मिलने पर उन्होंने आश्रम को उस क्षेत्र के अभावग्रस्त ग्रामीणों की सहायता करने की अनुमति दी। सन् 1995 में उन्होंने वैश्विक सुख, शान्ति एवं समृद्धि का संकल्प लेकर बारह वर्षीय राजसूय यज्ञ आरम्भ किया और सन् 2007 में 'सेवा, प्रेम और दान' को अपनी मुख्य गतिविधि बनाने का आदेश देकर रिखियापीठ की स्थापना की घोषणा की।

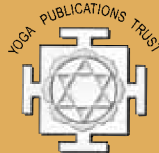
स्वामी सत्यानन्द 5 दिसम्बर 2009 की मध्यरात्रि में अपने शिष्यों की उपस्थिति में महासमाधि में लीन हो गये।



SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती झारखण्ड राज्य के अज्ञात-से गाँव, रिखिया में सन् 1989 में पधारे और यहाँ उन्होंने अपने आध्यात्मिक जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ किया। गहन वैदिक तपस्याओं और साधनाओं को सम्पन्न कर उन्होंने भावी पीढ़ियों के लिए संन्यास परम्परा का एक उच्च आदर्श स्थापित किया। सन् 2007 में उन्होंने 'सेवा, प्रेम और दान' के आदर्श को व्यावहारिक रूप देने के उद्देश्य से रिखियापीठ की स्थापना की। 5 दिसम्बर, 2009 की मध्यरात्रि में वे यौगिक विधि से स्वेच्छानुसार महासमाधि में लीन हो गए।

यह पुस्तक श्री स्वामीजी द्वारा रिखियापीठ में नवम्बर एवं दिसम्बर 1997 में दिये गये सत्संगों का संकलन है, जिनमें उन्होंने अध्यात्म, भक्ति, योग, धर्म, सेवा, इतिहास, विज्ञान, ग्रामीण विकास, शिक्षा, महिला-उत्थान तथा अर्थशास्त्र जैसे अनेक प्रासंगिक विषयों पर अपना मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया है। श्री स्वामीजी के व्यावहारिक तथा प्रेरक विचार जीवन में प्रकाश खोजते सभी जिज्ञासुओं को एक नयी दिशा और ऊर्जा प्रदान करते हैं।



[bar code here]

ISBN : 978-93-84753-68-9